

DR.RUPNATHJI( DR.RUPAK NATH )

संस्कृत  
व्याकरण  
प्रवेशिका

DR.RUPNATHJI( DR.RUPAK NATH )

यद्यपि बहु नाधीषे तथापि पठ पुत्र व्याकरणम् ।  
स्वजन श्वजनो मा भूसिकल शकलः सकृच्छकृत् ॥

# विषय-सूची

## प्राक्कथन

विषय	सेक्शन	पृष्ठ
व्याकरण शास्त्र	१	२५
पाणिनि	२	२६
अष्टाध्यायी	३	२६
प्रत्याहार	४	२७
अनुबन्ध	५	२८
गणपाठ	६	२८
सज्ञाएँ और परिभाषाएँ	७	२८
वृद्धि	७ ( १ )	२९
गुण	७ ( २ )	२९
सम्प्रसारण	७ ( ३ )	२९
टि	७ ( ४ )	२९
उपधा	७ ( ५ )	२९
प्रातिपदिक	७ ( ६ )	२९
पद	७ ( ७ )	२९
सवनामस्थान	७ ( ८ )	३०
अङ्ग	७ ( ९ )	३०
भ	७ ( १० )	३०
घु	७ ( ११ )	३०
घ	७ ( १२ )	३०
विभाषा	७ ( १३ )	३०
निष्ठा	७ ( १४ )	३०
सयोग	७ ( १५ )	३०

DR. RUPNATHJI (DR. RUPAK NATH)

विषय	सेक्शन	पृष्ठ
सहिता	७ (१६)	३०
प्रगृह्य	७ (१७)	३०
सार्वधातुक प्रत्यय	७ (१८)	३१
आर्धधातुक प्रत्यय	७ (१९)	३१
सत्	७ (२०)	३१
अनुनासिक	७ (२१)	३१
सवर्ण	७ (२२)	३१
अनुवृत्ति	८	३१
पाणिनीय सस्कृत की जीवितरूपता	९	३२
कात्यायन	१०	३२
पतञ्जलि	११	३३
जयादित्य और बामन	१२	३३
जिनेन्द्रबुद्धि	१२	३३
हरदत्त	१२	३३
मर्तृहरि	१२	३४
कैयट	१२	३४
विमल सरस्वती	१२	३४
रामचन्द्र	१२	३४
मट्टोजि दीक्षित	१२	३४
कोण्डभट्ट	१२	३५
प्रडितराज जगन्नाथ	१२	३५
नागेश मट्ट	१३	३५
चन्द्रगोमी	१४	३५
शर्व वरमा	१४	३५
जैनेन्द्र व्याकरण	१४	३५
शाकटायन शब्दानुशासन	१४	३५
हेमचन्द्र का शब्दानुशासन	१४	३५
सारस्वत व्याकरण	१४	३५



विषय	सेक्शन	पृष्ठ
बोपदेव का मुग्धबोध व्याकरण	१४	३५
जौमर व्याकरण	१४	३५
सोपन्ध व्याकरण	१४	३५
रामाश्रम की सारस्वत-चन्द्रिका	१४	३६
पाणिनि व्याकरण के अध्ययन की विधि	१५	३६
		३६
<b>वर्ण-विचार</b>	<b>प्रथम सोपान</b>	
'संस्कृत' शब्द का अर्थ	१	३७
संस्कृत-वर्णमाला	२	३८
स्वर के तीन प्रकार	२ (क)	४०
व्यञ्जनो के भेद	२ (ख)	४०
उच्चारण विधि	३	४१
वर्णों के उच्चारण स्थान	३ (क)	४१
<b>सन्धि-विचार</b>	<b>द्वितीय सोपान</b>	
सन्धि-लक्षण	४	४४
सन्धि-जनित परिवर्तन	५	४५
<b>स्वर सन्धि</b>		
दीर्घ सन्धि	६	४६
गुण सन्धि	७	४७
वृद्धि सन्धि	८	४८
पररूप सन्धि	८	४९
यण् सन्धि	९	४९
एचोऽयवायाव	१०	५०
पूर्वरूप सन्धि	११	५१
प्रगृह्य नियम	१२	५१
प्लुत सन्धि	१२	५१

विषय	सेक्शन	पृष्ठ
<b>हल् सन्धि</b>		
इतो इचुना इचु	१३ (क)	५२
ष्टुना ष्टु	१३ (ख)	५३
न पदान्ताद्वोरनाम्	१३ (ग)	५३
तो षि	१३ (घ)	५३
झला जश् झशि	१४	५३
झला जशोञ्जे	१४ (क)	५४
यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा	१५	५४
तोर्लि	१६	५४
उद स्थास्तम्भो पूर्वस्य	१६ (क)	५५
भयो होऽन्यतरस्याम्	१७	५५
खरि च	१७	५५
शश्छोऽटि	१६	५५
अनुस्वार-विधान	२०	५६
अनुस्वार के मित्र-मित्र स्थायीष	२२	५६
णत्व-विधान	२३	५७
षत्व विधान	२४	५७
“सम” की सन्धि	२५	५८
“छ” सन्धि (छे च, दीर्घात्)	२६	५९
<b>विसर्ग सन्धि</b>		
पदान्त स का विसर्ग हो जाना	२७	५९
विसर्ग का स् हो जाना	२८	६०
विसर्ग का जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय होना	२८ (क)	६०
विसर्ग का विकल्प से स् होना	२८ (ख)	६०
विसर्ग का विसर्ग ही बना रहना	२८ (ग)	६०
नमस्पुरसोर्गंत्यो	२९	६१

विषय	सेक्शन	पृष्ठ
तिरसोज्यतरस्याम्	३०	६१
द्विस्त्रिश्चतुरिति कृत्वोऽर्थे	३१	६१
विसर्ग का उ हो जाना	३२	६२
भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि	३२ (क)	६२
रोऽसुपि	३२ (ख)	६३
विसर्ग का र् हो जाना	३३	६३
ढलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽण	३३ (क)	६३
“स ” तथा “एष ” के विसर्ग का लोप	३४	६४

### संज्ञा-विचार

### तृतीय सोपान

परिवर्तनशील तथा अपरिवर्तनशील शब्द }	३५	६५
पुरुष तथा वचन	३५ (क)	६५
संज्ञाओं के तीन लिङ्ग	३५ (ख)	६५
विभक्ति-विचार	३६	६६
स्वरान्त तथा व्यञ्जनान्तप्रातिपदिक	३७	६६
अकारान्त पुल्लिङ्ग शब्द	३८	७०
आकारान्त पुल्लिङ्ग शब्द	३९	७२
इकारान्त पुल्लिङ्ग शब्द	४०	७३
ईकारान्त पुल्लिङ्ग शब्द	४१	७५
उकारान्त पुल्लिङ्ग शब्द	४२	७६
ऊकारान्त पुल्लिङ्ग शब्द	४३	७७
ऋकारान्त पुल्लिङ्ग शब्द	४४	७७
ऐकारान्त पुल्लिङ्ग शब्द	४५	७९
ओकारान्त पुल्लिङ्ग शब्द	४६	७९
अकारान्त नपुंसकलिङ्ग शब्द	४७	८०
इकारान्त नपुंसकलिङ्ग शब्द	४८	८०
ईकारान्त नपुंसकलिङ्ग शब्द	४९	८१

विषय	संख्या	पृष्ठ
उकारान्त नपुंसकलिङ्ग शब्द	५०	८३
ऋकारान्त नपुंसकलिङ्ग शब्द	५१	८८
आकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द	५२	८८
इकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द	५३	८५
ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द	५४	८५
उकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द	५५	८७
ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द	५६	८८
ऋकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द	५७	८९
औकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द	५८	९०

### व्यञ्जनान्त सज्ञाएँ

चकारान्त शब्द	६९	९१
जकारान्त शब्द	६०	९३
तकारान्त शब्द	६१	९६
दकारान्त शब्द	६२	१००
धकारान्त शब्द	६३	१०१
नकारान्त शब्द	६४	१०२
पकारान्त शब्द (प्रप् शब्द)	६५	१०८
भकारान्त शब्द	६६	१०९
रकारान्त शब्द	६७	१०९
वकारान्त शब्द	६८	११०
शकारान्त शब्द	६९	११०
षकारान्त शब्द	७०	११३
सकारान्त शब्द	७१	११३
हकारान्त शब्द	७२	११६

### सर्वनाम-विचार

### चतुर्थ सोपान

सर्वनाम का लक्षण	७३	१२१
उत्तम पुरुष (अम्मद् शब्द)	७४	१२२

विषय	सेक्शन	पृष्ठ
मध्यम पुरुष (युष्मद् शब्द)	७५	१२३
भवत् शब्द	७६	१२५
इदम् शब्द	७७ (क)	१२७
एतद् शब्द	७७ (ख)	१२८
तद् शब्द	७७ (ग)	१२९
अदस् शब्द	७७ (घ)	१३१
यद् शब्द	७८	१३२
किम् शब्द	७९	१३३
निजवाचक सर्वनाम	८०	१३४
निश्चयवाचक सर्वनाम	८१	१३५
अनिश्चयवाचक सर्वनाम	८१ (क)	१३६
<b>विशेषण-विचार</b>	<b>पंचम सोपान</b>	
विशेषण की द्विभक्ति	८२	१३७
सार्वनामिक विशेषण	८३	१३८
सम्बन्ध-सूचक सार्वनामिक विशेषण	८४	१३८
प्रकार-वाचक विशेषण (मादृश्, मादृश, त्वादृश्, त्वादृश इत्यादि)	८५	१४०
परिमाण-सूचक विशेषण	८६	१४२
संख्या-सूचक	८७	१४३
सर्व शब्द के रूप	८८	१४४
अल्प, अर्ध, नेम, सम आदि शब्द	८९	१४५
पूरक-संख्यावाचक विशेषण ( प्रथम, चरम इत्यादि )	८९ (क)	१४५
कतिपय शब्द	८९ (ख)	१४६
तीय प्रत्ययान्त शब्दों के रूप	८९ (ग)	१४६
उभ शब्द	९०	१४७

विषय	सेक्शन	पृष्ठ
सख्यावाचक शब्दों के रूप	६२	१६१
एक के रूप	६२ (क)	१६१
द्वि के रूप	६२ (ख)	१६२
त्रि के रूप	६२ (ग)	१६२
चतुर् के रूप	६२ (घ)	१६३
पञ्चन् के रूप	६२ (च)	१६३
षष् के रूप	६२ (छ)	१६४
सप्तन् के रूप	६२ (ज)	१६४
अष्टन् के रूप	६२ (झ)	१६४
नवन्, दशन् आदि शब्द	६२ (ट)	१६५
ऊनविंशति आदि शब्द	६२ (ठ)	१६५
विंशति के रूप	६२ (ड)	१६५
त्रिंशत् चत्वारिंशत् के रूप	६२ (ढ)	१६६
षष्टि तथा सप्तति के रूप	६२ (त)	१६६
पूरक सख्यावाची शब्दों के रूप	६३	१६७
सख्याओं के बनाने के नियम	६४	१६७
क्रमवाची विशेषण	६५	१६८
'अन्यत्' के रूप	६५ (क)	१६८
'पूर्व' के रूप	६५ (ख)	१७०
तुलनावाचक विशेषण बनाने के नियम (तरप्, तमप्, ईयसुन्, इष्ठन्)	६६	१७१

### कारक-विचार

### षष्ठ सोपान

कारक की परिभाषा	६७	१७१
प्रथमा विभक्ति का प्रयोग	६८	१७१
द्वितीया विभक्ति का प्रयोग	६९	१७९
तृतीया विभक्ति का प्रयोग	१००	१९४
चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग	१०१	२००

विषय	सेक्शन	पृष्ठ
पञ्चमी विभक्ति का प्रयोग	१०२	२०७
सप्तमी विभक्ति का प्रयोग	१०३	२१५
प्रत्येक विभक्ति का भिन्न-भिन्न कारक में उपयोग	} १०४	२२०
षष्ठी		१०५

## समास-विचार

## सप्तम सोपान

समास-लक्षण	१०६ (क)	२३४
विग्रह-लक्षण	१०६ (ख)	२३४
समास के चार भेद	१०७ (क)	२३५
अव्ययीभाव समास	१०८	२३६
तत्पुरुष समास	१०६	२४१
व्यधिकरण तत्पुरुष समास	११०	२४१
समानाधिकरण तत्पुरुष समास	१११ (क)	२४७
समानाधिकरण अथवा } कर्मधारय तत्पुरुष	} १११ (ख)	२४८
व्यधिकरण तत्पुरुष		१११ (ग)
कर्मधारय के लक्षण	१११ (घ)	२४८
विशेषणपूर्वपदकर्मधारय	११२ (क)	२४८
उपमानपूर्व-पदकर्मधारय	११२ (ख)	२४६
उपमानोत्तरपदकर्मधारय	११२ (ग)	२४६
विशेषणोत्तरपदकर्मधारय	११२ (घ)	२५०
द्विगुसमास	११३	२५०
अन्य तत्पुरुष समास	११४	२५२
नञ् तत्पुरुष समास	११४ (क)	२५२
प्रादि तत्पुरुष समास	११४ (ख)	२५२
गति तत्पुरुष समास	११४ (ग)	२५३
उपपद तत्पुरुष समास	११४ (घ)	२५४

विषय	सेक्शन	पृष्ठ
अलुक् तत्पुरुष समास	११४ (च)	२५५
मध्यमपदलोपी तत्पुरुष समास	११४ (छ)	२५६
मयूरव्यसकादि तत्पुरुष समास	११४ (ज)	२५६
द्वन्द्व समास	११५	२५७
इतरेतर द्वन्द्व	११५ (क)	२५७
समाहार द्वन्द्व	११५ (ख)	२५८
एकशेष द्वन्द्व	११५ (ग)	२६०
द्वन्द्व समास के नियम	११६	२६०
बहुव्रीहि समास	११७ (क)	२६१
बहुव्रीहि तथा तत्पुरुष के भेद	११७ (ख)	२६२
बहुव्रीहि के दो भेद	११७ (ग)	२६३
समानाधिकरण बहुव्रीहि	११८ (क)	२६३
व्यधिकरण बहुव्रीहि	११८ (ख)	२६४
अन्य बहुव्रीहि	११८ (ग)	२६४
बहुव्रीहि के नियम	११९	२६४
समासान्त प्रकरण	१२०	२६७

### तद्धित-विचार

### अष्टम सोपान

तद्धित-लक्षण	१२१	२७१
तद्धित-प्रत्ययो के जोड़ने के नियम	१२२	२७१
अप्रत्ययार्थ	१२३	२७३
अत्वर्थीय	१२४	२७५
भावार्थ तथा कर्मार्थ	१२५	२७६
समूहार्थ	१२६	२७६
सम्बन्धार्थ एव विकारार्थ	१२७	२७६
परिभाषार्थ तथा सख्यार्थ	१२८	२८०
हितार्थ	१२९	२८१
क्रियाविशेषणार्थ	१३०	२८२



विषय	सेक्शन	पृष्ठ
शैषिक	१३१	२८४
प्रकीर्णक	१३२	२८८

**क्रिया-विचार****नवम सोपान**

लकारो के विषय मे नियम	१३३	२९४
लट लकार		२९४
लिट् लकार ( परोक्षभूत )		२९५
लुट् लकार		२९६
लृट् लकार		२९६
लङ लकार		२९६
लिङ लकार	१३३	२९७
आशीर्लिङ	१३३	२९८
लुङ लकार	१३३	२९८
लृङ लकार	१३३	२९९
'घातु' शब्द का अर्थ	१३४	३००
घातुओ के दश गण	१३४ (क)	३००
घातुओ के तीन विभाग ( सेट्, वेट्, अनिट् )	१३४ (ख)	३००
सकर्मक तथा अकर्मक घातुएँ	१३४ (ग)	३०१
घातुओ के दो पद	१३४ (घ)	३०१
घातुओ के तीन वाच्य	१३५	३०१
वर्तमान काल का प्रयोग	१३५ (१)	३०२
आज्ञा का प्रयोग	१३५ (२)	३०२
विधिलिङ का प्रयोग	१३५ (३)	३०२
तीन भूत काल		
( १ ) अनद्यतनभूत	१३५ (४, ५, ६)	३०२
( २ ) परोक्षभूत		
( ३ ) सामान्यभूत का प्रयोग		

विषय	सेक्शन	पृष्ठ
दोनो भविष्य काल		३०३
( १ ) अनद्यतन भविष्य का प्रयोग	१३५ ( ७, ८ )	३०३
( २ ) सामान्य भविष्य		३०३
आशीर्लिङ्ग का प्रयोग	१३५ ( ९ )	३०३
क्रियातिपत्ति का प्रयोग	१३५ ( १० )	३०४
लकारो के पन्थय	१३६	३०४
वर्तमान काल ( लट् ) के प्रत्यय	१३६ ( क )	३०४
आज्ञा ( लोट् ) के प्रत्यय	१३६ ( ख )	३०५
विधिलिङ्ग के प्रत्यय	१३६ ( ग )	३०५
अनद्यतन भूत ( लङ् ) के प्रत्यय	१३६ ( घ )	३०६
परोक्ष भूत ( लिट् ) के प्रत्यय	१३६ ( च )	३०७
सामान्य भूत ( लुङ् ) के प्रत्यय	१३६ ( छ )	३०७
अनद्यतन भविष्य ( लृट् ) के प्रत्यय	१३६ ( ज )	३०८
सामान्य भविष्य ( लृट् ) के प्रत्यय	१३६ ( झ )	३०८
आशीर्लिङ्ग के प्रत्यय	१३६ ( ट )	३०८
क्रियातिपत्ति ( लृङ् ) के प्रत्यय	१३६ ( ठ )	३१०
भ्वादि गण	१३७-१४०	३११-३४८
अदादि गण	१४१-१४२	३४९-३७२
जुहोत्यादि गण	१४३	३७३-३८२
रिवादि गण	१४४-१४५	३८३-३९३
भ्वादि गण	१४६	३९३
तुदादि गण	१४७-१४८	४०१
रुघादि गण	१४९	४०९
तनादि गण	१५०	४१८
क्यादि गण	१५१	४२३
चुगादि गण	१५२-१५३	४३२

विषय	सेक्शन	पृष्ठ
<b>क्रिया-विचार (उत्तरार्ध) दशम सोपान</b>		
कमवाच्य तथा भाववाच्य	१५४-१५५	४४१
प्रत्ययान्त धातुएँ	१५६	४५६
णिजन्त धातुएँ	१५७	४५७
सन्नत	१५८	४५९
यङन्त	१५९	४६२
नामधातु	१६०-१६२	४६४
आत्मनेपद तथा परस्मैपद की व्यवस्था	१६३	४६७
<b>कृदन्त-विचार एकादश सोपान</b>		
कृत् लक्षण	१६४	४७३
कृत्य प्रत्यय	१६५	४७४
तव्यत्, तव्य, अनीयर	१६६	४७५
यत् प्रत्यय	१६७	४७६
न्वप् प्रत्यय	१६८	४७७
ण्यत् प्रत्यय	१६९-१७०	४७८
<b>कृत् प्रत्यय</b>		
कृत् प्रत्यय	१७१	४८०
मूतकाल के कृत् प्रत्यय	१७२-१७३	४८१
वतमान काल के कृत् प्रत्यय	१७४-१७५	४८४
( सत् प्रत्यय—शत्, शानच् )	१७५	४८५
शानच् प्रत्यय	१७५ (क)	४८६
चानश् प्रत्यय	१७५ (ख)	४८६
भविष्यकाल के कृत् प्रत्यय	१७६	४८६
तुमुन् प्रत्यय	१७७	४८७
पूर्वकालिक क्रिया (क्त्वा, ल्यप् )	१७८	४८८
पूर्वकालिक क्रिया ( णमुल् प्रत्यय )	१७९	४९१

विषय	सेक्शन	पृष्ठ
कर्तृ वाचक कृत् प्रत्यय	१८०	४६३
कर्तृ वाचक ण्वुल् तथा तृच् प्रत्यय	१८० (क)	४६३
कर्तृ वाचक ल्यु, णिनि तथा		
अच् प्रत्यय	१८० (ख)	४६४
कर्तृ वाचक क प्रत्यय	१८० (ग)	४६४
कर्तृ वाचक अण् प्रत्यय	१८० (घ)	४६४
आतोनुपसर्गे क (कर्तृ वाचक)		४६५
कप्रकरणे मूलविभुजादिभ्यः } उपसंस्थानम् (कर्तृ वाचक) }		४६५
अच् प्रत्यय अह (कर्तृ वाचक)		४६५
ट प्रत्यय (चरेष्ट, कर्तृ वाचक)	१८० (ङ)	४६५
भिक्षासेनादायेषु च (कर्तृ वाचक)	१८० (ङ)	४६५
हेतुताच्छील्य आदि मे कृ से ट प्रत्यय		८६५
खश् प्रत्यय (कर्तृ वाचक)	१८० (च)	८६६
खच् प्रत्यय	१८० (छ)	४६७
क् प्रत्यय (कर्तृ वाचक)	१८० (झ)	४६८
क्विप् प्रत्यय (कर्तृ वाचक)	१८० (ञ)	४६९
णिनि प्रत्यय (कर्तृ वाचक)	१८० (ट)	४६९
ड प्रत्यय	१८० (ठ)	५००
<b>शील प्रत्यय साधुकारिता वाचक</b>		
<b>कृत् प्रत्यय साधुकारिता-वाचक</b>		
नन् प्रत्यय साधुकारिता-वाचक	१८१ (क)	५०१
इष्णुच् साधुकारिता-वाचक	१८१ (ख)	५०१
बुञ् साधुकारिता-वाचक	१८१ (ग)	५०१
युच् साधुकारिता-वाचक	१८१ (घ)	५०२
षाकन् साधुकारिता-वाचक	१८१ (ङ)	५०२
आलुच् प्रत्यय साधुकारिता-वाचक	१८१ (च)	५०२
उ प्रत्यय साधुकारिता-वाचक	१८१ (छ)	५०२

विषय	सेक्शन	पृष्ठ
क्विप् प्रत्यय साधुकारिता-वाचक	१८१ (ज)	५०२
<b>भावार्थ कृत् प्रत्यय</b>		
घञ् ( भाववाचक )	१८२ (क)	५०२
अच् ( भाववाचक )	१८२ (ख)	५०३
अप् प्रत्यय ( भाववाचक )	१८२ (ग)	५०३
नङ् प्रत्यय ( भाववाचक )	१८२ (घ)	५०३
कि प्रत्यय ( भाववाचक )	१८२ (ङ)	५०३
क्तिन् प्रत्यय ( भाववाचक )	१८२ (च)	५०४
क्विप् प्रत्यय ( भाववाचक )	१८२ (छ)	५०४
अ प्रत्यय ( भाववाचक ) तदनन्तर		
टाप्	१८२ (ज)	५०४
अङ् प्रत्यय ( भाववाचक ) तदनन्तर		
टाप् (चिन्ता, पूजा, कथा, कुम्भा)	१८२ (झ)	५०५
युच् प्रत्यय ( भाववाचक ) तदनन्तर		
टाप् (कारणा, हारणा, दारणा)	१८२ (ञ)	५०५
क्त तथा ल्युट् प्रत्यय ( भाववाचक )	१८२ (ट)	५०५
अ प्रत्यय ( नामवाचक )	१८२ (ठ)	५०६
<b>खलर्थ कृत् प्रत्यय</b>		
खल् प्रत्यय	१८३ (क)	५०५
खलर्थ युच् प्रत्यय	१८३ (ख)	५०६
उणादि प्रत्यय	१८४	५०६
<b>लिङ्ग-विचार</b>	<b>द्वादश सोपान</b>	
संस्कृत में तीन लिङ्ग (पुल्लिङ्ग,		
स्त्रीलिङ्ग, नपुंसकलिङ्ग)	१८५	५०७
पुलिङ्ग शब्द	१८६	५०७
स्त्रीलिङ्ग शब्द	१८७	५१०

विषय	सेक्शन	पृष्ठ
स्त्री प्रत्यय	१८८	५११
टाप् प्रत्यय	१८९	५१२
ङीप् प्रत्यय	१९०	५१२
ङीष् प्रत्यय	१९२	५१४
ङीन्	१९२	५१५
नपुंसकलिङ्ग शब्द	१९३	५१६

**अव्यय-विचार****त्रयोदश सोपान**

अव्यय-लक्षण	१९४	५१८
उपसर्ग	१९५	५१८
क्रियाविशेषण	१९६	५२१
समुच्चयबोधक शब्द	१९७	५२४
मनोविकारसूचक अव्यय	१९८	५२५
प्रकीर्णक अव्यय	१९९	५२६

**१—परिशेष**

छन्द		५२७
वृत्त तथा जाति		५२८
वृत्त		५२८
आठ गण		५२८
जाति		५२९
मात्रा-गण		५३०
तीन प्रकार के वृत्त—सम, अर्धसम तथा विषम		५३०
समवृत्त		५३०
आठ अक्षर वाले समवृत्त		५३०
ग्यारह अक्षर वाले समवृत्त		५३१
( १ ) इन्द्रवज्रा		५३१
( २ ) उपेन्द्रवज्रा		५३१
( ३ ) उपजाति		५३१

	पृष्ठ
बारह अक्षर वाले समवृत्त	५३२
( १ ) द्रुतविलम्बित	५३२
( २ ) भुजङ्गप्रयात	५३२
चौदह अक्षर वाले समवृत्त	५३२
वमन्ततिलका	५३२
पन्द्रह अक्षर वाले समवृत्त	५३३
मालिनी	५३३
सत्रह अक्षर वाले समवृत्त	५३३
( १ ) मन्दाक्रान्ता	५३३
( २ ) शिखरिणी	५३४
उन्नीस अक्षर वाले समवृत्त	५३४
शार्दूलविक्रीडित	५३४
इक्कीस अक्षर वाले समवृत्त	५३५
स्रग्धरा	५३५
अर्घसमवृत्त	५३६
पुष्पिताम्रा	५३६
विषमवृत्त	५३७
जाति	५३७
आर्या	५३७
	२—परिशेष
रोमन अक्षरो मे सस्कृत लिखने की विधि	५३८
	३—परिशेष
धातुओं की अकारादि क्रम से सूची	५४०

DR.RUPNATHJI( DR.RUPAK NATH )



## प्राक्कथन

१—व्याकरण-शास्त्र का जितना विस्तृत और सूक्ष्म अध्ययन संस्कृत भाषा में हुआ है, उतना अन्य किसी भी भाषा में नहीं। व्याकरण को साङ्ग वेद का मुख बताया गया है। वैदिक युग से ही शब्द की मीमांसा की ओर भारतीय मनीषियों की बुद्धि दौड़ती रही है। उच्चारण पर विचार करने वाले वेदार्थ 'शिक्षा' के प्रतिपादन के लिए 'प्रातिशाख्यो' की रचना हुई। इसके उपरान्त यास्क मुनि ने शब्दनिरुक्ति-सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण ग्रंथ 'निरुक्त' प्रस्तुत किया। यास्क ने ही सर्व-प्रथम शब्दों के चतुर्विध विभाजन (नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात) को स्थापित किया है और यह सिद्ध करने का स्तुत्य प्रयत्न किया कि सारे शब्दों का आधार धातु-समूह ही है। इन्हीं सिद्धान्तों पर पाणिनि की अष्टाध्यायी एवं आधुनिक निरुक्ति-विज्ञान अधिकतर आश्रित हैं। यास्क का समय अनुमान से ८०० वर्ष ईसा से पूर्व है।

खेद है कि यास्क के परवर्ती और पाणिनि के पूर्ववर्ती आचार्यों का उल्लेख-मात्र मिलता है, उनकी कृतियाँ (पाणिनि की अष्टाध्यायी के कारण) विस्मृति के गर्त में विलीन हो चुकी हैं। आपिशलि, काशकृत्स्न, शाकल्य, शाकटायन, ऐन्द्र प्रभृति विभिन्न वैयाकरणों का उल्लेख पाणिनि की अष्टाध्यायी में तथा बाद की टीकाओं में मिलता है। इनमें ऐन्द्र व्याकरण का एक प्रतिष्ठित सम्प्रदाय बहुत दिनों तक रहा। इसका अनुसरण (चीनी यात्री ह्वेनसांग तथा तिब्बती इतिहासकार तारानाथ के अनुसार) कलापव्याकरण में किया है। तैत्तिरीय-संहिता के अनुसार ऐन्द्र व्याकरण ही सर्वप्रथम व्याकरण है। डाक्टर बर्नेल ने इस मत की पुष्टि करने के लिए प्राचीनतम तामिल व्याकरण तोल्कापियम् की ऐन्द्र व्याकरण से समानता दिखलायी है और यह मत स्थापित किया है कि ऐन्द्र व्याकरण ही सर्वप्रथम है और इसका अनुकरण करके ही कातन्त्र तथा अन्य व्याकरणों की रचना हुई है। बररुचि और व्याडि इसी व्याकरण के सम्प्रदाय के थे। ऐन्द्र व्याकरण की मुख्य विशेषता यह है कि इसकी परिभाषाएँ पाणिनि,

की परिभाषाओं की तरह जटिल और प्रौढ नहीं है। सम्भवत एन्द्र के बाद कम से कम दो और सम्प्रदाय पाणिनि के पूर्व प्रवर्तित हुए—ऐसा आधुनिक विचारको का अनुमान है।

२—पाणिनि अत्यन्त सक्षिप्त रूप में एक विस्तृत भाषा का अति सुसयत और सुदृढ व्याकरण लिखने के लिए ससार में विख्यात हो गये हैं। उनके ग्रथ में वैज्ञानिक विवेचना की परिपूर्णता तथा शैली की अनुपमता दोनों इस तरह मिली हुई है कि ससार की किसी अन्य भाषा में इन्में टक्कर की इस विषय पर अन्य कोई भी पुस्तक नहीं है। बृहत् वाद-विवाद के उपरान्त डाक्टर वासुदेव शरण अग्रवाल ने पाणिनि का समय ५०० ई० पू० और ४०० वर्ष ई० पू० के बीच निश्चित किया है। मैक्समूलर ने इनकी तिथि ३५० वर्ष ई० पू० निर्धारित की थी।

पाणिनि की जीवनी के विषय में केवल इतना ज्ञात है कि वह आयुनिक प्रटक जिले के शालातुर नामक ग्राम के अधिवासी थे, (पतजलि के महाभाष्य से ज्ञात चलता है कि) उनकी पत्नी का नाम दाक्षी था, (कथासरित्सागर चतुर्थ तरंग की एक कथा के अनुसार) वह उपवष (वष) के शिष्य तथा कात्यायन, गार्डि और इन्द्रदत्त के समकालीन थे तथा (पञ्चतन्त्र के एक श्लोक के अनुसार) उनकी मृत्यु व्याघ्र के हाथों हुई थी। पाणिनी अध्ययन में अथिक प्रखर न थे। इससे कुछ निराश होकर उन्होंने तपस्या की और भगवान् शंकर को प्रसन्न करके उनके डमरू में भिक्के हुए ध्वनि-समूह को चौदह “माहेश्वर सूत्र” मानकर, जो सम्भवत पाणिनी के महेश्वर नामवाले अथवा महेश्वर-स्वरूप गुरु द्वारा पाणिनी को व्याकरण रचना के निमित्त मागदशन के लिए निर्मित प्रतीत होते हैं, उन्हीं के बजाए भाग पर पाणिनि ने समस्त अष्टाध्यायी बनाई। रूपरेखा गुरु की ही बनाई सम्भवत पड़ती है। उस पर उन्होंने समस्त ग्रन्थ की रचना की ऐसी जनश्रुति है। पाणिनि की निम्न तिथि सम्भवत त्रयोदशी थी। इस तिथि पर व्याकरण विद्वान् आज भी व्याकरण नहीं पढ़ते-पढ़ाते।

३—इनका ग्रन्थ अष्टाध्यायी लगभग ४००० सूत्रों में निर्मित है और आठ अर्थात् पाठों में विभाजित है। प्रत्येक अध्याय में चार पद हैं। (पाच सूत्रों को छोड़कर शेष) समस्त सूत्रों का मूल रूप सौभाग्यवश पडितों द्वारा सुरक्षित

चला आया है। प्रथम अध्याय में व्याकरण शास्त्र सम्बन्धी सज्ञाएँ तथा परिभाषाएँ हैं। दूसरे अध्याय में समासों का विस्तृत विवेचन तथा कारक की व्याख्या है। तीसरे अध्याय में तथा आठवें में कृदन्त प्रकरण है। चौथे और पाँचवें में तद्धित प्रकरण है तथा इसके पश्चात् छठे और सातवें में तिङ्, सुप् प्रत्ययों से सम्बन्धित प्रक्रिया का विवेचन है। आठवें में सन्धि-प्रकरण भी है। पाणिनि ने अत्यन्त श्रुखलाबद्ध और सश्लिष्ट विधि से व्याकरण की विखरी हुई सामग्री को सफलता के साथ एकत्र किया है। पाणिनि का ध्यान इस प्रयास में सक्षेप-विधि पर बहुत केन्द्रित रहा है। इसलिए अष्टाध्यायी का दुर्गम होना स्वाभाविक है।

सक्षेप करने में प्रधान हेतु सम्भवतः कठाम्बु कराना और लेखन सामग्री की प्रचुरता के अभाव ही रहे होंगे। इस सक्षेप के लिए पाणिनि को मुख्य रूप से छह साधनों का आश्रय लेना पड़ा है—( १ ) प्रत्याहार, ( २ ) अनुबन्ध, ( ३ ) गण, ( ४ ) सज्ञाएँ ( घ, षट्, श्लु, लुक्, टि, कु प्रमृति), ( ५ ) अनुवृत्ति, ( ६ ) जगह-जगह कई सूत्रों के लागू होने वाले स्थानों के लिए पूर्वत्रासिद्धम् ( ८।२।१ ) सदृश नियमों (परिभाषाओं) का स्थापना। यहाँ सक्षेप में इन साधनों की कुछ व्याख्या की जाती है।

४—प्रत्याहार नीचे चौदह माहेश्वर सूत्रों को आधार मानकर बनाये गये हैं—

अइउण् १। ऋलृक् १२। एओऌ ३। एओच् ४। ह्यवरट् ५। लण् ६।  
अमङ्गणनम् ७। अमङ् ८। घटघष् ९। जबगडदश् १०। खफछठथचटतव्  
११। कप्य् १२। शषशर् १३। हल् १४।

इनमें जो अक्षर हल् है (अर्थात् स्वर से वियुक्त है) वे इत् कहलाते हैं जैसे ण्, क् आदि। इह इत् सज्ञा देने वाला सूत्र हलन्त्यम् ( १।३।३ ) है। आदि-रन्त्येन सहेता ( १।१।७१ ) इस सूत्र से इन चतुर्दश गणों में आने वाला इत् से भिन्न कोई भी अक्षर जब किसी इत्सञ्ज्ञक अक्षर के पूर्व मिलाकर लिखा जाता है, तब प्रत्याहार बनता है। उदाहरणार्थ अइउण् से अ को लेकर और ऋलृक् से इत्सञ्ज्ञक क् को लेकर अक् प्रत्याहार बनता है जो 'अ इ उ ऋ लृ' समुदाय का बोधक होता है। इसी तरह अक् प्रत्याहार द्वारा 'अ म ष ट थ ज ब ग ड द'

समुदाय का बोध होता है। प्रत्याहार की इस विधि के द्वारा अत्यन्त सक्षेप हो गया है।

५—अनुबन्ध—जो अक्षर इत् होते हैं उनकी सूची निम्नलिखित है—  
 १—उन्ही उपदेशों के अन्त में आनेवाला हल् २—(हलन्त्यम् १।३।३।), घातु प्रत्यय, आगम, आदेश आदि (उपदेश) के मूल में स्थित 'अनुनासिक स्वर' (उपदेशेऽजनुनासिक इत् १।३।२।), ३—किसी घातु के आदि में प्रयुक्त जि, टु, डु (आदिजिटुडव १।३।५), ४—किसी प्रत्यय के आदि में आने वाले चवर्ग और टवर्ग (चट्टु १।३।७), ५—किसी प्रत्यय के आदि में आने वाला ष (ष प्रत्ययस्य १।३।६), ६—तद्धित से भिन्न अन्य प्रत्ययों के आदि में आने वाले ल्, श् और कवर्ग (लशक्वतद्धिते १।३।५)। इन इत् सज्ञको का यद्यपि लोप हो जाता है, पर इनका उपयोग दूसरे अक्षर से होता है। ये अनुबन्ध प्रायः वृद्धि, गुण, आगम, आदेश, उदात्तादि स्वर प्रभृति प्रक्रियाओं के निमित्त बनते हैं। उदाहरणार्थ, स्त्रीप्रत्यय के विधान के लिए एक सूत्र है (षिद्गौरादिभ्यश्च । ४।१।४१)। इसके अनुसार जिन प्रत्ययों में ष इत् होता है उन प्रत्ययों वाले शब्दों में स्त्रीलिङ्ग के धनितार्थ डीष् प्रत्यय जुड़ता है, जैसे रजक (रञ्ज्+ष्वुन्) शब्द में ष्वुन् प्रत्यय आया है। इसलिए उसमें डीष् जुड़कर 'रजकी' यह रूप बनेगा। इन अनुबन्धों का उपयोग वैदिक भाषा पर विचार करते समय पाणिनि ने अधिक किया है।

६—गणपठ—जब कई ऐसे शब्द हों जिनमें एक ही प्रत्यय लगाना हो या किसी एक प्रकार के विधान की रचना बतानी हो तो उन सब का एक गण बना कर गण के आदि में आने वाले शब्दों को लेकर ही एक सूत्र रच दिया गया है और गण पठ अन्त में दे दिया गया है। उदाहरणार्थ गर्गादिभ्यो यञ् (४।१।१०५) एक सूत्र है। इसके अनुसार गर्ग से शुरू होने वाले गण में यञ् प्रत्यय लगता है। गर्गादि गण में १०२ शब्द आये हैं। ये सब शब्द सूत्र में नहीं गिनाये गये और गर्गादि कह कर काम निकाल लिया गया। इस तरह जगह बहुत कम घिरती है और सुविधा के साथ नियम भी बन जाते हैं।

७—सज्ञाएँ और परिभाषाएँ—प्रयत्नलाघव के लिए इनकी रचना हुई है। इनमें से कुछ पाणिनि की स्वयं बनायीं और कुछ उनके पहले से चली आयी हैं। कुछ मुख्य-मुख्य यहाँ दी जाती हैं—

( १ ) वृद्धि—वृद्धिरादैच् ( ११११ )—आ, ऐ, औ को वृद्धि कहते हैं ।

( २ ) गुण—अदेङ् गुण ( १११२ ) अ, ए, ओ गुण कहलाते हैं ।

( ३ ) सम्प्रसारण—( इय्यण सम्प्रसारणम् १११४५ ) य्, व्, र्, ल् के स्थान पर इ, उ, ऋ, लृ का हो जाना सम्प्रसारण कहलाता है ।

( ४ ) टि—अचोऽन्त्यादि टि ( १११६४ ) किसी भी शब्द के अन्तिम स्वर और यदि उसके बाद कोई व्यञ्जन हो तो वह भी 'टि' कहा जाता है, जैसे शक मे क का अकार तथा मनस् मे अस् 'टि' है ।

( ५ ) उपधा—अलोऽन्त्यापूर्वं उपधा ( १११६१ )—अन्तिम वर्ण ( स्वर या व्यञ्जन ) के तुरन्त पहिले आने वाले वर्ण ( स्वर या व्यञ्जन ) को 'उपधा' कहते हैं ।

( ६ ) प्रातिपदिक—अर्थवदधातुरप्रत्यय प्रातिपदिकम् ( १२२४ ) धातु, प्रत्यय और प्रत्ययान्त के अतिरिक्त कोई भी शब्द जो अर्थयुक्त हो, वह प्रातिपदिक होता है । इनके अतिरिक्त कृदन्त, तद्धितान्त और समस्त पदो को भी यह सज्ञा प्राप्त होती है—कृतद्धितसमासाश्च ( १२२४६ ) । उदाहरण के लिए राम शब्द लीजिए । अवतार राम के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति के केवल नाम होने से यह अर्थवान् है, उसके विषय मे न यह धातु है और न प्रत्ययान्त ही । इसलिए यह प्रातिपदिक कहा जायगा । किन्तु जब अवतार राम के लिए होगा तो रम् धातु से घञ् प्रत्ययान्त होकर कृदन्त होने के नाते प्रातिपदिक कहलाएगा । इसी प्रकार रधु मे अण् प्रत्यय जोड़ने से तद्धितान्त राघव प्रातिपदिक बना ।

( ७ ) पद—सुप्तिङन्त पदम् ( १४११० ) सुप् ओर तिङ् प्रत्ययो से युक्त होने पर कोई शब्द पद बनता है । प्रातिपदिक मे लगने वाले प्रत्यया को सुप् तथा धातु मे लगने वाले प्रत्ययो को तिङ् कहते हैं । राम मे सु प्रत्यय न राम बना । यह पद हुआ । इसी प्रकार भू धातु मे तिप्, तम् इत्यादि तिङ् प्रत्यय जुड़ने से भवति, भवत इत्यादि क्रियापद बनते हैं । इसके अतिरिक्त सु से लेकर कप् तक के प्रत्ययो मे, सर्वनामस्थान को छोड़ कर अन्य प्रत्यया के आगे जुड़ने पर पूर्व शब्द की भी 'पद' सज्ञा होती है । स्वादिष्वमवनामस्थाने ( १४११७ ) ।

( ८ ) सर्वनामस्थान—सुडनपुसकस्य ( १११४३ ) पुल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग प्रातिपदिक शब्दों के आगे लगने वाले सुट्—सु, औ, जस्, अम् तथा औट् (विभक्ति) प्रत्यय सर्वनामस्थान कहलाते हैं ।

( ९ ) यस्मात्प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम् ( १४११३ ) जिस शब्द के आगे कोई प्रत्यय जोड़ा जाय, उस प्रत्यय के पूर्व सप्तर्ण शब्द-समुदाय को अङ्ग कहते हैं ।

( १० ) भ—यच्चि भम् ( १४११८ ) सु से लेकर कप् तक के प्रत्ययों में यकार अथवा स्वर से आरम्भ होने वाले प्रत्ययों के आगे जुड़ने पर पूर्व शब्द की ('पद' सज्ञा न होकर) 'भ' सज्ञा होती है ।

( ११ ) घु—दाघाघ्वदाप् ( १११२४ ) दाप् (काटना) और दैप् (साफ करना) को छोड़कर दा और धा स्वरूपवाली धातुओं की 'घु' सज्ञा होती है ।

( १२ ) घ—तरप्तमपौ च ( १११२३ ) तरप् और तमप् इन प्रत्ययों की 'घ' सज्ञा होती है ।

( १३ ) विभाषा—नर्वाति विभाषा ( १११४४ ) जहाँ पर विकल्प से होने और न होने, दोनों की सम्भावना रहती है, वहाँ पर विभाषा सज्ञा होती है ।

( १४ ) निष्ठा—क्तक्तवतू निष्ठा ( १११२६ ) क्त और क्तवतु इन दोनों प्रत्ययों की 'निष्ठा' सज्ञा है ।

( १५ ) सयोग—ह्लोजन्तरा सयोग ( १११७ ) बीच में किसी स्वर के न रहने पर, दो या अधिक मिले हुए हल् (व्यञ्जन) 'सयुक्त' कहे जाते हैं जैसे मव्य शब्द में व् और य् के बीच में कोई स्वर नहीं आया है इसलिए वे सयुक्त वर्ण कहे जायेंगे । इसी प्रकार कात्स्न्यं, माहात्म्य आदि में ।

( १६ ) सहिता—पर सन्निकर्ष सहिता ( १४११०६ )—वर्णों की अत्यन्त समीपता सहिता कही जाती है ।

( १७ ) प्रगृह्य—ईदूदेदद्विवचन प्रगृह्यम् ( १११११ ) ईकारान्त, उकारान्त, ऐकारान्त द्विवचन ( सुबन्त अथवा तिडन्त ) पद प्रगृह्य कहे जाते हैं ।

(१८) सार्वधातुक प्रत्यय—तिङ् शित् सार्वधातुकम् ( ३।४।११३ ) धातुओ के आगे जुड़ने वाले प्रत्ययों में तिङ् प्रत्यय एव वे प्रत्यय जिनमें झ् इत्सञ्जक हो जाता है (जैसे शप्, शतृ आदि) सार्वधातुक प्रत्यय कहलाते हैं ।

(१९) आर्षधातुक प्रत्यय—आर्षधातुक शेष ( ३।४।११४ ) धातुओ से जुड़ने वाले शेष अर्थात् सार्वधातुक के अतिरिक्त प्रत्यय आर्षधातुक कहे जाते हैं ।

(२०) सत्—तौ सत् ( ३।२।१२७ ) शतृ और शानच् दोनों का नाम सत् है ।

(२१) अनुनासिक—मुखनासिकावचनोऽनुनासिक ( १।१।८ ) जिन वर्णों का उच्चारण मुख और नासिका दोनों से होता है उन्हें अनुनासिक कहा जाता है, जैसे अँ, अॉ, एँ, लँ, इत्यादि । यह अनुनासिक चिह्न के द्वारा प्रकट किया जाता है । वर्णों के पचमाक्षर ङ, ञ, ण, न् तथा म् भी अनुनासिक वर्ण हैं, क्योंकि इनमें भी नासिका की सहायता ली जाती है ।

(२२) सवर्ण—तुल्यास्यप्रयत्न सवर्णम् ( १।१।९ ) जब दो या उससे अधिक वर्णों के उच्चारणस्थान ( मुखविवर में स्थित ताल्वादि ) और आभ्यन्तर प्रयत्न समान या एक हो तो उन्हें परस्पर 'सवर्ण' कहते हैं ।

८—अनुवृत्ति—सूत्रों के विस्तार को अधिक से अधिक सङ्कुचित करने के लिए अनुवृत्ति पाँचवी प्रणाली है । पाणिनि ने कुछ ऐसे सूत्र बनाये हैं जिनका अलग तो कोई अर्थ नहीं होता लेकिन परवर्ती सूत्रमाला के प्रत्येक सूत्र से युक्त होने पर अर्थ निकलता है । ऐसे सूत्र 'अधिकारसूत्र' कहे जाते हैं । इनकी अनुवृत्ति का क्षेत्र तब तक बन्द रहता है जब तक कोई दूसरा अधिकार सूत्र नहीं आ जाता । जैसे—तस्याधिकार ( ४।३।१३४ ), तस्यापत्यम् ( ४।१।९२ ), अनभिहिते ( २।३।१ ) प्रभृति सूत्र हैं ।

इसके अतिरिक्त पाणिनि की अष्टाध्यायी के समझाने के लिए टीकाकारों ने ज्ञापक सूत्रों को अलग से ढूँढ निकाला है तथा सूत्रों में योगविभाग करके कुछ स्पष्ट न कही गयी बातों को भी शामिल किया है । परन्तु इन सबका ज्ञान केवल सूक्ष्म अध्ययन करने वाले के लिए अपेक्षित है, इसलिए यहाँ इनकी विवेचना नहीं की जा रही है ।

६—पाणिनि ने सस्कृत को जीवित (बोलचाल की) भाषा के रूप में लिया है। उन्होंने लोक, वेद की भाषा सस्कृत ही बतायी है। लोक की मस्कृत को 'भाषा' तथा वेद की सस्कृत को 'छन्दस्' शब्द का प्रयोग करते हैं। भाषा शब्द का अर्थ ही है जिसे लोग भाषित करे या बोले। इसके प्रमाण में हम केवल दो-चार युक्तियाँ यहाँ प्रसंगवश दे देते हैं। पहले तो वैदिक भाषा को अपवाद के रूप में ग्रहण करना इसी तथ्य की ओर सकेत करता है कि पाणिनि के सामने वर्तमान भाषा छान्दस् भाषा से कुछ आगे चली आती थी, पर अभी बहुत दूर नहीं हुई थी, अन्यथा वैदिक भाषा का वे अलग-अलग व्याकरण अवश्य लिखते। दूसरे, स्तम्बशकृतोरिन् ( ३।२।२४ ), हरदत्ततिनाथयो पशौ ( ३।२।२५ ), श्रीहिशाल्योर्दंक् ( ५।२।२ ), नते नासिपत्या सज्ञाया टीटाब् टीटानाटञ्जटच ( ५।२।३१ ), कृडा द्वितीय-तृतीय शम्बबीजात्कृषौ ( ५।४।५८ ) प्रमृति सामान्य कृषक-जीवन से ही सम्बन्ध रखने वाले सूत्रों की रचना स्पष्ट यही सिद्ध करती है कि जिस भाषा का विश्लेषण पाणिनि कर रहे हैं, वह बोलचाल की भाषा है। तीसरे, गणपाठो मे आये हुए नाम इतन विचित्र और अनजान से लगते हैं कि किसी को यह स्वप्न में भी विचार नहीं हो सकता कि ये शब्द स्टैण्डर्ड भाषा के होंगे। उदाहरणार्थ गुहुलु, आलिगु, कहुषय, नवाकु, वटाकु, बसुह्यस्क, शिग्रु, कहोड प्रमृति ।

### कात्यायन

१०—पाणिनि के लगभग १२५० सूत्रों पर आलोचनात्मक दृष्टि से वररुचि ( कात्यायन ) ने ४००० वार्तिकों की रचना की है। ७०० से अधिक सूत्रों की उन्होंने बना उनमें कोई दोष दिखाये सुन्दर व्याख्या की है, करीब १० सूत्रों को अर्थ बताया है, तथा लगभग ५४० सूत्रों में परिवर्तन एवं परिष्करण किया है। कात्यायन पाणिनि के प्रति उचित श्रद्धा भी यत्र-तत्र प्रदर्शित करते हैं। परन्तु उन्होंने अनेक स्थलों पर पाणिनि को समझने में ही मूल की है और कहीं-कहीं वे अनुचित आलोचना भी कर गये हैं। इस अनौचित्य की ओर महामाध्यक्षार पतञ्जलि ने हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। कात्यायन के वार्तिक श्लोक और गद्य दोनों में हैं। वे दाक्षिणात्य थे जैसा 'प्रियतद्धिता दाक्षिणत्या' महामाध्य के इस वाक्य से प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त कात्यायन ब्राजसनेयी प्राति-



शास्त्र के भी प्रणेता है। वररुचि का समय ४०० वर्ष ई० पू० और ३०० ई० पू० के बीच में पड़ता है।

## पतञ्जलि

११—पाणिनि व्याकरण के अध्ययन के प्रथम युग का अन्त पतञ्जलि के महाभाष्य ही में होता है तथा पाणिनि के स्थान को दृढ़ बनाने में कात्यायन और पतञ्जलि ने अपूर्व परिश्रम किया है। इसीलिए परवर्ती वैयक्यज्ञो ने इन तीनों को 'मुनित्रय' के नाम से पुकारा है। पतञ्जलि के समय (दूसरी शताब्दी ई० पू०) के बारे में अत्यन्त दृढ़ प्रमाण उन्हीं के ग्रन्थ में मिले हैं। 'पुष्यमित्र याजयाम', 'अरुणद्यवन साकेतम्', 'अरुणद्यवो मध्यमिकाम्' इन तीन उद्धरणों से इतना निश्चित होता है कि पुष्यमित्र (शुङ्गरजा) के समय में सम्भवतः उसी के दरबार में पतञ्जलि विराजमान थे तथा उनके समय में मिनेण्डर (मिलिन्द) ने अयोध्या और मध्यमिका पर आक्रमण किया था। वह गोनर्द (सम्भवतः वर्तमान गोडा जिला) के निवासी थे तथा उनकी माता का नाम गोणिका था। शका, समाधान आदि को अत्यन्त रोचक रूप में देते हुए और बहुतेरे घरेलू दृष्टान्तों के द्वारा विषय का सुगमता से प्रतिपादन करते हुए तथा साथ ही साथ अपने समय की सामाजिक, धार्मिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक और साहित्यिक सब प्रकार की प्रवृत्तियों का अत्यन्त समीरम परिचय देते हुए, पतञ्जलि ने महाभाष्य के रूप में एक अपूर्व रचना की है। इसके जोड़ का संस्कृत में और कोई भी ग्रन्थ नहीं है। पतञ्जलि की शैली के प्रवाह की बराबरी केवल श्रीशंकराचार्य का शारीरिक भाष्य करता है।

१२—पतञ्जलि के बाद सातवीं शताब्दी तक दार्शनिक विचारधारा का सर्वत्र अधिक जोर रहा। अतः व्याकरण शास्त्र की भीमासा कुछ समय के लिए बन्द-सी हो गई। सातवीं शताब्दी में जयादित्य और वामन द्वारा अष्टाध्यायी पर एक सरल और सर्वाङ्गीण वृत्ति (टीका) 'काशिका' लिखी गयी। जयादित्य का समय सन् ६६० ई० है। इस काशिका पर भी उपटीकाएँ, 'न्यास' जिनेन्द्रबुद्धि द्वारा और 'पद-मञ्जरी' हरदत्त द्वारा लिखी गयी। इसी समय के

आस पास व्याकरण का दार्शनिक विवेचन महामाष्य के टीकाकार भर्तृहरि ने 'वाक्यपदीय' लिखकर किया, जिसमें आगम, वाक्य और प्रकीर्ण इन तीन काण्डों में कारिकाओं में अत्यन्त जटिल प्रश्न सुलझाये गये हैं और स्फोटवाद तथा 'शब्द से ही ससार के विवर्तित होने' का सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया है। चीनी यात्री इत्सिंग के अनुसार भर्तृहरि की मृत्यु सन् ६५० ई० में हुई थी। महामाष्य पर काश्मीरी पंडित कैंयट ने सन् ११०० ई० के लगभग 'प्रतीप' नाम की बहुत सुन्दर टीका लिखी। काव्यप्रकाशकार मम्मटाचार्य के भाई कहे जाते हैं।

इस समय तक संस्कृत केवल अध्ययन-अध्यापन की भाषा रह गयी थी। अतः व्याकरण में मौलिक ग्रन्थों के लिखने का यों ही अवसर नहीं रह गया। इसके अतिरिक्त केवल बाल की खाल निकालने और नैयायिक समालोचना करने की ही प्रथा चल पडी थी। अतः पाणिनीय व्याकरण के अध्ययन की भी दृष्टि बदली, उसके क्रम में क्रान्तिकारी परिवर्तन होने लगे। अब विषय-विभाग के आधार पर अष्टाध्यायी के सूत्रों की व्यवस्था की जाने लगी। विमल सरस्वती ने सन् १३५० ई० में 'रूप-माला' और रामचन्द्र ने १५वीं शताब्दी ई० में 'प्रक्रिया-कौमुदी' इसी दृष्टिकोण से लिखी। परन्तु इस श्रेणी में सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना सन् १६३० ई० के लगभग प्रख्यात विद्वान् भट्टोजि दीक्षित ने 'सिद्धान्त-कौमुदी' के नाम से की। इसकी महत्ता केवल इसकी टीकाओं के अनन्त शृङ्खलाओं से अथवा पाणिनीय व्याकरण की सबसे अधिक प्रचलित पाठ्य पुस्तक होने ही से नहीं है। इसका महत्त्व इसलिए इतना अधिक है कि इस ग्रन्थ में मुनित्रय के सिद्धान्तों के सागोपाग समन्वय के साथ अन्य नैयाकरणों तथा अन्य पद्धतियों से भी सार ग्रहण किया गया है और नवोदित पद्धतियों की आलोचना इतनी सफलतापूर्वक की गयी है कि इस ग्रन्थ ने अध्ययन के क्षेत्र से पाणिनि की अष्टाध्यायी के क्रम को तो निकाल ही दिया है, साथ ही साथ बोपदेव के 'मुग्धबोध', शर्ववर्मा के 'कातन्त्र' तथा चन्द्रगोमी के 'चान्द्र' प्रमृति व्याकरणों को भी बाहर कर दिया। भट्टोजि रामचन्द्र शेष की चलाई नहीं परम्परा के धुरीण है। यह रगोजि दीक्षित के पुत्र तथा शेषकृष्ण के शिष्य थे। इन्होंने सिद्धान्त कौमुदी पर स्वयं 'प्रौढ मनोरमा' नाम की टीका लिखी तथा पाणिनि की अष्टाध्यायी पर 'शब्द कौस्तुभ' नाम की विस्तृत व्याख्या की।

भट्टोजि के भतीजे कोण्डभट्ट ने 'वाक्यविन्यास' आर दाशनिक विवेचन-सम्बन्धी 'वैयाकरण भूषण' नामक पुस्तक लिखी । भट्टोजि के गुरु-भाई पंडितराज जगन्नाथ ने 'प्राढ मनोरमा' पर 'मनोरमाकुच-मर्दिनी' नामक आलोचनात्मक टीका लिखी है ।

१३—इनके अनन्तर व्याकरण के क्षेत्र में सबसे उज्ज्वल, चमकने वाले सितारे तथा अनेक शास्त्रों पर समान अधिकार रखने वाले, प्रखर मयारी नागेश-भट्ट का नाम आता है । धर्म-शास्त्र, साहित्य, योग आदि के अतिरिक्त व्याकरण शास्त्र में एक दर्जन के लगभग टीका-ग्रन्थों एव स्वतंत्र ग्रन्थों का रचयन इस विश्रुत विद्वान की लेखनी से हुआ । इनमें शब्द-रत्न (प्राढ मनोरमा पर टीका), विषभी (शब्दकोस्तुभ की टीका), वैयाकरण-सिद्धान्त मजूषा, शब्देन्दु-शेखर आर परिभाषेन्दु-शेषर बहुत प्रसिद्ध हैं । नागेशभट्ट ने गणेश उपाध्याय द्वारा प्रवर्तित नव्यन्याय की प्रतिपादन शैली में गभीर आर सूक्ष्म विचार प्रकट किये हैं ।

सिद्धान्त कौमुदी का सक्षेप बालको की सुविधा के लिए लघु-सिद्धान्तकौमुदी तथा मध्य-सिद्धान्त कौमुदी के रूप में वरदराज चार्थ ने किया । लघुकौमुदी का प्रचार बहुत हुआ है ।

१४—यहाँ हम सक्षेप में अन्य पद्धतियों का भी उल्लेख मात्र कर दे रहे हैं । ४७० ई० के लगभग बौद्ध पांडित चन्द्रगोमी ने बहुत कुछ पाणिनि के आधार पर ब्राह्मण प्रभाव से बचते हुए बौद्धों के लिए चान्द्रव्याकरण बनाया । इसमें ३१०० के लगभग सूत्र हैं । इसके पहले ही शर्ववर्मा ने ऐन्द्र व्याकरण के आधार पर कातन्त्र-व्याकरण की रचना सम्भवत ईसा की पहली शताब्दी में की थी । जैनेन्द्र-व्याकरण छठी तथा शाकटायन शब्दानुशासन ८वीं, हेमचन्द्र का शब्दानुशासन १२वीं, सारस्वत-व्याकरण, बोपदेव का मुग्धबोध, जौमर व्याकरण १३वीं तथा सौपथ व्याकरण १४वीं शताब्दी में लिखे गये । इनमें प्राय पाणिनि के सशोधन एव मरलीकरण का प्रयास हुआ है तथा बहुतों ने न्यूनतम सूत्रों की सख्या के लिए जी-जान से कोशिश की है । मुग्धबोध में १२०० तथा सारस्वत में केवल ७०० सूत्र हैं । ये ही दो प्रचलित भी हुए हैं । बोपदेव वैष्णव थे । अत उनका व्याकरण वैष्णव रग में रंगा हुआ है । इसीलिए उनके व्याकरण का अभी तक बंगाल में (चैतन्य मठ के कार्यक्षेत्र में) बहुत प्रचार

है। सारस्वत व्याकरण पर सत्रहवीं सदी में रामाश्रम ने सारस्वत-चन्द्रिका नामक टीका लिखी और वह भी कुछ समय पूर्व तक काशी के क्षेत्र में बहुत प्रचलित रही है। अन्यो का प्रभुत्व बहुत पूर्व से ही हट चुका है।

### पाणिनि-व्याकरण के अध्ययन की विधि

१५—व्याकरण-शास्त्र को अच्छी तरह अल्पकाल में समझने के लिए वैज्ञानिक विधि यह है कि सज्ञाओ, प्रत्याहारो तथा अन्य पूर्वोलिखित साधनो का सम्यक् ज्ञान कर ले। सज्ञा प्रभृति का साधारण और आवश्यक परिचय पूर्व में दिया जा चुका है। इसके पश्चात् किस तरह प्रत्यय जुड़ते हैं और किस प्रकार एक सूत्र से दूसरे सूत्र में अनुवृत्ति की जाती है, इसे समझने का प्रयत्न करना चाहिए। प्रत्यय लगाने की विधि नीचे दी जाती है। ( १ ) प्रत्यय में पहले यह देखना चाहिए कि कितना अक्षर जुड़ने के उपयोग में आने वाला है, जैसे ष्यत् प्रत्यय में चूट सूत्र से आदि में आने वाला ण् तथा हलन्त्यम् सूत्र से तु लुप्त हो जाते हैं। केवल य भर बच रहता है। ( २ ) पुन यह देखना चाहिए कि इस प्रत्यय को पहले जुड़ना है या पीछे या बीच में। इस सम्बन्ध में एक ही नियम है प्रत्यय ( ३।१।१ ) परस्व ( ३।१।२ ) अर्थात् प्रत्यय सदा बाद में ही जुड़ते हैं— ( केवल तद्धित को एक प्रत्यय बहुच् ऐसा है जो ईषदसमाप्ति अर्थ में शब्द के पहिले जुड़ता है, जैसे बहुतृण आदि )। ( ३ ) फिर यह देखना चाहिए कि जिसमें प्रत्यय को जुड़ना है, उसमें अनुबन्धों के कारण किस विकार का होना आवश्यक है, जैसे अचो ङिणिति ( ७।२।११५ ) अर्थात् जित् तथा णित् प्रत्यय आदि में रहने पर पूर्व में आने वाले अजन्त अङ्ग के स्वर की वृद्धि हो जाती है। इस सूत्र के अनुसार 'हृ' के आगे 'ष्यत्' आने पर 'हृ' के ऋ में वृद्धि होकर 'आर्' हो जाता है। ( ४ ) और अन्त में, अर्थ समझने के लिए 'किस हेतु से प्रत्यय लगा है' इसे समझना चाहिए। कृदन्त तथा तद्धित प्रकरणों में इसका विशेष विवेचन किया जायगा। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए यदि कोई अध्ययन करे तो अल्पकाल में ही साधारण कोटि का व्युत्पन्न हो सकता है।

# प्रथम सोपान

## वर्ण-विचार

१—संस्कृत शब्द का अर्थ है 'संस्कार की हुई, परिमार्जित, शुद्ध, सम्प्रति इस शब्द से आर्यों की साहित्यिक भाषा का बोध होता है। यह भाषा प्राचीन काल में आर्य पण्डितों की बोली थी और इसी के द्वारा चिरकाल तक आर्य विद्वानों का परस्पर व्यवहार होता था। जन-साधारण की भाषा का नाम प्राकृत था। संस्कृत भाषा का महत्त्व विशेषतः आज भी है, क्योंकि आर्य-सभ्यता के द्योतक अधिकांश ग्रन्थ इसी में हैं और इसके ही ज्ञान से उन तक पहुँच हो सकती है।

'व्याकरण' का अर्थ है 'किसी वस्तु के टुकड़े-टुकड़े करके उसका ठीक स्वरूप दिखाना।' यह शब्द भाषा के सम्बन्ध में ही अधिक प्रयोग में आता है। यदि देखा जाय तो प्रत्येक भाषा वाक्यों का समूह है। वाक्य कोई बड़े होते हैं, कोई छोटे। बड़े वाक्य बहुधा छोटे वाक्यों के सुसम्बद्ध समूह होते हैं। वस्तुतः वाक्य भाषा का आधार है। वाक्य शब्दों का समूह होता है। प्रत्येक शब्द में कई वर्ण होते हैं, जिनको अक्षर भी कहते हैं। अक्षर शब्द का अर्थ है 'अविनाशी'—जिसका कमी नहीं हो। वर्ण को यह नाम इसलिए दिया जाता है, क्योंकि प्रत्येक (वर्ण का) नाद अविनश्य है। यदि किसी शब्द का उच्चारण करें तो उसके अक्षर उच्चारण-काल में नाद कहलावेंगे और उस दशा में शब्द नादों का समूह होगा और इस नाद-समूह को शब्द भी इसीलिए कहते हैं क्योंकि नाद, शब्द और ध्वनि का प्रायः एक ही अर्थ है। अतएव महाभाष्यकार ने कहा है 'तस्माद् ध्वनि शब्द'। सृष्टि में इन नादों का भण्डार अनन्त है। प्रत्येक भाषा एक परिमित सख्या में ही नादों का प्रयोग करती है। उदाहरणार्थ, चीनी भाषा में

बहुन से ऐसे जाद है, जो सस्कृत भाषा मे नही । सस्कृत मे कई ऐसे हैं जो फारसी, अंग्रेजी आदि मे नही ।

२—सस्कृत भाषा मे जिन अक्षरो का उपयोग होता है, वे ये हैं—

अ	इ	उ	ऋ	ॠ	लृ	—ह्रस्व	( सादे )	} स्वर
आ	ई	ऊ	ऋ			—दीर्घ	( सादे )	
ए	ऐ	ओ	औ			—दीर्घ	( मिश्रविकृत )	
क	ख	ग	घ	ङ		—कवर्ग	( कु ) <sup>१</sup>	
च	छ	ज	झ	ञ		—चवर्ग	( चु )	
ट	ठ	ड	ढ	ण		—टवर्ग	( टु )	
त	थ	द	ध	न		—दवर्ग	( तु )	
प	फ	ब	भ	म		—पवर्ग	( पु )	
य	र	ल	व			—अन्त स्थ		
श	ष	स	ह			—ऊष्म वर्ण		
						—अनुस्वार		
						—अनुनासिक		
						—विसर्ग		

१ पाणिनि ने इन्ही अक्षरो को इस क्रम मे बाँधा है—

अइउण् ऋलृक्, एओङ्, ऐऔच्, ह्यवरट्, लण्, ञमङ्णनम्, क्षमञ्,  
 ६ १० ११ १२ १३ १४  
 षठषष्, जभगङ्ददश्, खफछठथचटतव्, कपय्, शषसर्, हल् ।

य. चौदह सूत्र माहेश्वर कहलाते हैं, क्योंकि पाणिनि को माहेश्वर की कृपा से मन्त्र हुए थे, ऐसा सम्प्रदाय है। इनको प्रत्याहार सूत्र भी कहते हैं, क्योंकि इनके द्वारा सरलता से और सूक्ष्म रीति से अक्षरो का बोध हो जाता है। ऊपर के जो अक्षर हल् हैं इत् कहलाते हैं, जैसे ण्, क् आदि। इनके द्वारा प्रत्याहार बनते हैं। पूर्व के किसी सूत्र का कोई वर्ण लेकर उसको यदि आगे की किसी इत् के पूर्व जोड़ दें तो प्रत्याहार बनेगा वह उस पूर्व वर्ण का

१ कु, चु, टु, तु, पु उदित् कहलाते हैं तथा अपने-अपने 'वर्ग' के वाचक होते हैं, जैसे कु से कवर्ग, चु से चवर्ग, टु से टवर्ग आदि ।

सब्या उसके और इत् के बीच के सभी वर्णों का (बीच में पडने वाले इतो को छाडकर) बोधक होगा, ( आदिरन्त्येन सहेता १।१।७१ )। यथा—अक् अ इ उ ऋ लृ का, शल् श ष स ह का ।

(क) यद्यपि प्रत्याहार की इस विधि के अनुसार उनकी सख्या सहस्रो हो सकती है, तथापि प्रत्याहार ४३ ही है । इसका कारण यह है कि मुनित्रय पाणिनि, कात्यायन और पतञ्जलि को व्याकरण शास्त्र की प्रक्रिया में जितने प्रत्याहारो की आवश्यकता पडी और फलतः जितने का उन्होंने उपदेश किया, उतने ही प्रत्याहार प्रयोग में आये । आवश्यकता पडने पर उनकी सख्या बढ भी सकती थी ।

मिश्रविकृत दीर्घ किन्ही दो भिन्न स्वरो के मिश्रण-विशेष से बनता है, जैसे—  
अ+इ=ए, अ+उ=ओ ।

स्वर का अर्थ है, ऐसा वर्ण जिसका उच्चारण अपने आप हो सके, जिसको दूसरे वर्ण से मिलने की अपेक्षा न हो । ऐसे वर्ण जिनका बिना किसी दूसरे वर्ण ( अर्थात् स्वर ) से मिले हुए उच्चारण नहीं हो सकता, व्यजन कहलाते हैं । ऊपर क से लेकर ह तक सारे वर्ण व्यजन हैं । क में अ मिला है, इसका शुद्ध रूप केवल क् होगा । स्वरो का दूसरा नाम अच् भी है, क्योंकि पाणिनि के क्रमानुसार स्वरवाची प्रत्याहार सूत्र सब इसके अन्तर्गत आ जाते हैं । ( प्रथम सूत्र का प्रथम अक्षर अ और चतुर्थ सूत्र का अन्तिम अक्षर च् ) । इसी प्रकार व्यजन का दूसरा नाम हल् भी है, क्योंकि व्यजनवाची प्रत्याहार सूत्र सब ( ५ से १४ तक ) इसके अन्तर्गत आ जाते हैं । इन हलो ( व्यजनो ) के स्वरविहीन शुद्ध रूप को प्रकट करने के लिए इनके नीचे तिरछी रेखा (     ) लगा देते हैं जिसे हल्-चिह्न कहते हैं ।

उदितो के पञ्चम वर्ण अर्थात् ङ, ञ, ण, न्, म् को भी अनुनासिक कहते हैं, क्योंकि इनका उच्चारण मुख और नासिका दोनों से होता है ।<sup>१</sup>

स्वर तीन प्रकार के होते हैं—ह्रस्व, दीर्घ ( सादे और मिश्रविकृत ) और प्लुत ।<sup>२</sup>

१ मुखनासिकावचनोऽनुनासिक । १।१।८ ।

२ ऊकालोऽह्रस्वदीर्घप्लुत १।२।२७ ।

स्वर के उच्चारण में यदि एक मात्रा-समय लगे तो वह ह्रस्व, जैसे—अ, यदि दो मात्रा-समय लगे तो दीर्घ, जैसे—आ (मिश्रविकृत स्वर दीर्घ होते हैं ।) और यदि तीन मात्रा-समय लगे तो प्लुत कहलाता है, जैसे अ३ । इस अतिम प्रकार के स्वर का प्रयोग प्रायः पुकारने में होता है, यथा—राम ३।<sup>१</sup>

(ख) उच्चारण के अनुसार ही उन्ही स्वरो के तीन भेद हैं—उदात्त, अनुदात्त और स्वरित ।<sup>१</sup>

सभी स्वर फिर दो प्रकार के होते हैं । एक अनुनासिक जिनमें नासिका से भी उच्चारण में कुछ सहायता ली जाती है, यथा—अँ, अॉँ, एँ, ऐ आदि और दूसरे अनुनासिक अर्थात् सादे यथा—अ, आ, ए, ऐ आदि ।

व्यञ्जनों<sup>१</sup> के भी कई भेद हैं—क से लेकर म तक के व्यञ्जन 'स्पर्श' कहलाते हैं । इनमें कवर्ग आदि पाँच वर्ग हैं—य, र, ल, व 'अतः स्व' है अर्थात् स्वर और व्यञ्जन के बीच के हैं । श, ष, स, ह 'ऊष्म' हैं, अर्थात् इनका उच्चारण करने के लिए भीतर से जरा अधिक जोर से श्वास लानी पड़ती है ।

विसर्ग को वस्तुतः एक छोटा ह्रस्व समझना चाहिए । यह सदा किसी स्वर के अन्त में आता है । यह स् अथवा र् का एक रूपान्तर मात्र है, किन्तु उच्चारण की विशेषता के कारण इसका व्यक्तित्व अलग है । यह जिस स्वर के पश्चात् जुटा होगा उसी के उच्चारण-स्थान से उच्चरित होगा ।

क और ख के पूर्व कमी-कमी एक अर्धविसर्ग-सा उच्चारण के प्रयोग में आता है । उसे (—) इस चिह्न द्वारा व्यक्त करते हैं, और उसकी सजा जित्ना-मुनीय बताते हैं । इसी प्रकार से प और फ के पूर्व वाले विसर्गनाद को उपध्मानीय कहते हैं और उसी (—) चिह्न से व्यक्त करते हैं ।

१ एकमात्रो भवेद्ध्रस्वी द्विमात्रो दीर्घ उच्यते ।

त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेयो व्यञ्जन चार्धमात्रकम् ॥

२ उच्चैरुदात्त ( १।२।२६ ), नीचैरनुदात्त ( १।२।३० ), समाहार स्वरित ( १।२।३१ ) उच्चारण-स्थान के उच्च अंश से उच्चरित स्वर, उदात्त, नीचे से अनुदात्त तथा दोनों से स्वरित कहलाता है ।

३ कादयो भावसाना स्पर्शा । यरलवा अन्तस्था । शषसहा ऊष्माण ।



अनुस्वार यदि पचवर्गीय अक्षरो के पूव आवे तो उसका उच्चारण उस वर्ग के पचम अक्षर-सा होता है, यदि अन्यत्र आवे तो उसका एक विभिन्न ही (केवल नासिका से) उच्चारण होता है, इस कारण इसका व्यक्तित्व भी अलग है।

व्यजनों का एक भेद अल्पप्राण और महाप्राण भी किया जाता है। जिनके उच्चारण में कम श्वास की आवश्यकता होती है, वे अल्पप्राण और जिनमें अधिक की, वे महाप्राण होते हैं। वर्गों के प्रथम, तृतीय और पचम वर्ण तथा अन्त स्थ अल्पप्राण हैं और शेष—अर्थात् वर्गों के द्वितीय और चतुर्थ तथा ऊष्म—महाप्राण हैं।

३—उच्चारण करने का उपाय यह है कि अन्त से आती हुई श्वास को स्वच्छन्दता से न निकाल कर, उसे मुख के अक्षरविशेषों से तथा नासिका से विकृत करके निकाला जाय। इस विकार के उत्पन्न करने में नासिका तथा मुख के भाग प्रयोग में आते हैं। विकार के कारण ही नादों में भेद पड जाता है। जिन-जिन अवयवों से विकार उत्पन्न किया जाता है, उनको नादों का स्थान कहते हैं।

(क) हमारे वर्णों के स्थान इस प्रकार हैं—

अ, आ, विसर्ग, क, ख, ग, घ, ङ,	—कण्ठ
इ, ई, य, च, छ, ज, झ, ञ, श	—तालु
ऋ, ॠ, र, ऌ, य, ऴ, ड, ढ, ण, ष	—मूर्धा
लृ, लृ, ल, व, थ, द, ध, न, स	—दन्त
उ, ऊ, उपध्मानीय, प, फ, ब, भ, म	—श्रोष्ठ

१ वर्गाणा प्रथमतोयपञ्चमा यणश्चाल्पप्राणा ।

वर्गाणा द्वितीयचतुर्थौ शलश्च महाप्राणा ।

२ अकुहविसर्जनीयाना कण्ठ ।

इचुयशाना तालु ।

ऋदुरषाणा मूर्धा ।

लृतुलसाना दन्ता ।

उपूषध्मानीयानाम् श्रोष्ठौ ।

अमङ्गनाना नासिका च

एदौतो कण्ठतालु ।

ओदौतो कण्ठोष्ठम् ।

वकारस्य दन्तोष्ठम् ।

जिह्वामूलीयस्य जिह्वामूलम् ।

नासिकानुस्वारस्य ।

अ, म, ड, ण, न—इनके उच्चारण में नासिका की सहायता आवश्यक है, इस प्रकार अ के उच्चारण-स्थान तालु और नासिका दोनों हैं, ङ के कठ और नासिका—इत्यादि ।

ए	और	ए	—कठ और तालु
ओ	और	औ	—कठ और ओष्ठ
व			—दोत और ओष्ठ
जिह्वामूलीय			—जिह्वा की जड़
अनुस्वार			—नासिका

इन वर्णों के उच्चारण में दो प्रकार का प्रयत्न होता है, एक उनके स्फुट उच्चारित होने के पूर्व और दूसरा उच्चारण क्रिया के पश्चात् । अतः पहिले को आभ्यन्तर और दूसरे को बाह्य प्रयत्न कहते हैं । आभ्यन्तर प्रयत्न पाँच प्रकार के होते हैं—स्पृष्ट, ईषत्स्पृष्ट, ईषद्विवृत, विवृत और सबृत । इनमें स्पर्श वर्णों का स्पृष्ट प्रयत्न है, अन्त स्थों का ईषत्स्पृष्ट, ऊष्मा का ईषद्विवृत, स्वरों का विवृत तथा केवल ह्रस्व अ का सिद्ध प्रयोग रूप में सबृत, अन्यथा तो, अन्य स्वरों की भाँति उसका भी विवृत ही होता है ।

बाह्य प्रयत्न सात प्रकार के होते हैं—विवार, सवार, श्वास, नाद, घोष, अघोष, अल्पप्राण, महाप्राण, उदात्त, अनुदात्त और स्वरित ।

इनमें वर्णों के प्रथम, द्वितीय वर्ण तथा श्ष् ( खर् ) का विवार, श्वास और अघोष प्रयत्न है । शेष ( हश् ) का सवाद, नाद और घोष । अल्पप्राण और महाप्राण का निर्देश पहले किया जा चुका है । उदात्त, अनुदात्त और स्वरित प्रयत्न केवल स्वरों का होता है ।

एक ही स्थान से निकलने वाले तथा एक ही आभ्यन्तर प्रयत्न वाले वर्णों सवर्ण कहलाते हैं । भिन्न स्थानों से उच्चारण किये हुए वर्ण परस्पर असवर्ण कहलाते हैं । ऋ और लृ में उच्चारण स्थान का भेद रहने पर भी परस्पर सवर्णता रहती है ।

१ तुल्यास्यप्रत्यन सवर्णम् ।१।१।६। ताल्वादिस्थानआभ्यन्तरप्रत्यन-  
श्चेत्येतद्द्वय यस्य येन तुल्य तन्मिथ सवर्णसज्ञ स्यात् ।

ऊपर वर्णों के उच्चारण के स्थान सस्कृत वैयाकरणों के अनुसार दिये गये हैं। आजकल किसी-किसी वर्ण के उच्चारण में भेद पड़ गया है, यथा—  
 ऋ का उच्चारण हम लोग शुद्ध नहीं करते। कोई रि करते हैं कोई र। ष का उच्चारण मूर्धा ( तालु के सबसे ऊपर के भाग ) से होना चाहिए, किन्तु बहुधा लोग इसे श की तरह बोलते हैं और कोई-कोई ख की तरह। लृ का उच्चारण तो साहित्यिक सस्कृत के समय में ही लुप्तप्राय हो गया था।

वर्णमाला में ह के उपरान्त बहुधा क्ष, त्र, ज्ञ देने की रीति है, किन्तु ये शुद्ध वर्ण नहीं हैं—दो वर्णों के मेल हैं—

क्ष=क्+ष, त्र=त्+र, ज्ञ=ज्+ञ।

इस कारण इनको वर्णमाला में सम्मिलित करना भूल है।

DR. RUPNATHJI ( DR. RUPAK NATHI )

## द्वितीय सोपान

### सन्धि-विचार

४—ऊपर कहा जा चुका है कि प्रत्येक वाक्य में कई शब्द रहते हैं। सस्कृत के शब्द का किसी भी स्वर अथवा व्यंजन से आरम्भ होकर, किसी स्वर, व्यंजन, अनुस्वार अथवा विसर्ग में अन्त हो सकता है।

दो शब्द जब पास-पास आते हैं तो एक दूसरे की निकटता के कारण पहले शब्द के अन्तिम वर्ण में अथवा दूसरे शब्द के प्रथम वर्ण में अथवा दोनों में कुछ परिवर्तन हो जाता है। उदाहरणार्थ हिन्दी भाषा को ले। जब हम सँभाल-सँभाल कर बोलते हैं तब हम कहते हैं—चोर् ले गया, मारू डाला, पहुँचू जाऊँगा। किन्तु इन्हीं वाक्यों की यदि बहुत जल्दी में बोले तो उच्चारण इस प्रकार होगा—चोल् ले गया, माडू डाला, पहुँजू जाऊँगा। इसी प्रकार जितनी बोलचाल की भाषाएँ हैं उनके परिवर्तन होता है। साधारण वक्ता इस परिवर्तन को नहीं जान पाता, किन्तु यदि हम ध्यानपूर्वक अपनी अथवा दूसरे की बोली को सुने तो हमें इस कथन के सत्य का निश्चय हो जाय। सस्कृत भाषा में इस प्रकार के परिवर्तन को “सन्धि” कहते हैं। सन्धि का साधारण अर्थ है “मेल”। दो वर्णों के निकट आने से मेल उत्पन्न होता है, उसे, इसीलिए सन्धि कहते हैं। सन्धि के लिए दोनो वर्ण एक दूसरे के पास-पास सटे हुए होने चाहिए, दूरवर्ती शब्दों में सन्धि नहीं हो सकती। वर्णों की इस समीप स्थिति को सहिता<sup>१</sup> कहते हैं। इसलिए सस्कृत भाषा में सन्धि का नियम यह है कि जिन शब्दों में निकटता की धनिष्ठता हो उनमें सन्धि अवश्य हो, जहाँ निकटता धनिष्ठ न हो वहाँ सन्धि करना, न करना बोलने वाले की इच्छा पर निर्भर है। नियम यह है—

एकपद<sup>१</sup> के मिस्र-मिस्र अवयवों में धातु और उपसर्ग के बीच और समास में सन्धि अवश्य होनी चाहिए (क्योंकि वहाँ सहिता ऐच्छिक नहीं हो सकती), वाक्य के अलग-अलग शब्दों के बीच में सन्धि करना, न करना (सहिता) बोलने वाले की इच्छा पर है। जैसे—

एकपद—पौ+अक = पावक ।

उपसर्ग और धातु—नि+अवसत्=न्यवसत्, उत्+अलोकयत्=उदलोकयत् ।

समास—कृष्ण+अस्त्रम्=कृष्णास्त्रम्, श्री=ईश =श्रीश ।

वाक्य—राम गच्छति वनम्, अथवा रामो गच्छति वनम् ।

५—सन्धि के कारण नीचे लिखे परिवर्तन उपस्थित हो सकते हैं—

( १ ) लोप—प्रथम शब्द के अन्तिम अक्षर का ( यथा—राम आयाति=राम आयाति ), अथवा द्वितीय शब्द के प्रथम अक्षर का ( यथा—दोष + अस्ति =दोषोऽस्ति ) ।

( २ ) दोनों के स्थान में कोई नया वर्ण ( यथा—रमा+ईश =रमेश ) अथवा दो में से किसी एक के स्थान में नया वर्ण ( यथा—नि+अवसत्=न्यवसत्, कस्मिन्+चित्=कस्मिश्चित् ) ।

( ३ ) दो में से एक का द्वित्व ( यथा—एकस्मिन्+अवसरे=एकस्मिन्नवसरे ) ।

शब्दों की निकटता इसलिए नीचे लिखे प्रकारों की होगी—

( १ ) जहाँ प्रथम शब्द का अन्तिम वर्ण तथा द्वितीय का प्रथम वर्ण दोनों स्वर हों ।

१ सहितैकपदे नित्या नित्या धातूपसर्गयो ।

नित्या समासे वाक्ये तु सा विवक्षामपेक्षते ॥

वाक्य में जो विवक्षा दी गयी है, इसको भी अच्छी शैली के लेखक उचित ढंग से समझते और विकल्प के रहते हुए भी सन्धि करते ही हैं। पद्य में तो यदि सन्धि का अवसर हो और न की जावे तो उसे विसन्धि दोष कहते हैं—न सहिता विवक्षामपेक्षान् नित्यसन्धान पदेषु यत्तद्विसन्धीति निर्दिष्टम् । ( काव्यादर्श ) ।

( २ ) जहाँ दो में से पर स्वर हो, पूर्व व्यजन ।

( ३ ) जहाँ दोनो व्यजन हो ।

( ४ ) जहाँ प्रथम का अन्तिम विसर्ग हो और द्वितीय का प्रथम स्वर अथवा व्यजन । द्वितीय के आरम्भ में विसर्ग नहीं आ सकता, क्योंकि विसर्ग से किसी शब्द का प्रारम्भ नहीं होता ।

इनमें से ( १ ) को स्वर-सन्धि, ( २ ) और ( ३ ) को व्यजन-सन्धि और ( ४ ) को विसर्ग-सन्धि कहते हैं ।

### स्वर-सन्धि

६—यदि<sup>१</sup> साधारण ह्रस्व अथवा दीर्घ अ, इ, उ, ऋ स्वर के अनन्तर सवर्ण ह्रस्व अथवा दीर्घ स्वर आवे, तो दोनों के स्थान में 'सवर्ण-दीर्घ' स्वर होता है, यथा—

दैत्य+अरि = दैत्यारि ।

तव+आकार = तवाकार ।

यदा+अभवत् = यदाभवत् ।

विद्या+आतुर = विद्यातुर ।

इति+इव = इतीव ।

अपि+ईक्षते = अपीक्षते ।

श्री+ईश = श्रीश ।

राज्ञी+इह = राज्ञीह ।

विष्णु+उदय = विष्णुदय ।

साधु+ऊचु = साधुचु ।

चमू+ऊर्ज = चमूर्ज ।

वधू+उपरि = वधूपरि ।

कृ+ऋकार = कृकार ।

होतृ+ऋकार = होतृकार ।

यदि ऋ या लृ के बाद ह्रस्व ऋ या लृ आवे तो दोनों के स्थान में ह्रस्व ऋ या लृ की स्वच्छा से करते हैं,<sup>२</sup> जैसे—होतृ+ऋकार = होतृकार या होतृकार ।

इस प्रकार सब मिलाकर तीन रूप हुए—

( १ ) होतृकार ( २ ) होतृकार ( ३ ) होऋकार<sup>३</sup> ।

होतृ+लृकार = होतृलृकार अथवा होतृ लृकार ।

१ अक सवर्ण दीर्घ ६।१।१०।१।

२ 'ऋति सवर्ण ऋ वा' तथा 'लृति सवर्ण लृ वा' ( वार्त्तिक )

३ होतृऋकार यह रूप तो ऋत्यक ६।१।१२= से प्रकृतिभाव होने से बना है ।

७—यदि<sup>१</sup> अ या आ के बाद ( १ ) ह्रस्व इ या दीर्घ ई आवे तो दोनो के स्थान मे “ए” हो जाता है, ( २ ) यदि ह्रस्व उ या दीर्घ ऊ आवे तो दोनो के स्थान मे “ओ” हो जाता है, ( ३ ) यदि ह्रस्व ऋ या दीर्घ ॠ आवे तो दोनो के स्थान मे “अर्” हो जाता है, ( ४ ) यदि लृ आवे तो दोनो के स्थान मे “अल्” हो जाता है । इस सन्धि का नाम गुण है । जैसे—

उप+इन्द्र = उपेन्द्र ।

गण+ईश = गणेश ।

रमा+ईश = रमेश ।

गङ्गा+ईश्वर = गङ्गेश्वर ।

वृक्ष+उपरि = वृक्षोपरि ।

गगन+ऊर्ध्वम् = गगनोर्ध्वम् ।

गङ्गा+उदकम् = गङ्गोदकम् ।

मायया+ऊजस्वि = माययोजस्वि ।

कृष्ण+ऋद्धि = कृष्णाद्धि ।

ग्रीष्म+ऋतु = ग्रीष्मर्तु ।

महा+ऋषि = महर्षि ।

महा+ऋद्धि = महर्द्धि ।

तव+लृकार = तवल्कार ।

कुछ स्थल ऐसे है जहाँ पर यह नियम नहीं लगता, वे नीचे दिखाये जाते है—

( क )<sup>२</sup> अक्ष+ऊहिनी = अक्षोहिणी । ( यहाँ पर “न” के स्थान मे “ण” कैसे हो गया, यह आगे बताया जायगा । ) यहाँ गुण स्वर ओ न होकर वृद्धि स्वर औ हुआ है ।

( ख )<sup>३</sup> जब “स्व” शब्द के बाद “ईर” और ईरिन् आते है तो “स्व” के अकार और ईर् व ईरिन् के अकार के स्थान मे “ऐ” हो जाता है, जैसे— स्व+ईर = स्वैर ( स्वेच्छान्तापी ) । स्व+ईरिणी = स्वैरिणी । स्व+ईरम् = स्वैरम् । स्व+ईरी = स्वैरी ( जिसका स्वेच्छानुसार आचरण करने का स्वभाव हो ) ।

( ग )<sup>४</sup> जब प्र के बाद ऊह, ऊढि, एष, एष्य आते है तो दोनो के स्थान पर सन्ध्यक्षर गुण स्वर न होकर वृद्धि स्वर होता है । जैसे—

१ आदगुण । ६।१।८७।

२ अक्षादूहिन्यामुपसङ्ख्यानम् ( वार्त्तिक ) ।

३ स्वादीरेरिणो ( वार्त्तिक ) ।

४ प्रादूहोढघेषैष्येषु ( वार्त्तिक ) ।

प्र+ऊह = प्रौह । प्र+ऊढ = प्रौढ । प्र+ऊढि = प्रौढि ।

प्र+एष = प्रैष । प्र+एष्य = प्रैष्य ।

( इनमें प्रथम तीन उदाहरण 'आद्गुण' सूत्र तथा अन्तिम दोनो 'एङि पररूपम्' के अपवाद ह । )

( घ )<sup>१</sup> यदि अकारान्त उपसर्ग के बाद ऐसी धातु आवे जिसके आदि में ह्रस्व "ऋ" हो तो "अ" और "ऋ" के स्थान में "आर्" ( वृद्धि ) नित्य हो जाता है, जैसे—  
उप+ऋच्छति=उपाच्छति । प्र+ऋच्छति=प्राच्छति ।

किन्तु यदि नामधातु हो तो "आर्" विकल्प से होगा, जैसे—

प्र+ऋषभीयति=प्रार्षभीयति, प्रर्षभीयति ( बैल की तरह आचरण करता है ) ।

( ङ )<sup>२</sup> जब ऋत शब्द के साथ किसी पूर्वगामी शब्द का तृतीयासमास हो, तब भी पूर्वगामी अ और ऋत के ऋ से मिलाकर आर् बनेगा, अर् नहीं । जैसे—  
सुखेन ऋत = सुख+ऋत = सुवर्ति ।

( च )<sup>३</sup> अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ तथा लृ जब किसी पद के अन्त में रहे और इनके बाद ह्रस्व "ऋ" आवे तो वे विकल्प से ह्रस्व हो जाते हैं । यदि पहले से ह्रस्व है, तो वह भी फिर से हुआ ह्रस्व माना जायगा और इस प्रकार हुई ह्रस्व सन्धि में फिर दूसरी सन्धि नहीं होती । इसे 'प्रकृतिमाव' कहते हैं । यह नियम गुणसन्धि का विकल्प प्रस्तुत करता है, जैसे—

ब्रह्मा+ऋषि = ब्रह्मा ऋषि, ब्रह्माषि । सप्त+ऋषीणाम् =

सप्ता ऋषीणाम्, सप्तर्षीणाम् ।

८—जब "अ" अथवा "आ" के बाद ( १ ) "ए" या "ऐ" आवे, तो दोनो के स्थान में "ऐ" हो जाता है और ( १ ) जब "ओ" या "औ" आवे, तो दोनो के स्थान में "औ" हो जाता है । इस सन्धि का नाम "वृद्धि" है, यथा—

१ उपसर्गादिति धातौ । ६।१।६१।

२ वा सुप्यापिशल ६।१।६२।

३ ऋते च तृतीयासमासे ( वार्त्तिक ) ।

४ ऋत्यक । ६।१।१२८। ( ऋति परे पदान्ता अक प्राग्बत् ) ।

५ वृद्धिरेषि । ६।१।६८।



( १ ) कृष्ण+एकत्वम्=कृष्णैकत्वम् ।

गङ्गा+एषा=गङ्गाषा ।

( २ ) जल+ओष =जलौष । गङ्गा+ओष =गङ्गाौष ।

## नियमातिरेक

( क )<sup>१</sup> यदि अकारान्त उपसर्ग के बाद एकारादि या ओकारादि वातु आये तो दोनों के स्थान में "ए" या "ओ" हो जाना है, यथा—

प्र+एजते=प्रेजते । उप+ओषति=उपोषति ।

किन्तु<sup>२</sup> यदि वह धातु नामधातु हो तो विकल्प से वृद्धि होती है जैसे—  
उप+एडकीयति=उपेडकीयति या उपैडकीयति ।

प्र+ओधीयति=प्रोधीयति या प्रौधीयति ।

( ख )<sup>३</sup> एव के साथ भी जब अनिश्चय का बोध हो, तब पूर्वगामी अकारान्त शब्द का अ और एव का ए मिल कर ए ही रह जायेगा, जैसे—

क्व एव भोक्ष्यसे—क्वेव भोक्ष्यसे ( कहीं भी खा लोगे ) ।

जब अनिश्चय नहीं रहेगा तब ए ही होगा, यथा 'तवैव' ।

( ग )<sup>४</sup> शक+अन्वु, कुल+अटा, मनस्+ईषा इत्यादि उदाहरणों में भी परवर्ती शब्द के आदि स्वर का भी अस्तित्व रहता है । पूर्ववर्ती शब्द की 'टि' परवर्ती के आदि स्वर के रूप में मिल जाती है । इनमें प्रथम दो उदाहरण अत्र 'सवर्णो दीर्घ' सूत्र से होने वाली दीर्घ सन्धि के अपवाद हैं ।

शक+अन्वु =शक्न्वु, कुल+अटा=कुलटा, मनस्+ईषा=मनीषा ।

६—यदि<sup>५</sup> ह्रस्व या दीर्घ इ, उ, ऋ तथा लृ के बाद असवर्ण स्वर आवे तो इ, उ, ऋ, लृ के स्थान में क्रमशः य्, व्, र् और ल् हो जाते हैं, जैसे—

१ एडि पररूपम् । ६।१।६४।

२ नामधातु के आगे रहने पर इस प्रकार की विकल्पता का कारण 'एडि-पररूपम्' में वा सुप्यापिशले से 'वासुपि' की अनुवृत्ति है ।

३ एवे चानियोगे ( वार्त्तिक ) ।

४ शकन्धवादिषु पररूप वाच्यम् ( वार्त्तिक ) तच्च टे—सि० कौ० ।

५ इको यणचि । ६।१।७७।

दधि + अत्र = दध्यत्र ।

इति + आह = इत्याह ।

मधु + अरि = मध्वरि ।

गुरु + आदेश = गुर्वादेश ।

साधु + इति = साध्विति ।

शिशु + ऐक्यम् = शिश्वैक्यम् ।

धान् + अश = धात्रश ।

पितृ + आकृति = पित्राकृति ।

सवितृ + उदय = सवितृदय ।

मातृ + औदाय्यम् = मात्रौदाय्यम् ।

लृ + आकृति = लाकृति ।

१०—ए, ऐ, ओ, औ (एच्) के आगे कोई भी स्वर आवे तो उन (एच्) के स्थान से क्रम से अय्, आय्, अव्, आव् हो जाते हैं, यथा—

हरे + ए = हरये । नै + अक = नायक ।

विष्णो + ए = विष्णवे । पौ + अक = पावक ।

(क) पश्चात् य या व् के ठीक पूर्व यदि अ या आ रहे और पश्चात् कोई 'अश्' प्रत्याहार का वर्ण आवे तो अ और व् का विकल्प से लोप होता है और लोप होने के पश्चात् उनमें फिर कोई सन्धि नहीं होती, यथा—

हरे	+	एहि	=	हर एहि	या	हरयेहि
विष्णो	+	इह	=	विष्ण इह	या	विष्णविह
तस्यै	+	इमानि	=	तस्या इमानि	या	तस्यायिमानि
श्रियै	+	उत्सुक	=	श्रिया उत्सुक	या	श्रियायुत्सुक
गुरौ	+	उत्क	=	गुरा उत्क	या	गुरावुत्क
रात्रौ	+	आगत	=	रात्रा आगत	या	रात्रावागत
ऋतौ	+	अन्नम्	=	ऋता अन्नम्	या	ऋतावन्नम्

समर्थ<sup>१</sup> व्यंजन अथवा विसर्ग के लोप हो जाने पर जब कोई दो स्वर समाप्त आ जायें तो प्रायः उनकी आपस में सन्धि नहीं होती ।

(ख)<sup>२</sup> जब ओ या औ के बाद यकारादि प्रत्यय (ऐसा प्रत्यय, जिसके

१ एचोऽयवायाव । ६।१।७८।

२ लोप शाकल्यस्य । ८।३।१६।

३ 'पूर्वत्रासिद्धमिति' लोपशास्त्रस्यासिद्धत्वान्न स्वरसन्धि ।

४ वान्तो यि प्रत्यये । ६।१।७६।

आरम्भ मे 'यू' हो ) आवे तो "ओ" और "औ" के स्थान मे क्रम से अय्व और आव् हो जाते हैं, यथा—

(गोविकारो) गो+यत्=गव्यम् । (नावा तार्यं) नौ+यत्=नाव्यम् ।

११—पदान्त<sup>१</sup> एकार या ओकार के बाद यदि "अ" आवे तो दोनों के स्थान मे क्रमशः—एकार तथा ओकार (पूवक) हो जाते हैं, ओर ऽ चिह्न अ की पूव उपस्थिति की सूचना मात्र देन को दिया जाता है, जैसे—

हरे + अय = हरेऽय (हे हरि रक्षा कीलिय) ।

विष्णो + अय =विष्णोऽय (हे विष्णु रक्षा कीलिय) ।

(क)<sup>२</sup> परन्तु गो शब्द के आगे अ आये तो विकल्प से प्रकृतिभाव भी हो जाता है और जैसे—गो+अग्रम्=गो अग्रम्, अन्यथा पूर्व नियम से पूर्वरूप होने पर गोऽग्रम् होता है ।

(ख)<sup>३</sup> यदि गो के बाद कोई स्वर हो तो गो के ओ के लिए 'अय' का आदेश भी विकल्प से हो जाता है, जैसे—

गो+अग्रम्=गवाग्रम् या गो अग्रम् या गोऽग्रम् ।

(ग)<sup>४</sup> यदि इन्द्र शब्द आगे रहे, तो गो के ओ को 'अय' आदेश नित्य होता है । जैसे—गो+इन्द्र =गवेन्द्र ।

१२—यदि<sup>५</sup> प्लुत स्वर के बाद अथवा प्रगृह्यसज्ञक वर्णों के बाद कोई स्वर आवे तो सन्धि नहीं होती । प्रगृह्यसज्ञा वाले वर्ण इस प्रकार हैं—

(क)<sup>६</sup> जब सज्ञा अथवा सर्वनाम अथवा क्रियावाचक शब्द के द्विवचन रूप के अन्त मे "ई" "ऊ" या "ए" रहता है, तो उस "ई" "ऊ" और "ए" को 'प्रगृह्य' कहते हैं, जैसे—हरी एतौ, विष्णु इमौ, गङ्ग अम्, पचेते इमौ ।

१ एड पदान्तादति । ६।१।१०६।

२ सर्वत्र विभाषा गो । ६।१।१२२।

३ अयञ् स्फोटायनस्य । ६।१।१२३।

४ इन्द्रे च । ६।१।१२४।

५ प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम् । ६।१।१२५।

६ ईदूदेद्द्विवचन प्रगृह्याम् । १।१।११।

## द्वितीय सोपान

(ख) <sup>१</sup> जब प्रदस् शब्द का अकार के बाद ई श ऊ आते हैं तो वे प्रगृह्य होते हैं, जैसे—अमा ईशा, अमू आसाते (इसमें उस ई या ऊ का द्विवचनान्त होना आवश्यक नहीं) ।

(ग) <sup>२</sup> आङ् के अतिरिक्त अन्य एकस्वरात्मक निपातो (अव्ययो) की भी प्रगृह्य सज्ञा होती है, जैसे—इ इन्द्र, उ उमेश, अ एव नु मन्यसे ।

(घ) <sup>३</sup> जब निपात (अव्यय) ओकारान्त हो तो ओ को प्रगृह्य कहते हैं, जैसे—अहो ईशा ।

(ङ) <sup>४</sup> सज्ञा शब्दों के सम्बोधन के अन्त में ओकार के बाद “इति” शब्द आवे तो सम्बुद्धि निमित्तक उस ओकार की विकल्प से प्रगृह्य सज्ञा होती है, जैसे—विष्णो+इति=विष्णो इति, विष्ण इति विष्णविति ।

प्लुतो के माथ भी सन्धि नहीं होती, जैसे—एहि कृष्णः अत्र गौश्चरति । यहाँ दूर से पुकारने वाले शक्य की ‘टि’ प्लुत हो गयी ।<sup>५</sup>

### हल् सन्धि

१३—(क<sup>१</sup>) जब सकार या तवर्ग शकार या चवर्ग के योग में आता है तो सकार और तवर्ग के स्थान में क्रम से शकार और चवर्ग हो जाता है, जैसे—

हरिस्+शेते=हरिश्शेते—हरि सोता है ।

रामस्+चिर्नाति=रामश्चिनाति—राम इकट्ठा करता है ।

सत्+चित्=सच्चित्—सत्य और ज्ञान ।

शाङ्गन्+जय=शाङ्गञ्जय—हे विष्णु जय हो ।

सत्+शिष्य=सच्चिशिष्य (अच्छा शिष्य) (इसका सच्छिष्य रूप आने

शश्लोष्टि नियम में बताया जायगा) ।

१ अदसो मात् । १।१।१२।

२ निपात एकाजनाङ् । १।१।१४।

३ ओत् । १।१।१५।

४ सबुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्थे । १।१।१६।

५ दूराद्धूते च । ८।२।८४।

६ स्तो श्चुना श्चु । ८।४।४०।

**भ्रमवाद**—जब तवर्ग 'श्' के बाद आते हैं, तो उनके स्थान में चवर्ग नहीं होते, जैसे—विश्+न=विश्न । प्रश्+न=प्रश्न ।

( ख )<sup>१</sup> जब स् अथवा तवर्ग ष या टवर्ग के योग में आता है तो स् के स्थान में ष और तवर्ग के स्थान में टवर्ग हो जाते हैं, जैसे—रामस्+षष्ठ=रामष्षष्ठ । राम छठवाँ है । रामस्=टीकते=रामष्टीकते—राम जाता है ।

तत्+टीका=तटीका—उसकी व्याख्या ।

चक्रिन्+ढौकसे=चक्रिण्ढौकसे—हे कृष्ण, तू जाता है ।

पेष्+ता=पेष्ठा—पीसने वाला ।

( ग ) पदान्त<sup>३</sup> टवर्ग में परे 'नाम' प्रत्यय ( तथा नवति और नगरी शब्दों ) के नकार को छोड़कर कई तवर्ग-वर्ण या सकार हो तो उसके स्थान में टवर्ग या षकार आदेश नहीं होता, जैसे—

षट्+सन्त=षट्सन्त । षट्+ते=षट् ते ।

परन्तु षड्+नाम्=षण्णाम् । षड्+नवति=षण्णवति ।

षड्+नगर्यं=षण्णगर्यं में टवर्ग आदेश हो जाता है ।

( घ ) यदि तवर्ग के किसी अक्षर के बाद ष आवे तो उसके स्थान पर मूर्धन्य नहीं होता, जैसे—सन्+षष्ठ=सन्षष्ठ ।

१४—जब<sup>४</sup> झल (अर्थात् अन्त स्थ और अनुनासिक व्यजन को छोड़कर और किसी भी व्यजन) के उपरान्त झश् (अर्थात् किसी वर्ग का तृतीय अथवा चतुर्थ वर्ण) आवे, तो पूर्ववर्ती व्यजन जश् (अर्थात् अपने वर्ग के तृतीय वर्ण) में परिणत हो जाता है (यह सन्धि प्रायः अपदान्त वर्णों में ही चरितार्थ होती है । पदान्त वर्णों में तो आगे वाली विधि प्रवृत्त होगी) जैसे—

१ शात् । ८।४।४४।

२ ष्टुना ष्टु । ८।४।४१।

३ नपदान्ताद्वोरनाम् । ८।४।४२। (अनाम्नवतिनगरीणामिति वाच्यम्—दा०)

४ तो षि । ८।४।४३।

५ झला जश् झशि । ८।४।५३।

वृञ्+ध = वृद्ध । सञ्च+ध = सञ्चद्ध ।

( क ) पदान्त<sup>१</sup> के 'झल्' के स्थान में 'जश्' आदेश हो जाता है, जैसे—  
वाक्+ईश = वागीश । जलमुक्+गजति = जलमुग्गर्जति ।

१५—यदि यर् प्रत्याहार (अर्थात् ह को छोड़कर किसी पदान्त व्यजन) के बाद कोई अनुनासिक वण आवे, तो यर् के स्थान में उसी वणवाला अनुनासिक वण विकल्प से होता है, और यदि किसी प्रत्यय का अनुनासिक वर्ण आगे हो, तो नित्य होता है। जैसे—

एतद्+मुरारि — एतन्मुरारि । षट्+मासा = षण्मासा ।

षट्+नगर्य = षण्णगर्य । नद्+मात्रम् = तन्मात्रम् ।

चिद्+मयम् = चिन्मयम् । वाक्+मयम् = वाङ्मयम् ।

क से म तक के वर्णों से यह चिन्म सुविधा के साथ चरितार्थ हो जाता है, अत र् का सवर्णी अनुनासिक करने में नहीं लगता। अतएव चतुर्मुख आदि में र् के स्थान में कोई अनुनासिक वण नहीं होता। (बचे यण् और ऊष्मा, उनमें य् व् ल् का तो अनुनासिक हो भी सकता है, श् ष् स् की तो अन्त में सत्ता ही दूसरे रूप में रहती है।)

१६—तवर्ग के बाद यदि ल् आवे तो उसके स्थान में ल् हो जाता है, जैसे—  
तत्+लय = तल्लय ( उसका नाश ) ।

वृक्षात्+लगुडम् = वृक्षाल्लगुडम् ।

( त के स्थान में ल् अनुनासिक अर्थात् लँ होता है )

विद्वान् + लिखति = विद्वाल्लिखति ।

१ झला जशोञ्जे । ८।२।३९।

२ यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा । ८।४।४५।

प्रत्यये भाषाया नित्यम् ( वा० )

३ स्थानप्रयत्नाभ्यामन्तरतमे स्पर्शे चरितार्थो विधिरय रेफे न प्रवर्तते ।  
सि० कौ० ।

४ तोलि । ८।४।६०।

( क ) यदि<sup>१</sup> उद् के पश्चात् स्था या स्तम्भ शब्द आवे तो उनके स् को थ् का आदेश होगा। जैसे उद्+स्थानम्=उत्स्थानम्, और स् के स्थान में आदिष्ट इस थ् का विकल्प से लोप होने पर उत्थानम् भी रूप बनता है। उद्+स्तम्भनम्=उत्तम्भनम्। थ् का लोप न होने पर उत्थत्तम्भनम् रूप बनेगा ( इस आदिष्ट थ् को त् करने पर थ् आदेश ही असिद्ध हो जायगा ) ( द् के स्थान में त् कैसे हुआ इसके लिए देखिए नियम १८)।

१७—यदि<sup>३</sup> वर्गों के प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ वर्णों अर्थात् य् प्रत्ययान्त के बाद ह् आवे तो ह् के स्थान में उसी वर्ण का चौथा अक्षर विकल्प से होता है, जैसे—  
वाक्+हरि=वाग्हरि अथवा वाग्हरि ।

यहाँ कवग के प्रथम अक्षर क् के बाद ह् आया है अतः ह् के स्थान में कवग का चतुर्थ अक्षर घ् हो गया, ( क् के स्थान में ग् कैसे हुआ, इसके लिए देखिए नियम १४ )।

१८—झल् अर्थात् अनुनासिक व्यजन ( ज्, झ्, ङ्, ण्, न् ) तथा अन्त स्थ वर्णों को छोड़कर और किसी व्यजन के बाद यदि खर् अर्थात् क्, ख्, च्, छ्, ट्, ठ्, त्, थ्, प्, फ् में से कोई वर्ण आवे, तो पूर्वोक्त व्यजन के स्थान में चर् अर्थात् उसी वर्ण का प्रथम वर्ण हो जाता है, परन्तु<sup>३</sup> जब उसके बाद कुछ भी नहीं रहता, तब उसके स्थान में प्रथम अथवा तृतीय वर्ण हो जाता है, जैसे—उद्+कोर्ण=उत्कीर्ण। सुहृद्+क्राडति=सुहृत्क्रीडति। वाक्, वाग्। गमात्, रामाद्।

१९—श् यदि किसी ऐसे शब्द के बाद आवे, जिसके अन्त में झय् ( अर्थात् वर्णों के प्रथम, द्वितीय या चतुर्थ वर्ण ) हो और श् के बाद अट् बल्कि अम् तक

१ उद स्थास्तम्भो पूर्वस्य । ८।४।६१।

२ झरो झरि सवर्णो । ८।४।६५।

३ झयो होज्यतरस्याम् । ८।४।६२।

४ खरि च । ८।४।५५।

५ वाज्वसाने । ८।४।५६।

६ सुहृद्वोऽटि । ८।४।६२। छत्त्वममीति वाच्यम् ।

(अर्थात् कोई स्वर, अन्त स्थ, अनुनासिक व्यजन या ह्) रहे तो श् के स्थान में विकल्प से छ होता है, जैसे—

तद+शिव =तच्छिव, तच्छिव ।

तद्+श्लोकेन =तच्छ्लोकेन, तच्छ्लोकेन ।

२०—पदान्त<sup>१</sup> म् के बाद यदि कोई व्यजन आवे, तो उसके स्थान में अनुस्वार हो जाता है, जैसे—

हरिम्+वन्दे=हरि वन्दे । गहम्+चलति=गृह चलति ।

किन्तु गम्+य+ते=गम्यते, न कि गयते होगा, क्योंकि म् पद के अन्त में नहीं है, बल्कि बीच में है ।

२१—अपदान्त<sup>२</sup> म्, न् के बाद यदि झल् (अर्थात् अनुनासिक व्यजन तथा अन्त स्थ को छोड़ कर कोई भी व्यजन) आवे, तो म्, न् के स्थान में अनुस्वार हो जाता है, जैसे—

आक्रम्+स्यते=आक्रम्यते । श्वान्+सि=यशासि ।

परन्तु मन्+यते=मन्यते । अहा मयते नहीं होगा, क्योंकि यहाँ पर न् के बाद य आ जाता है जो कि अन्त स्थ ।

उसी प्रकार ग्रामान्+गच्छति=ग्रामान् गच्छति । यहाँ पर ग्रामा गच्छति नहीं होगा, क्योंकि न पच के अंत में है ।

२२—यदि<sup>३</sup> पद के मध्य में स्थित अनुस्वार के बाद यय् (अर्थात् श् ष्, स् और ह् को छोड़कर कोई भी व्यजन) आवे, तो अनुस्वार के स्थान में सर्वदा ही नच वर्ण का पचम वर्ण हो जाता है, जिस वर्ण का व्यर्जन वर्ण अनुस्वार के बाद रहता है, जैसे—

गम्+ता=ग+ता ( २१ )=गन्ता । सन्+ति=सति ( २१ )=सन्ति ।  
अनुक्+इत् =अक्+इत् ( २१ )=अकित । शाम्+त =शा+त ( २१ )  
शान्त । अनुच्+इत् =अच+इत् ( २१ )=अञ्चित ।

१ मीऽनुस्वार । ८।३।२३।

२ नश्चापदान्तस्य झलि ६।४।२४।

३ अनुस्वारस्य ययि परसवर्ण । ८।४।५८।



(क) यदि<sup>१</sup> अनुस्वार किसी पद के अन्त में रहे तो ऊपर वाला नियम विकल्प से लगता है, जैसे—त्वम्+करोषि=त्व करोषि या त्वङ्करोषि । तृणम्+चरति=तृण चरति या तृणञ्चरति । नदीम्+तरति=नदी तरति या नदीन्तरति । पुस्तकम्+पठति=पुस्तक पठति या पुस्तकम्पठति ।

(ख) किन्तु<sup>२</sup> जब राज् घातु पड़े हो और उसमें क्विप् प्रत्यय जुड़ा हो तब पूर्ववर्ती सम् का म् ही रहेगा, अनुस्वार नहीं होगा, जैसे—  
सम्+राट्=सम्राट् ।

२३—किसी<sup>३</sup> एक ही पद में यदि र्, ष्, अथवा ह्रस्व या दीर्घ ऋ के बाद न् आवे तो न् के स्थान में ण् हो जाता है और यदि न्, ष् और न् के बीच में कोई स्वर, य्, व्, र्, ह्, कवर्ग, पवर्ग, आङ् तथा अनुस्वार ष से कोई एक अथवा कई का व्यवधान आ जाय, तब भी न् के स्थान में ण् होता है । इस नियम के प्रयोग को णत्वविधान कहते हैं, जैसे—

चतुर्+नाम्=चतुर्णाम् । पूष्+ना=पूष्णा । पितृ+नाम्=पितृणाम् ।

मित्रा+नि=मित्राणि । द्रव्ये+न=द्रव्येण । रामे+न=रामेण ।

शीर्षा+नि=शीर्षाणि ।

किन्तु ऋषि+निवास =ऋषिनिवास, यहाँ “ऋषिनिवास” नहीं होगा, क्योंकि “ऋषि” और “निवास” दो अलग-अलग पद हैं ।

किन्तु<sup>४</sup> जब न् किसी पद के अन्त में आता है तो वह ण् नहीं होता, जैसे—  
रामान्, पितृन्, वृषमान्, ऋषीन् ।

२४—यदि<sup>५</sup> इण् (अर्थात् अ, आ को छोड़ कर किसी स्वर, अन्त स्थ वर्ण, ह्) अथवा कवर्ग के बाद कोई प्रत्यय सम्बन्धी स्, या किसी दूसरे वर्ण के स्थान में

१ वा पदान्तस्य । ८।४।५६।

२ मोराजि सम क्वौ । ८।२।२५।

३ रषाम्या नो ण समानपदे । अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि । ८।४।१२।  
ऋवर्णांस्य णत्व वाच्यम्—(वा०) ।

४ पदान्तस्य । ८।४।३७।

५ अपदान्तस्य मूर्धन्य । इण्को । आदेशप्रत्ययो । ८।३।५५, ५७, ५६।

आदेश किया हुआ स् आवे और वह पदान्त का न हो, उस स् के स्थान में ष् हो जाता है। जैसे रामे+सु=रामेषु। बने+मु=बनेषु।

ए+साम्=एषाम्। अन्ये+साम्=अन्येषाम्।

इसी प्रकार मतिषु, नदीषु, घेनुषु, वधूषु, घातृषु, गोषु, ग्लौषु आदि जानना चाहिए।

किन्तु राम+स्य=रामस्य, यहाँ ष् नहीं हुआ क्योंकि यहाँ स् के पूर्व 'अ' आया है। इसी प्रकार पेस्+अति=पेसति में षत्व नहीं हुआ, क्योंकि यह स् न तो किसी प्रत्यय का है, न आदेश का।

( क ) यदि स् पद के अन्त में हो तो षत्वविधान न होगा, यथा—हरि ( यहाँ हरि शब्द के बाद आया हुआ 'स्' प्रत्यय का अवयव अवयव है, किन्तु पद के अन्त में है, इस कारण षत्व नहीं हुआ )।

( ख ) ऊपर वर्णित वर्णों में से यदि कोई वर्ण स् के ठीक पहले न हो, किन्तु अनुस्वार ( न् के स्थान में आया हुआ ), विसर्ग, श्, ष्, स् में से कोई वर्ण स् और पूर्व वर्णित वर्णों के बीच में आ जाय, तब भी षत्वविधि होगी, यथा—घनून्+मि=घनूषि।

२५—सम् उपसर्ग के म् के बाद यदि कृ घातु का कोई रूप आवे ( जो मूढित करने के अर्थ में होने के कारण सुट् अर्थात् पूव में स् से युक्त होता है ) तो म् के स्थान में र् होता है और र् के पूर्व का स्वर अनुनासिक हो जाता है। र् विसर्ग होकर फिर स् में परिणत हो जाता है यथा—सम्+स्कर्ता=सँस्+स्कर्ता=सँ + स्कर्ता=सँस्कर्ता। अनुनासिक के विकल्प पक्ष में उस पूर्व स्वर के आगे अनुस्वार जुट जाता है। यथा—सस्कर्ता।

भाष्यकार के एक विशेष वचन द्वारा सम् के म् का ही लोप हो जाता है, जिससे एक सकार का भी रूप साधु माना जाता है। किन्तु म् का लोप् भी अपने

पूर्ववर्ती स के स्वर मे अनुनासिक तथा अनुस्वार का विकल्प से विधान करके ही होता है।<sup>१</sup>

२६—छ तथा छ के पूर्व वाले ह्रस्व<sup>१</sup> या दीर्घ<sup>२</sup> स्वर के बीच मे च् नित्य आता है, जैसे—( १ ) शिव+छाया=शिवच्छाया । वृक्ष+छाया=वृक्ष-च्छाया । ( ११ ) चे+छिद्यते=चेच्छिद्यते ।

( क ) किन्तु छ के पूव ( आइ उपसग को तथा “मा” के आ को छोडकर ) कोई पदान्त दीध स्वर आवे, तो ऊपरवाला नियम ( छत्वविधान ) विकल्प से लगता है, जैसे लक्ष्मी+छाया=लक्ष्मीछाया या लक्ष्मीच्छाया ।

( ख ) छ के पूव आइ और माइ<sup>३</sup> का आ होने पर च् अवश्य ( नित्य ) आयेगा, जैसे—मा+छिदत्=माच्छिदत् । यहाँ यही एक रूप होगा । माछिदत् न होगा । इसी प्रकार आ+छादयति=“आच्छादयति” । यहाँ भी एक रूप होगा, “आच्छादयति” न होगा ।

### विसर्ग सन्धि

२७—( १ ) पदान्त<sup>४</sup> स् तथा सजु<sup>५</sup> शब्द के ष के स्थान मे र ( रु ) हो जाता है । इस पदान्त<sup>४</sup> र के बाद खर प्रत्याहार ( वर्गी के प्रथम और द्वितीय

१ सपरिम्या करोतौ सषण्ण । ६।१।१३७।, सम सुटि । ८।३।५, अत्रानु-  
नासिक पूर्वस्य तु वा । ८।२।२, अनुनासिकात् परोऽनुस्वार । ८।३।४, सम्पुकाणा  
सो वक्तव्य, “समो ज्ञे लोपमेके” इति भाष्यम् । लोपस्यापि रुप्रकरणस्थ-  
त्वादानुस्वारानुनासिकाश्चामेकसकार रूपद्वयम् । सि० कौ० ।

२ छे च । ६।१।७३।

३ दीर्घात् । ६।१।७५।

४ पदान्ताद्वा । ६।१।७३।

५ आइमाडोश्च । ६।१।७४।

६ ससजुषो रु । ८।२।६६।

७ खरावसानयोर्विसर्जनीय । ८।३।१५।

वर्ण तथा श्, ष्, स्) का कोई वर्ण हो अथवा कोई भी वर्ण न हो, तो र् के स्थान में विसर्ग हो जाता है, जैसे—रामस्+पठति=रस्+पठति=रम पठति ।  
रामस्=रामर् राम । मज्जुष्=सज्जुर्=मज्जु ।

२८—यदि विसर्ग<sup>१</sup> के बाद खर् प्रत्याहार के वर्णों में से कोई वर्ण आवे, तो विसर्ग के स्थान में स् हो जाता है, जैसे—

हरि + चरति=हरिस्+चरति=हरिश्चरति ।

राम + टङ्कारयति=रामस्+टङ्कारयति=रामष्टङ्कारयति ।

विष्णु + त्राता=विष्णुस्त्राता ।

( क ) और यदि<sup>२</sup> विसर्ग के बाद श्, ष्, स आवे, तो विसर्ग के स्थान में स् विकल्प से होता है, जैसे—

हरि + शेते=हरिस्+शेते=हरिश्शेते या हरि शेते ।

राम + षष्ठ =रामस्+षष्ठ या राम षष्ठ ।

( ख ) परन्तु यदि<sup>३</sup> विसर्ग के बाद क्, ख्, प्, फ् में से कोई वर्ण आवे, तो विसर्ग के स्थान में या तो विसर्ग ही बना रहता है या क् तथा ख् के आगे रहने पर जिह्वामूलीय तथा प् और फ् के आगे रहने पर उपध्मानीय हों जाता है, जैसे—

एक काक = एक काक या एक काक ।

सुधिय पाहि = सुधिय पाहि या सुधिय पाहि ।

( ग ) यदि विसर्ग के बाद आने वाले खर् प्रत्याहार के वर्ण के अनन्तर शर् ( श्, ष्, स् ) प्रत्याहार का कोई वर्ण आवे तो विसर्ग के स्थान में विसर्ग ही होता है, जैसे—

कत्सर = कत्सर । यहाँ विसर्ग के स्थान में स् नहीं हुआ ।

धनाघन क्षोभण । यहाँ क्षो के पूर्व के विसर्ग को जिह्वामूलीय न हुआ ।

१ विसर्जनीयस्य स । ८।३।३४।

२ वा शरि । ८।३।३६।

३ कुप्वो क् पौ च । ८।३।३७।

४ शर्परे विसर्जनीय । ८।३।३५।

२६—ककारादि, खकारादि, पकारादि, फकारादि धातुओं के पूर्व यदि नम तथा पुर शब्द गतिसञ्ज्ञक के रूप में आये हो तो इनके विसर्ग के स्थान में स् हो जाता है। किन्तु नम को विकल्प से तथा पुर ( आगे अर्थ वाला अव्यय शब्द ) को नित्य रूप से गति सञ्ज्ञा होने के कारण नम के विसर्ग के स्थान में विकल्प से तथा पुर के विसर्ग के स्थान में नित्य रूप से स् होता है, जैसे—

नम + करोति = नमस्करोति या नम करोति ।

पुर + करोति = पुरस्करोति, इसमें अवश्य विसर्ग का स् होगा ।

पुर ( नगरियाँ ) + प्रवेष्टव्या = पुर प्रवेष्टव्या = यहा पुर के विसर्ग के स्थान में स् नहीं हुआ, क्योंकि पुर यहाँ पर अव्यय नहीं है, सञ्ज्ञा है ।

३०—यदि तिरस् के बाद क्, ख्, प्, फ् आये तो स् विकल्प से बना रहता है, जैसे—

तिरस् + करोति = तिरस्करोति या तिर करोति ।

३१—यदि क्रियाभ्यावृत्ति ( अनेक बार ) वाचक द्वि, त्रि और चतु क्रिया-विशेषण अव्ययों के बाद क्, ख्, प्, फ् आये तो विसर्ग के स्थान में विकल्प से स् हो जाता है, जैसे—

द्वि + करोति = द्विस् + करोति = द्विस्करोति या द्वि करोति । इसी प्रकार त्रि + खादति = त्रिष्खादति या त्रि खादति । चतु + पठति = चतुष्पठति या चतु पठति ।

किन्तु चतु + कपाल = चतुष्कपाल ( चतु कपाल नहीं ) क्योंकि 'चार कपालों में बना हुआ' अर्थ—यहाँ चतु क्रियाविशेषण अव्यय नहीं है। यहाँ 'कस्कादिषु च' ( वा० ) इस नियम से नित्य षत्व होता है ।<sup>५</sup>

१ नमस्पुरसो गतौ । ८।३।४०। साक्षात्प्रभृतित्वात्कृत्वो योगे विभाषा गतिसञ्ज्ञा । तदभवे नम करोति । 'पुरोऽव्ययम्' । १।४।६७। इति नित्य गतिसञ्ज्ञा । पुरस्करोति ।—सि० कौ० ।

२ तिरसोऽङ्गनरस्थाम् । ८।३।४२।

३ द्विस्त्रिश्चतुर्गिति कृत्वाऽर्थे । ८।३।४३।

४ चतुष्कपाल इत्यत्र कस्कादेराकृतिगणत्वात् षत्वप्रवृत्तिरित्याहुः —  
—तत्त्वबोधिनी ।

३२—स् के स्थान मे आदिष्ट र् ( द्रष्टव्य नियम २७ ) के (मौलिक र् के स्थान मे किये हुए विसर्ग के नही) पूर्व यदि ह्रस्व “अ” आवे और बाद को ह्रस्व “अ” अथवा हश् प्रत्याहार का वण आवे तो र् का “उ” हो जाता (उसको विसर्ग भी नही हो पाता) है, जैसे—

शिवस्+अच्य = शिवर्+अच्य = शिव+उ+अर्च्य = शिवो+अर्च्य = शिवोऽच्य । इसी प्रकार, सस्+अपि=सोऽपि । रामस्+अस्ति= रामोऽस्ति । एषस्+अब्रवीत्=एषोऽब्रवीत् ।  
देवस्+वन्द्य = देवो वन्द्य । बालस्+गच्छति=बालो गच्छति ।  
हरस्+याति=हरो याति । वृक्षस्+वर्धते=वृक्षो वर्धते ।

किन्तु प्रातर्+अत्र=प्रातरत्र । यहाँ पर र् का उ नही हुआ, क्योकि र् को स् के स्थान मे नही किया गया है, इसी प्रकार प्रातर्+गच्छ=प्रातगच्छ मे भी उ नही हुआ ।

( क ) यदि स् के स्थान मे आदिष्ट र् के पूर्व भो, भगो, अघो और ह्रस्व या दीर्घ अ हो और उसके अनन्तर अश् प्रत्याहार का वण (कोई स्वर या हश् प्रत्याहार) हो तो र् को य् आदेश होता है और आगे स्वर रहने पर इस य् का विकल्प से तथा व्यञ्जन रहने पर नित्य ही लोप हो जाता है, जैसे—  
भोस्+देवा = भोर्+देवा = भोय् देवा = भो देवा । इसी प्रकार भो लक्ष्मि, भगो नमस्ते, अघो याहि, बाला गच्छन्ति, भक्ता जपन्ति, अश्वा धावन्ति, कन्या यान्ति ।

किन्तु देवस्+इह=देवार्+इह=देवाय् इह=देवा इह या देवायिह । इसी प्रकार

नरास्+आगच्छन्ति=नरा आगच्छन्ति या नरायागच्छन्ति ।

रामस्+एति=राम एति या रामयेति । जनस्+इच्छति=जन इच्छति या जनयिच्छति ।

१ अतो रोरप्लुतादप्लुते । ६।१।११३। हर्षि च । ६।१।११४ ।

२ भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि । ८।३।१७। तथा—हलि सर्वेषाम् । ८।३।२२।

शत्रवस्+आपतन्ति=शत्रव आपतन्ति या शत्रवयापतन्ति ।

मुनयस्+आप्नुवन्ति=मुनय आप्नुवन्ति या मुनययाप्नुवन्ति ।

ऋषयस् एते=ऋषय एते या ऋषययेते । कवयस्+ऊहन्ति=कवय ऊहन्ति या कवययूहन्ति ।

(ख) यदि अहन्' शब्द के परे विभक्तियों को छोड़कर कोई स्वर या हश् प्रत्याहारी आवे तो न् को र् आदेश होता है—

अहन्+अह =अहर्+अह =अहरह । अहन्+गण =अहगण ।

किन्तु अहोभ्याम् मे न् को र् नहीं हुआ, क्योंकि उसके बाद भ्याम् है जो विभक्ति है। यहाँ 'अहन्' ।८।२।६८। अर्थात् पदसञ्जक अहन् के न् के स्थान मे र् आदेश होता है—इसके अनुसार र् होकर, फिर 'ह्रिश् च' से उसके स्थान मे उ हुआ और गुण होकर अहोभ्याम् हुआ ।

३३—स् के स्थान मे आदिष्ट र् के पूर्व यदि अ और आ को छोड़कर कोई स्वर रहे और बाद को कोई स्वर अर्थात् हश् प्रत्याहार हो तो उस र् में कोई परिवर्तन नहीं होता है, जैसे—

अलिर्+अयम्=अलिरयम् । भापुर्+उदेति=भानुदेति । श्रीर्+एषा=

श्रीरेषा । सुधी + एति=सुधीरेति । गौर्+अयम्=गौरयम् ।

कविर्+वर्णयति=कविर्वर्णयति । गुरुर्+गच्छति=गुरुर्गच्छति ।

नौर्+याति=नौर्याति । लक्ष्मीर्+याति=लक्ष्मीर्याति ।

(क) र् के बाद यदि र् आवे तो र् का लोप हो जाता है, और उसके पूर्व मे आये हुए "अ", "इ", "उ" यदि ह्रस्व रहे तो वे दीर्घ हो जाते हैं, जैसे—

पुनर्+रमते=पुना रमते । हरिर्+रम्य =हरी रम्य ।

शम्भुर्+राजते=शम्भू राजते ।

कविर्+रचयति=कवी रचयति ।

गुरुर्+रुष्ट =गुरू रुष्ट । शिशुर्+रोदिति=शिशू रोदिति ।

१ रोऽसुपि ।८।२।६९।

२ रो रि ।८।३।१४। ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽण ।६।३।१११।

३४—यदि<sup>१</sup> किसी व्यञ्जन के पूर्व सस् (स) अथवा एषस् (एष) शब्द आवे तो उनके स् का लोप हो जाता है, जैसे—

सस्+शम्मु =स शम्मु । एषस्+विष्णु =एष विष्णु ।

(क) यदि नम् तत्पुरुष में ये स और एष (अर्थात् अस और अनेष शब्द) आवें अथवा अन्त में क से युक्त होकर आवे (अर्थात् सक, एषक) तब विसर्ग-लोप की यह विधि नहीं लगती, यथा—‘अस शिव’ का ‘अस शिव’ न होगा, और न ‘एषक हरिण’ का ‘एषक हरिण’ होगा ।

(ख) यदि<sup>२</sup> सस् के सकार के परे स्वर हो और पद्य के पाद की पूर्ति इस लोप के द्वारा ही हो तो स् का लोप (और बाद में स्वरसन्धि कार्य भी) हो जाता है, यथा—सस+एष दाशरथी राम =सस दाशरथी राम ।

DR. RUPNATHJI (DR. RUPNATHJI)

१ एतत्तदो सुलोपोऽङ्कोरनम् समासे हलि ।६।१।१३४।

२ सोऽचि लोपे चेत्पादपूरणम् ।६।१।१३४।



# तृतीय सोपान

## संज्ञा-विचार

३५—वाक्य भाषा का आधार है, और शब्द वाक्य का—यह पीछे कह आये हैं। सस्कृत में शब्द दो प्रकार के होते हैं—एक तो ऐसे चिन्ताका रूप वाक्य के और शब्दों के सम्बन्ध से बदलता रहता है और दूसरे ऐसे जिनका रूप सदा समान ही रहता है। न बदलने वालों में यदा, कदा आदि अव्यय हैं तथा कर्तुम्, गत्वा आदि कुछ क्रियाओं के रूप हैं। बदलने वालों में 'सज्ञा' अर्थात् सज्ञा, सर्वनाम और विशेषण एव 'आख्यात' अर्थात् क्रिया हैं।

हिन्दी की भाँति सस्कृत में भी तीन पुरुष होते हैं—उत्तम पुरुष, मध्यम पुरुष और अन्य पुरुष। अन्य पुरुष को सस्कृत में प्रथम पुरुष कहते हैं। हिन्दी में केवल दो वचन होते हैं—एक वचन, बहुवचन। किन्तु सस्कृत में इनके अतिरिक्त एक द्विवचन भी होता है जिससे दो का बोध कराया जाता है। सज्ञाएँ सब अन्य पुरुष में होती हैं।

सज्ञा के तीन लिङ्ग होते हैं—पुल्लिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग तथा नपुसकलिङ्ग। सस्कृत भाषा में यह लिङ्गों में किसी स्वाभाविक स्थिति पर निर्भर नहीं है, ऐसा नहीं है कि सब नर चेतन पुल्लिङ्ग शब्दों द्वारा दिखाये जायें, मादा चेतन स्त्रीलिङ्ग द्वारा और निर्जीव वस्तुएँ नपुसक लिङ्ग द्वारा। प्रत्युत यह लिङ्गभेद कृत्रिम है। उदाहरणार्थ 'स्त्री' का अर्थ बताने के लिए कई शब्द हैं—स्त्री, महिला, गृहिणी, दार आदि। उस पर भी 'दार' शब्द पुल्लिङ्ग है। इसी प्रकार निर्जीव शरीर का बोध कराने के लिए कई शब्द हैं जिनके लिङ्ग भिन्न हैं, जैसे तनु (स्त्री०) देह और शरीर (नपु०) तथा जल के लिए अप् (स्त्री) और जल (नपु०)। कई शब्द ऐसे हैं जिनके रूप एक से अधिक लिङ्गों में चलते हैं, जैसे गो शब्द पुल्लिङ्ग में 'बैल' का वाचक है और स्त्रीलिङ्ग में 'गाय' का। किन्हीं-किन्हीं पुल्लिङ्ग शब्दों में प्रत्यय जोड़ने से भी स्त्रीलिङ्ग के शब्द बनते हैं और किन्हीं से नपुसक

शब्द बन जाते हैं। उदाहरणार्थ, सर्वनाम शब्द 'अन्य' के रूप तीनों लिङ्गों में अलग-अलग होते हैं। पुत्र—पुत्री, नायक—नायिका, ब्राह्मण—ब्राह्मणी आदि जोड़ी वाले शब्द हैं। इनका सविस्तर विचार आगे चलकर होगा। परन्तु अधिकांश ऐसे शब्द हैं जो एक ही हैं जो एक ही लिङ्ग के हैं—या तो पुल्लिङ्ग या स्त्रीलिङ्ग या नपुंसकलिङ्ग। स्त्रीलिङ्गबोधक प्रत्ययों का विचार आगे किया जायगा।

३६—हिन्दी में कर्ता, कर्म आदि सम्बन्ध दिखाने के लिए ने, को, से आदि शब्द सज्ञा के पीछे अथवा सर्वनाम के पीछे जोड़ दिये जाते हैं, जैसे—गोविन्द ने मारा, गोविन्द को मारा, तुमने बिगाडा, तुमको डाँटा आदि। किन्तु संस्कृत में यह सम्बन्ध दिखाने के लिए सज्ञा या सर्वनाम आदि का रूप ही बदल देते हैं, यथा 'गोविन्द ने' की जगह 'गोविन्द', 'गोविन्द को' की जगह 'गोविन्दम्' और 'गोविन्द का' की जगह 'गोविन्दस्य'। इस प्रकार एक ही शब्द के कई रूप हो जाते हैं। प्रथमा, द्वितीया आदि में लेकर सप्तमी तक सात विभक्तियाँ (अथवा भाग) होती हैं।

नोट—'जिन शब्दों के आगे ये सातों विभक्तियाँ जुड़ती हैं उन्हें प्रातिपदिक कहते हैं। ये प्रातिपदिक दो प्रकार के होते हैं। एक वे अर्थवान् शब्द जिनका किसी घात, प्रत्यय, प्रत्ययान्त से सम्बन्ध न हो, तथा दूसरे वे जो कृदन्त तद्धितान्त अथवा सप्तमस्त हो। इनमें प्रथम प्रकार के अव्युत्पन्न तथा दूसरे प्रकार के व्युत्पन्न प्रातिपदिक कहे जाते हैं।

विभिन्न कारकों को प्रकट करने के लिए प्रातिपदिकों में जो प्रत्यय लगाये जाते हैं, उन्हें सुप् कहते हैं। इसी प्रकार विभिन्न काल की क्रियाओं का अर्थ प्रकट करने के लिए घातुओं में जो प्रत्यय जोड़े जाते हैं, उन्हें तिङ्ग कहते हैं। इन्हीं सुप् और तिङ्ग को विभक्ति कहते हैं।

१ अर्थवदघातुरप्रत्यय प्रातिपदिकम् । १।२।२४।

कृतद्धितसमासाश्च । १।२।४६।

२ विभक्तिश्च । १।४।१०४। सुपूतिङ्ग विभक्तिसज्ञौ स्त ।

विभक्ति	अर्थ	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	ने	सु	औ	जस्
द्वितीया	को	अम्	औट्	शस्
तृतीया	से, के द्वारा	टा	भ्याम्	मिस्
चतुर्थी	के लिए	डे	भ्याम्	भ्यस्
पञ्चमी	से	डसि	भ्याम्	भ्यस्
षष्ठी	का, की, के	डस्	ओस्	आम्
सप्तमी	मे, पै, पर	डि	ओस्	सुप्

सम्बोधन<sup>१</sup> में भी प्रथमा ही विभक्ति प्रयुक्त होती है। इन विभक्ति-सूचक प्रत्ययों को सुप् कहते हैं। इनके जोड़ने की विधि थोड़ी जटिल है। उदाहरणार्थ “सु” का “उ” उडा दिया जाता है क्योंकि वह अनुनासिक है। केवल स् रह जाता है, यथा—राम+सु=रामस्=राम। कहीं-कहीं यह स् भी बिलकुल उडा दिया जाता है, यथा—विद्या+सु=विद्या। टा का लोप कर दिया जाता है क्योंकि प्रत्यय के आदि में चवर्ग टवग लुप्त हो जाते हैं। भगवत्+टा=भगवत्+आ=भगवता। किन्तु कहीं टा का स्थान “इन” ले लेता है, यथा—नर+इन=नरेण। परन्तु यह विधि जटिल होने पर भी इतनी सुव्यवस्थित है कि एक बार समझ लेने पर शब्दों के रूप बनाने में कोई कठिनाई नहीं रह जाती। इन प्रत्ययों के जोड़ने की सक्षिप्त विधि दी जा रही है—

( १ ) जस् के ज्, शस् के श्, टा के ट्, डे, डसि, डस् और डि के ड की ‘चूट’ एवं लशक्वतद्धित<sup>२</sup> नियमों के अनुसार इत्सज्ञा होकर इनका लोप हो जाता है।

( २ ) ( क ) लृस्व अकारान्त से टा, डसि और डस् को क्रम से इन, आत् और स्य<sup>३</sup> आदेश होते हैं।

( ख ) लृस्व अकारान्त<sup>३</sup> शब्द से मिस् के स्थान पर एस् आदेश होता है।

१ सम्बोधन च ।२।३।४७

२ टाडसिडसाभिनात्स्या ।७।१।१२।

३ अतो मिस ऐस् ।७।१।१६।

( ग ) ह्रस्व अकारान्त<sup>१</sup> शब्द से ड को य आदेश होता है ।

( घ )<sup>२</sup> घिसञ्जक ( स्त्रीलिङ्ग शब्दों को छोड़कर ) शब्द में टा जुड़ने पर उसे ना आदेश होता है ।

( ङ )<sup>३</sup> डे, डसि, डस्, डि इन प्रत्ययों के परवर्ती होने पर घिसञ्जक शब्दों के अन्त में आने वाले स्वर को गुण होता है, यथा—

हरि+डे=हरि+ए=हरे+ए=हरये ।

( च )<sup>४</sup> एकारान्त तथा ओकारान्त शब्द में आने वाला डसि तथा डस् का अपूर्ववर्ती ए अथवा ओ के रूप में मिल जाता है, यथा हरि+डसि=हरि+अस्=हरे+अस्=हरे+स्=हरे । विष्णो+डसि=विष्णो+अस्=विष्णो ।

( छ )<sup>५</sup> और उ के पश्चात् डि की इ को औ आदेश होता है और इ तथा उ के स्थान में आकार हो जाता है । हरि+डि=हरि+इ=हर+औ=हरौ ।

( ज ) ऋकारान्त<sup>६</sup> प्रातिपदिक के पश्चात् जब डसि या डस् आबें तो ऋ और डसि या डस् के अ दोनों को उ आदेश होता है ।

( झ ) जब आकारान्त<sup>७</sup> टाप् प्रत्ययान्त स्त्रीलिङ्ग ) शब्द में औड ( औ, औट् ) जुड़ता है तो औड के स्थान में ( शी ) ई का आदेश होता है ।

( ञ ) जब आकारान्त<sup>८</sup> ( स्त्रीलिङ्ग ) शब्द में आड ( टा तृतीया एकवचन ) और ओस् जुड़ते हैं तो आ के स्थान पर ए का आदेश होता है ।

( ट ) आकारान्त ( स्त्रीलिङ्ग ) शब्द से डे, डसि, डस् और डि के जुड़ने पर उन विभक्तियों के पूव या का आगम होता है ।

१ डेर्ये ७।१।१३।

२ आङानाऽस्त्रियाम् १।१३।१२०।

३ घेङिति ७।३।१११।

४ डसिडसोश्च ।

५ अच्च घे ७।३।११६।

६ ऋत उत् ६।१।१११।

७ औड आप ७।१।१८।

८ आडि चाप ७।३।१०५।

९ याडाप ७।३।११३।

( ठ ) आकारान्त<sup>१</sup> टाप् प्रत्ययान्त स्त्रीलिङ्ग सर्वनाम के पश्चात् डे, डसि, डस् और डि के जुड़ने पर आकार हो जाता है तथा प्रत्यय के पूर्व स्या का आगम होता है ।

( ड ) आकारान्त<sup>२</sup> नपुसकलिङ्ग प्रातिपदिक से सु और अम् को अम् आदेश होता है ।

( ढ ) नपुसकलिङ्ग<sup>३</sup> शब्द से औङ् जुड़ने पर उसके स्थान में ई ( शी ) का आदेश होता है ।

( ण ) नपुसकलिङ्ग<sup>४</sup> प्रातिपदिक से जस् और शस् जुड़ने पर उनके स्थान पर इ ( शि ) का आदेश होता है तथा इ के पूर्व न् ( नुम् ) का आगम होता है ।

( त ) नपुसकलिङ्ग<sup>५</sup> ( अकारान्त से अतिरिक्त ) प्रातिपदिक के पश्चात् सु और अम् का लोप हो जाता है ।

( थ ) इगन्त<sup>६</sup> नपुसकलिङ्ग प्रातिपदिक के पश्चात् अजादि प्रत्यय आने पर प्रातिपदिक के अन्त में न् का आगम होता है ।

( द ) ह्रस्वस्वरान्त<sup>७</sup>, नदीसज्ञक और टाप्प्रत्ययान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों से आम् विभक्ति जुड़ने पर विभक्ति के पूर्व न् ( नुट् ) का आगम होता है ।

३७—संस्कृत में प्रातिपदिक पहले दो भागों में विभक्त किये जाते हैं—

( १ ) स्वरान्त, ( २ ) व्यञ्जनान्त । स्वरान्त में अकारान्त शब्द प्रायः सभी पुल्लिङ्ग अथवा नपुसकलिङ्ग में होते हैं । अकारान्त प्रायः स्त्रीलिङ्ग में होते हैं । थोड़े से ही पुल्लिङ्ग में होते हैं । इकारान्त शब्द कोई पुल्लिङ्ग

१ सर्वनाम्न स्याड्ढस्वश्च । ७।३।११४।

२ अतोऽम् । ७।१।२४।

३ नपुसकाच्च । ७।१।१६।

४ जश्शसो शि । ७।१।२०। नपुसकस्य अलच । ७।१।७२।

५ स्वमोर्नपुसकात् । ७।१।२३।

६ इकोऽचि विभक्तौ । ७।१।७३।

७ ह्रस्वनद्यापो नुट् । ७।१।५४।

में, कोई स्त्रीलिङ्ग में और कोई नपुसकलिङ्ग में होते हैं। ईकारान्त प्रायः स्त्रीलिङ्ग में, किन्तु कुछ पुल्लिङ्ग में भी होते हैं। उकारान्त प्रायः तीनों लिङ्गों में होते हैं। ऊकारान्त बहुधा स्त्रीलिङ्ग और पुल्लिङ्ग दोनों में होते हैं। ऋकारान्त प्रायः पुल्लिङ्ग में ह्रस्व ऋकारान्त नपुसकलिङ्ग में भी होते हैं। ऐकारान्त, औकारान्त और औकारान्त बहुत कम शब्द हैं, जो हैं भी वे प्रायः पुल्लिङ्ग या स्त्रीलिङ्ग ही हैं। शेष स्वरो में अन्त होने वाले प्रातिपदिक प्रायः नहीं के बराबर हैं। नपुसकलिङ्ग में स्वरान्त शब्द अर्थात् ह्रस्वान्त ही होते हैं।<sup>१</sup>

व्यजान्त प्रातिपदिक प्रायः ड, ञ, म्, य् इन ऋणों को छोड़ कर सभी व्यजानो में अन्त होने वाले पाये जाते हैं। स्वयं भी बहुधा च्, ज्, त्, द्, घ्, न्, श्, ष्, स् और ह् में अन्त होने वाले अधिक प्रयोग में आते हैं। नीचे क्रमानुसार उनके रूप दिखाये जाते हैं।

एवसन्त सज्ञाएँ

### ३८—अकारान्त पुल्लिङ्ग शब्द

	बालक—लडका		
	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	बालक	बालकौ	बालका
सम्बोधन	हे बालक	हे बालकौ	हे बालका
द्वितीया	बालकम्	बालकौ	बालकान्
तृतीया	बालकेन	बालकाभ्याम्	बालकै
चतुर्थी	बालकाय	बालकाभ्याम्	बालकेभ्य
पञ्चमी	बालकात्	बालकाभ्याम्	बालकेभ्य
षष्ठी	बालकस्य	बालकयो	बालकानाम्
सप्तमी	बालके	बालकयो	बालकेषु

(क) सम्बोधन<sup>२</sup> में बालक+स् के स् का लोप हो जाता है क्योंकि यह ह्रस्व अ के पश्चात् आ रहा है।

१ ह्रस्वो नपुसके प्रातिपदिकस्य । १।२।४७।

२ एङ्ह्रस्वात्सम्बुद्धे । ६।१।६६।

(ख) शस्<sup>१</sup> (अस्) के स् को नकार हो जाता है क्योंकि वह प्रातिपदिक के अ और अपने ही आदिम अ के संयोग से बनने वाले पूर्वसवर्णदीर्घ का परवर्ती है। इस प्रकार पुल्लिङ्ग में सर्वत्र पूर्वसवर्णदीर्घ के पश्चात् आने वाले स् को न् आदेश हो जाता है।

(ग) डे<sup>२</sup> के स्थान में होने वाले य तथा तीनों म्याम् के परवर्ती होने पर अ का दीर्घ हो जाता है।

(घ) दोनो<sup>३</sup> म्यस् तथा सुप् (सप्तमी व० ब०) के परवर्ती होने पर प्रातिपदिक के अन्तिम अ को ए आदेश होता है, क्योंकि म्यस् तथा सुप् प्रत्यय झलादि और बहुवचन बोधक हैं।

(ङ) ओस्<sup>४</sup> परे रहने पर भी अ को ए आदेश होता है।

राम, वृक्ष, अश्व, सूर्य, चन्द्र, नर, पुत्र, सुर, देव, पय, सुत, गज, रासभ (गदहा), मनुष्य, जन, दन्त, लोक, ईश्वर, पाद, मास, कुक्कुर, वृक (भेडिया), व्याघ्र, सिंह इत्यादि समस्त अकारान्त पुल्लिङ्ग शब्दों के रूप बालक के समान होते हैं। इसी प्रकार यादृश, भवादृश, मादृश, स्वादृश, एतादृश आदि शब्द भी पुल्लिङ्ग में चलते हैं। स्पष्टता के लिए तद्विशे के रूप दिये जाते हैं।

#### तादृश — उसकी तरह

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	तादृश	तादृशौ	तादृशा
स०	हे तादृश	हे तादृशौ	हे तादृशा
द्वि०	तादृशम्	तादृशौ	तादृशान्
तृ०	तादृशेन	तादृशाम्याम्	तादृशै
च०	तादृशाय	तादृशाम्याम्	तादृशेभ्य
प०	तादृशात्	तादृशाम्याम्	तादृशेभ्य
ष०	तादृशस्य	तादृशयो	तादृशानाम्
स०	तादृशे	तादृशयो	तादृशेषु

नोट—ये ही शब्द इसी अर्थ में शकारान्त भी हैं। उनके रूप व्यञ्जनान्त संज्ञाप्रो में मिलेंगे।

१ तस्माच्छसो न पुंसि । ६।१।१०३। २ डेर्भे । ७।१।१३। सुपि च । ७।३।१०२।

३ बहुवचने झल्येत् । ७।३।१०३। ४ ओसि च । ७।३।१०४।

## ३६—आकारान्त पुल्लिङ्ग शब्द

विश्वपा—ससार का रक्षक

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	विश्वपा	विश्वपौ	विश्वपा
स०	हे विश्वपा	हे विश्वपौ	हे विश्वपा
द्वि०	विश्वपाम्	विश्वपौ	विश्वप
तु०	विश्वपा	विश्वपाभ्याम्	विश्वपाभि
च०	विश्वपे	विश्वपाभ्याम्	विश्वपाम्य
प०	विश्वप	विश्वपाभ्याम्	विश्वपाम्य
ष०	विश्वप	विश्वपौ	विश्वपाम्
स०	विश्वपि	विश्वपौ	विश्वपासु

गोपा (गाय का रक्षक), शलध्मा (शल बजाने वाला), सोमपा (सोमरस पीने वाला), धूम्रपा (धुआँ पीने वाला), बलदा (बल देने वाला या इन्द्र) तथा और भी दूसरे आकारान्त घातुप्रो से निकले हुए समस्त पुल्लिङ्ग सज्ञा शब्दों के रूप विश्वपा के समान होते हैं। अन्य आकारान्त पु० शब्दों का रूप 'हाहा' (गन्धर्वविशेष) की भाँति चलता है, जैसे—

प्र०	हाहा	हाहौ	हाहा
स०	हे हाहा	हे हाहौ	हे हाहा
द्वि०	हाहाम्	हाहौ	हाहान्
तु०	हाहा	हाहाभ्याम्	हाहाभि
च०	हाहै	हाहाभ्याम्	हाहाभ्य
प०	हाहा	हाहाभ्याम्	हाहाभ्य
ष०	हाहा	हाहौ	हाहाम्
स०	हाहै	हाहौ	हाहासु



## ४०—इकारान्त पुल्लिङ्ग शब्द

### (क) कवि

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	कवि	कवी	कवय
स०	हे कवे	हे कवी	हे कवय
द्वि०	कविम्	कवी	कवीन्
तृ०	कविना	कविभ्याम्	कविभिः
च०	कवये	कविभ्याम्	कविभ्यः
प०	कवे	कविभ्याम्	कविभ्यः
ष०	कवे	कव्यो	कवीनाम्
स०	कवी	कव्यो	कविषु

हरि, मुनि, ऋषि, कपि, यति, विधि (ब्रह्मा), विरञ्चि (ब्रह्मा), जलधि, गिरि (पहाड), सप्त (घोडा), रवि (सूर्य), वह्नि (आग), अग्नि इत्यादि इकारान्त पुल्लिङ्ग शब्दों के रूप कवि के समान होते हैं।

नोट—विधि (विधान, तरकीब के अर्थ में) हिन्दी में स्त्रीलिङ्ग है, किन्तु संस्कृत में यही शब्द पुल्लिङ्ग में है इसका ध्यान रखना चाहिए। विधि, उदधि, जलधि, आधि, व्याधि, समाधि इत्यादि शब्द भी विधि के समान ही इकारान्त पुल्लिङ्ग होते हैं।

(ख) पति शब्द के रूप बिलकुल भिन्न प्रकार से होते हैं।

### पति—स्वामी, मालिक

प्र०	पति	पती	पतय
स०	हे पते	हे पती	हे पतय
द्वि०	पतिम्	पती	पतीन्
तृ०	पत्या	पतिभ्याम्	पतिभिः
च०	पत्ये	पतिभ्याम्	पतिभ्यः
प०	पत्यु	पतिभ्याम्	पतिभ्यः

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
ष०	पत्यु	पत्यो	पतीनाम्
स०	पत्यौ	पत्यो	पतिषु

किन्तु जब पति शब्द किसी शब्द के साथ समास के अन्त में आता है तो उसके रूप कवि के ही समान होते हैं, जैसे—

### भूपति—राजा

प्र०	भूपति	भूपती	भूपतय
स०	हे भूपते	हे भूपती	हे भूतपय
द्वि०	भूपतिम्	भूपती	भूपतीन्
तृ०	भूपतिना	भूपतिभ्याम्	भूपतिभि
च०	भूपतये	"	भूपतिभ्य
प०	भूपते	"	"
ष०	भूपतैः	भूपत्यो	भूपतीनाम्
स०	भूपतौ	"	भूपतिषु

महीपति, गृहपति, नरपति, लोकपति, अग्निपति, सुरपति, गजपति, गणपति (गणेश), जगत्पति, बृहत्पति, पृथ्वीपति इत्यादि शब्दों के रूप भूपति के समान कवि शब्द की भाँति होंगे।

(ग) सखि (मित्र) शब्द के भी रूप बिलकुल भिन्न प्रकार के होते हैं, जैसे—

### सखि—मित्र

प्र०	सखा	सखायौ	सखाय
स०	हे सखे	हे सखायौ	हे सखाय
द्वि०	सखायम्	सखायौ	सखीन्
तृ०	सख्या	सखिभ्याम्	सखिभि
च०	सख्ये	"	सखिभ्य.
प०	सख्यु	"	"

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
ष०	सख्यु	सख्यो	सखीनाम्
स०	सख्यौ	”	सखिषु

### ४१—ईकारान्त पुल्लिङ्ग शब्द

(क) प्रधी—ग्रन्थ्या ध्यान करने वाला

प्र०	प्रधी	प्रध्यौ	प्रध्य
स०	हे प्रधी	हे प्रध्यौ	हे प्रध्य
द्वि०	प्रध्यम्	प्रध्यौ	प्रध्य
तृ०	प्रध्या	प्रधीभ्याम्	प्रधीभि
च०	प्रध्ये	”	प्रधीभ्य
प०	प्रध्य	”	”
ष०	प्रध्य	प्रध्ये	प्रध्याम्
स०	प्रध्यि	”	प्रधीषु

उन्नी, ग्रामीणी, सेनानी शब्दों के रूप भी प्रधी के समान होते हैं, केवल सप्तमी के एकवचन में उन्त्याम्, ग्रामण्याम्, सेनान्याम् ऐसे रूप हो जाते हैं।

(ख) सुधी—पण्डित, विद्वान्

प्र०	सुधी	सुधियौ	सुधिय
स०	हे सुधी	हे सुधियौ	हे सुधिय
द्वि०	सुधियम्	सुधियौ	सुधिय
तृ०	सुधिया	सुधीभ्याम्	सुधीभि
च०	सुधिये	”	सुधीभ्य
प०	सुधिय	”	”
ष०	”	सुधियो	सुधियाम्
स०	सुधियि	”	सुधीषु

शुष्की, पक्वी, सुश्री, शुद्धवी, परमवी के रूप भी सुधी के समान होते हैं।

## (ग) सखी (सखायमिच्छतीति)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	सखा	सखायो	सखाय
स०	हे सखी	हे सखायो	हे सखाय.
द्वि०	सखायम्	सखायो	सख्य
तृ०	सख्या	सखीभ्याम्	सखीभिः
च०	सख्ये	"	सखीभ्यः
प०	सख्यु	"	"
ष०	"	सख्यो	सख्याम्
स०	सख्यि	"	सखीषु

## (घ) सखी (खेन सह वरंते इति सख, सखमिच्छतीति)

प्र०	सखी	सख्यौ	सख्य
स०	हे सखी	हे सख्यौ	हे सख्य
द्वि०	सख्यम्	सख्यौ	सख्य

शेष रूप पहिले वाले सखी के समान हैं। (सुतमिच्छतीति) सुती, (सुखमिच्छतीति) सुखी, (लूनमिच्छतीति) लूनी, (क्षाममिच्छतीति) क्षामी, (प्रस्तीममिच्छतीति) प्रस्तीमी के रूप भी इसी प्रकार प्रधी के समान होते हैं।

## ४२—उकारान्त पुल्लिङ्ग शब्द

भानु—सूर्य

प्र०	भानु	भानू	भानव
स०	हे भानो	हे भानू	हे भानव.
द्वि०	भानुम्	भानू	भानून्
तृ०	भानुना	भानुभ्याम्	भानुभिः
च०	भानवे	भानुभ्याम्	भानुभ्यः

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प०	मानो	मानुम्याम्	मानुम्य
ष०	मानो	मान्वो	मानूनाम्
स०	मानौ	मान्वो	मानुषु

शत्रु, रिपु, विष्णु, गुरु, जन्तु, प्रभु, शिशु, विष्णु (चन्द्रमा), पशु, शम्भु, वेणु (बाँस) इत्यादि उकारान्त पुल्लिङ्ग शब्दों के रूप मानु की तरह चलते हैं।

### ४३—उकारान्त पुल्लिङ्ग शब्द

#### स्वयम्भू—ब्रह्मा

प्र०	स्वयम्भू	स्वयम्भुवौ	स्वयम्भुव
स०	हे स्वयम्भू	हे स्वयम्भुवौ	हे स्वयम्भुव
द्वि०	स्वयम्भुवम्	स्वयम्भुवौ	स्वयम्भुव
तृ०	स्वयम्भुवा	स्वयम्भुवाम्	स्वयम्भूमि
च०	स्वयम्भुवै	स्वयम्भुम्याम्	स्वयम्भुम्य
प०	स्वयम्भुव	स्वयम्भुम्याम्	स्वयम्भुम्य
ष०	स्वयम्भुव	स्वयम्भुवो	स्वयम्भुवाम्
स०	स्वयम्भुवि	स्वयम्भुवो	स्वयम्भुषु

सुभ्रू (सुन्दर भौं वाला), स्वभू (स्वय पैदा हुआ), प्रतिभू (जामिन) के रूप इसी प्रकार होते हैं। किन्तु वर्षाभू, करभू तथा पुनर्भू के रूप प्रथी की भाँति चलते हैं।

### ४४—ऋकारान्त पुल्लिङ्ग शब्द

#### (क) पितृ—बाप

प्र०	पिता	पितरौ	पितर
स०	हे पित	हे पितरौ	हे पितर
द्वि०	पितरम्	पितरौ	पितृन्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
तृ०	पित्रा	पितृभ्याम्	पितृभि
च०	पित्रे	”	पितृभ्य
प०	पितु	”	”
ष०	”	पित्रो	पितृणाम्
स०	पितरि	”	पितृषु

मातृ (माई), देवृ (देवर), जामातृ (दामाद) इत्यादि सम्बन्ध-सूचक पुल्लिङ्ग ऋकारान्त शब्दो के रूप पितृ के समान होते हैं।

## (ख) नृ—मनुष्य

प्र०	ना	नरौ	नर
स०	हे न	हे नरौ	हे नर
द्वि०	नरम्	नरौ	नृन्
तृ०	त्रा	नृभ्याम्	नृभि
च०	त्रे	नृभ्याम्	नृभ्य
प०	नृ	नृभ्याम्	नृभ्य
ष०	नृ	त्रो	{ नृणाम् नृणाम्
स०	नरि	त्रो	नृषु

## (ग) दातृ—देने वाला

प्र०	दाता	दातारौ	दातार
स०	हे दात	हे दातारौ	हे दातार
द्वि०	दातारम्	दातारौ	दातृन्
तृ०	दात्रा	दातृभ्याम्	दातृभि
च०	दात्रे	”	दातृभ्य
प०	दातु	”	”

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
ष०	दातु	दात्रो	दातृणाम्
स०	दातरि	”	दातृषु

घातृ (झट्टा), कर्तृ (करने वाला), गन्तृ (जाने वाला), नेतृ (ले जाने वाला) शब्दों के तथा नप्तृ (पोता) के रूप दातृ के समान चलते हैं।

नोट—तृन् और तृच् प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों के एव स्वसृ, चतु, नेष्ट, त्वष्ट, क्षतु, होतु, प्रशास्तु और पोतु के आगे यदि प्रथमा और द्वितीया विभक्ति के प्रत्यय आवे तो ऋ के आदिष्ट रूप अ को दीर्घ हो जाता है।

(क) केवल सम्बोधन के ज्ञापक सु के परवर्ती होने पर अ को दीर्घ नहीं होता अतः 'दात' रूप बनता है न कि 'दाता'।

### ४५—ऐकारान्त पुल्लिङ्ग शब्द

रै—रा

प्र०	रा	राय	राय
स०	हे रा	हे रायौ	हे राय
द्वि०	रायम्	रायौ	राय
तृ०	राया	राभ्याम्	राभि
च०	राये	राभ्याम्	राभ्य
प०	राय	राभ्याम्	राभ्य
ष०	राय	रायो	रायाम्
स०	रायि	रायो	रासु

### ४६—ओकारान्त पुल्लिङ्ग शब्द

गो—साँड, बैल

प्र०	गौ	गावौ	गाव
स०	हे गौ	हे गावौ	हे गाव

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
द्वि०	गाम्	गावौ	गा
तृ०	गवा	गोभ्याम्	गोभि
च०	गवे	गोभ्याम्	गोभ्य
प०	गो	गोभ्याम्	गोभ्य
ष०	गो	गवो	गवाम्
स०	गवि	गवो	गोषु

समस्त ओकारान्त पुल्लिङ्ग शब्दो के रूपगो के समान होते हैं ।

### ४७—ओकारान्त पुल्लिङ्ग शब्द

ग्लौ—बन्धुमा

प्र०	ग्लौ	ग्लावौ	ग्लाव
स०	हे ग्लौ	हे ग्लावौ	हे ग्लाव
द्वि०	ग्लावम्	ग्लावौ	ग्लाव
तृ०	ग्लावा	ग्लौभ्याम्	ग्लौभि
च०	ग्लावे	ग्लौभ्याम्	ग्लौभ्य
प०	ग्लाव	ग्लौभ्याम्	ग्लौभ्य
ष०	ग्लाव	ग्लावो	ग्लावाम्
स०	ग्लावि	ग्लावो	ग्लौषु

ओकारान्त ओकारान्त पुल्लिङ्ग शब्दो के रूप ग्लौ के समान होते हैं ।

### ४८—अकारान्त नपुंसकलिङ्ग

फल

प्र०	फलम्	फले	फलानि
स०	हे फल	हे फले	हे फलानि
द्वि०	फलम्	फले	फलानि



	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
तृ०	फलेन	फलाभ्याम्	फलै
च०	फलाय	फलाभ्याम्	फलेभ्य
प०	फलात्	फलाभ्याम्	फलेभ्य
ष०	फलस्य	फलयो	फलानाम्
स०	फले	फलयो	फलेषु

(तृतीया से आगे का रूप अकारान्त पुल्लिङ्ग की भाँति रहता है)

मित्र, वन, अरण्य (जंगल), मुख, कमल, कुसुम, पुष्प, पण (पत्ता), नक्षत्र, पत्र (कागज या पत्ता), बीज, जल, तृण (घास), मर्मन, शरीर, पुस्तक, ज्ञान इत्यादि समस्त अकारान्त नपुंसकलिङ्ग शब्दों के रूप फल के समान होते हैं।

### ४६—इकारान्त नपुंसकलिङ्ग शब्द

(क) वारि—पानी

प्र०	वारि	वारिणी	वारीणि
स०	हे वारे, हे वारि	हे वारिणी	हे वारीणि
द्वि०	वारि	वारिणी	वारीणि
तृ०	वारिणा	वारिभ्याम्	वारिभि
च०	वारिणे	वारिभ्याम्	वारिभ्य
प०	वारिण	वारिभ्याम्	वारिभ्य
ष०	वारिण	वारिणो	वारीणाम्
स०	वारिणि	वारिणो	वारिषु

अस्थि (हड्डी), दधि (दही), सक्थि (जाघ), अक्षि (आँख) को छोड़कर समस्त इकारान्त नपुंसकलिङ्ग शब्दों के रूप वारि के समान होते हैं।

(ख) दधि—दही

प्र०	दधि	दधिनी	दधीनि
स०	हे दधे, हे दधि	हे दधिनी	हे दधीनि

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
द्वि०	दधि	दधिनी	दधीनि
तृ०	दध्ना	दधिभ्याम्	दधिभि
च०	दध्ने	दधिभ्याम्	दधिभ्य
प०	दध्न	दधिभ्याम्	दधिभ्य
ष०	दध्न	दध्नो	दध्नाम्
स०	दध्नि, दधनि	दध्नो	दधिषु

## अक्षि—आक्षि

प्र०	अक्षि	अक्षिणी	अक्षीणि
स०	से अक्षि, ह अक्षे	हे अक्षिणी	हे अक्षीणि
द्वि०	अक्षि	अक्षिणी	अक्षीणि
तृ०	अक्षणा	अक्षिभ्याम्	अक्षिभि
च०	अक्षणे	अक्षिभ्याम्	अक्षिभ्य
प०	अक्षण	अक्षिभ्याम्	अक्षिभ्य
ष०	अक्षण	अक्षणो	अक्षणाम्
स०	अक्षिण, अक्षिण	अक्षणो	अक्षिषु

अस्थि और अक्षिण के रूप भी इसी प्रकार होते हैं।

(ग) जब इकारान्त, उकारान्त ऋकारान्त, विशेषण शब्दों का प्रयोग नपुंसकलिङ्ग कर्मले सज्ञा शब्दों के साथ होता है तो उनके रूप चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, सप्तमी विभक्तियों के एकवचन में और षष्ठी तथा सप्तमी के द्विवचन में विकल्प से इकारान्त, उकारान्त तथा ऋकारान्त पुल्लिङ्ग शब्दों के समान होते हैं, जैसे— शुचि (पवित्र,) गुरु (भारी)।

## शुचि (पवित्र)

प्र०	शुचि	शुचिनी	शुचीनि
स०	हे शुचि, हे शुचे	हे शुचिनी	हे शुचीनि
द्वि०	शुचि	शुचिनी	शुचीनि
तृ०	शुचिना	शुचिभ्याम्	शुचिभि

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
च०	शुचये, शुचिने	शुचिम्याम्	शुचिभ्य
प०	शुचे, शुचिन	"	"
ष०	" "	शुच्यो, शुचिनो	शुचीनाम्
स०	शुचौ, शुचिाने	" "	शुचिषु

### ५०—उकारान्त नपुसकलिङ्ग शब्द

#### वस्तु—चौज

प्र०	वस्तु	वस्तुनी	वस्तूनि
स०	हे वस्तो, हे वस्तु	हे वस्तुनी	हे वस्तूनि
द्वि०	वस्तु	वस्तुनी	वस्तूनि
तृ०	वस्तुना	वस्तुम्याम्	वस्तुभि
च०	वस्तुने	वस्तुभ्याम्	वस्तुभ्य
प०	वस्तुन	वस्तुभ्याम्	वस्तुभ्य
ष०	वस्तुन	वस्तुनो	वस्तूनाम्
स०	वस्तुनि	वस्तुनो	वस्तुषु

दारु (काठ), जानु (घुटना), जतु (लाख), जत्रु (कधो की सधि) तालु, मधु (शहद), सानु [(पर्वत की चोटी) पुल्लिङ्ग तथा नपुसकलिङ्ग भी] इत्यादि के रूप वस्तु के समान होते हैं।

(क) उकारान्त विशेषण शब्दो के भी रूप चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, सप्तमी विभक्तियों के एकवचन में तथा षष्ठी व सप्तमी के द्विवचन में उकारान्त पुल्लिङ्ग के समान विकल्प से होते हैं, जैसे—बहु (बहुत)।

#### बहु

प्र०	बहु	बहुनी	बहूनि
स०	हे बहो, हे बहु	हे बहुनी	हे बहूनि
द्वि०	बहु	बहुनी	बहूनि
तृ०	बहुना	बहुम्याम्	बहुभि
च०	बहुने	बहुभ्याम्	बहुभ्य

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प०	बहो, बहुन	बहुम्याम्	बहुम्य
ष०	बहो, बहुन	बह्वो, बहुनो	बहूनाम्
स०	बहौ, बहूनि	बह्वो, बहुनो	बहुषु

इसी प्रकार मृदु, कटु, लघु, पटु इत्यादि के रूप होते हैं।

### ५१—ऋकारान्त नपुंसकलिङ्ग

कर्तृ, नेतृ, घातृ, रक्षितृ इत्यादि शब्द विशेषण हैं, इसलिए इनका प्रयोग तीनों लिंगों में होता है। यहाँ पर नपुंसकलिङ्ग के रूप दिखाये जाते हैं। तृतीया से आगे इनका एक रूप पुल्लिङ्ग जैसा भी होता है।

कर्तृ—करने वाला

प्र०	कर्तृ	कर्तृणी	कर्तृणि
स०	{ हे कर्तृ हे कर्त	हे कर्तृणी	हे कर्तृणि
द्वि०	कर्तृ	कर्तृणी	कर्तृणि
त०	{ कर्त्रा कर्तृणा	कर्तृम्याम्	कर्तृभि
च०	{ कर्त्रे कर्तृणे	कर्तृम्याम्	कर्तृभ्य
प०	{ कर्तृ कर्तृण	कर्तृम्याम्	कर्तृभ्य
ष०	{ कर्तृ कर्तृण	{ कर्त्रो कर्तृणो	कर्तृणाम्
स०	{ कर्तृरि कर्तृणि	{ कर्त्रो कर्तृणो	कर्तृषु

इसी प्रकार घातृ, नेतृ इत्यादि के भी रूप होते हैं।

### ५२—आकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द

	विद्या	विद्य	विद्या
प्र०	विद्या	विद्य	विद्या
स०	हे विद्ये	हे विद्ये	हे विद्या

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
द्वि०	विद्याम्	विद्ये	विद्या
तृ०	विद्यया	विद्याभ्याम्	विद्याभि
च०	विद्यायै	विद्याभ्याम्	विद्याभ्य
प०	विद्याया	विद्याभ्याम्	विद्याभ्यः
ष०	विद्याया	विद्ययो	विद्यानाम्
स०	विद्यायाम्	विद्ययो	विद्यामु

रमा (लक्ष्मी), बाला (स्त्री), निशा (रात), कन्या, ललना (स्त्री), भार्या (स्त्री), बडवा (घोड़ी), राधा, सुमित्रा, तारा, कौशल्या, कला इत्यादि आकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप विद्या के समान होते हैं।

### ५३—इकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द

	रुचि	रुचि	रुचय
प्र०	रुचि	रुची	रुचय
स०	हे रुचे	हे रुची	हे रुचय
द्वि०	रुचिम्	रुची	रुची
तृ०	रुच्या	रुचिभ्याम्	रुचिभि
च०	रुच्यै, रुचये	रुचिभ्याम्	रुचिभ्य
प०	रुच्या रुचे	रुचिभ्याम्	रुचिभ्यः
ष०	रुच्या, रुचि	रुच्यो	रुचीनाम्
स०	रुच्याम्, रुची	रुच्यो	रुचिषु

धूलि (धूर), मति, बुद्धि गति, शुद्धि, भक्ति, शक्ति, श्रुति, स्मृति, शान्ति नीति, रीति, जाति, रात्रि, पक्ति, गीति इत्यादि सभी इकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप रुचि के समान होते हैं।

### ५४—ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द

	नदी	नदी	नद्य
प्र०	नदी	नद्यौ	नद्य
स०	हे नदि	हे नद्यौ	हे नद्य

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
द्वि०	नदीम्	नद्यौ	नदी
तृ०	नद्या	नदीभ्याम्	नदीभि
च०	नद्यै	”	नदीभ्य
प०	नद्या	नदीभ्याम्	नदीभ्य
ष०	”	नद्यो	नदीनाम्
स०	नद्याम्	”	नदीषु

“स्त्री” आदि कुछ शब्दों को छोड़कर सभी ईकारान्त, स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप नदी के समान होते हैं, जैसे—रज्जा (रानी), गौरी, पार्वती, जानकी, अरुन्धती, नटी, पृथ्वी, नन्दिनी, द्रौपदी, कैंकेयी, देवी, पाचाली, त्रिलोकी, पचवटी, अटवी (जगल), गान्धारी, कादम्बरी, कौमुदी (चन्द्रमा की रोशनी), माद्री, कुन्ती, देवकी, मावित्री, गायत्री, कमलिनी नलिनी इत्यादि।

(क) केवल अवी (रजस्वला स्त्री), तरी (नाव), तन्त्री (वीणा), लक्ष्मी, स्तरी (धुआँ) के प्रथमा के एकवचन में भेद होता है, जैसे—

प्रथमा एकवचन—अवी, तरी, तन्त्री, लक्ष्मी, स्तरी ।

	लक्ष्मी	लक्ष्मी	लक्ष्मी
प्र०	लक्ष्मी	लक्ष्म्यौ	लक्ष्म्य
स०	हे लक्ष्मि	हे लक्ष्म्यौ	हे लक्ष्म्य
द्वि०	लक्ष्मीम्	लक्ष्म्यौ	लक्ष्मी
तृ०	लक्ष्म्या	लक्ष्मीभ्याम्	लक्ष्मीभि
च०	लक्ष्म्यै	लक्ष्मीभ्याम्	लक्ष्मीभ्य
प०	लक्ष्म्या	लक्ष्मीभ्याम्	लक्ष्मीभ्य
ष०	लक्ष्म्या	लक्ष्म्यो	लक्ष्मीणाम्
स०	लक्ष्म्याम्	लक्ष्म्यो	लक्ष्मीषु
		स्त्री	
प्र०	स्त्री	स्त्रियौ	स्त्रिय
स०	हे स्त्रि	हे स्त्रियौ	हे स्त्रिय

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
द्वि०	स्त्रियम्, स्त्रीम्	स्त्रियौ	स्त्रिय, स्त्री
तृ०	स्त्रिया	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभि
च०	स्त्रियै	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभ्य
प०	स्त्रिया	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभ्य
ष०	"	स्त्रियो	स्त्रीणाम्
स०	स्त्रियाम्	"	स्त्रीषु

श्री—लक्ष्मी

प्र०	श्री	श्रियौ	श्रिय
स०	हे श्री	हे श्रियौ	हे श्रिय
द्वि०	श्रियम्	श्रियौ	श्रिय
तृ०	श्रिया	श्रीभ्याम्	श्रीभि
च०	श्रियै, श्रिये	"	श्रीभ्य
प०	श्रिया, श्रिय	"	"
ष०	" "	श्रियो	श्रीणाम्, श्रियाम्
स०	श्रियाम्, श्रियि	"	श्रीषु

मी ( डर ), ली ( लज्जा ), धी ( बुद्धि ), सुश्री इत्यादि के रूप श्री के समान होते हैं ।

५.५—उकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द

धेनु—गाय

प्र०	धेनु	धेनू	धेनव
स०	हे धेनो	हे धेनू	हे धेनव
द्वि०	धेनुम्	धेनू	धेनू
तृ०	धेन्वा	धेनुभ्याम्	धेनुभि
च०	धेन्वै, धेनवे	धेनुभ्याम्	धेनुभ्य
प०	धेन्वा, धेनो,	धेनुभ्याम्	धेनुभ्य

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
ष०	घेन्वा, घेनो	घेन्वा	घेनूनाम्
स०	घेन्वाम्, घेनौ	घेन्वो	घेनुषु

तनु (शरीर), रेणु [(धूलि) पुल्लिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग भी] हनु [(ठुड्डी); पुल्लिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग भी] इत्यादि सभी सकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप घेनु के समान होते हैं।

### ५६—ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द

	वधू	वध्वी	वध्व
प्र०	वधू	वध्वी	वध्व
स०	हे वधु	हे वध्वी	हे वध्व
द्वि०	वधूम्	वध्वौ	वधू
तृ०	वध्वा	वधूम्याम्	वधूमि
च०	वध्वं	"	वधूम्य
प०	वध्वा	वधूम्याम्	वधूम्य
ष०	"	वध्वो	वधूनाम्
स०	वध्वाम्	"	वधूषु

चमू (सेना), रज्जू (रस्सी), श्वश्रू (सास), ककन्धू (बेर) इत्यादि सभी ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप वधू के समान होते हैं।

### (क) भू—पृथ्वी

	भू	भुवौ	भुव
प्र०	भू	भुवौ	भुव
स०	हे भू	हे भुवौ	हे भुव
द्वि०	भुवम्	भुवौ	भुव
तृ०	भुवा	भूम्याम्	भूमि
च०	भुवं, भुवे	भूम्याम्	भूम्य
प०	भुवा, भुव	भूम्याम्	भूम्य



	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
ष०	मुवा, मुव	मुवो	मुवाम्, मूनाम्
स०	मुवाम्, मुवि	मुवो	मूषु

भ्रू (भौ) के रूप इसी प्रकार होते हैं।

स्त्रीलिङ्ग बहुव्रीहि समास वाले "सुभ्रू" शब्द के रूप मू रूप से भिन्न होते हैं —

(क) सुभ्रू—सुभ्रुवर् भौ वाली स्त्री

प्र०	सुभ्रू	सुभ्रुवो	सुभ्रुव
स०	हे सुभ्रू	हे सुभ्रुवौ	हे सुभ्रुव
द्वि०	सुभ्रुवम्	सुभ्रुवौ	सुभ्रुव
तृ०	सुभ्रुवा	सुभ्रूम्याम्	सुभ्रूमि
च०	सुभ्रुवे	सुभ्रूम्याम्	सुभ्रूम्य
प०	सुभ्रुव	सुभ्रूम्याम्	सुभ्रूम्य
ष०	सुभ्रुव	सुभ्रुवो	सुभ्रुवाम्
स०	सुभ्रुवि	सुभ्रुवो	सुभ्रुषु

५७—सुकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द

मातृ—माता

प्र०	मातर	मातरौ	मातर
स०	हे मात	हे मातरौ	हे मातर
द्वि	मातरम्	मातरौ	मातृ
तृ०	मात्रा	मातृम्याम्	मातृमि
च०	मात्रे	"	मातृम्य
प०	मातु	"	"
ष०	"	मात्रो	मातृणाम्
स०	मातरि	"	मातृषु

यातृ (देवरानी, जेठानी), दुहितृ (लडकी) के रूप मातृ के समान होते हैं।

### स्वसू—बहिन

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	स्वसा	स्वसारौ	स्वसार
स०	हे स्वस	हे स्वसारौ	हे स्वसार
द्वि०	स्वसारम्	स्वसारौ	स्वसू
तृ०	स्वस्रा	स्वसृम्याम्	स्वसृमि
च०	स्वस्रे	स्वसृम्याम्	स्वसृम्य
प०	स्वसु	स्वसृम्यम्	स्वसृम्य
ष०	स्वसु	स्वस्री	स्वसृणाम्
स०	स्वसरि	स्वसरो	स्वसृषु

ऐकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के तथा ओकारान्त स्त्रीलिङ्ग गो आदि शब्दों के रूप पुल्लिङ्ग के समान होते हैं। ओकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप भी पुल्लिङ्ग के समान होते हैं। जैसे नौ—

### ५८—ओकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द

		नौ—नाव	
प्र०	नौ	नावी	नाव
स०	हे नौ	हे नावी	हे नाव
द्वि०	नावम्	नावी	नाव
तृ०	नावा	नौम्याम्	नौमि
च०	नावे	नौम्याम्	नौम्य
प०	नाव	नौम्याम्	नौम्य
ष०	नाव	नावो	नावाम्
स०	नावि	नावो	नौषु

इसी प्रकार और भी ओकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप होते हैं।

### व्यञ्जनान्त संज्ञाएं

नोट—ऊपर स्वरान्त प्रातिपदिकों का क्रम सिद्धान्तकौमुदी के अनुसार पुल्लिङ्ग नपुंसकलिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग आदि लिङ्गानुसार दिया गया है। किन्तु

व्यजान्त प्रातिपदिक सभी लियो मे प्राय एक से चलते हैं, इसलिए यहाँ पर वर्णक्रम से रक्खे गये हैं।

५६—चकारान्त शब्द

(क) पुल्लिङ्ग जलमुच्—बादल

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	जलमुक्, ग्	जलमुचौ	जलमुच
स०	हे जलमुक्, ग्	हे जलमुचौ	हे जलमुच
द्वि०	जलमुचम्	जलमुचौ	जलमुच
तृ०	जलमुचा	जलमुग्भ्याम्	जलमुग्भि
च०	जलमुचे	जलमुग्भ्याम्	जलमुग्भ्य
प०	जलमुच	जलमुग्भ्याम्	जलमुग्भ्य
ष०	जलमुच	जलमुचाम्	जलमुचाम्
स०	जलमुचि	जलमुचौ	जलमुक्षु

सत्यवाच् आदि सभी चकारान्त शब्दो के रूप इसी प्रकार होते हैं। सभी चवर्गान्त शब्दो के अन्तिम चवर्ग को कवर्ग आदेश हो जाता है, यदि उसके आगे झल् वर्ण हो या वह पदान्त में हो।<sup>१</sup> केवल प्राञ्च्, प्रत्यञ्च्, तिर्यञ्च्, उदञ्च् के रूपो मे कुछ भेद होता है। ये शब्द अञ्च् (जाना) घातु से बने हैं।

प्राञ्च् (पूर्वो)

प्र०	प्राङ्	प्राञ्चौ	प्राञ्च
स०	हे प्राङ्	हे प्राञ्चौ	हे प्राञ्च
द्वि०	प्राञ्चम्	प्राञ्चौ	प्राच
तृ०	प्राचा	प्राग्भ्याम्	प्राग्भि
च०	प्राचे	प्राग्भ्याम्	प्राग्भ्य
प०	प्राच	प्राग्भ्याम्	प्राग्भ्य
ष०	प्राच	प्राचो	प्राचाम्
स०	प्राचि	प्राचो-	प्राक्षु

१ चो कु ।८।२।३०। चवर्गस्य कवर्ग स्याज्झलि पदान्ते च ।

## प्रत्यञ्च् (पश्चिमी)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	प्रत्यङ्	प्रत्यञ्चौ	प्रत्यञ्च
स०	हे प्रत्यङ्	हे प्रत्यञ्चौ	हे प्रत्यञ्च
द्वि०	प्रत्यञ्चम्	प्रत्यञ्चौ	प्रतीच
तृ०	प्रतीचा	प्रत्यगभ्याम्	प्रत्यग्भि
च०	प्रतीचे	प्रत्यगभ्याम्	प्रत्यगभ्य
प०	प्रतीच	प्रत्यगभ्याम्	प्रत्यगभ्य
ष०	प्रतीच	प्रतीचो	प्रतीचाम्
स०	प्रतीचि	प्रतीचो	प्रत्यक्षु

## तिर्यञ्च् (तिरछा जाने वाला)

प्र०	तिर्यङ्	तिर्यञ्चौ	तिर्यञ्च
स०	हे तिर्यङ्	हे तिर्यञ्चौ	हे तिर्यञ्च.
द्वि०	तिर्यञ्चम्	तिर्यञ्चौ	तिरश्च
तृ०	तिरश्चा	तिर्यगभ्याम्	तिर्यग्भि
च०	तिरश्चे	तिर्यगभ्याम्	तिर्यगभ्य
प०	तिरश्च	तिर्यगभ्याम्	तिर्यगभ्य
ष०	तिरश्च	तिरश्चो	तिरश्चाम्
स०	तिरश्चि	तिरश्चो	तिर्यक्षु

## उदञ्च् (उत्तरी)

प्र०	उदङ्	उदञ्चौ	उदञ्च
स०	हे उदङ्	हे उदञ्चौ	हे उदञ्च
द्वि०	उदञ्चम्	उदञ्चौ	उदीच
तृ०	उदीचा	उदगभ्याम्	उदग्भि
च०	उदीचे	उदगभ्याम्	उदगभ्य
प०	उदीच	उदगभ्याम्	उदगभ्य
ष०	उदीच	उदीचो	उदीचाम्
स०	उदीचि	उदीचो	उदक्षु

(ख) स्त्रीलिङ्ग वाच्—वाणी

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	वाक्, वाग्	वाचौ	वाच
स०	हे वाक्, हे वाग्	हे वाचौ	हे वाच
द्वि०	वाचम्	वाचौ	वाच
तृ०	वाचा	वाग्भ्याम्	वाग्भिः
च०	वाचे	वाग्भ्याम्	वाग्भ्यः
प०	वाच	वाग्भ्याम्	वाग्भ्यः
ष०	वाच	वाचो	वाचाम्
स०	वाचि	वाचो	वाक्षु

वच्, त्वच् (चमडा, पेड की छाल), शुच् (सोच), ऋच् (ऋग्वेद के मन्त्र) इत्यादि सभी चकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप वाच् की तरह होते हैं।

६०—जकारान्त शब्द

(क) पु० ऋत्विज (यज्ञ करने वाला)

प्र०	ऋत्विक्, ऋत्विग्	ऋत्विजौ	ऋत्विज
स०	हे ऋत्विक्, हे ऋत्विग्	हे ऋत्विजौ	हे ऋत्विज
द्वि०	ऋत्विजम्	ऋत्विजौ	ऋत्विज
तृ०	ऋत्विजा	ऋत्विग्भ्याम्	ऋत्विग्भिः
च०	ऋत्विजे	ऋत्विग्भ्याम्	ऋत्विग्भ्यः
प०	ऋत्विज	ऋत्विग्भ्याम्	ऋत्विग्भ्यः
ष०	ऋत्विज	ऋत्विजो	ऋत्विजाम्
स०	ऋत्विजि	ऋत्विजो	ऋत्विक्षु

भूमि (जा), हुतभुज् (अग्नि), मिषज् (वैद्य), वणिज् (बनिया) के रूप ऋत्विक् के समान होते हैं।

मिषज—वैद्य

प्र०	मिषक्, मिषग्	मिषजौ	मिषज
स०	हे मिषक्, हे मिषग्	हे मिषजौ	हे मिषज

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
द्वि०	मिषजम्	मिषजौ	मिषजः
तृ०	मिषजा	मिषग्भ्याम्	मिषग्भिः
	इत्यादि ।		

## वणिज्—वनिधा

प्र०	वणिक्, वणिग्	वणिजौ	वणिजः
स०	हे वणिक्, हे वणिग्	हे वणिजौ	हे वणिजः
द्वि०	वणिजम्	वणिजौ	वणिजः
तृ०	वणिजा	वणिग्भ्याम्	वणिग्भिः
	इत्यादि ।		

## पयोमुच्—शदल

प्र०	पयोमुक्, पयोमुग्	पयोमुचौ	पयोमुचः
स०	हे पयोमुक्, हे पयोमुग्	हे पयोमुचौ	हे पयोमुचः
द्वि०	पयोमुचम्	पयोमुचौ	पयोमुचः
तृ०	पयोमुचा	पयोमुग्भ्याम्	पयोमुग्भिः
	इत्यादि ।		

## परिव्राज्—सन्यासी

प्र०	परिव्राट्, परिव्राड्	परिव्राजौ	परिव्राजः
स०	हे परिव्राट्, हे परिव्राड्	हे परिव्राजौ	हे परिव्राजः
द्वि०	परिव्राजम्	परिव्राजौ	परिव्राजः
तृ०	परिव्राजा	परिव्राड्भ्याम्	परिव्राड्भिः
च०	परिव्राजे	परिव्राड्भ्याम्	परिव्राड्भ्यः
प०	परिव्राज	परिव्राड्भ्याम्	परिव्राड्भ्यः
ष०	परिव्राज	परिव्राजो	परिव्राजाम्
स०	परिव्राजि	परिव्राजो	परिव्राट्सु, परिव्राड्सु

इसी प्रकार सम्राज् (महाराज), विश्वसृज् (ससार का रचने वाला), विराज् (बड़ा) के रूप होते हैं ।

सम्राज्—सम्राट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	सम्राट्, सम्राड्	सम्राजौ	सम्राज
द्वि०	सम्राजम्	सम्राजौ	सम्राज
तृ०	सम्राजा	सम्राड्भ्याम्	सम्राड्भिः

इत्यादि परिव्राज् के समान ।

विराज्—विराट्

	विराट्, विराड्	विराजौ	विराज
प्र०	विराजम्	विराजौ	विराज
द्वि०	विराजा	विराड्भ्याम्	विराड्भिः
तृ०			

इत्यादि परिव्राज् के समान् ।

(ख) स्त्री० स्रज्—स्राजा

	स्रक्, स्रग्	स्रजौ	स्रज
प्र०	हे स्रक्, हे स्रग्	हे स्रजौ	हे स्रज
स०	स्रजम्	स्रजौ	स्रज
द्वि०	स्रजा	स्रग्भ्याम्	स्रग्भिः
तृ०	स्रजे	स्रग्भ्याम्	स्रग्भ्यः
च०	स्रज	स्रग्भ्याम्	स्रग्भ्यः
प०	स्रज	स्रजो	स्रजाम्
ष०	स्रजि	स्रजो	स्रजुः
स०			

रज् (रोग) के भी रूप स्रज् के समान होते हैं ।

(ग) नपु० असृज्—स्रोह

	असृक्, असृग्	असृजौ	असृञ्जि
प्र०	हे असृक्, हे असृग्	हे असृजौ	हे असृञ्जि
स०	असृक्	असृजौ	असृञ्जि
द्वि०	असृजा	असृग्भ्याम्	असृग्भिः
तृ०	असृजे	असृग्भ्याम्	असृग्भ्यः
च०	असृज	असृग्भ्याम्	असृग्भ्यः
प०	असृज	असृग्भ्याम्	असृग्भ्यः

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
ष०	असृज	असृजो	असृजाम्
म०	असृजि	असृजो	असृक्षु

सभी जकारान्त नपुसकलिग शब्दों के रूप असृज के समान होते हैं।

### ६१—तकारान्त शब्द

(क) पुल्लिङ्ग भूमृत्—राजा, पहाड

प्र०	भूमृत्, भूमृद्	भूमृतौ	भूमृत
स०	हे भूमृत्, हे भूमृद्	हे भूमृतौ	हे भूमृत
द्वि०	भूमृतम्	भूमृतौ	भूमृत
तृ०	भूमृता	भूमृद्भ्याम्	भूमृद्भिः
च०	भूमृते	भूमृद्भ्याम्	भूमृद्भ्यः
प०	भूमृत	भूमृद्भ्याम्	भूमृद्भ्यः
ष०	भूमृत	भूमृतो	भूमृताम्
स०	भूमृति	भूमृतो	भूमृत्सु

महीमृत् (राजा, पहाड), दिनकृत् (सूर्य), शशमृत् (चन्द्रमा), परमृत् (कौआ), मरुत् (वायु), विश्वजित् (ससार का जीतने वाला या एक प्रकार का यज्ञ) के रूप भूमृत् के समान होते हैं।

श्रीमृत्—भाग्यवान्

प्र०	श्रीमृत्	श्रीमन्तौ	श्रीमन्त
स०	हे श्रीमृत्	हे श्रीमन्तौ	हे श्रीमन्त
द्वि०	श्रीमन्तम्	श्रीमन्तौ	श्रीमत
तृ०	श्रीमृता	श्रीमृद्भ्याम्	श्रीमृद्भिः
च०	श्रीमृते	श्रीमृद्भ्याम्	श्रीमृद्भ्यः
प०	श्रीमृत	श्रीमृद्भ्याम्	श्रीमृद्भ्यः
ष०	श्रीमृत	श्रीमृतो	श्रीमृताम्
स०	श्रीमृति	श्रीमृतो	श्रीमृत्सु

धीमृत् (बुद्धिमान्), भानुमृत् (चमकने वाला), सानुमृत् (पहाड), धनधमृत् (धनधारी), अशमृत् (सूर्य), ज्ञानावृत् (विद्या वाला), बलवृत्



(बलवान्), भगवत् (पूज्य), भाग्यवत् (भाग्यवान्) आदि मनुप् प्रत्ययान्तो के तथा गतवत् (गया हुआ), उक्तवत् (बोल चुका हुआ), श्रुतवत् (सुन चुका हुआ) आदि क्तवतु प्रत्ययान्तो के रूप श्रीमत् के समान होते हैं। स्त्रीलिङ्ग में इनके जोड़ के प्रातिपदिक-ई प्रत्यय लगाकर श्रीमती, बुद्धिमती आदि बनते हैं और इनके रूप ईकारान्त नदी शब्द के समान चलते हैं।

भवत्—आप

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	भवान्	भवन्तौ	भवन्त
स०	हे भवन्	हे भवन्तौ	हे भवन्त
द्वि०	भवन्तम्	भवन्तौ	भवत
तृ०	भवता	भवद्भ्याम्	भवद्भिः
च०	भवते	भवद्भ्याम्	भवद्भ्यः
प०	भवत	भवद्भ्याम्	भवद्भ्यः
ष०	भवत	भवतो	भवताम्
स०	भवति	भवतो	भवत्सु

इसी से स्त्रीलिङ्ग भवती शब्द बनता है।

महत्—बड़ा

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	महान्	महान्तौ	महान्त
स०	हे मह	हे महान्तौ	हे महान्त
द्वि०	महान्तम्	महान्तौ	महत
तृ०	महता	महद्भ्याम्	महद्भिः
च०	महते	महद्भ्याम्	महद्भ्यः
प०	महत	महद्भ्याम्	महद्भ्यः
ष०	महत	महतो	महताम्
स०	महति	महतो	महत्सु

इसके जोड़ का स्त्रीलिङ्ग शब्द महती है।

## पठ्—पठता हुआ

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	पठन्	पठन्तौ	पठन्त
स०	हे पठन्	हे पठन्तौ	हे पठन्त
द्वि०	पठन्तम्	पठन्तौ	पठन्त
तृ०	पठता	पठद्भ्याम्	पठद्भिः
च०	पठते	पठद्भ्याम्	पठद्भ्य
प०	पठत	पठद्भ्याम्	पठद्भ्य
ष०	पठत	पठतो	पठताम्
स०	पठति	पठतो	पठन्सु

धावत् (दौडता हुआ), गच्छत् (जाता हुआ), वदत् (बोलता हुआ), पश्यत् (देखता हुआ), गृह्णत् (लेता हुआ), पतत् (गिरता हुआ), शोचत् (सोचता हुआ), पिबत् (पीता हुआ), भवत् (होता हुआ) इत्यादि सभी शतृ प्रत्ययान्त पुल्लिङ्ग शब्दों के रूप पठ् के समान होते हैं। स्त्रीलिङ्ग में पठती, पठन्ती, धावन्ती आदि होते हैं और रूप नदी के समान चलते हैं।

## दत्—दाँत

द्वि०	—	—	दत
तृ०	दता	दद्भ्याम्	दद्भिः
च०	दते	दद्भ्याम्	दद्भ्य
प०	दत	दद्भ्याम्	दद्भ्य
ष०	दत	दतो	दताम्
स०	दति	दतो	दत्सु

नोट—इस शब्द के प्रथम पाँच रूप दन्त शब्द के ही होते हैं।<sup>१</sup>

१ पद्भोमासहस्रिंशसन्पूर्वन्दीर्घम्यकम्बुदभासच्छस्प्रभृतिषु । ६।१।६३।  
नियम से यहाँ दन्त शब्द के स्थान में, शस् से लेकर बाद की सभी विभक्तियों में विकल्प से दत् आदेश होता है।

(ख) स्त्रीलिङ्ग सरित्—नदी

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	सरित्, सरिद्	सरितौ	सरित
स०	हे सरित्, हे मरिद्	हे सरितौ	हे सरित
द्वि०	सरितम्	सरितौ	सरित्
तृ०	सरिता	सरिद्भ्याम्	सरिद्भिः
च०	सरिते	सरिद्भ्याम्	सरिद्भ्यः
प०	सरित	सरिद्भ्याम्	सरिद्भ्यः
ष०	सरित	सरितो	सरिताम्
स०	सरिति	सरितो	सरित्सु

विद्युत् (बिजली), योषित् (स्त्री) के रूप सरित् के समान चलते हैं।

(ग) नपु० जगत्—ससार

प्र०	जगत्, जगद्	जगती	जगन्ति
स०	हे जगत्, हे जगद्	हे जगती	हे जगन्ति
द्वि०	जगत्, जगद्	जगती	जगन्ति
तृ०	जगता	जगद्भ्याम्	जगद्भिः
च०	जगते	जगद्भ्याम्	जगद्भ्यः
प०	जगत	जगद्भ्याम्	जगद्भ्यः
ष०	जगत	जगतो	जगताम्
स०	जगति	जगतो	जगत्सु

श्रीमत्, महत् (होता हुआ) तथा और भी तकारान्त नपुसकलिङ्ग शब्दों के रूप जगत् के समान होते हैं।

नपु० महत्—बड़ा

प्र०	महत्, महद्	महती	महान्ति
स०	हे महत्, हे महद्	हे महती	हे महान्ति
द्वि०	महत्	महती	महान्ति

शेष रूप जगत् के समान होते हैं।

## ६२—दकारान्त शब्द

## (क) पुल्लिङ्ग सुहृद्—मित्र

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	सुहृत्, सुहृद्	सुहृदौ	सुहृद
स०	हे सुहृत्, हे सुहृद्	हे सुहृदौ	हे सुहृद
द्वि०	सुहृदम्	सुहृदौ	सुहृद
तृ०	सुहृदा	सुहृदभ्याम्	सुहृद्भिः
च०	सुहृदे	सुहृदभ्याम्	सुहृदभ्य
प०	सुहृद	सुहृदभ्याम्	सुहृदभ्य
ष०	सुहृद	सुहृदो	सुहृदाम्
स०	सुहृदि	सुहृदो	सुहृत्सु

हृदयच्छिद् (हृदय को छेदने वाला), मर्मभिद्, समासद् (सभा में बैठने वाला), तमोनुद् (सूर्य), धर्मविद् (धर्म को जानने वाला), अरुन्तुद् (हृदय को पीड़ा पहुँचाने वाला) इत्यादि दकारान्त पुल्लिङ्ग शब्दों के रूप सुहृद् के समान होते हैं।

## पद्—पैर

	—	—	पद
द्वि०	—	—	पद
तृ०	पदा	पद्भ्याम्	पद्भिः
च०	पदे	पद्भ्याम्	पद्भ्य
प०	पद	पद्भ्याम्	पद्भ्य
ष०	पद	पदो	पदाम्
स०	पदि	पदो	पत्सु

नोट—दकारान्त पद् शब्द के प्रथम पाँच रूप अकारान्त पाद के समान होते हैं। (देखिए टिप्पणी पृ० ६८ पर)।

## (क) स्त्री० वृषद्—पत्थर, चट्टान

प्र०	वृषत्, वृषद्	वृषदौ	वृषद
स०	हे वृषद्	हे वृषदौ	हे वृषद

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
द्वि०	दृषदम्	दृषदौ	दृषद
तृ०	दृषदा	दृषद्भ्याम्	दृषद्भिः
च०	दृषदे	दृषद्भ्याम्	दृषद्भ्यः
प०	दृषद	दृषद्भ्याम्	दृषद्भ्यः
ष०	दृषद	दृषदो	दृषदाम्
स०	दृषदि	दृषदो	दृषत्सु

शरद्, आपद्, विपद्, सम्पद् (धन), ससद् (सभा) के रूप दषद् के समा होते हैं।

(ख) नपु० हृद्—हृदय

प्र०	हृत्, हृद्	हृदी	हृन्दि
स०	हे हृत्, हे हृद्	हे हृदी	हे हृन्दि
द्वि०	हृत्, हृद्	हृदौ	हृन्दि
तृ०	हृदा	हृद्भ्याम्	हृद्भिः
च०	हृदे	हृद्भ्याम्	हृद्भ्यः
प०	हृद	हृद्भ्याम्	हृद्भ्यः
ष०	हृद	हृदो	हृदाम्
स०	हृदि	हृदो	हृत्सु

६३—धकारान्त शब्द

स्त्री० समिध्—यज्ञ की लकड़ी

प्र०	समित्, समिद्	समिधौ	समिध
स०	हे समित्, हे समिद्	हे समिधौ	हे समिध
द्वि०	समिधम्	समिधौ	समिध
तृ०	समिधा	समिद्भ्याम्	समिद्भिः
च०	समिधे	समिद्भ्याम्	समिद्भ्यः
प०	समिध	समिद्भ्याम्	समिद्भ्यः
ष०	समिध	समिधो	समिधाम्
स०	समिधि	समिधो	समित्सु

वीरुष् (लता), क्षुष् (मूल), ऋष् (ऋष), युष्, (युद्ध) इत्यादि सभी षकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप समिष् के समान होते हैं।

### ६४—नकारान्त शब्द

#### पु० आत्मन्—आत्मा

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	आत्मा	आत्मानौ	आत्मनः
स०	हे आत्मन्	हे आत्मानौ	हे आत्मान
द्वि०	आत्मानम्	आत्मानौ	आत्मन
तृ०	आत्मना	आत्मभ्याम्	आत्मभि
च०	आत्मने	आत्मभ्याम्	आत्मभ्य
प०	आत्मन	आत्मभ्याम्	आत्मभ्य
ष०	आत्मन	आत्मनो	आत्मनाम्
स०	आत्मनि	आत्मनो	आत्मसु

अध्वन् (मार्ग), अश्मन् (पत्थर), यज्वन् (यज्ञ करने वाला), ब्रह्मन् (ब्रह्मा), सुशर्मन् (महाभारत की लड़ाई में एक योद्धा का नाम), कृतवमन् (एक योद्धा का नाम) के रूप आत्मन् के समान चलते हैं।

नोट—आत्मा शब्द हित्वा में स्त्रीलिङ्ग में प्रयुक्त होता है, किन्तु संस्कृत में यह शब्द पुल्लिङ्ग है, यह ध्यान में रखना चाहिए।

#### पु० राजन्—राजा

	राजा	राजानौ	राजान
प्र०	राजा	राजानौ	राजान
स०	हे राजन्	हे राजानौ	हे राजान
द्वि०	राजानम्	राजानौ	राज्ञ
तृ०	राज्ञा	राजभ्याम्	राजभि
च०	राज्ञे	राजभ्याम्	राजभ्य
प०	राज्ञ	राजभ्याम्	राजभ्य
ष०	राज्ञ	राज्ञो	राज्ञाम्
स०	राज्ञि, राजनि	राज्ञो	राज्ञसु

इसके जोड़ का स्त्रीलिङ्ग शब्द राज्ञी (ईकारान्त) है, जिसके रूप नदी के समान चलते हैं।

पु० महिमन्—बडप्पन

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	महिमा	महिमानौ	महिमान
स०	हे महिमन्	हे महिमानौ	हे महिमान
द्वि०	महिमानम्	महिमानौ	महिम्नि
तृ०	महिम्ना	महिमभ्याम्	महिमभि
च०	महिम्ने	महिमभ्याम्	महिमभ्य
प०	महिम्न	महिमभ्याम्	महिमभ्य
ष०	महिम्न	महिम्नो	महिम्नाम्
स०	महिम्नि } महिमनि }	महिम्नो	महिमसु

मूर्धन् (सिर), सीमन् [ (चौहद्दी) स्त्रीलिङ्ग ], अरिमन् (बडप्पन), लघिमन् (छोटापन), अणिमन् (छोटापन), शुक्लिमन् (सफेदी), कालिमन् (कालापन), द्रुमिमन् (मजबूती), अश्वत्थामन् इत्यादि समस्त अन्नन्त पुल्लिङ्ग शब्दों के रूप महिमन् के समान होते हैं।

नोट—हिन्दी में महिमा, कालिमा आदि शब्द स्त्रीलिङ्ग में प्रयुक्त किये जाते हैं, किन्तु सस्कृत में पुल्लिङ्ग में इसका ध्यान रखना चाहिए।

पु० युवन्—जवान

	युवा	युवानौ	युवान
प्र०	युवा	युवानौ	युवान
स०	हे युवन्	युवानौ	हे युवान
द्वि०	युवानम्	युवानौ	यून
तृ०	यूना	युवभ्याम्	युवभि
च०	यूने	युवभ्याम्	युवभ्य
प०	यून	युवभ्याम्	युवभ्य
ष०	यून	यूनो	यूनान्
स०	यूनि	यूनो	युवसु

इसके जोड़ का स्त्रीलिङ्ग शब्द युवतो है, जिसके रूप नदी के समान चलते हैं।

## पु० श्वन्—कुत्ता

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	श्वः	श्वानौ	श्वान
स०	हे श्वन्	हे श्वानौ	हे श्वान
द्वि०	श्वानम्	श्वानौ	शुन
तृ०	शुना	श्वभ्याम्	श्वभिः
च०	शुने	श्वभ्याम्	श्वभ्यः
प०	शुन	श्वभ्याम्	श्वभ्यः
ष०	शुन	शुनो	शुनाम्
स०	शुनि	शुनो	श्वसु

## पु० अर्बन्—घोडा, इन्द्र

प्र०	अर्वा	अर्वन्तः	अर्वन्त
स०	हे अर्बन्	हे अर्वन्तौ	हे अर्वन्त
द्वि०	अर्वन्तम्	अर्वन्तौ	अर्वत
तृ०	अर्वता	अर्वद्भ्याम्	अर्वद्भिः
च०	अर्वते	अर्वद्भ्याम्	अर्वद्भ्यः
प०	अर्वत	अर्वद्भ्याम्	अर्वद्भ्यः
ष०	अर्वत	अर्वतो	अर्वताम्
स०	अर्वन्ति	अर्वतो	अर्वत्सु

## पु० मघबन्—इन्द्र

प्र०	मघवा	मघवानौ	मघवान
स०	हे मघबन्	हे मघवानौ	हे मघवानः
द्वि०	मघवानम्	मघवानौ	मघोने
तृ०	मघोना	मघवभ्याम्	मघवभिः
च०	मघोने	मघवभ्याम्	मघवभ्यः
प०	मघोन	मघवभ्याम्	मघवभ्यः
ष०	मघोन	मघोनो	मघोनाम्
स०	मघोनि	मघोनो	मघवसु



मघवन् का रूप विकल्प से इस प्रकार भी होता है—

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	मघवान्	मघवन्तौ	मघवन्त
स०	हे मघवन्	हे मघवन्तौ	हे मघवन्त.
द्वि०	मघवन्तम्	मघवन्तौ	मघवत
तृ०	मघवता	मघवद्भ्याम्	मघवन्दि
च०	मघवते	मघवद्भ्याम्	मघवद्भ्य
प०	मघवत	मघवद्भ्याम्	मघवद्भ्य.
ष०	मघवत	मघवतो	मघवताम्
स०	मघवति	मघवतो	मघवत्सु

पु० पूषन्—सूर्य

प्र०	पूषा	पूषणौ	पूषण
स०	हे पूषन्	हे पूषणौ	हे पूषण.
द्वि०	पूषणम्	पूषणौ	पूषण
तृ०	पूषणा	पूषभ्याम्	पूषभि
च०	पूषणे	पूषभ्याम्	पूषभ्य
प०	पूषण	पूषभ्याम्	पूषभ्य
ष०	पूषण	पूषणो	पूषणाम्
स०	पूषिण, पूषणि	पूषणो	पूषसु

पु० हस्तिन्—हाथी

प्र०	हस्ती	हस्तिनौ	हस्तिन
स०	हे हस्तिन्	हे हस्तिनौ	हे हस्तिन
द्वि०	हस्तिनम्	हस्तिनौ	हस्तिन
तृ०	हस्तिना	हस्तिभ्याम्	हस्तिभि
च०	हस्तिने	हस्तिभ्याम्	हस्तिभ्य
प०	हस्तिन	हस्तिभ्याम्	हस्तिभ्य
ष०	हस्तिन	हस्तिनो	हस्तिनाम्
स०	हस्तिनि	हस्तिनो	हस्तिषु

स्वामिन्, करिन् (हाथी), गुणिन् (गुणी), मन्त्रिन् (मन्त्री), शशिन् (चन्द्रमा), पक्षिन् (पक्षी, चिडिया), धनिन्, वाजिन् (घोडा), तपस्विन् (तपस्वी), एकाकिन् (अकेला), बलिन् (बली), सुखिन् (सुखी), सत्यवादिन् (सच बोलने वाला), भाविन् इत्यादि इन् मे अन्त होने वाले पु० शब्दों के रूप हस्तिन् के समान होते हैं।

इसन्त शब्दों के जोड़ के स्त्रीलिङ्ग शब्द ईकार जोड़ कर हस्तिनी, एका किनी, भाविनी आदि ईकारान्त होते हैं, जिनके रूप नदी के समान चलते हैं।

पथिन् शब्द के रूपों में जो भेद होता है वह नीचे दिखाया जाता है—

पु० पथिन्—मात्रां

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	पन्था	पन्थानौ	पन्थान
स०	हे पन्था	हे पन्थानौ	हे पन्थान
द्वि०	पन्थानम्	पन्थानौ	पथ
तृ०	पथा	पथिभ्याम्	पथिभि
च०	पथे	पथिभ्याम्	पथिभ्य
प०	पथ	पथिभ्याम्	पथिभ्य
ष०	पथ	पथो	पथाम्
स०	पथि	पथो	पथिषु

(क) स्त्री० सीमन्—बौहृदी

सीमन् के रूप सीमन् के समान होते हैं, जैसे—

प्र०	सीमा	सीमानौ	सीमान
स०	हे सीमन्	हे सीमानौ	हे सीमान
द्वि०	सीमानम्	सीमानौ	सीमन्
तृ०	सीम्ना	सीमभ्याम्	सीमभि
च०	सीम्ने	सीमभ्याम्	सीमभ्य
प०	सीमन्	सीमभ्याम्	सीमभ्य
ष०	सीमन्	सीम्नो	सीम्नाम्
स०	सीमिन् } सीमिनि }	सीम्नो	सीमसु

(ख) नपु० नामन्—नाम

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	नाम	नाम्नी, नामनी	नामानि
स०	हे नाम, हे नामन्	हे नाम्नी, हे नामनी	हे नामानि
द्वि०	नाम	नाम्नी, नामनी	नामानि
तृ०	नाम्ना	नामभ्याम्	नागभि
च०	नाम्ने	नामभ्याम्	नामभ्य
प०	नाम्न	नामभ्याम्	नामभ्य
ष०	नाम्न	नाम्नो	नाम्नाम्
स०	नाम्नि, नामनि	नाम्नो	नामसु

घामन् (घर, चमक), व्योमन् (आकाश), सामन् (सामवेद का मन्त्र), प्रेमन् (प्यार), दामन् (रस्ती) के रूप नामन् के समान होते हैं।

नपु० चर्मन्—चर्मणा

	चर्म	चर्मणी	चर्माणि
प्र०	चर्म	चर्मणी	चर्माणि
स०	हे चर्म, हे चर्मन्	हे चर्मणी	हे चर्माणि
द्वि०	चर्म	चर्मणी	चर्माणि
तृ०	चर्मणा	चर्मभ्याम्	चर्मभि
च०	चर्मणे	चर्मभ्याम्	चर्मभ्य
प०	चर्मण	चर्मभ्याम्	चर्मभ्य
ष०	चर्मण	चर्मणो	चर्मणाम्
स०	चर्मणि	चर्मणो	चर्मसु

पर्वन् (पौर्णमासी), अमावस्या या त्योहार), ब्रह्मन् (ब्रह्म), वर्मन् (कवच), जन्मन् (जन्म), वर्त्मन् (रास्ता), शर्मन् (सुख) के रूप चर्मन् के समान होते हैं।

नपु० अहन्—अहनि

	अह	अह्नी, अहनी	अहानि
प्र०	अह	अह्नी, अहनी	अहानि
स०	हे अह	हे अह्नी, हे अहनी	हे अहानि
द्वि०	अह	अह्नी, अहनी	अहानि

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
तृ०	अह्ना	अहोम्याम्	अहोभि
च०	अह्ने	अहोम्याम्	अहोम्य
प०	अह्न	अहोम्याम्	अहोम्य
ष०	अह्न	अह्नो	अह्नाम्
स०	अह्नि, अहनि	अह्नो	अह सु, अहस्तु
नपु० भाविन्—होने का रूप			
प्र०	भावि	भाविनी	भावीनि
स०	हे भावि, हे भाविन्	हे भाविनि	हे भावीनि
द्वि०	भावि	भाविन्	भावीनि
तृ०	भाविना	भाविम्याम्	भाविभि
च०	भाविते	भाविम्याम्	भाविम्य
प०	भाविन	भाविम्याम्	भाविम्य
ष०	भाविन	भाविनो	भाविनाम्
स०	भाविनि	भाविनो	भाविषु

इसी प्रकार सभी इत्थन्त नपुसकलिग शब्दों के रूप होते हैं ।

### ६५—पकारान्त शब्द

स्त्री० अप्—पानी

अप् के रूप केवल बहुवचन में होते हैं—

	बहुवचन
प्र०	आप
स०	हे आप
द्वि०	अप
तृ०	अद्भि
च०	अद्म्य
प०	अद्म्य
ष०	अपाम्
स०	अप्सु

६६—भकारान्त शब्द

स्त्री० ककुम्—विशा

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
०	ककुप्, ककुब्	ककुभौ	ककुभ
।०	हे ककुप्, हे ककुब्	हे ककुभौ	हे ककुभ-
द्व०	ककुमम्	ककुभौ	ककुभ
।०	ककुमा	ककुभ्याम्	ककुभ्य
व०	ककुमे	ककुभ्याम्	ककुभ्य
प०	ककुम	ककुभ्याम्	ककुभ्य-
ष०	ककुम	ककुभौ	ककुमाम्
स०	ककुभि	ककुभौ	ककुभ्यु

इसी प्रकार अन्य भकारान्त शब्दों के रूप होते हैं।

६७—रकारान्त शब्द

वपुं० वारु—पानी

प्र०	वारु	वारौ	वारि
सं०	हे वारु	हे वारौ	हे वारि
द्वि०	वारु	वारौ	वारि
तृ०	वारु	वार्याम्	वारिभि
च०	वारु	वार्याम्	वार्यम्.
पं०	वारु	वार्याम्	वार्यम्
ष०	वारु	वारो	वाराम्
स०	वारु	वारो	वार्षु

(क) स्त्री० गिरु—पानी

प्र०	गी	गिरौ	गिर
सं०	हे गी	हे गिरौ	हे गिरः
द्वि०	गिरम्	गिरौ	गिर-
तृ०	गिरा	गीर्भ्याम्	गीभिः
च०	गिरि	गीर्भ्याम्	गीर्भ्यम्.

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प०	गिर	गीर्भ्याम्	गीर्भ्य
ष०	गिर	गिरो	गिराम्
स०	गिरि	गिरो	गीर्षु
<b>स्त्री० पुद्—नगर</b>			
प्र०	पू	पुरौ	पुर
स०	हे पू	हे पुरौ	हे पुर-
द्वि०	पुरम्	पुरौ	पुर
तृ०	पुरा	पूर्याम्	पूरि
च०	पुरे	पूर्याम्	पूर्य
प०	पुर	पूर्याम्	पूर्य
ष०	पुर	पुरे	पुराम्
स०	पुरि	पुरी	पूरु

धुर् (धुरा) के रूप भी इसी प्रकार होते हैं ।

### ६८—वकारान्त शब्द

स्त्री० दिव्—प्राकाश, स्वर्ग

प्र०	द्यौ	दिवौ	दिव
स०	हे द्यौ	हे दिवौ	हे दिवः
द्वि०	दिवम्	दिवौ	दिव
तृ०	दिवा	द्युम्याम्	द्युमि
च०	दिवे	द्युम्याम्	द्युम्य
प०	दिव	द्युम्याम्	द्युम्य
ष०	दिव	दिवो	दिवाम्
स०	दिवि	दिवो	द्युषु

### ६९—शकारान्त शब्द

पु० विश्—वनिया

प्र०	विट्, विड	विशौ	विश
स०	हे विट, हे विड	हे विशौ	हे विश-

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
द्वि०	विशम्	विशौ	विश
तृ०	विशा	विड्भ्याम्	विड्भि
च०	विशे	विड्भ्याम्	विड्भ्य
प०	विश	विड्भ्याम्	विड्भ्य
ष०	विश	विशो	विशाम्
स०	विशि	विशो	विटत्सु, विट्सु

नपु० तादृश्—उसके समान

प्र०	तादृक्, तादृग्	तादृशौ	तादृश
स०	हे तादृक्, हे तादृग्	हे तादृशौ	हे तादृश
द्वि०	तादृशम्	तादृशौ	तादृश
तृ०	तादृशा	तादृग्भ्याम्	तादृग्भि
च०	तादृशे	तादृग्भ्याम्	तादृग्भ्य
प०	तादृश	तादृग्भ्याम्	तादृग्भ्य
ष०	तादृश	तादृशाम्	तादृशाम्
स०	तादृशि	तादृशो	तादृशु

यादृश् (जैसा), मादृश् (मेरे समान), भवादृश् (आपके समान), त्वादृश् (तेरे समान), एकादृश् (इसके समान) इत्यादि के रूप तादृश् के समान होते हैं।

इनके जोड़ वाले पुल्लिङ्ग शब्द तादृशी, यादृशी, भवादृशी आदि हैं, जिनके रूप नदी के समान चलते हैं।

नपुंसकलिङ्ग में तादृश्, मादृश् इत्यादि के रूप इस प्रकार होंगे —

नपु० तादृश्—उसके समान

प्र०	तादृक्, तादृग्	तादृशी	तादृशि
स०	हे तादृक्, तादृग्	हे तादृशी	हे तादृशि
द्वि०	तादृक्, तादृग्	तादृशी	तादृशि

तृतीया इत्यादि के रूप पुल्लिङ्ग के समान होते हैं।

तादृश्, मादृश्, भवादृश्, त्वादृश् इत्यादि के जोड़ के अकारान्त शब्द तादृश, मादृश, भवादृश, त्वादृश आदि हैं, और उनके रूप अकारान्त शब्दों के समान होते हैं जैसा कि पृष्ठ ७१ में पहिले ही दिखा चुके हैं।

## (क) स्त्री० विश्—विशा

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	दिक्, दिग्	दिशौ	दिश
स०	हे दिक्, हे दिग्	हे दिशौ	हे दिश
द्वि०	दिशम्	दिशौ	दिश
तृ०	दिशा	दिग्भ्याम्	दिग्भिः
च०	दिशे	दिग्भ्याम्	दिग्भ्यः
प०	दिश	दिग्भ्याम्	दिग्भ्यः
ष०	दिश	दिशौ	दिशाम्
स०	दिशि	दिशौ	दिशु

## स्त्री० निश्—रात

			निश
द्वि०			
तृ०	निशा	{ निज्भ्याम् निड्भ्याम्	{ निज्भिः निड्भिः
च०	निशे	{ निज्भ्याम् निड्भ्याम्	{ निज्भ्यः निड्भ्यः
प०	निश	{ निज्भ्याम् निड्भ्याम्	{ निज्भ्यः निड्भ्यः
ष०	निश	निशौ	निशाम्
स०	निशि	निशोः	{ निशु, निदु, निदुत्सु

इसके पहले पाँच रूप निशा शब्द के होते हैं, शस् से लेकर आगे की विभक्तियों में निशा के स्थान पर निश् आदेश विकल्प से होता है। देखिए टिप्पणी पृ० ६८ पर।



७०—षकारान्त शब्द

पु० द्विष्—शत्रु

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	द्विद्, द्विड्	द्विषौ	द्विष
स०	हे द्विद्, हे द्विड्	हे द्विषौ	हे द्विष
द्वि०	द्विषम्	द्विषौ	द्विष
तृ०	द्विषा	द्विड्म्याम्	द्विड्भि
च०	द्विषे	द्विड्म्याम्	द्विड्म्ये
प०	द्विष	द्विड्म्याम्	द्विड्म्य
ष०	द्विष	द्विषो	द्विषाम्
स०	द्विषि	द्विषो	द्विट्सु, द्विट्सु

स्त्री० प्रावृष्—वर्षा ऋतु

	प्रावृट्, प्रावृड्	प्रावृषौ	प्रावृष
प्र०	प्रावृट्, प्रावृड्	प्रावृषौ	प्रावृष
स०	हे प्रावृट्, हे प्रावृड्	हे प्रावृषौ	हे प्रावृष
द्वि०	प्रावृषम्	प्रावृषौ	प्रावृष
तृ०	प्रावृषा	प्रावृड्म्याम्	प्रावृड्भि
च०	प्रावृषे	प्रावृड्म्याम्	प्रावृड्म्य
प०	प्रावृष	प्रावृड्म्याम्	प्रावृड्म्य
ष०	प्रावृष	प्रावृषो	प्रावृषाम्
स०	प्रावृषि	प्रावृषो	प्रावृट्सु, प्रावृट्सु

७१—सकारान्त शब्द

पु० चन्द्रमस्—चंद्रमा

	चन्द्रमा	चन्द्रमसौ	चन्द्रमस
प्र०	चन्द्रमा	चन्द्रमसौ	चन्द्रमस
स०	हे चन्द्रमस	हे चन्द्रमसौ	हे चन्द्रमस
द्वि०	चन्द्रमसम्	चन्द्रमसौ	चन्द्रमस
तृ०	चन्द्रमसा	चन्द्रमोम्याम्	चन्द्रमोभि
च०	चन्द्रमसे	चन्द्रमोम्याम्	चन्द्रमोम्य

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प०	चन्द्रमस	चन्द्रमोभ्याम्	चन्द्रमोभ्य
ष०	चन्द्रमस	चन्द्रमसो	चन्द्रमसाम्
स०	चन्द्रमसि	चन्द्रमसो	चन्द्रम सु-स्तु

दिवोक्त्स् (देवता), महौजस् (बडा तेज वाला), वेघस् (बह्वा), सुमनस् (अच्छा चित्त वाला), महायशस् (बडा यशस्वी), महादेजस् (बडी कान्ति वाला), विशालवक्षस् (बडी छाती वाला), दुर्वासस् (दुर्वासा—बुरे कपडो वाला), प्रचेतस् (वरुण) इत्यादि सभी सकारान्त पुल्लिङ्ग शब्दों के रूप चन्द्रमस् के समान होते हैं।

पुं० मास्—महीना

द्वि०			मास
तृ०	मासा	मासां	मासि
च०	मासे	माभ्याम्	माभ्य
प०	मास	माभ्याम्	माभ्य
ष०	मास	मासो	मासाम्
स०	मासि	मासो	{ मा सु मास्तु

नोट—इस मास् पुल्लिङ्ग के प्रथम पाँच विभक्तियों में अकारान्त मास शब्द के रूप प्रयुक्त होते हैं। शस् के आगे की विभक्तियों में मास के स्थान पर मास् का विकल्प से प्रयोग होता है। देखिए टिप्पणी पृ० ६८ पर।

पुं० पुम्स्—पुरुष

प्र०	पुमान्	पुमांसी	पुमांस
स०	हे पुमन्	हे पुमांसी	हे पुमांस-
द्वि०	पुमासम्	पुमासी	पुस
तृ०	पुसा	पुम्भ्याम्	पुम्भि
च०	पुसे	पुम्भ्याम्	पुम्भ्य
प०	पुस	पुम्भ्याम्	पुम्भ्य
ष०	पुस	पुसो	पुंसाम्
स०	पुसि	पुसी	पुंसु

पु० विद्वस्—विद्वान्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	विद्वान्	विद्वसौ	विद्वास
स०	हे विद्वन्	हे विद्वसौ	हे विद्वास
द्वि०	विद्वासम्	विद्वसौ	विदुषः
तृ०	विदुषा	विद्वद्भ्याम् <sup>१</sup>	विद्वद्भिः
च०	विदुषे	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भ्यः
प०	विदुष	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भ्यः
ष०	विदुष	विदुषो	विदुषाम्
स०	विदुषि	विदुषो	विद्वत्सु

वस् मे अन्त मे होने वाले शब्दों के रूप इसी प्रकार चलते हैं ।

इसके जोड़ का स्त्रीलिङ्ग शब्द "विदुषी" है, जिसके रूप नदी के समान चलते हैं ।

पु० लघीयस्—उससे छोटा

प्र०	लघीयान्	लघीयासौ	लघीयास
स०	हे लघीयन्	हे लघीयासौ	हे लघीयास
द्वि०	लघीयासम्	लघीयासौ	लघीयस
तृ०	लघीयसा	लघीयोभ्याम्	लघीयोभिः

१ वसो सम्प्रसारणम् । ६।४।१३१। सूत्र के अनुसार वस् मे अन्त होने वाले 'म' सञ्ज्ञक व के स्थान पर उ (सम्प्रसारण) हो जाता है । इस प्रकार विदुष विदुषा आदि रूप बनते हैं ।

२ भ्याम् इत्यादि के पूर्व विद्वस् के स् के स्थान मे द् हो जाता है और इस प्रकार विद्वद्भ्याम्, विद्वद्भिः इत्यादि रूप बनते हैं । यह परिवर्तन 'वसुसुध्व-सुस्वनबुहा द' । ८।२।७२। के अनुसार होता है ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
च०	लघीयसे	लघीयोम्याम्	लघीयोम्य
पं०	लघीयस	लघीयोम्याम्	लघीयोम्य
ष०	लघीयस	लघीयसो	लघीयसाम्
स०	लघीयसि	लघीयसो	लघीयस्तु, लघीय सु

श्रेयस्, (अधिक प्रशस्त), गरीयस् (अधिक बड़ा), द्रढीयस् (अधिक मजबूत), द्रन्धीयस् (अधिक लम्बा), प्रथीयस् (अधिक मोटा या बड़ा), इत्यादि इयस् प्रत्यय से बने हुए पुल्लिङ्ग शब्दों के रूप लघीयस् के समान होते हैं।

इनके जोड़ वाले स्त्रीलिङ्ग शब्द श्रेयसी, गरीयसी, द्रढीयसी, द्रन्धीयसी इत्यादि "ई" जोड़कर बनते हैं, जिनके रूप नदी के समान चलते हैं।

#### पु० श्रेयस्—अधिक प्रशंसनीय

प्र०	श्रेयान्	श्रेयांसौ	श्रेयांस
सं०	हे श्रेयन्	हे श्रेयासौ	हे श्रेयांस
द्वि०	श्रेयांसम्	श्रेयांसौ	श्रेयस
तृ०	श्रेयसा	श्रेयोम्याम्	श्रेयोभि
च०	श्रेयसे	श्रेयोम्याम्	श्रेयोम्य
पं०	श्रेयस	श्रेयोम्याम्	श्रेयोम्य
ष०	श्रेयस	श्रेयसो	श्रेयसाम्
स०	श्रेयसि	श्रेयसो	{ श्रेयस्तु श्रेय.सु

#### पुं० दोष्—भुजा

प्र०	दोष	दोषी	दोष
सं०	हे दोष	हे दोषी	हे दोष
द्वि०	दोषम्	दोषी	दोष, दोष्ण

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
तृ०	{ दोषा दोष्णा	{ दोर्म्याम् दोषम्याम्	{ दोमि दोषमि
च०	{ दोषे दोष्णे	{ दोर्म्याम् दोषम्याम्	{ दोर्म्यं दोषम्यं
पं०	{ दोष दोष्ण	{ दोर्म्याम् दोषम्याम्	{ दोर्म्यं दोषम्यं
ष०	{ दोष दोष्ण	{ दोषो दोष्णो	{ दोषो दोष्णो
सं०	{ दोषि दोष्णि दोषणि	{ दोषो दोष्णो	{ दोषु दोषु दोषसु

(क) स्त्री० अप्सरस्—अप्सरा

प्र०	अप्सरा	अप्सरसा	अप्सरस
सं०	हे अप्सर	हे अप्सरसौ	हे अप्सरस
द्वि०	अप्सरसम्	अप्सरसौ	अप्सरस
तृ०	अप्सरसा	अप्सरोर्म्याम्	अप्सरोमि
च०	अप्सरसे	"	अप्सरोर्म्य
पं०	अप्सरस	"	अप्सरोर्म्य
ष०	"	अप्सरसौ	अप्सरसाम्
सं०	अप्सरसि	"	अप्सरस्तु, अप्सरसुः

अप्सरस् शब्द का प्रयोग बहुधा बहुवचन में ही होता है ।<sup>१</sup>

स्त्री० आशिष्—आशीर्वाद

प्र०	आशी	आशिषौ	आशिष
सं०	हे आशी	हे आशिषौ	हे आशिष.

१ स्त्रियां बहुवचनस्य स्मादेकत्वेऽप्सरा अपि—शब्दार्णव ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
द्वि०	आशिषम्	आशिषौ	आशिष
तृ०	आशिषा	आशीर्म्याम्	आशीभि
च०	आशिषे	आशीर्म्याम्	आशीर्म्यं
प०	आशिष	आशीर्म्याम्	आशीर्म्यं
ष०	आशिष	आशिषो	आशिषाम्
स०	आशिषि	आशिषो	आशीष्णु, आशीषु

(ल्ल) नपु० पयस्—दूध या पानी

प्र०	पय	पयसी	पयांसि
स०	हे पय	हे पयसो	हे पयांसि
द्वि०	पय	पयसी	पयांसि
तृ०	पयसा	पयोम्याम्	पयोभि
च०	पयसे	पयोम्याम्	पयोम्य
प०	पयस	पयोम्याम्	पयोम्य
ष०	पयस	पयसो	पयसाम्
स०	पयसि	पयसो	पयस्सु, पयसु

अम्मस् (पानी), नमस् (आकास), आगस् (पाप), उरस् (छाती), मनस् (मन), वयस् (उम्र), रजस् (धूल), वक्षस् (छाती), तमस् (अंधेरा), अयस् (लोहा), वचस् (वचन, बात), यशस् (यश, कीर्ति), सरस् (तालाब), तपस् (तपस्), शिरस् (शिर) इत्यादि सभी असन्त नपुमकलिङ्ग शब्दों के रूप पयस् के समान होते हैं।

नपु० हविस्—होम की वस्तु

प्र०	हवि.	हविषी	हवीषि
स०	हे हवि	हे हविषी	हे हवीषि
द्वि०	हवि	हविषी	हवीषि

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
सु०	हविषा	हविर्म्याम्	हविर्भि
च०	हविषे	हविर्म्याम्	हविर्म्यं
प०	हविष	हविर्म्याम्	हविर्म्यं
ष०	हव्रिष	हविषो	हविषाम्
स०	हविषि	हविषो	हविष्णु, हविषु

समी 'इस्' मे अन्त होने वाले नपुसकलिङ्ग शब्दों के रूप हविस् की तरह होते हैं।

नपु० चक्षुस्—शब्द

प्र०	चक्षु	चक्षुषी	चक्षूषि
सं०	हे चक्षु	हे चक्षुषी	हे चक्षूषि
द्वि०	चक्षु	चक्षुषी	चक्षूषि
तृ०	चक्षुषा	चक्षुर्म्याम्	चक्षुर्भि
च०	चक्षुषे	चक्षुर्म्याम्	चक्षुर्म्यं
प०	चक्षुष	चक्षुर्म्याम्	चक्षुर्म्यं
ष०	चक्षुष	चक्षुषो	चक्षुषाम्
स०	चक्षुषि	चक्षुषो	चक्षुष्णु, चक्षुषु

धनुस् (बनुष), वजुस् (शरीर), आयुस् (उम्र), यजुस् (यजुर्बेद) इत्यादि सब 'उस्' मे अन्त होने वाले नपुसकलिङ्ग शब्दों के रूप चक्षुस् के समान होते हैं।

७२—हकारान्त शब्द

पु० मधुलिह्—शाहब की मधुली, भौरा

प्र०	मधुलिट्, मधुलिङ्	मधुलिहौ	मधुलिह्
स०	हे मधुलिट्, हे मधुलिङ्	हे मधुलिहौ	हे मधुलिह

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
द्वि०	मघुलिहम्	मघुलिहौ	मघुलिह
तृ०	मघुलिहा	मघुलिङ्म्याम्	मघुलिङ्मि
च०	मघुलिहे	मघुलिङ्म्याम्	मघुलिङ्म्य
प०	मघुलिह	मघुलिङ्म्याम्	मघुलिङ्म्य
ष०	मघुलिह	मघुलिहो	मघुलिहाम्
स०	मघुलिहि	मघुलिहो	मघुलिहत्सु, मघुलिहसु

## पु० अण्डुह्—ब्रह्म

प्र०	अण्डवान्	अण्डवाहौ	अण्डवाह
स०	हे अण्डवन्	हे अण्डवाहा	हे अण्डवाह
द्वि०	अण्डवाहम्	अण्डवाहौ	अण्डुह
तृ०	अण्डुहा	अण्डुद्म्याम्	अण्डुद्भि
च०	अण्डुहे	अण्डुद्म्याम्	अण्डुद्म्य
प०	अण्डुह	अण्डुद्म्याम्	अण्डुद्म्य
ष०	अण्डुह	अण्डुहो	अण्डुहाम्
स०	अण्डुहि	अण्डुहो	अण्डुहत्सु

## स्त्री० उपानह्—ब्रूता

प्र०	उपानह्, उपानद्	उपानहौ	उपानह
स०	{ हे उपानत् हे उपानद्	हे उपानहौ	हे उपानह
द्वि०	उपानहम्	उपानहौ	उपानह
तृ०	उपानहा	उपानद्म्याम्	उपानद्भि
च०	उपानहे	उपानद्म्याम्	उपानद्म्य
प०	उपानह	उपानद्म्याम्	उपानद्म्य
ष०	उपानह	उपानहो	उपानहाम्
स०	उपानहि	उपानहो	उपानहत्सु



# चतुर्थ सोपान

## सर्वनाम-विचार

७३—हिन्दी में 'सर्वनाम' शब्द का अर्थ 'किसी सज्ञा के स्थान में आया हुआ शब्द' है और यही अर्थ अंग्रेजी के 'प्रोनाउन' शब्द का भी है। किन्तु संस्कृत में सर्वनाम शब्द से ऐसे ३५ शब्दों का बोध होता है जो 'सर्व' शब्द से आरम्भ होते हैं और जिनके रूप प्रायः एक से चलते हैं।

इदं समास को छोड़कर यदि अन्य किसी समास के अन्त में ये सर्व इत्यादि सर्वनाम शब्द हों तो उनकी भी सर्वनाम ही सज्ञा होती है।

१ सर्वादीनि सर्वनामानि ।१।१।२७।

"सर्वादि" में निम्नलिखित ३५ शब्द हैं—

१—सर्व, २—विश्व, ३—उभ, ४—उभय, ५—इतर अर्थात् इतर प्रत्ययान्त शब्द यथा कतर, यतर इत्यादि। ६—इतम अर्थात् इतम प्रत्ययान्त शब्द यथा कतम, यतम इत्यादि। ७—अन्य, ८—अन्यतर, ९—इतर, १०—त्वत्, ११—त्व, १२—नेम, १३—सम, १४—सिम, १५—पूर्व, १६—पर, १७—अवर, १८—दक्षिण, १९—उत्तर, २०—अपर, २१—अघर, २२—स्व, २३—अन्तर, २४—त्यद्, २५—तद्, २६—यद्, २७—एतद्, २८—इदम्, २९—अदस्, ३०—एक, ३१—द्वि, ३२—युष्मद्, ३३—अस्मद्, ३४—भवत्, ३५—किम्। इनमें 'त्वत्' और 'त्व' दोनों ही 'अन्य' के पर्याय हैं। 'नेम' अर्थ का और 'सम' सर्व का पर्याय है। 'सम' तुल्य का पर्याय होने पर सर्वनाम नहीं होगा। उस अवस्था में उसका रूप नर के समान होगा जैसा पाणिनि के 'यथासख्यननुदेश समानाम्' इस सूत्र से स्पष्ट है। 'सिम' सम्पूर्ण का पर्याय है। 'स्व' भी निज का वाचक होने पर ही सर्वनाम होता है, 'जाति वाले व्यक्ति' या 'धन' का वाचक होने पर नहीं (स्वमज्ञातिघनाख्यायाम् ।१।१।३५।)

२ तदन्तस्यापि इय सज्ञा। इन्द्रे चेति ज्ञापकात्। तेन परमसर्वत्रेति त्रल परमभवकानित्यत्राकच्च सिध्यति। पूर्व उद्धृत सूत्र ।१।१।२७। पर अट्टोक्ति की वृत्ति।

सं० व्या० प्र०— ४

किसी के नाम होने पर तथा समास में गौण स्थानमागी होने पर इन शब्दों की सर्वनाम सज्ञा नहीं होती।

(१) इन सर्वनामों में कुछ तो उभे अर्थ में सर्वनाम है जिस अर्थ में हिन्दी में सर्वनाम शब्द आता है।

(२) कुछ विशेषण हैं और

(३) कुछ सख्यावाची शब्द हैं।

इस परिच्छेद में केवल प्रथम श्रेणी के शब्दों पर विचार किया जायगा।

७४—उत्तमपुरुषवाची 'अस्मद्' शब्द के रूप तीनों लिङ्गों में इस प्रकार चलते हैं—

### अस्मद्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	अहम्	आवाम्	वयम्
द्वि०	माम्, मा	आवाम्, नौ	अस्मान्, न
तृ०	मया	आवाभ्याम्	अस्माभि
च०	मह्यम्, मे	आवाभ्याम्, नौ	अस्मभ्यम्, न
प०	मत्	आवाभ्याम्	अस्मत्
स०	मम, मे	आवयो, नौ	अस्माकम्, न
स०	मयि	आवयो	अस्मासु

(क) इनमें से 'मा नौ न, मे नौ न, मे नौ न' वैकल्पिक रूप सब जगह प्रयोग में नहीं लाये जा सकते। वाक्य के आरम्भ में, पद्य के चरण के आदि में, तथा च, च, ह, हा, अह, एव—इन अव्ययों के साथ तथा सम्बोधन शब्द (हरे बालक ! आदि) के ठीक अनन्तर इनका प्रयोग वर्जित है। किन्तु यदि सम्बोधन पद का विशेषण भी सम्बोधन रूप से प्रयुक्त हो तो इसका प्रयोग होता है। "मे गृहम्" कहना संस्कृतव्याकरण के अनुसार निषिद्ध है, क्योंकि 'मे' वाक्य के आरम्भ में है इत्यादि।

१ सज्ञोपसर्जनीभूतास्तु न सर्वादय (वा०)

(ख) 'अस्मद्' शब्द के रूप लिङ्ग के अनुसार नहीं बदलते। वक्ता चाहे पुरुष हो या स्त्री, अपने लिए 'अहम्' का ही प्रयोग करेगा। इसी प्रकार अन्य विभक्तियों में भी समझना चाहिए।

७५—मध्यमपुरुषवाची 'युष्मद्' शब्द के रूप तीनों लिङ्गों में इस प्रकार होते हैं—

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	त्वम्	युवाम्	युष्मद्
द्वि०	त्वाम्, त्वा	युवाम्, वाम्	युष्मान्, व
तृ०	त्वया	युवाभ्याम्	युष्मामि
च०	तुभ्यम्, ते	युवाभ्याम्, वाम्	युष्मभ्यम्, व
प०	त्वत्	युवाभ्याम्	युष्मत्
ष०	तव, ते	युवयोः, वाम्	युष्माकम्, व
स०	त्वयि	युवयोः	युष्मासु

ऊपर—७४ (क) में उल्लिखित नियम युष्मद् शब्द के वैकल्पिक (त्वा वाम् व, ते वाम् व, ते वाम् व) रूपों पर भी ठीक उसी प्रकार लागू है। ७४ (ख) नियम भी यहाँ लागू है।

नोट—

मा नौ न, मे नौ न, मे नौ न,  
त्वा वा व, ते वा व, ते वा व,

इनके प्रयोगों को दिखाने के लिए दो श्लोक नीचे दिये जाते हैं—

भीशस्त्वावतु मापीह दत्ता ते मेऽपि शर्म स ।  
स्वामी ते मेऽपि स हरि पातु वामपि नौ विभु ॥  
सुख वा नौ ददात्वीश पतिर्वामपि नौ हरि ।  
सुखऽव्याहो न शिव वो नो दद्यात्सेव्योऽत्र व स न ॥

'युष्मद्' और 'अस्मद्' शब्दों की प्रथमा, द्वितीया तथा चतुर्थी में सभी वचनों में अन् आदेश होता है।

प्रथमा<sup>१</sup> विभक्ति 'सु' के जुड़ने पर (एकवचन) में युष्मद् और अस्मद् के युष्म और अस्म के स्थान पर 'व' और 'अह' आदेश होते हैं एव 'टि' का लोप होकर 'त्व' और 'अह' रूप बनते हैं।

इसी<sup>२</sup> प्रकार प्रथमा और द्वितीया के द्विवचन में युष्मद् और अस्मद् के युष्म और अस्म के स्थान पर युव और आव का आदेश होता है तथा दोनों के अन्तिम अ का दीर्घ हो जाता है।

जसु<sup>३</sup> प्रत्यय के जुड़ने पर युष्मद् और अस्मद् के स्थान पर यूय और वय आदेश होते हैं।

अन्य<sup>४</sup> विभक्तियों के एकवचन में युष्मद् और अस्मद् के युष्म और अस्म स्थानों पर त्व और म आदेश होते हैं।

द्वितीया<sup>५</sup> विभक्ति में त्व और म का अकार दीर्घ हो जाता है।

द्वितीया<sup>६</sup> बहुवचन के प्रत्यय को अस्म आदेश न होकर 'न्' आदेश होता है और युष्म और अस्म के अ का दीर्घ हो जाता है।

जहा<sup>७</sup> युष्मद् और अस्मद् को कोई दूसरा आदेश न हुआ हो और व्यजन से आरम्भ होने वाली विभक्ति आने जुड़ती हो वहाँ युष्मद् और अस्मद् के अद् के स्थान पर आकार हो जाता है।

डे के जुड़ने पर क्रमशः तुभ्य और मह्य आदेश होते हैं।

डसि<sup>८</sup> और भ्यस के अत् आदेश होता है।

१ त्वाहौ सौ ।७।२।१४।

२ युवावौ द्विवचने ।७।२।१२।

३ यूयवयौ ।७।२।१३।

४ त्वमावैकवचने ।७।२।१७।

५ द्वितीयाया च ।७।२।८७।

६ शसौ न ।७।१।२६।

७ युष्मदस्मदीरनादेशे ।७।२।८६।

८ तुम्यमहौ डयि ।७।२।१५।

९ एकवचनस्य च । पञ्चम्या अत् ।७।१।३२-३१।

युष्मद्<sup>१</sup> और अस्मद् की षष्ठी के एकवचन में तब और मम आदेश होते हैं ।

युष्मद्<sup>१</sup> और अस्मद् की षष्ठी के बहुवचन को आकम् आदेश होता है ।

७६—संस्कृत के 'भवत्' शब्द का अर्थ 'आप' है । इसके रूप तीनो लिङ्गो और तीनो वचनो में चलते हैं और क्रिया आदि का प्रयोग करने के लिए यह अन्य-पुरुषवाची है । यथा—भवान् आगच्छतु, न कि भवान् आगच्छ । पुल्लिङ्ग में इसके रूप श्रीमत् (देखिए ६१ के अन्तर्गत श्रीमत् शब्द के रूप) के समान भवान् भवन्तौ भवन्त इत्यादि चलते हैं, नपुंसकलिङ्ग में त्वम् (देखिए ६१ ग) के समान भवत्, भवती, भवन्ति आदि होते हैं । स्त्रीलिङ्ग में यह शब्द 'भवती' ईकारान्त हो जाता है और नदी (देखिए ५४) के समान भवती, भवत्यौ, भवत्य आदि इसके रूप होते हैं ।

(क) भवत् के पूर्व कभी-कभी 'अत्र' शब्द जोड़ कर 'अत्रभवत्' और तत्रभवत् शब्द होते हैं । इन शब्दों के रूप में ठीक भवत् के समान चलते हैं, केवल अर्थ में थोड़ा भेद है । 'अत्रभवत्' का प्रयोग निकटवर्ती किसी मान्य पुरुष के सम्बन्ध में होता है और 'तत्रभवत्' का प्रयोग दूरवर्ती तथा परोक्षवर्ती के सम्बन्ध में, यथा—अत्रभवान् आचार्य्यः अस्मान् आज्ञापयति, तत्रभवान् कालिदास प्रख्यात कविरासीत्—इत्यादि । यहाँ अत्र और तत्र में वही विभक्ति समझनी चाहिए, जो भवत् में लगी है । यह त्रल् प्रत्यय उसी विभक्ति के अर्थ में इदम् और तद् से सयुक्त हुआ है । इस प्रकार अत्र भवत् का अर्थ है इम भवन्त तथा तत्र भवताम् का विषय भवताम् ।

७७—'यद्' शब्द के लिए संस्कृत में दो शब्द हैं—'इदम्' और 'एतद्' । इसी प्रकार 'तद्' के लिए भी दो शब्द हैं—'तद्' और 'अदस्' । इनके प्रयोग में कुछ भेद है । वह इस प्रकार है—

इदमस्तु सन्निकृष्ट समीपतरवति चैतदो रूपम् ।

अदसस्तु विप्रकृष्ट तदिति परोक्षे विजानीयात् ॥

१ तवममौ इति । ७।२।६६।

२ साम आकम् । ७।१।३३।

अर्थात् 'इदम्' शब्द के रूपो का प्रयोग तब करना चाहिए जब किसी निकटस्थ वस्तु का बोध कराना हो, यदि किसी बहुत ही निकटस्थ वस्तु का बोध कराना हो तो 'एतद्' शब्द के रूपो का प्रयोग करना चाहिए और यदि दूरस्थ वस्तु का बोध कराना हो तो 'अदस्' शब्द के रूपो को काम में लाना चाहिए। 'तद्' शब्द के रूपो का प्रयोग केवल ऐसी वस्तुओ के विषय में करता चाहिए जो सामने नहीं है—परोक्ष है। उदाहरणार्थ, यदि मेरे पास दो पुस्तकें बैठे हैं तो मुझसे जो बहुत निकट बैठा है उसके विषय में 'एतद्' शब्द और जो जरा दूर है, उसके विषय में 'इदम्' शब्द का प्रयोग करना चाहिए। इस प्रकार यदि कोई पुस्तक दूर खड़ा है और उसके विषय में कोई बात कहनी है तो 'अदस्' शब्द का प्रयोग करेगा। 'तद्' शब्द का प्रयोग ऐसे लोगों के विषय में होगा, जो इस समय दृष्टिगोचर नहीं हैं। इन चारों शब्दों के रूप तीनों लिङ्गों में चलते हैं जो नीचे दिखाये जाते हैं—

इदम् और एतद् के रूपों को देखने से प्रकट होगा कि इनके कुछ वैकल्पिक रूप भी हैं—इदम् के (पु०) एनम्, एनो, एनान्, एनेन, एनयो, एनयो, (नपु०) एनत्, एने, एनानि, एनेन, एनयो, एनयो और (स्त्री०) एनाम्, एने, एना, एनया, एनयो, एनयो। एतद् के भी ये ही रूप हैं। जब इदम् शब्द अथवा एतद् शब्द के साधारण रूपों में से किसी का प्रयोग हो चुका होता है और जब फिर उसी वस्तु के विषय में कुछ और बात कहनी रहती है तब इन विशेष रूपों का प्रयोग हो सकता है। इसके लिए इस प्रकार नियम है —

इदम् और एतद् को द्वितीया में, तृतीया एकवचन में तथा षष्ठी और सप्तमी के द्विवचन में 'एन' आदेश हो जाता है और ऐसा अन्वादेश में ही होता है। एक बार कही हुई वस्तु का कार्यान्तर के लिए पुनरुल्लेख करना अन्वादेश कहलाता है, जैसे—

एतद् वस्त्रं सुष्ठु धावय मैनत् पाटय—इस कपड़े को अच्छी तरह धोना, इसे फाड़ मत डालना।

१ द्वितीयाटौस्त्वेन ।२।४।३४। द्वितीयाया टोसोश्च परत इदमेत-  
दोरेनादेश स्यादन्वादेशे। किञ्चित्कार्यं विधातुमुपात्तस्य कार्यन्तरं विधातु  
पुनरुपादानमन्वादेशः। सि० कौ०

यहाँ उसी वस्त्र के लिए पहिले एतद् प्रयुक्त हुआ, बाद में उसी के लिए एनत् आया।

एष पञ्चविंशतिवर्षदेशीयोऽधुना एनम् उद्वाहय—यह पच्चीस वर्ष के लगभग हो गया, इसका अब ब्याह कर दो।

यहाँ भी पहले 'एष' आया, तदनन्तर 'एनम्' आया।

### (क) इदम्—यह

	एकवचन	पुल्लिङ्ग	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	अयम्	इमौ	इमौ	इमे
द्वि०	इमम्, एनम्	इमौ, एनौ	इमान्, एनान्	इमान्, एनान्
तृ०	अनेन, एनेन	आभ्याम्	आभ्याम्	एभि
च०	अस्मै	आभ्याम्	आभ्याम्	एभ्य
प०	अस्मात्, द्	आभ्याम्	आभ्याम्	एभ्य
ष०	अस्य	अनयो, एनयो	अनयो, एनयो	एषाम्
स०	अस्मिन्	अनयो, एनयो	अनयो, एनयो	एषु

इदम् 'शब्द' के 'इद्' का पुल्लिङ्ग में अय् आदेश हो जाता है।

क<sup>३</sup> रहित इदम् शब्द के 'इद्' का तृतीया से सप्तमी तक 'अन्' हो जाता है। क-युक्त होने पर 'इमके' इत्यादि होगा। (आप् प्रत्याहार तृतीया से सप्तमी तक का बोधक है)।

क-रहित<sup>१</sup> इदम् और अदस् शब्द में भिस् (तृतीया बहुवचन) के स्थान में ऐस् (ऐ) नहीं होता। क-युक्त होने पर हो जाता है, यथा, इमकै।

यदि<sup>२</sup> इदम् के आगे तृतीया से सप्तमी तक की विभक्तियों की कोई ऐसी विभक्ति जुड़े जो व्यजन से आरम्भ होती हो तो इदम् के 'इद्' का लोप हो

१ इदोज्य पुंसि ।७।२।१११।

२ अनाप्यक ।७।२।११२।

३ नेदमदसोरको ।७।१।१११।

४ हलि लोप ।७।२।११३।

जायगा और शेष केवल अ बचेगा, क्योंकि इदम् का म् तो पहिले से ही त्यस-  
दीनाम १७।२।१०२। से अ होकर इद के अ को भी अतोगुणे १६।१।६७। मे अपने  
रूप मे मिला लेता है। इस प्रकार, अस्मै, आभ्याम्, अस्मात्, अस्मिन् इत्यादि  
पद सिद्ध होते हैं। आभ्याम् इत्यादि मे बालकाभ्याम् इत्यादि की भाँति दीर्घ  
हो जाता है।

## नपुंसकलिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	इदम्	इमे	इमानि
द्वि०	इदम्, एनत्	इमे, एने	इमानि, एनानि
तृ०	अनेन, एनेन	आभ्याम्	एभि
च०	अस्मै	आभ्याम्	एभ्य
प०	अस्मात्, द्	आभ्याम्	एभ्य
ष०	अस्य	अनयो, एनयो	एषाम्
स०	अस्मिन्	अनयो, एनयो	एषु

## स्त्रीलिङ्ग

प्र०	इयम्	इमे	इमा
द्वि०	इमाम्, एनाम्	इमे, एने	इमा, एना
तृ०	अनया, एनया	आभ्याम्	आभि
च०	अस्यै	आभ्याम्	आभ्य
प०	अस्या	आभ्याम्	आभ्य
ष०	अस्या	अनयो, एनयो	आसाम्
स०	अस्याम्	अनयो, एनयो	आसु

## (ख) एतद्—यह

## पुंलिङ्ग

प्र०	एष	एतो	एते
द्वि०	एतम्, एतम्	एतो, एनो	एतान्, एनान्
तृ०	एतेन, एनेन	एताभ्याम्	एतैः



	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
च०	एतस्मै	एताभ्याम्	एतेभ्य
प०	एतस्मात्, इ	एताभ्याम्	एतेभ्य
ष०	एतस्य	एतयो , एनयो	एतेषाम्
स०	एतस्मिन्	एतयो , एनयो	एतेषु

नपुंसकलिङ्ग

प्र०	एतत्, इ	एते	एतानि
द्वि०	{ एतत्, इ एनत्, इ	एते, एने	एतानि, एनानि
तृ०	एतेन, एनेन	एताभ्याम्	एतौ
च०	एतस्मै	एताभ्याम्	एतेभ्य
प०	एतस्मात्, इ	एताभ्याम्	एतेभ्य
ष०	एतस्य	एतयो , एनयो	एतेषाम्
स०	एतस्मिन्	एतयो , एनयो	एतेषु

स्त्रीलिङ्ग

प्र०	एषा	एते	एता
द्वि०	एताम्, एनाम्	एते, एने	एता , एना
तृ०	एतया, एनया	एताभ्याम्	एताभि
च०	एतस्यै	एताभ्याम्	एताभ्य
प०	एतस्या	एताभ्याम्	एताभ्य
ष०	एतस्या	एतयो , एनयो	एतासाम्
स०	एतस्याम्	एतयो , एनयो	एतासु

(ग) तद्—बह

पुल्लिङ्ग

प्र०	स	तौ	ते
द्वि०	तम्	तौ	तान्
तृ०	तेन	ताभ्याम्	तै

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
च०	तस्मै	ताभ्याम्	तेभ्य
प०	तस्मात्	ताभ्याम्	तेभ्य
ष०	तस्य	तयो	तेषाम्
स०	तस्मिन्	तयो	तेषु
		नपुंसकलिङ्ग	
श्र०	तत्, द्	ते	तानि
द्वि०	तत्, द्	ते	तानि
तृ०	तेन	ताभ्याम्	तै
च०	तस्मै	ताभ्याम्	तेभ्य
प०	तस्मात्, द्	ताभ्याम्	तेभ्य
ष०	तस्य	तयो	तेषाम्
स०	तस्मिन्	तयो	तेषु
		स्त्रीलिङ्ग	
प्र०	सा	ते	ता
द्वि०	ताम्	ते	ता
तृ०	तया	ताभ्याम्	ताभि
च०	तस्यै	ताभ्याम्	ताभ्य
प०	तस्या	ताभ्याम्	ताभ्य
ष०	तस्यै	तयो	तासाम्
स०	तस्याम्	तयो	तासु

त्यदादि (त्यद्, तद्, एतद्, यद्, इदम्, अदस्, एक, द्वि) सर्वनामो के बाद विभक्ति जुड़ने पर अन्तिम वर्ण के स्थान में अ्र हो जाता है।

त्यद् इत्यादि सर्वनाम शब्दो के आगे सु (प्रथमा एकवचन) विभक्ति जुड़ने पर त् तथा द् के स्थान में स का आदेश हो जाता है। परन्तु अन्त वाले त् या द् के स्थान में नहीं। इस प्रकार तद्+सु=स्+अ (७।२।१०२) के

१ त्यदादीनाम ७।२।१०२। (द्विपर्यन्तानामेवेष्टि)।

२ तदो स सावनन्त्ययो ७।२।१०६।

अनुसार अन्तिम द् के स्थान मे हो जायगा ।) +स्=स । इत्ती प्रकार एष इत्यादि भी बनेगा ।

(घ) अदस्—बह

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	असौ	असू	असी
द्वि०	अमुम्	अमू	अमून्
तृ०	अमुना	अमूभ्याम्	असीभिः
च०	अमुष्मै	अमूभ्याम्	असीभ्यः
प०	अमुष्मात्, द्	अमूभ्याम्	असीभ्यः
ष०	अमुष्य	अमूयो	असीषाम्
स०	अमुष्मिन्	अमूयो	असीषु
तपुसकलिङ्ग			
प्र०	अद	अम्	अमूनि
द्वि०	अद	अम्	अमूनि
तृ०	अमुना	अमूभ्याम्	असीभिः
च०	अमुष्मै	अमूभ्याम्	असीभ्यः
प०	अमुष्मात्, द्	अमूभ्याम्	असीभ्यः
ष०	अमुष्य	अमूयो	असीषाम्
स०	अमुष्मिन्	अमूयो	असीषु
स्त्रीलिङ्ग			
प्र०	असौ	अम्	अम्
द्वि०	अमुम्	अम्	अम्
तृ०	अमुया	अमूभ्याम्	अमूभिः
च०	अमुष्यै	अमूभ्याम्	अमूभ्यः
प०	अमुष्या	अमूभ्याम्	अमूभ्यः
ष०	अमुष्या	अमूयो	अमूषाम्
स०	अमुष्याम्	अमूयो	अमूषु

७६—सम्बन्धसूचक हिन्दी के 'जो' शब्द के लिए सस्कृत में 'यद्' शब्द है। इसके रूप तीनों लिङ्गों में भिन्न-भिन्न होते हैं जो नीचे दिये जाते हैं। इसके साथ-साथ 'तो' शब्द के लिए 'तद्' शब्द के रूप आवश्यकता के अनुसार प्रयोग में आते हैं, यथा—

यो मद्भक्त स मे प्रिय—।

बुद्धिर्यस्य बल तस्य।

असुर्या नाम ते लोका अन्वेन तमसावृता ।

तास्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जना ।।

(जो मनुष्य आत्महत्या करते हैं वे मर कर ऐसे लोको में पहुँचते हैं जो असुरों के हैं तथा जिनमें सदा अँधेरा रहता है।)

यद्—जो

पुल्लिङ्ग

द्विवचन

बहुवचन

प्र०	एकवचन य	द्विवचन यो	बहुवचन ये
द्वि०	यम्	यो	यान्
तृ०	येन	याम्याम्	यै
च०	यस्मै	याम्याम्	येभ्य
प०	यस्मात्, इ	याम्याम्	येभ्य
ष०	यस्य	ययो	येषाम्
स०	यस्मिन्	ययो	येषु
		नपुंसकलिङ्ग	
प्र०	यद्, इ	ये	यानि
द्वि०	यद्, इ	ये	यानि
तृ०	येन	याम्याम्	यै
च०	यस्मै	याम्याम्	येभ्य
पं०	यस्मात्,	याम्याम्	येभ्य
ष०	यस्य	ययो	येषाम्
स०	यस्मिन्	ययो	येषु

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	या	ये	या
द्वि०	याम्	ये	या
तृ०	यया	याम्याम्	यामि
च०	यस्यै	याम्याम्	याम्यै
प०	यस्या	याम्याम्	याम्यै
ष०	यस्या	ययो	यासाम्
स०	यस्याम्	ययो	यासु

७६—प्रश्नवाची सर्वनाम 'कौन', 'क्या' के लिए संस्कृत में 'किम्' शब्द है, इसके रूप तीनों लिङ्गों में नीचे लिखे प्रकार से जलते हैं। उदाहरणार्थ, क आगत ? (कौन आया है ?), का आगता ? (कौन स्त्री आयी है ?), किमस्ति (क्या है ?) आदि इसके प्रयोग होते हैं।

(क) इसी शब्द के रूपों के साथ 'अपि', 'चित्' अथवा 'चन' जोड़ देने से हिन्दी के किसी, कोई, कुछ आदि अनिश्चयवाचक सर्वनामों का बोध होता है, यथा—

कोऽपि आगतोऽस्ति	}	—कोई आया है।
कश्चिदागतोऽस्ति		
कश्चनागतोऽस्ति		
कोऽप्यागताऽस्ति	}	—कोई आयी है।
काचिदागताऽस्ति		
काचिनागताऽस्ति		
किमप्यस्ति	}	—कुछ है।
किञ्चिदस्ति		
किञ्चनास्ति		

किम्—कौन

	पुल्लिङ्ग	कौ	के
प्र०	क	कौ	के
द्वि०	कम्	कौ	कान्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
तृ०	केन	काम्याम्	कै
च०	कस्मै	काम्याम्	केभ्य
प०	कस्मात्, द्	काम्याम्	केभ्य
ष०	कस्य	कयो	केषाम्
स०	कस्मिन्	कयो	केषु

## नपुसकलिङ्ग

प्र०	किम्	के	कानि
द्वि०	किम्	के	कानि
तृ०	केन	काम्याम्	कै
च०	कस्मै	काम्याम्	केभ्य
प०	कस्मात्, द्	काम्याम्	केभ्य
ष०	कस्य	कयो	केषाम्
स०	कस्मिन्	कयो	केषु

## स्त्रीलिङ्ग

प्र०	का	के	का.
द्वि०	काम्	के	का
तृ०	कया	काम्याम्	कामि
च०	कस्य	काम्याम्	काम्य
प०	कस्या	काम्याम्	काम्य
ष०	कस्या	कयो	कासाम्
स०	कस्याम्	कयो	कासु

८०—हिन्दी के निजवाचक सर्वनाम (Reflexive Pronoun) 'अपने आप', 'अपने को' आदि का अर्थ बोध कराने के लिए संस्कृत में तीन शब्दों का प्रयोग होता है—(१) आत्मन्, (२) स्व, (३) स्वयम्। इस अर्थ का बोध कराने के लिए आत्मन् शब्द के रूप केवल पुल्लिङ्ग एकवचन में चलते हैं और सभी लिङ्गों और वचनों में निजवाचकता का अर्थ देते हैं, जैसे—

स आत्मान निन्दितवान्,  
 सा आत्मान निन्दितवती,  
 सर्वा राजकन्या आत्मान मुकुरे अद्राक्षु,  
 सा आत्मानमपराधिनममन्यत,  
 सा आत्मनि कमपि दोष नाद्राक्षीत,  
 तच्छरीरमात्मनैव विनष्टम्, इत्यादि ।

‘स्व’ शब्द के चार अर्थ होते हैं—नातेदार, धन, आत्मीय और अपने आप । इनमे से जब इसका अर्थ ‘आत्मीय’ या ‘अपने आप’ होता है, तभी यह सर्वनाम होता है । तब इसके रूप सर्व शब्द (८८) के समान तीनों लिङ्गों में अलग-अलग चलते हैं, केवल पुल्लिङ्ग प्रथमा बहुवचन तथा पचमी और सप्तमी के एकवचन में बालक के समान भी रूप होते हैं—स्व, स्वा, स्वात्, स्वस्मात्, स्वे, स्वस्मिन् । ‘स्वयम्’ शब्द अव्यय है । सब लिङ्गों और सब वचनों में यह ऐसा ही प्रयोग में आता है, यथा—

सा स्वयमपराध कृत्वा दोषं भयं क्षिप्तवती । राजा स्वयमुत्कोच गृह्णाति मन्त्रिणा का कथा, इत्यादि ।

(क) परस्परवाची सर्वनाम संस्कृत में तीन होते हैं—परस्पर, अन्योन्य और इतरेतर । इनके रूप बालक के समान होते हैं, और एकवचन में ये क्रिया-विशेषण के रूप में ही प्रयुक्त होते हैं ।

परस्पर निवादि कृतवान्,  
 अन्योन्येभ मिलितम्,  
 इतरेतरस्य सौभाग्य दूषयति ।

८१—निश्चयवाचक सर्वनाम (यही, वही, उसी ने) का निश्चयात्मक अर्थ बतलाने के लिए सर्वनाम के रूप के साथ ‘एव’ शब्द जोड़ कर संस्कृत में निश्चय का बोध कराते हैं, यथा—

क आगत ? स एव पुन आगत ।  
केनेद कृतम् ? तेनैव तु कृतम् इत्यादि ।

अनिश्चयात्मक ७६ (क) सर्वनामो को छोड कर ऊपर लिखे और सः  
सर्वनामो के साथ इस प्रकार 'एव' जोड कर 'ही' का निश्चयात्मक अर्थ प्रकट  
किया जा सकता है ।

DR. RUPNATHJI ( DR. RUPAK NATH )



## पञ्चम सोपान

### विशेषण-विचार

८२—हिन्दी में कमी-कमी तो विशेष्य के लिङ्ग और वचन के अनुसार विशेषण बदलता है (जैसे, अच्छा लडका, अच्छे लडके, अच्छी लडकी, अच्छी लडकियाँ), किन्तु बहुधा नहीं बदलता (जैसे, लाल घोडा, लाल घोडी, लाल घोडे, लाल घोडियाँ)। सस्कृत में विशेष्य के लिङ्ग, वचन और विभक्ति के अनुसार विशेषण का रूप बदलता है। जिस लिङ्ग, जिस वचन और जिस विभक्ति का विशेष्य होता है, उसी लिङ्ग, उसी वचन और उसी विभक्ति का विशेषण भी होता है। यहाँ तक कि ऐसे विशेष्यो के साथ भी विशेषण बदलता है, जो लिङ्ग के लिए भिन्न रूप नहीं रखते, किन्तु जिनका प्रकरण आदि से लिङ्ग अवगत हो जाता है, यथा हिन्दी में 'मैं सुन्दर हूँ' इस वाक्य का अनुवाद सस्कृत में 'अहं सुन्दरोऽस्मि' और 'अहं सुन्दरी अस्मि'—इन दोनों वाक्यो से होगा। यदि बोलने वाला पुरुष है तो प्रथम वाक्य प्रयोग में आवेगा और यदि वह स्त्री है तो दूसरा वाक्य। हिन्दी में विशेषणो के साथ अलग विभक्तिसूचक परसर्ग (का, मे आदि) नहीं लगाने जाते जैसे—'पढ़े-लिखे मनुष्यो का आदर होता है'—इस वाक्य में 'परसर्ग' केवल 'मनुष्यो' के पश्चात् लगाया गया है, विशेषण 'पढ़े-लिखे' के पश्चात् नहीं। परन्तु सस्कृत में विशेषण और विशेष्य दोनों में विभक्तियाँ लगती हैं। ऊपर के वाक्य का अनुवाद होगा—शिक्षिताना मनुष्याणामादर क्रियते (अथवा भवति)। इस प्रकार सज्ञा की तरह सस्कृत में विशेषण के भी लिङ्ग, वचन और विभक्ति के भिन्न-भिन्न रूप होते हैं। कुछ सख्यावाची विशेषण, शत, विंशति, त्रिंशत् आदि जिनके लिङ्ग नियत हैं और वचन

भी विशेष अर्थ में ही बदलते हैं, विशेष्य के लिङ्ग और वचन के अनुसार नहीं बदल सकते, किन्तु विभक्ति के अनुसार बदलते ही हैं। (विशेष-विशेष स्थलो पर इसका विस्तृत वर्णन किया गया है)।

अधिकतर विशेषणों के रूप सज्ञाओं के समान ही होते हैं, जैसे अकारान्त विशेषण चतुर, कुशल, सुन्दर आदि के पुल्लिङ्ग में अकारान्त बालक के समान और नपुंसकलिङ्ग में अकारान्त फल के समान रूप होते हैं। इसी प्रकार ईकारान्त विशेषण सुन्दरी, चन्द्रमुखी आदि के रूप ईकारान्त नारी के समान होते हैं। थोड़े से विशेषण ऐसे भी हैं, जिनके रूप भिन्न होते हैं, उनका विचार इस परिच्छेद में किया गया है।

८३—सार्वनामिक विशेषण—ऊपर लिखे हुए सर्वनामों में से इदम्, एतद्, तद्, अदस् (७७), यद् (७८), किम् (७९) तथा अनिश्चयवाचक (७९ क) और निश्चयवाचक (८१) सर्वनाम, सभी का प्रयोग विशेषण के रूप में भी होता है, जैसे, अयं पुरुष, एषा नारी, एतच्छरीर, ते भृत्या, अमी जना, यो विद्यार्थी, का नारी, कस्मिश्चिन्नगरे, तास्मिन्नव ग्रामे इत्यादि।

८४—इसका, उसका, मेरा, तेरा, हमारा, तुम्हारा, जिसका आदि सम्बन्ध-सूचक भाव दिखाने के लिए संस्कृत में दो उपाय हैं, एक तो इदम्, तद्, अस्मद्, आदि की षष्ठी विभक्ति के रूपों का प्रयोग करना, जैसे मम पुस्तक, तवाश्व, अस्य प्रबन्ध इत्यादि, दूसरे इन शब्दों में कुछ प्रत्यय जोड़ कर इनसे विशेषण बनाकर उनको अन्य विशेषणों के अनुसार प्रयोग में लाना। ये विशेषण छ, अण् तथा खञ् प्रत्ययों को जोड़कर बनाये जाते हैं।

युष्मद् और अस्मद् में विकल्प से खञ् और छ प्रत्यय भी लगते हैं।

छ को ईय आदेश होता है। छ प्रत्यय जुड़ने पर अस्मद् के स्थान में (ए० व० में) मत् और (ब० व० में) अस्मत् तथा युष्मद् के स्थान में (ए० व० में) त्वत् और (ब० व० में) युष्मद् हो जाते हैं।

छ् और खञ् प्रत्यय के अतिरिक्त युष्मद् और अस्मद् मे अण् भी जुडता है। खञ् और अण् लगने पर अस्मद् और युष्मद् के स्थान मे एकवचन<sup>१</sup> मे ममक और तवक और बहुवचन<sup>२</sup> मे अस्माक और युष्माक आदेश होते है। खञ् का ईन हो जाता है।

अस्मद् शब्द से बने हुए विशेषण

- |                            |        |              |         |
|----------------------------|--------|--------------|---------|
| १—छ् प्रत्यय जोडकर—मदीय    | (मेरा) | और अस्मदीय   | (हमारा) |
| २—अण् प्रत्यय जोडकर—मामक   | ( " )  | और आस्माक    | ( " )   |
| ३—खञ् प्रत्यय जोडकर—मामकीन | ( " )  | और आस्माकीना | ( " )   |

स्त्रीलिङ्ग

- |                             |        |           |         |
|-----------------------------|--------|-----------|---------|
| १—छ् प्रत्यय जोडकर—मदीया    | (मेरी) | अस्मदीया  | (हमारी) |
| २—अण् प्रत्यय जोडकर—मामकी   | ( " )  | आस्माकी   | ( " )   |
| ३—खञ् प्रत्यय जोडकर—मामकीना | ( " )  | आस्माकीना | ( " )   |

युष्मद् शब्द से बने हुए विशेषण

पुल्लिङ्ग तथा नपुंसकलिङ्ग

- |                            |        |           |            |
|----------------------------|--------|-----------|------------|
| १—छ् प्रत्यय जोडकर—त्वदीय  | (तेरा) | युष्मदीय  | (तुम्हारा) |
| २—अण् प्रत्यय जोडकर—तावक   | ( " )  | यौष्माक   | ( " )      |
| ३—खञ् प्रत्यय जोडकर—तावकीन | ( " )  | यौष्माकीण | ( " )      |

स्त्रीलिङ्ग

- |                             |        |            |            |
|-----------------------------|--------|------------|------------|
| १—छ् प्रत्यय जोडकर—त्वदीया  | (तेरी) | युष्मदीया  | (तुम्हारी) |
| २—अण् प्रत्यय जोडकर—तावकी   | ( " )  | यौष्माकी   | ( " )      |
| ३—खञ् प्रत्यय जोडकर—तावकीना | ( " )  | यौष्माकीणा | ( " )      |

(ग) तद् शब्द से—

पु० तथा नपु०

स्त्री०

तदीय (उसका)

तदीया (उसकी)

(घ) एतद् शब्द से—

पु० तथा नपु०

स्त्री०

एतदीय (इसका)

एतदीया (इसकी)

१ तवकममकावेकवचने ।४।३।३।

२ तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ ।४।३।२।

(च) यद् शब्द से—

पु० तथा नपु०

स्त्री०

यदीय (जिसका)

यदीया (जिसकी)

इनमे जो अकारान्त हैं उनके बालक (पु०) तथा फल (नपु०) के समान, और जो आकारान्त व ईकारान्त हैं उनके विद्या और नदी के समान सब विभक्तियों और वचनो मे रूप चलते हैं। अन्य विशेषणो की तरह इनके भी लिङ्ग, वचन और विभक्ति विशेष्य के लिङ्ग, वचन और विभक्ति के अनुसार होते हैं, यथा—

त्वदीयानामश्वाना युद्धे नास्ति काऽपि आवश्यकता ।

यदीया सम्पत्ति तदीय स्वत्वम् ।

अस्मद्, युष्मद्, इद्म् आदि की षष्ठी के रूपों के विषय मे यह नियम नहीं लगता, वे विशेष्य के अनुसार नहीं बदलते, यथा—मम अश्व, तव गृहम्, अस्य लिपि इत्यादि ।

८५—‘ऐसा, जैसा’ आदि शब्दो द्वारा बोधित ‘प्रकार’ के अर्थ के लिए सस्कृत मे तद्, अस्मद्, युष्मद् आदि शब्दो के प्रत्यय जोडकर तादृश आदि शब्द बनते हैं और विशेषण होते है। अन्य विशेषणो की भाँति इनकी विभक्ति, लिङ्ग, वचन आदि विशेष्य के अनुसार होते है। ये शब्द नीचे लिखे है—

(क) अस्मद् शब्द से

पुल्लिङ्ग तथा नपुंसकलिङ्ग

१—क्विन् जोडकर—मादृश्

(मुझ सा)

अस्मादृश (हमारा सा)

२—कञ्\* जोडकर—मादृश

( )

अस्मादृश ( )

स्त्रीलिङ्ग

मादृशी (मुझ सी)

अस्मादृशी (हमारी सी)

\*त्यदादिषु दृशाऽनालोचने कञ्च ।३।२।६०। अर्थात् यदि त्यद्, तद्, यद्, एतद् इत्यादि शब्दो के आगे दृश् घातु हो और उसका देखना अर्थ न हो, तो कञ् और क्विन् प्रत्यय विकल्प से जुडते हैं। ‘क्वोऽपि वाच्य’ इस वार्तिक के द्वारा इसी अर्थ मे दृश् घातु के आगे क्व भी लगता है, जैसे अस्मादृक्ष, तादृक्ष, ईदृक्ष, सदृक्ष इत्यादि। ‘आ सर्वनाम्न’ ।६।३।६१। इस नियम के अनुसार त्वत्, अ०मत्, मत्, तत् इत्यादि के अन्त से आकार आदेश होता है ।

(ख) युष्मद् शब्द से

पुल्लिङ्ग तथा नपुंसकलिङ्ग

१—क्विन् जोडकर—त्वादृश् (तुझ सा) युष्मादृश् (तुम्हारा सा)

२—कम् जोडकर—त्वादृश् ( " ) युष्मादृश् ( " )

स्त्रीलिङ्ग

त्वादृशी (तुझ सी) युष्मादृशी (तुम्हारी सी)

(ग) तद् शब्द से

पुल्लिङ्ग तथा नपुंसकलिङ्ग

स्त्रीलिङ्ग

तादृश् (वैसा, तैसा)  
तादृश ( " " )

तादृशी (वैसी, तैसी)

(घ) इदम् शब्द से

पु० तथा नपु०

स्त्री०

ईदृश् (ऐसा)

ईदृशी (ऐसी)

ईदृश ( " )

(च) एतद् शब्द से

पु० तथा नपु०

स्त्री०

एतादृश् (ऐसा)

एतादृशी (ऐसी)

एतादृश ( " )

(छ) यद् शब्द से

पु० तथा नपु०

स्त्री०

यादृश् (जैसा)

यादृशी (जैसी)

यादृश ( " )

(ज) किम् शब्द से

पु० तथा नपु०

स्त्री०

कीदृश् (कैसा)

कीदृशी (कैसी)

कीदृश ( " )

(झ) भवत् शब्द से

पु० तथा नपु०

स्त्री०

भवादृश् (आप सा)

भवादृशी (आप सी)

भवादृश ( " )

इनमें शकारान्त के रूप शकारान्त पुल्लिङ्ग अथवा नपुसकलिङ्ग सज्ञाओं के अनुसार तथा ईकारान्त के ईकारान्त सज्ञा (नदी) के अनुसार चलते हैं। जैसा ऊपर कह चुके हैं, उनके लिङ्ग, वचन और विभक्ति विशेष्य के अनुसार रहते हैं।

८६—परिमाणसूचक 'जितना, उतना, कितना' आदि शब्दों का अर्थ दिखाने के लिए सस्कृत में इदम् आदि शब्दों से विशेषण बनते हैं। वे इस प्रकार हैं। इनमें तकारान्त शब्दों के रूप पुल्लिङ्ग में तकारान्त श्रीमत् (६१) तथा नपुसकलिङ्ग में जगत् (६१ ग) के अनुसार चलते हैं और ईकारान्त शब्दों के नदी के समान।

यद्, तद्, एतद् इत्यादि शब्दों में परिमाण का अर्थ प्रकट करने के लिए वतुप् जोड़ा जाता है, जैसे, यद्+वतुप्=यावत्, इसी प्रकार तावत्, एतावत् इत्यादि। 'आ सर्वनाम्न', इस सूत्र से यद्, तद्, एतद् इत्यादि का क्रमशः आकार अन्तादेश होकर उसके रूप या, ता, एता हो जाते हैं।

(क) यद् शब्द से	
यावत् (जितना)	यावती (जितनी)
(ख) तद् शब्द से	
तावत् (उतना)	तावती (उतनी)
(ग) एतद् शब्द से	
एतावत् (इतना)	एतावती (इतनी)

किम् तथा इदम् शब्दों में भी वतुप् जुड़ता है और वतुप् का 'व' घ य में परिवर्तित हो जाता है। इस प्रकार कियत् और इयत् बनते हैं।

(घ) किम् शब्द से	
कियत् (कितना)	कियती (कितनी)
(ङ) इदम् शब्द	
इयत् (इतना)	इयती (इतनी)

१ यत्तदेतेभ्य परिमाणे वतुप् ।५।२।३६।

२ किमिदम्या वो घ ।५।२।४०।

परिमाण के अर्थ में इन शब्दों का प्रयोग प्रायः केवल एकवचन में ही होता है, यथा—

कियानध्वाऽधुनावशिष्ट ?

तावानेव यावान् भवता लङ्घित ।

तेज कियती सम्पत्ति. गुरवे समर्पिता ?

तावती यावती गुरुणा याचिता ।

सख्यासूचक होने पर तो सभी वचनों का प्रयोग होता है ।

८७—सख्यासूचक 'इतने, कितने' आदि शब्दों का अर्थ दिखाने के लिए संस्कृत में दो उपाय हैं—

(१) ऊपर ८६ के शब्दों को बहुवचन में प्रयोग करना, इस दशा में विशेष्य के लिङ्ग और विभक्ति के अनुसार उनमें भी परिवर्तन होगा, यथा—

कियन्त. पुरुषा आगता, कियत्य स्त्रिय ?

तावन्त पुरुषा यावन्त ह्य आगता, तावत्य एव स्त्रिय इत्यादि ।

किम् शब्द से सख्या-परिमाण अर्थ में एक और प्रत्यय लगता है डति, जिससे रूप बनता है कति ।

जब किसी वस्तु की निश्चित सख्या के विषय में प्रश्न करना अभीष्ट हो, तब किम् में यह 'डति' प्रत्यय लगता है । सूत्र में 'च' रखने का प्रयोजन यह है कि 'डति' के अतिरिक्त इसी अर्थ में 'वतुप्' भी लगता है । इसी कारण कियत् इत्यादि की सख्या के अर्थ में भी प्रयोग सम्भव होता है ।

कति शब्द केवल लिङ्गों में प्रयुक्त होता है, नित्य बहुवचन होता है और इसके रूप प्रथमा और द्वितीया विभक्ति में एक-से तथा अविकृत-से रहते हैं, शेष विभक्तियों में भिन्न होते हैं—

१ किम् सख्यापरिमाणे डति च ।५।२४।१। सख्याया परिमाणे परिच्छेदे तस्मिन् कर्तव्यं य प्रश्नस्तस्मिन् वर्तमानात्किम् प्रथमासामर्थ्यादस्यति षष्ठ्यर्थे डति स्यात् । तत्त्वबोधिनी ।

.	बहुवचन
प्र०	कति
द्वि०	"
तृ०	कतिभि
च०	कतिभ्य
प०	"
ष०	कतीनाम्
स०	कतिषु

६६—'सर्व' शब्द के रूप तीनों लिङ्गों में चलते हैं और इस प्रकार होते हैं—

### सर्व—सर्व

	एकवचन	पुल्लिङ्ग द्विवचन	बहुवचन
प्र०	सर्वं	सर्वौ	सर्वे <sup>१</sup>
द्वि०	सर्वम्	सर्वौ	सर्वान्
तृ०	सर्वेण	सर्वाभ्याम्	सर्वे
च०	सर्वस्मै <sup>२</sup>	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्य
प०	सर्वस्मात्, सर्वैः	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्य
ष०	सर्वस्य	सर्वयो	सर्वेषाम् <sup>३</sup>
स०	सर्वस्मिन्	सर्वयो	सर्वेषु

सर्व इत्यादि अकारान्त सर्वनाम शब्दों के जस् (अर्थात् प्रथमा बहुवचन) को 'ई' आदेश हो जाता है। इस प्रकार सर्व+जस्=सर्व+ई=सर्वे।

अकारान्त सर्वनाम शब्दों के चतुर्थी एकवचन के प्रत्यय डे को स्मै आदेश हो जाता है।

१ जस शी ।७।१।१७।

२ सर्वनाम्न. स्मै ।७।१।१४।

३ ङसिङ्गयो स्मात्स्मिनी ।७।७।११५।

४ आमि सर्वनाम्न सुट् ।७।१।५२।



अकारान्त सर्वनाम शब्दों की पचमी तथा सप्तमी के एकवचन में ऊसि और छि के स्थान में क्रमशः स्मात् और स्मिन् हो जाता है।

आम् (षष्ठी बहुवचन) को स् का आगम हो जाता है। इस प्रकार सर्व + आम् = सर्व + स् + आम् = सर्वेषाम्।

नपुंसकलिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	सर्वम्	सर्वे	सर्वाणि
द्वि०	सर्वम्	सर्वे	सर्वेषु

आगे पुलिङ्ग के समान रूप होते हैं।

स्त्रीलिङ्ग

प्र०	सर्वा	सर्वे	सर्वा
द्वि०	सर्वाम्	सर्वे	सर्वा
तृ०	सर्वया	सर्वाभ्याम्	सर्वाभि
च०	सर्वस्यै	सर्वाभ्याम्	सर्वाभ्य
प०	सर्वस्या	सर्वास्याम्	सर्वाभ्य
ष०	सर्वस्या	सर्वस्यो	सर्वासाम्
स०	सर्वस्याम्	सर्वस्यो	सर्वासु

सर्व शब्द के द्विवचन के रूप प्रायः प्रयोग में नहीं मिलते, किन्तु यदि किन्हीं दो वस्तुओं के साथ सबका अर्थ लाना हो तो द्विवचन का प्रयोग कर सकते हैं।

६६—परिमाणवचन अल्प (थोड़ा), अर्ध (आधा), नेम (आधा) तथा सम (बराबर) तीनों लिङ्गों में अलग-अलग रूप रखते हैं—पुल्लिङ्ग में बालक के समान, नपुंसकलिङ्ग में फल के समान और स्त्रीलिङ्ग में विद्या के समान। केवल अल्प, अर्ध और नेम के पुल्लिङ्ग में प्रथमा के बहुवचन में दो रूप होते हैं—अल्पे अल्पा, अर्धे अर्धा, नेमे नेमा।

(क) पूरकसख्यावाची 'प्रथम' और 'चरम' शब्द के रूप भी तीनों लिङ्गों

१ प्रथमचरमतयात्पार्श्वकतिपयनेमाश्च । १।१।३३। एते जस कार्यं प्रत्युक्त-सज्ञा वा स्युः । सि० कौ० ।

मे चलते हैं, जैसे परिमाणवाची 'अल्प' आदि के। इनके भी पुल्लिङ्ग प्रथमा के बहुवचन में दो रूप होते हैं—प्रथमे प्रथमा, चरमे चरमा।

(ख) सख्यावाची 'कतिपय' (कुछ) शब्द के रूपों के विषय में भी ऊपर लिखा हुआ नियम लगता है, यथा—कतिपये, कतिपया।

(ग) 'तीय' प्रत्ययान्त 'द्वितीय' और 'तृतीय' शब्दों की केवल डिट् (डे, डसि, डस् तथा डि) विभक्तियों में विकल्प से सर्वनाम सज्ञा मानी जाती है। शेष में इनके रूप बालक की भाँति होते हैं। उदाहरण के लिए द्वितीय के रूप पुल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग में दिये जाते हैं—

### द्वितीयः

#### पुल्लिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	द्वितीय	द्वितीयो	द्वितीया
द्वि०	द्वितीयम्	द्वितीयौ	द्वितीयान्
तृ०	द्वितीयेन	द्वितीयाम्याम्	द्वितीयै
च०	{ द्वितीयस्मै द्वितीयाय	द्वितीयाम्याम्	द्वितीयेभ्य
प०	{ द्वितीयस्मात्, इ द्वितीयात्, इ	द्वितीयाम्याम्	द्वितीयेभ्य
ष०	द्वितीयस्य	द्वितीययो	द्वितीयानाम्
स०	{ द्वितीयस्मिन् द्वितीये	द्वितीयेभ्यो	द्वितीयेषु

१ द्वितीय १५२।५४। यह सूत्र 'तस्य पूरणे इदं' १५२।४८। का अपवाद है। द्वि के साथ पूरणी सख्या के अर्थ में तीय प्रत्यय लगता है। इस प्रकार 'द्वयो पूरण' इस अर्थ में 'द्वितीय' शब्द बना। 'त्रे सम्प्रसारण च' १५२।५५। सूत्र से त्रि शब्द में भी 'तीय' प्रत्यय लगता है और त्रि के रेक का ऋकार हो जाता है। इस प्रकार 'त्रितीय' बनता है।

२ विभाषाप्रकरणे तीयस्य डित्सूपसख्यानम् (वा०)

	एकवचन	स्त्रीलिङ्ग द्विवचन	बहुवचन
प्र०	द्वितीया	द्वितीये	द्वितीया
द्वि०	द्वितीयाम्	द्वितीये	द्वितीया
तृ०	द्वितीयया	द्वितीयाभ्याम्	द्वितीयाभि
च०	{ द्वितीयस्यै द्वितीयायै	द्वितीयाभ्याम्	द्वितीयाभ्य
प०	{ द्वितीयस्या द्वितीयाया	द्वितीयाभ्याम्	द्वितीयाभ्य
ष०	{ द्वितीयस्या द्वितीयाया	द्वितीययो	द्वितीयानाम्
स०	{ द्वितीयस्याम् द्वितीयायाम्	द्वितीययो	द्वितीयासु

६०—उम (दोनो) शब्द के रूप केवल द्विवचन में होते हैं और तीनों लिङ्गों में अलग-अलग। विशेष्य के अनुसार इसकी विभक्तियाँ होती हैं और लिङ्ग भी।

	पुल्लिङ्ग	तृपुंसकलिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग
प्र०	उमौ	उमे	उमे
द्वि०	उमौ	उमे	उमे
तृ०	उमाभ्याम्	उमाभ्याम्	उमाभ्याम्
च०	उमाभ्याम्	उमाभ्याम्	उमाभ्याम्
प०	उमाम्यसु	उमाभ्याम्	उमाभ्याम्
ष०	उमयो	उमयो	उमयो
स०	उमयो	उमयो	उमयो

(क) 'उमय' शब्द के द्विवचन के रूप नहीं होते, केवल एकवचन तथा बहुवचन के ही होते हैं। जस् विभक्ति में भी इसकी सर्वदीनि सर्वनामानि ११।१।२७। से नित्य सर्वनाम सज्ञा होती है। प्रथमचरम ११।१।३३। आदि नियम

१ उमययाभ्यम् द्विवचन नास्तीति कैयट। तस्माज्जस्य यजादेशस्य स्थानिवदभावेन तृपुप्रत्ययान्ततया 'प्रथमचरम्' इति विकल्पे प्राप्ते विभक्ति-निरपेक्षत्वेनान्तरङ्गत्वाभित्यैव सज्ञा भवति उमये—रि कौ०।

से विकल्प से होने वाली सर्वनाम सज्ञा यहाँ नहीं लागू होती। क्योंकि 'प्रथमचरण' से होने वाली वैकल्पिक सज्ञा जस् विभक्ति की अपेक्षा रखने से बहिरङ्ग है और अतएव, विभक्तिनिरपेक्ष रूप से होने वाली सर्वादीनि सर्वनामानि से होने वाली अन्तरग सर्वनाम सज्ञा कमजोर पडती है।

उम' शब्द मे तयप् के स्थान मे अयच् हो जाता है और वह आदि उदात्त होगा। इस प्रकार—उम+अयच्=उमय।

### उभय

#### पुल्लिङ्ग

	एकवचन	बहुवचन
प्र०	उमय	उमये
द्वि०	उमयम्	उमयान्
तृ०	उमयेन	उमयै
च०	उमयस्मै	उमयेभ्य
प०	उमयस्मात्, इ	उमयेभ्य
ष०	उमयस्य	उमयेषाम्
स०	उमयस्मिन्	उमयेषु

#### नपुंसकलिङ्ग

प्र०	उमयम्	उमयानि
द्वि०	उमयम्	उमयानि

शेष विभक्तियों मे पुल्लिङ्ग के समान रूप होते हैं।

#### स्त्रीलिङ्ग उभयी शब्द

प्र०	उमयी	उमय्य
------	------	-------

इत्यादि नदी के समान।

(ख) 'दो का समूह', 'तीन का समूह' इत्यादि समूहवाचक सख्या शब्द सस्कृत मे कई प्रकार से बनते हैं। मुख्य ये हैं—

१ उमादुदात्ता नित्यम् ।५।२।४४। उभयशब्दात्तयपोऽयच् स्यात् स चाद्युदात्त (मट्टोजिङ्गल वृत्ति)।

(१) तयप्<sup>१</sup> प्रत्यय से—द्वितय, त्रितय, चतुष्टय, पञ्चतय पु० तथा नपु० भे, द्वितयी, त्रितयी, चतुष्टयी, पञ्चतयी स्त्रीलिङ्ग मे। इनके रूप तीनों वचनों मे स्वरान्त सज्ञाओ के समान होते हैं। वर्णाना चतुष्टयी, वेदाना त्रितयी, सख्या-वाचकशब्दाना द्वितयम्, द्वितये, द्वितयानि।

(२) द्वि<sup>२</sup> और त्रि शब्दो के आगे तयप् के स्थान मे विकल्प से अयच् होने से द्वय और त्रय पु० तथा नपु० मे एव द्वयी और त्रयी स्त्री० मे बनते है। इनके रूप भी द्वितय आदि के अनुसार होते है—

वेदत्रयी, विद्याद्वयम्, इत्यादि।

६१—संस्कृत की गिनती नीचे दी जाती है—

संख्या	पूरणी क्रम	संख्या	पूरणी संख्या
		पु० तथा नपु०	
१ एक	प्रथम	प्रथमा	
२ द्वि	द्वितीय <sup>३</sup>	द्वितीया	
३ त्रि	तृतीय <sup>४</sup>	तृतीया	
४ चतुर्	चतुर्थ <sup>५</sup> , तुरीय, तुर्य	चतुर्थी, तुरीया, तुर्य	

१ सख्याया अवयवे तयप् ॥५॥२४२॥ अवयव का अर्थ देने के लिए सख्याओ मे तयप् जोडा जाता है। इस प्रकार 'पञ्चावयवा अस्य' इस अर्थ मे 'पञ्चतय' (दाश्) शब्द पञ्च मे तयप् जोडकर बनेगा। इस अर्थ का पर्यवसान समूह मे ही होता है। 'पञ्चतय' का अर्थ होगा 'पाँच का समूह'।

२ द्वित्रिभ्या तयप्रत्ययज्वा ॥५॥२४३॥ द्वि और त्रि शब्दो मे तयप् के स्थान मे विकल्प से अयच् हो जाता है। इस प्रकार द्वितय एव त्रितय के अतिरिक्त द्वय और त्रयी भी होंगे।

३, ४ द्रष्टव्य पृष्ठ १४६ पर नीचे दी गयी टिप्पणी।

४ षट्कतिकतिपयचतुरा थुक् ॥५॥२४१॥ पूरण के अर्थ मे षट्, कतिपय तथा चतुर शब्दो मे ङट् प्रत्यय लगने पर उन्हें 'थुक्' का आगम होता है। 'चतुश्छ्यतावाद्यक्षरलोपश्च' (वार्त्तिक) इस विधान से चतुर् शब्द मे पूरण अर्थ मे छ और यत् प्रत्यय भी जुडते हैं और इन दो प्रत्ययो के जुडने पर आद्य अक्षर 'च' का लोप हो जाता है। इस प्रकार तुरीय और तुर्य रूप भी बनेगे।

५ पञ्चन्	पञ्चम <sup>१</sup>	पञ्चमी
६ षष्	षष्ठ	षष्ठी
७ सप्तन्	सप्तम	सप्तमी
८ अष्टन्	अष्टम	अष्टमी
९ नवन्	नवम	नवमी
१० दशन्	दशम	दशमी
११ एकादशन्	एकादश	एकादशी
१२ द्वादशन्	द्वादश	द्वादशी
१३ त्रयोदशन्	त्रयोदश	त्रयोदशी
१४ चतुर्दशन्	चतुर्दश	चतुर्दशी
१५ पञ्चदशन्	पञ्चदश	पञ्चदशी
१६ षोडशन्	षोडश	षोडशी
१७ सप्तदशन्	सप्तदश	सप्तदशी
१८ अष्टादशन्	अष्टादश	अष्टादशी
१९ नवदशन्	नवदश	नवदशी
या	एकोनविंश	एकोनविंशी
एकोनविंशति (स्त्री०)	एकोनविंशतितम	एकोनविंशतितमी
या	ऊनविंश	ऊनविंशी
ऊनविंशति	ऊनविंश, ऊनविंशतितम	ऊनविंशतितमी
या	एकान्नविंश	एकान्नविंशी
एकान्नविंशति	एकान्नविंश, एकान्नविंशतितम	एकान्नविंशतितमी
२० विंशति	विंश, <sup>२</sup> विंशतितम	विंशी, विंशतितमी

१ नान्तसख्यादेर्मट् १५।२।४६। नान्तसख्यावाची शब्दो मे पूरण के अर्थ मे डट् प्रत्यय लगाने पर उसे मट् आगम होता है ।

२ विंशत्यादिभ्यस्तमडन्त्यतरस्याम् १५।२।५६। विंशति आदि से ऊपर होने वाले पूरण अर्थ के डट् प्रत्यय को विकल्प से तमट का आगम होता है ।

२१ एकविंशति	एकविंश, एकविंशतितम	एकविंशी एकविंशतितमी
२२ द्वाविंशति	द्वाविंश, द्वाविंशतितम	द्वाविंशी द्वाविंशतितमी
२३ त्रयोविंशति	त्रयोविंश, त्रयोविंशतितम	त्रयोविंशी त्रयोविंशतितमी
२४ चतुर्विंशति	चतुर्विंश, चतुर्विंशतितम	चतुर्विंशी चतुर्विंशतितमी
२५ पञ्चविंशति	पञ्चविंश, पञ्चविंशतितम	पञ्चविंशी पञ्चविंशतितमी
२६ षड्विंशति	षड्विंश, षड्विंशतितम	षड्विंशी षड्विंशतितमी
२७ सप्तविंशति	सप्तविंश, सप्तविंशतितम	सप्तविंशी सप्तविंशतितमी
२८ अष्टाविंशति	अष्टाविंश अष्टाविंशतितम	अष्टाविंशी अष्टाविंशतितमी
२९ नवविंशति	नवविंश नवविंशतितम	नवविंशी नवविंशतितमी
या	एकोनत्रिंश, एकोनत्रिंशत्तम	एकोनत्रिंशी
एकोनत्रिंशत्		एकोनत्रिंशत्तमी
या	ऊनत्रिंश, ऊनत्रिंशत्तम	ऊनत्रिंशी
ऊनत्रिंशत्		ऊनत्रिंशत्तमी
या	एकान्नत्रिंश, एकान्नत्रिंशत्तम	एकान्नत्रिंशी
एकान्नत्रिंशत्		एकान्नत्रिंशत्तमी
३० त्रिंशत्	त्रिंश, त्रिंशत्तम	त्रिंशी, त्रिंशत्तमी
३१ एकत्रिंशत्	एकत्रिंश एकत्रिंशत्तम	एकत्रिंशी एकत्रिंशत्तमी
३२ द्वात्रिंशत्	द्वात्रिंश द्वात्रिंशत्तम	द्वात्रिंशी द्वात्रिंशत्तमी

३३	त्रयस्त्रिंशत्	त्रयस्त्रिंशी त्रयस्त्रिंशत्तम	त्रयस्त्रिंशी त्रयस्त्रिंशत्तमी
३४	चतुस्त्रिंशत्	चतुस्त्रिंश चतुस्त्रिंशत्तम	चतुस्त्रिंशी चतुस्त्रिंशत्तमी
३५	पञ्चत्रिंशत्	पञ्चत्रिंश पञ्चत्रिंशत्तम	पञ्चत्रिंशी पञ्चत्रिंशत्तमी
३६	षट्त्रिंशत्	षट्त्रिंश षट्त्रिंशत्तम	षट्त्रिंशी षट्त्रिंशत्तमी
३७	सप्तत्रिंशत्	सप्तत्रिंश सप्तत्रिंशत्तम	सप्तत्रिंशी सप्तत्रिंशत्तमी
३८	अष्टात्रिंशत्	अष्टात्रिंश अष्टात्रिंशत्तम	अष्टात्रिंशी अष्टात्रिंशत्तमी
३९	नवत्रिंशत्	नवत्रिंश नवत्रिंशत्तम	नवत्रिंशी नवत्रिंशत्तमी
	या	नवत्रिंशत्तमी	नवत्रिंशत्तमी
	एकोनचत्वारिंशत्	एकोनचत्वारिंश एकोनचत्वारिंशत्तम	एकोनचत्वारिंशी एकोनचत्वारिंशत्तमी
	या	एकोनचत्वारिंशत्तम	एकोनचत्वारिंशत्तमी
	ऊनचत्वारिंशत्	ऊनचत्वारिंश ऊनचत्वारिंशत्तम	ऊनचत्वारिंशी ऊनचत्वारिंशत्तमी
	या	ऊनचत्वारिंशत्तम	ऊनचत्वारिंशत्तमी
	एकान्नचत्वारिंशत्	एकान्नचत्वारिंश एकान्नचत्वारिंशत्तम	एकान्नचत्वारिंशी एकान्नचत्वारिंशत्तमी
४०	चत्वारिंशत्	चत्वारिंश चत्वारिंशत्तम	चत्वारिंशी चत्वारिंशत्तमी
४१	एकचत्वारिंशत्	एकचत्वारिंश एकचत्वारिंशत्तम	एकचत्वारिंशी एकचत्वारिंशत्तमी
४२	द्वाचत्वारिंशत्	द्वाचत्वारिंश द्वाचत्वारिंशत्तम	द्वाचत्वारिंशी द्वाचत्वारिंशत्तमी
	या	द्वाचत्वारिंशत्तम	द्वाचत्वारिंशत्तमी
	द्विचत्वारिंशत्	द्विचत्वारिंश द्विचत्वारिंशत्तम	द्विचत्वारिंशी द्विचत्वारिंशत्तमी



४३ त्रयश्चत्वारिंशत् या त्रिचत्वारिंशत्	त्रयश्चत्वारिंश त्रयश्चत्वारिंशत्तम त्रिचत्वारिंश त्रिचत्वारिंशत्तम	त्रयश्चत्वारिंशी त्रयश्चत्वारिंशत्तमी त्रिचत्वारिंशी त्रिचत्वारिंशत्तमी
४४ चतुश्चत्वारिंशत्	चतुश्चत्वारिंश चतुश्चत्वारिंशत्तम	चतुश्चत्वारिंशी चतुश्चत्वारिंशत्तमी
४५ पञ्चचत्वारिंशत्	पञ्चचत्वारिंश पञ्चचत्वारिंशत्तम	पञ्चचत्वारिंशी पञ्चचत्वारिंशत्तमी
४६ षट्चत्वारिंशत्	षट्चत्वारिंश षट्चत्वारिंशत्तम	षट्चत्वारिंशी षट्चत्वारिंशत्तमी
४७ सप्तचत्वारिंशत्	सप्तचत्वारिंश सप्तचत्वारिंशत्तम	सप्तचत्वारिंशी सप्तचत्वारिंशत्तमी
४८ अष्टाचत्वारिंशत् या अष्टचत्वारिंशत्	अष्टाचत्वारिंश अष्टाचत्वारिंशत्तम अष्टचत्वारिंश अष्टचत्वारिंशत्तम	अष्टाचत्वारिंशी अष्टाचत्वारिंशत्तमी अष्टचत्वारिंशी अष्टचत्वारिंशत्तमी
४९ नवचत्वारिंशत् या एकोनपञ्चाशत् या ऊनपञ्चाशत् या एकाग्नपञ्चाशत्	नवचत्वारिंश नवचत्वारिंशत्तम एकोनपञ्चाश एकोनपञ्चाशत्तम ऊनपञ्चाश ऊनपञ्चाशत्तम एकाग्नपञ्चाश एकाग्नपञ्चाशत्तम	नवचत्वारिंशी नवचत्वारिंशत्तमी एकोनपञ्चाशी एकोनपञ्चाशत्तमी ऊनपञ्चाशी ऊनपञ्चाशत्तमी एकाग्नपञ्चाशी एकाग्नपञ्चाशत्तमी
५० पञ्चाशत्	पञ्चाश पञ्चाशत्तम	पञ्चाशी पञ्चाशत्तमी
५१ एकपञ्चाशत्	एकपञ्चाश एकपञ्चाशत्तम	एकपञ्चाशी एकपञ्चाशत्तमी

५२ द्वापञ्चाशत्	द्वापञ्चाश	द्वापञ्चाशी
या	द्वापञ्चाशत्तम	द्वापञ्चाशत्तमी
द्विपञ्चाशत्	द्विपञ्चाश	द्विपञ्चाशी
	द्विपञ्चाशत्तम	द्विपञ्चाशत्तमी
५३ त्रय पञ्चाशत्	त्रय पञ्चाश	त्रय पञ्चाशी
या	त्रय पञ्चाशत्तम	त्रय पञ्चाशत्तमी
त्रिपञ्चाशत्	त्रिपञ्चाश	त्रिपञ्चाशी
	त्रिपञ्चाशत्तम	त्रिपञ्चाशत्तमी
५४ चतु पञ्चाशत्	चतु पञ्चाश	चतु पञ्चाशी
	चतु पञ्चाशत्तम	चतु पञ्चाशत्तमी
५५ पञ्चपञ्चाशत्	पञ्चपञ्चाश	पञ्चपञ्चाशी
	पञ्चपञ्चाशत्तम	पञ्चपञ्चाशत्तमी
५६ षट्पञ्चाशत्	षट्पञ्चाश	षट्पञ्चाशी
	षट्पञ्चाशत्तम	षट्पञ्चाशत्तमी
५७ सप्तपञ्चाशत्	सप्तपञ्चाश	सप्तपञ्चाशी
	सप्तपञ्चाशत्तम	सप्तपञ्चाशत्तमी
५८ अष्टापञ्चाशत्	अष्टापञ्चाश	अष्टापञ्चाशी
या	अष्टापञ्चाशत्तम	अष्टापञ्चाशत्तमी
अष्टपञ्चाशत्	अष्टपञ्चाश	अष्टपञ्चाशी
	अष्टपञ्चाशत्तम	अष्टपञ्चाशत्तमी
५९ नवपञ्चाशत्	नवपञ्चाश	नवपञ्चाशी
या	नवपञ्चाशत्तम	नवपञ्चाशत्तमी
एकोनषष्टि	एकोनषष्ट	एकोनषष्टी
या	एकोनषष्टितम	एकोनषष्टितमी
ऊनषष्टि	ऊनषष्ट	ऊनषष्टी
या	ऊनषष्टितम	ऊनषष्टितमी
एकान्नषष्टि	एकान्नषष्ट	एकान्नषष्टी
	एकान्नषष्टितम	एकान्नषष्टितमी
६० षष्टि	षष्टितम	षष्टितमी

१ एकषष्टि	एकषष्ट	एकषष्टी
	एकषष्टितम	एकषष्टितमी
२ द्वाषष्टि	द्वाषष्ट	द्वाषष्टी
या	द्वाषष्टितम	द्वाषष्टितमी
द्विषष्टि	द्विषष्ट	द्विषष्टी
	द्विषष्टितम	द्विषष्टितमी
३ त्रयष्षष्टि	त्रयष्षष्ट	त्रयष्षष्टी
या	त्रयष्षष्टितम	त्रयष्षष्टितमी
त्रिषष्टि	त्रिषष्ट	त्रिषष्टी
	त्रिषष्टितम	त्रिषष्टितमी
४ चतुष्षष्टि	चतुष्षष्ट	चतुष्षष्टी
	चतुष्षष्टितम	चतुष्षष्टितमी
५ पञ्चषष्टि	पञ्चषष्ट	पञ्चषष्टी
	पञ्चषष्टितम	पञ्चषष्टितमी
६ षट्षष्टि	षट्षष्ट	षट्षष्टी
	षट्षष्टितम	षट्षष्टितमी
७ सप्तषष्टि	सप्तषष्ट	सप्तषष्टी
	सप्तषष्टितम	सप्तषष्टितमी
८ अष्टाषष्टि	अष्टाषष्ट	अष्टाषष्टी
या	अष्टाषष्टितम	अष्टाषष्टितमी
अष्टषष्टि	अष्टषष्ट	अष्टषष्टी
	अष्टषष्टितम	अष्टषष्टितमी
९ नवषष्टि	नवषष्ट	नवषष्टी
या	नवषष्टितम	नवषष्टितमी
एकोनसप्तति	एकोनसप्तत	एकोनसप्तती
ऊनसप्तति	ऊनसप्तत	ऊनसप्तती
या	ऊनसप्ततितम	ऊनसप्ततितमी
एकान्नसप्तति	एकान्नसप्तत	एकान्नसप्तती
	एकान्नसप्ततितम	एकान्नसप्ततितमी

७० सप्तति	सप्तत सप्ततितम	सप्तती सप्ततितमी
७१ एकसप्तति	एकसप्तत एकसप्ततितम	एकसप्तती एकसप्ततितमी
७२ द्वासप्तति या द्विसप्तति	द्वासप्तत द्वासप्ततितम द्विसप्तत द्विसप्ततितम	द्वासप्तती द्वासप्ततितमी द्विसप्तती द्विसप्ततितमी
७३ त्रयस्सप्तति या त्रिसप्तति	त्रयस्सप्तत त्रयस्सप्ततितम त्रिसप्तत त्रिसप्ततितम	त्रयस्सप्तती त्रयस्सप्ततितमी त्रिसप्तती त्रिसप्ततितमी
७४ चतुस्सप्तति	चतुस्सप्तत चतुस्सप्ततितम	चतुस्सप्तती चतुस्सप्ततितमी
७५ पञ्चसप्तति	पञ्चसप्तत पञ्चसप्ततितम	पञ्चसप्तती पञ्चसप्ततितमी
७६ षट्सप्तति	षट्सप्तत षट्सप्ततितम	षट्सप्तती षट्सप्ततितमी
७७ सप्तसप्तति	सप्तसप्तत सप्तसप्ततितम	सप्तसप्तती सप्तसप्ततितमी
७८ अष्टासप्तति या अष्टसप्तति	अष्टासप्तत अष्टासप्ततितम अष्टसप्तत अष्टसप्ततितम	अष्टासप्तती अष्टासप्ततितमी अष्टसप्तती अष्टसप्ततितमी
७९ नवसप्तति या एकोनाशीति या ऊनाशीति	नवसप्तत नवसप्ततितम एकोनाशीत एकोनाशीतितम ऊनाशीत	नवसप्तती नवसप्ततितमी एकोनाशीती एकोनाशीतितमी ऊनाशीती

	या	ऊनाशीतितम	ऊनाशीतितमी
	एकोन्नाशीति	एकान्नाशीत	एकान्नाशीतितमी
		एकान्नाशीतितम	एकान्नाशीतितमी
८०	अशीति	अशीतितम	अशीतितमी
८१	एकाशीति	एकाशीत	एकाशीती
		एकाशीतितम	एकाशीतितमी
८२	द्व्यशीति	द्व्यशीति	द्व्यशीती
		द्व्यशीतितम	द्व्यशीतितमी
८३	त्र्यशीति	त्र्यशीति	त्र्यशीती
		त्र्यशीतितम	त्र्यशीतितमी
८४	चतुरशीति	चतुरशीत	चतुरशीती
		चतुरशीतितम	चतुरशीतितमी
८५	पञ्चाशीति	पञ्चाशीत	पञ्चाशीती
		पञ्चाशीतितम	पञ्चाशीतितमी
८६	षडशीति	षडशीत	षडशीती
		षडशीतितम	षडशीतितमी
८७	सप्ताशीति	सप्तशीत	सप्ताशीती
		सप्तशीतितम	सप्ताशीतितमी
८८	अष्टाशीति	अष्टाशीत	अष्टाशीती
		अष्टाशीतितम	अष्टाशीतितमी
८९	नवाशीति	नवाशीत	नवाशीती
	या	नवाशीतितम	नवाशीतितमी
	एकोननवति	एकोननवत	एकोननवती
	या	एकोननवतितम	एकोननवतितमी
	ऊननवति	ऊननवत	ऊननवती
	या	ऊननवतितम	ऊननवतितमी
	एकांननवति	एकांननवत	एकांननवती
		एकांननवतितम	एकांननवतितमी
९०	नवति	नवतितम	नवतितमी

६१ एकनवति	एकनवत एकनवतितम	एकनवती एकनवतितमी
६२ द्वानवति या द्विनवति	द्वानवत द्वानवतितम द्विनवत द्विनवतिनम	द्वानवती द्वानवतितमी द्विनवती द्विनवतितमी
६३ त्रयोनवति या त्रिनवति	त्रयोनवत त्रयोनवतितम त्रिनवत त्रिनवतितम	त्रयोनवती त्रयोनवतितमी त्रिनवती त्रिनवतितमी
६४ चतुर्नवति	चतुनवत चतुर्नवतितम	चतुर्नवती चतुर्नवतितमी
६५ पञ्चनवति	पञ्चनवत पञ्चनवतितम	पञ्चनवती पञ्चनवतितमी
६६ षष्णवति	षष्णवत षष्णवतितम	षष्णवती षष्णवतितमी
६७ सप्तनवति	सप्तनवत सप्तनवतितम	सप्तनवती सप्तनवतितमी
६८ अष्टानवति या अष्टनवति	अष्टानवत अष्टानवतितम अष्टनवत अष्टनवतितम	अष्टानवती अष्टानवतितमी अष्टनवती अष्टनवतितमी
६९ नवनवति या एकोनशत (नपु०)	नवनवत नवनवतितम एकोनशततम	नवनवती नवनवतितमी एकोनशततमी
१०० शत	शततम	शततमी
२०० द्विशत	द्विशततम	द्विशततमी
३०० त्रिशत	त्रिशततम	त्रिशततमी
४०० चतुश्शत	चतुश्शततम	चतुश्शततमी

५००	पञ्चशत	पञ्चशततम	पञ्चशततमी
१,०००	सहस्र	सहस्रतम	सहस्रतमी
१०,०००	अयुत (नपु०)		
१,००,०००	लक्ष (नपु०) या लक्षा (स्त्री०)		
	दस लाख—'प्रयुत' (नपु०)		
	करोड—'कोटि' (स्त्री०)		
	दस करोड—'अर्बुद' (नपु०)		
	अरब—'अब्ज' (नपु०)		
	दश अरब—'खर्व' (पु०, नपु०)		
	खर्व—'निखर्व' (पु०, नपु०)		
	दस खर्व—'महापद्म' (नपु०)		
	नील—'शङ्कू' (पु०)		
	दस नील—'जलधि' (पु०)		
	पद्म—'अन्त्य' (नपु०)		
	दस पद्म—'मध्य' (नपु०)		
	शङ्ख—'पराध' (नपु०)		
५०१	एकाधिपञ्चशतम्	एकोत्तरपञ्चशतम्	
	एकाधिक पञ्चशतम्	एकोत्तर पञ्चशतम्	
५०२	द्व्यधिक पञ्चशतम्	द्व्युत्तरपञ्चशतम्	
	द्व्यधिक पञ्चशतम्	द्व्युत्तरपञ्चशतम्	
५०३	त्र्यधिकपञ्चशतम्	त्र्युत्तरपञ्चशतम्	
	त्र्यधिक पञ्चशतम्	त्र्युत्तर पञ्चशतम्	
५०४	चतुरधिकपञ्चशतम्	चतुरुत्तरपञ्चशतम्	
	चतुरधिक पञ्चशतम्	चतुरुत्तर पञ्चशतम्	
५०५	पञ्चाधिकपञ्चशतम्	पञ्चोत्तरपञ्चशतम्	
	पञ्चाधिक पञ्चशतम्	पञ्चोत्तर पञ्चशतम्	
५०६	षडधिकपञ्चशतम्	षडुत्तरपञ्चशतम्	
	षडधिक पञ्चशतम्	षडुत्तर पञ्चशतम्	

५०७	सप्ताधिकपञ्चशतम् सप्ताधिक पञ्चशतम्	सप्तोत्तरपञ्चशतम् सप्तोत्तर पञ्चशतम्
५०८	अष्टाधिकपञ्चशतम् अष्टाधिक पञ्चशतम्	अष्टोत्तरपञ्चशतम् अष्टोत्तर पञ्चशतम्
५०९	नवाधिकपञ्चशतम् नवाधिक पञ्चशतम्	नवोत्तरपञ्चशतम् नवोत्तर पञ्चशतम्
५१०	दशाधिकपञ्चशतम् दशाधिक पञ्चशतम्	दशोत्तरपञ्चशतम् दशोत्तर पञ्चशतम्
५१७	सप्तदशाधिकपञ्चशतम् सप्तदशाधिक पञ्चशतम्	सप्तदशोत्तरपञ्चशतम् सप्तदशोत्तर पञ्चशतम्
६००	षट्शतम्	
६२५	पञ्चविंशत्यधिकषट्शतम् पञ्चविंशत्युत्तरषट्शतम्	पञ्चविंशत्यधिक षट्शतम् पञ्चविंशत्युत्तर षट्शतम्
६३७	सप्तत्रिंशदधिकषट्शतम् सप्तत्रिंशदुत्तरषट्शतम्	सप्तत्रिंशदधिक षट्शतम् सप्तत्रिंशदुत्तर षट्शतम्
६४६	षट्चत्वारिंशदधिकषट्शतम् षट्चत्वारिंशदुत्तरषट्शतम्	षट्चत्वारिंशदधिक षट्शतम् षट्चत्वारिंशदुत्तर षट्शतम्
६५५	पञ्चपञ्चाशदधिकषट्शतम् पञ्चपञ्चाशदुत्तरषट्शतम्	पञ्चपञ्चाशदधिक षट्शतम् पञ्चपञ्चाशदुत्तर षट्शतम्
६६६	षट्षष्ट्यधिकषट्शतम् षट्षष्ट्युत्तरषट्शतम्	षट्षष्ट्यधिक षट्शतम् षट्षष्ट्युत्तर षट्शतम्
६७३	त्रिसप्तत्यधिकषट्शतम् त्रिसप्तत्युत्तरषट्शतम्	त्रिसप्तत्यधिक षट्शतम् त्रिसप्तत्युत्तर षट्शतम्
६८४	चतुरशीत्यधिकषट्शतम् चतुरशीत्युत्तरषट्शतम्	चतुरशीत्यधिक षट्शतम् चतुरशीत्युत्तर षट्शतम्
६९५	पञ्चनवत्यधिकषट्शतम् पञ्चनवत्युत्तरषट्शतम्	पञ्चनवत्यधिक षट्शतम् पञ्चनवत्युत्तर षट्शतम्
१३२५	पञ्चविंशत्यधिकत्रयोदशशतम् या पञ्चविंशत्यधिकत्रिंशताधिकसहस्रम्	



११२८ अष्टाविंशत्यधिकैकोनविंशतिशतम्

या

अष्टाविंशत्यधिकनवशताधिकसहस्रम्

११३६ एकोनचत्वारिंशदधिकैकोनविंशतिशतम्

या

एकोनचत्वारिंशदधिकनवशताधिकसहस्रम्

५६६३७ सप्तत्रिंशदधिकषट्शताधिकनवसहस्राधिकपञ्चायुतम्

६२—सख्यावाचक शब्दों के रूपों में जो भेद है, वह नीचे दिखाया जाता है—

(क) जब 'एक' शब्द का अर्थ सख्यावाचक 'एक' होता है, तो इसका रूप केवल एकवचन में होता है, इसके अतिरिक्त अर्थों में इसके रूप तीनो वचनों में होते हैं।

### एक

	पुल्लिङ्ग	नपुंसकलिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग
	एकवचन	एकवचन	एकवचन
प्र०	एक	एकम्	एका
द्वि०	एकम्	एकम्	एकाम्
तृ०	एकेन	एकेन	एकया
च०	एकस्मै	एकस्मै	एकस्यै
प०	एकस्मात्	एकस्मात्, द्	एकस्या
ष०	एकस्य	एकस्य	एकस्या
स०	एकस्मिन्	एकस्मिन्	एकस्याम्

१ 'एक' शब्द के इतने अर्थ होते हैं—

एकोऽल्पार्थे प्रधाने च प्रथमे केवले तथा ।

साधारणे समानेऽपि सख्याया च प्रयुज्यते ॥

अर्थात्, अल्प (थोड़ा, कुछ), प्रधान, प्रथम, केवल, साधारण, समान और एक इतने अर्थों में एक शब्द का प्रयोग होता है।

बहुवचन में इसका अर्थ होता है—'कुछ लोग', 'कोई-कोई', यथा 'एके पुण्या', 'एका', 'एकानि फलानि' इत्यादि।

(ख) द्वि शब्द के रूप केवल द्विवचन में तथा तीनों लिङ्गों में अलग-अलग होते हैं।

### द्वि—दो

	पुल्लिङ्ग	नपुंसकलिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग
	द्विवचन	द्विवचन
प्र०	द्वौ	द्वे
द्वि०	द्वौ	द्वे
तृ०	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्
च०	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्
प०	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्
ष०	द्वयो	द्वयो
स०	द्वयो	द्वयो

### त्रि—तीन

(ग) 'त्रि' शब्द के रूप केवल बहुवचन में होते हैं—

	बहुवचन	बहुवचन	बहुवचन
प्र०	त्रय	त्रीणि	तिस्रः <sup>१</sup>
द्वि०	त्रीन्	त्रीणि,	"
तृ०	त्रिभि	त्रिभि	तिसृभि
च०	त्रिम्य	त्रिम्य	तिसृम्य
प०	त्रम्य	त्रिम्य	तिसृम्य
ष०	त्रयाणाम् <sup>२</sup>	त्रयाणाम्	तिसृणाम्
स०	त्रिषु	त्रिषु	तिसृषु

१ त्रिचतुरो स्त्रिया तिसृचतसृ ॥७॥२॥६६॥ त्रि तथा चतुर् शब्दों के स्थान में स्त्रीलिङ्ग में तिसृ और चतसृ आदेश हो जाते हैं।

२ त्रेस्त्रय ॥७॥१॥५३॥ अर्थात् त्राम् (षष्ठी बहु० के विभक्ति प्रत्यय) के जुड़ने पर 'त्रि' शब्द के स्थान में 'त्रय' हो जाता है। इस प्रकार त्रीणाम् न होकर 'त्रयाणाम्' रूप बन जाता है।

### चतुर्—चार

(घ) चतुर् (चार) शब्द के रूप भी तीनों लिङ्गों में अलग-अलग और केवल बहुवचन में होते हैं—

	पुल्लिङ्ग	नपुसकलिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग
	बहुवचन	बहुवचन	बहुवचन
प्र०	चत्वार	चत्वारि	चत्वार
द्वि०	चतुर	चत्वारि	चत्वार
तृ०	चतुर्भि	चतुर्भि	चतुर्भि
च०	चतुर्भ्य	चतुर्भ्य	चतुर्भ्य
प०	चतुर्भ्य	चतुर्भ्य	चतुर्भ्य
ष०	चतुर्णाम् <sup>१</sup> , चतुर्णाम्	चतुर्णाम्, चतुर्णाम्	चतुर्णाम्
स०	चतुर्षु	चतुर्षु	चतुर्षु

### पञ्चन—पाँच

(च) पञ्चन और इसके आगे के सख्यावाची शब्दों के रूप तीनों लिङ्गों में समान होते हैं और केवल बहुवचन में होते हैं—

	पुल्लिङ्ग	नपुसकलिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग
प्र०	पञ्च	पञ्च	पञ्च
द्वि०	पञ्च	पञ्च	पञ्च
तृ०	पञ्चभि	पञ्चभि	पञ्चभि
च०	पञ्चभ्य	पञ्चभ्य	पञ्चभ्य
प०	पञ्चभ्य	पञ्चभ्य	पञ्चभ्य
ष०	पञ्चानाम्	पञ्चानाम्	पञ्चानाम्
स०	पञ्चसु	पञ्चसु	पञ्चसु

१ षट्चतुर्भ्यश्च ।७।१।५५। अर्थात् 'षट्' सज्ञा वाले सख्यावाची शब्दों तथा चतुर् शब्द में आम् (षष्ठी बहुवचन की विभक्ति) के पूर्व न् का आगम हो जाता है। फिर 'रषाम्या नो ण समानपदे' के अनुसार न् का ण् हो जायगा। पुनश्च अचो रहाम्या द्वे ।८।४।४७। अर्थात् 'स्वर के बाद र् और ह् हो तो उस र् या ह् के बाद आने वाले (ह् को छोड़कर) किसी भी व्यञ्जन-वर्ण का विकल्प से द्वित्व हो जाता है, इसके अनुसार 'चतुर्णाम्' 'णि' होगा।

(छ)

षष्—छः

पुल्लिङ्ग, नपुंसकलिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग  
केवल बहुवचन मे

प्र०	षट्
द्वि०	षट्
तृ०	षड्भि
च०	षड्भ्य
प०	षड्भ्य
ष०	षण्णाम्
स०	षट्सु, षट्सु

(ज)

सप्तन्—सात्

पुल्लिङ्ग, नपुंसकलिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग  
केवल बहुवचन मे

प्र०	सप्त
द्वि०	सप्त
तृ०	सप्तभि
च०	सप्तभ्य
प०	सप्तभ्य
ष०	सप्तानाम्
स०	सप्तसु

(झ)

अष्टन्—आठ

पुल्लिङ्ग, नपुंसकलिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग  
केवल बहुवचन मे

प्र०	अष्टौ, अष्ट
------	-------------

१ अष्टन् आ विभक्तौ ।७।२।८४। यदि अष्टन् शब्द के बाद व्यञ्जनवर्ण से आरम्भ होने वाले विभक्ति-प्रत्यय जुड़े हो तो 'न्' के स्थान मे 'आ' हो जाता है। परन्तु 'न्' के स्थान मे 'आ' का होना वैकल्पिक है।

२ अष्टाम्य औश् ।७।१।२१। 'अष्टा' के बाद प्रथमा तथा द्वितीया बहुवचन के विभक्ति-प्रत्ययो के जुड़ने पर उनके स्थान मे 'औ' का आदेश हो जाता है। इस प्रकार 'अष्टौ' रूप बन जाता है। 'न्' के स्थान मे 'आ' न होने पर 'अष्ट' रूप बनता है।

द्वि०	अष्टौ, अष्ट
तृ०	अष्टामि, अष्टभि
च०	अष्टाम्य, अष्टभ्य
प०	अष्टाम्य अष्टभ्य
ष०	अष्टानाम्
स०	अष्टासु, अष्टसु

( ट ) नवन् (नौ), दशन् (दस) तथा सभी नकारान्त सख्यावाची (एकादशन्, द्वादशन्, त्रयोदशन्, पञ्चदशन्, षोडशन् आदि) शब्दों के रूप पञ्चन् के समान तीनों लिङ्गों में एक ही समान होते हैं। अष्टन् में जो भेद होता है, वह दिखा दिया गया।

( ठ ) नित्य स्त्रीलिङ्ग ऊर्ध्वविशति से लेकर चितने सख्यावाची शब्द हैं, उन सब के रूप केवल एकवचन ही में होते हैं तथा कमी-कमी सख्यावाचक विशेषण के रूप में नहीं, अपितु सज्ञा-शब्द की भाँति प्रयुक्त किया जाता है। जैसे—विशति स्त्रीणाम्। मुनीना दशसाहस्रम् इत्यादि।

( ड ) ह्रस्व इकारान्त नित्यस्त्रीलिङ्ग सख्यावाचक ऊर्ध्वविशति, विशति, एकविशति आदि 'विशति' में अन्त होने वाले शब्दों के रूप 'रुचि' शब्द के समान होते हैं।

एकवचन

- प्र० विशति  
द्वि० विशतिम्  
तृ० विशत्या  
च० विशत्ये, विशतये  
प० विशत्या, विशते  
ष० विशत्या, विशते  
स० विशत्याम्, विशतौ

१ पर दो बीस, तीन बीस इत्यादि अर्थ में द्विविशती, तिस्र विशतय इत्यादि ही प्रयोग होते हैं।

( ढ ) नित्यस्त्रीलिङ्ग सख्यावाचक त्रिशत् (तीस), चत्वारिंशत् (चालीस), पञ्चाशत् (पचास) तथा शत् मे अन्त होने वाले अन्य सख्यावाची शब्दों के रूप 'सरित्' के समान होते हैं, जैसे—

	त्रिशत्	चत्वारिंशत्
प्र०	त्रिशत्	चत्वारिंशत्
द्वि०	त्रिशतम्	चत्वारिंशतम्
तृ०	त्रिशतः	चत्वारिंशता
च०	त्रिशते	चत्वारिंशते
प०	त्रिशत	चत्वारिंशत
ष०	त्रिशत	चत्वारिंशत
स०	त्रिशति	चत्वारिंशति

इसी प्रकार पञ्चाशत् के भी रूप होते हैं।

( त ) नित्य स्त्रीलिङ्ग षष्टि (साठ), सप्तति (सत्तर), अशीति (अस्सी), नवति (नब्बे) इत्यादि सभी इकारान्त सख्यावाची शब्दों के रूप 'विशनि' के अनुसार 'रुचि' के समान होते हैं, जैसे—

	षष्टि	सप्तति
	एकवचन	एकवचन
प्र०	षष्टि	सप्तति
द्वि०	षष्टिम्	सप्ततिम्
तृ०	षष्ट्या	सप्तत्या
च०	षष्ट्यै, षष्टये	सप्तन्यै, सप्ततये
प०	षष्ट्या, षष्टे	सप्तत्या, सप्तते
ष०	षष्ट्या, षष्टे	सप्तत्या, सप्तते
स०	षष्ट्याम्, षष्टौ	सप्तत्याम्, सप्ततौ

इसी प्रकार अशीति, नवति के भी रूप होते हैं।

(थ) शत, सहस्र, अयुत, लक्ष, अर्बुद, अर्बज, महापद्म, अन्त्य, मध्य, परार्ध शब्द केवल नपुसकलिङ्ग में होते हैं और इनके रूप फल के अनुसार तीनों वचनों में चलते हैं।

(द) 'लक्षा' (स्त्री०) के रूप 'विद्या' के समान और 'कोटि' के 'रुचि' के समान होते हैं।

(ध) 'खर्व' और 'निखर्व' पुल्लिङ्ग और नपुसकलिङ्ग दोनों होते हैं। पु० के रूप 'बालक' के समान तथा नपु० के रूप 'फल' के समान होते हैं। 'जलधि' (पु०) के रूप 'कवि' के समान तथा 'शङ्ख' के रूप 'भानु' के समान चलते हैं—

६३—पूरकसख्यावाची (Ordinal numeral adjectives) शब्दों के रूप इस प्रकार चलते हैं—

(क) 'प्रथम' शब्द के रूप ८९ (क) में उल्लिखित है, 'अग्रिम' और 'आदिम' के रूप लिङ्गानुसार बालक, फल और विद्या के समान होते हैं।

(ख) 'द्वितीय' और 'तृतीय' शब्दों के रूप तीनों लिङ्गों में ८९ (ग) में उदाहृत है।

(ग) 'चतुर्थ' और इसके आगे के पूरकसख्यावाची शब्दों के रूप यदि अकारान्त पु० हो तो बालक के समान, अकारान्त नपु० हो तो फल के समान, आकारान्त स्त्रीलिङ्ग हो तो विद्या के समान और ईकारान्त स्त्री० हो तो नदी के समान चलते हैं।

(घ) 'शत' और इसके आगे की सख्याओं के पूरकसख्यावाची शब्द पु० तथा नपुसक० में 'तम' जोड़ कर और स्त्रीलिङ्ग में 'तमी' जोड़ कर बनते हैं जैसे—सहस्रतम, सहस्रतमी, सहस्रतमी आदि।

६४—अगर सख्यावाची शब्द एक से लेकर सौ तक तथा सहस्र, दस सहस्र, लक्ष, दश लक्ष आदि के लिए दिये गये हैं। जो सख्याएँ बीच की हैं, जैसे १३५, ११०६, १०५१५ आदि, उनके लिए विशेष उपाय से काम लिया जाता है जो नीचे दिखाया जाता है—

(१) सौ या सहस्र या लक्ष के पूर्व 'अधिक' शब्द या 'उत्तर' शब्द जोड़ देना, यथा—

एक सौ पैतीस मनुष्य उपस्थित है—पञ्चत्रिंशदधिक शत मनुष्याणामुपस्थितम् । अथवा पञ्चत्रिंशदुत्तर शतम्

दो सौ इकतालीस आदमियों के ऊपर जुर्माना लगाया गया और तीन सौ उनसठ को सजा हुई—मनुष्याणामेकचत्वारिंशदधिकयो शतयो (एकचत्वारिंशदुत्तरयो शतयो वा) उपरि अर्थदण्ड आदिष्ट, एकोनषष्ट्यधिकाना त्रयणा शतानामुपरि कायदण्ड ।

एक लाख पन्द्रह हजार तीन सौ बत्तीस—अष्टत्रिंशदधिकत्रिंशतोत्तरपञ्चदशसहस्राणि एक लक्षञ्च ।

इसी प्रकार 'अधिक' और 'उत्तर' शब्द के योग में और भी सख्याएँ बनायी जा सकती हैं ।

कमी-कमी 'च' जोड़ते जाते हैं, जैसे, २३३—द्वे शते पञ्चत्रिंशच्च ।

(२) कमी-कमी सख्याओं के बोलने में हम लोग दो कम दो सौ, चार कम पाँच सौ इत्यादि में 'कम' शब्द का प्रयोग करते हैं । सस्कृत में इस 'कम' शब्द का बोधक 'ऊन' शब्द जोड़ा जाता है, यथा—दो कम दो सौ—द्वयूने शते, द्वयून शतद्वय, द्वयूनशतद्वयी इत्यादि । चार कम पाँच सौ—चतुरूनपञ्चशतानि, चतुरून शतपञ्चतम् इत्यादि । उदाहरण के लिए कुछ ऐसी सख्याएँ ऊपर दे दी गयी हैं ।

६५—क्रम का भेद बतलाने के लिए सस्कृत के शब्द बहुधा 'सर्वनाम' में सम्मिलित किये जाते हैं । वस्तुतः ये क्रमवाची विशेषण हैं, इसलिए यहाँ दिये जाते हैं । मुख्य २७ हैं—

(क) अन्य (दूसरा), अन्यतर (जब दो में से एक के विषय में कुछ व्यवहार हो चुका हो तो दूसरे के लिए यह शब्द प्रयोग में आता है) इतर (दूसरा) तथा किम्, यद् और तद् सर्वनामों में डतर और डतम प्रत्यय जोड़ कर बने हुए कतर (दो में से कौन सा), कतम (दो से अधिक में से कौन सा), यतर (दो में से जो सा), यतम् (दो से अधिक में से जो सा), ततर (दो में से वह सा), ततम (दो से अधिक में से वह सा), शब्दों के रूप तीनों लिङ्गों में चलते हैं और एक समान होते हैं । उदाहरण के लिए 'अन्य' शब्द के रूप दिखाये जाते हैं—



अन्य—दूसरा

पुल्लिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	अन्य	अन्यौ	अन्ये
द्वि०	अन्यम्	अन्यौ	अन्यान्
तृ०	अन्येन	अन्याभ्याम्	अन्यै
च०	अन्यस्मै	अन्याभ्याम्	अन्येभ्यः
प०	अन्यस्मात्, द्वे	अन्याभ्याम्	अन्येभ्यः
ष०	अन्यस्य	अन्ययो	अन्येषाम्
स०	अन्यस्मिन्	अन्ययो	अन्येषु

नपुंसकलिङ्ग

प्र०	अन्यत्, द्वे	अन्ये	अन्यानि
द्वि०	अन्यत्, द्वे	अन्ये	अन्यानि
तृ०	अन्येन	अन्याभ्याम्	अन्यै
च०	अन्यस्मै	अन्याभ्याम्	अन्येभ्यः
प०	अन्यस्मात्, द्वे	अन्याभ्याम्	अन्येभ्यः
ष०	अन्यस्य	अन्ययो	अन्येषाम्
स०	अन्यस्मिन्	अन्ययो	अन्येषु

स्त्रीलिङ्ग

प्र०	अन्या	अन्ये	अन्या
द्वि०	अन्याम्	अन्ये	अन्या-
तृ०	अन्याया	अन्याभ्याम्	अन्यानि
च०	अन्यस्यै	अन्याभ्याम्	अन्याभ्यः
प०	अन्यस्या	अन्याभ्याम्	अन्याभ्यः
ष०	अन्यस्या	अन्ययो	अन्यास्ताम्
स०	अन्यस्याम्	अन्ययो	अन्यासु

(ख) पूव (पहला अथवा पूर्वी), अवर (बाद वाला अथवा पश्चिमी), दक्षिण (दक्खिणी), उत्तर (उत्तरी), पर (दूसरा), अपर (दूसरा) और अधर (नीचे वाला) शब्दों के रूप एक समान चलते हैं और तीनों लिङ्गों में होते हैं। उदाहरण के लिए 'पूर्व' शब्द के रूप दिये जाते हैं।

## पूर्व (पहला अथवा पूर्वी)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	पूर्व	पूर्वौ	पूर्वै, पूर्वा
द्वि०	पूर्वम्	पूर्वौ	पूर्वान्
तृ०	पूर्वेषु	पूर्वाम्याम्	पूर्वै
च०	पूर्वस्मै	पूर्वाम्याम्	पूर्वभ्य
प०	पूर्वस्मात्, इ, पूर्वात्, इ	पूर्वाम्याम्	पूर्वभ्य
ष०	पूर्वस्य	पूर्वयो	पूर्वेषाम्
स०	पूर्वस्मिन्, पूर्व	पूर्वयो	पूर्वेषु

### नपुंसकलिङ्ग

प्र०	पूर्वम्	पूर्व	पूर्वाणि
द्वि०	पूर्वम्	पूर्व	पूर्वाणि

तृतीया से सप्तमी तक पुल्लिङ्ग जैसा ही रूप होता है।

### स्त्रीलिङ्ग

प्र०	पूर्वा	पूर्व	पूर्वा
द्वि०	पूर्वाम्	पूर्व	पूर्वा
तृ०	पूर्वया	पूर्वाम्याम्	पूर्वामि
च०	पूर्वस्यै	पूर्वाम्याम्	पूर्वाम्य
प०	पूर्वस्या	पूर्वाम्याम्	पूर्वाम्य
ष०	पूर्वस्या	पूर्वयो	पूर्वासाम्
स०	पूर्वस्याम्	पूर्वयो	पूर्वासु



इन दो प्रत्ययों के पूर्व, विशेषण के अन्तिम स्वर और उसके उपरान्त यदि कोई व्यंजन हो तो उसका भी लोप हो जाता है' (यथा—पटु का केवल पट् रह जाता है, लघु का लघ्, घनिन् का घन्)। कही-कही और भी अन्तर हो जाता है। उदाहरणार्थ—

पटु	—	पटीयस्,	पटिष्ठ
लघु	—	लघीयस्,	लघिष्ठ
घनिन्	—	वनीयस्,	घनिष्ठ
अन्तिक	—	नेदीयस्,	नेदिष्ठ
अल्प <sup>३</sup>	—	{ अल्पीयस्, कनीयस्,	{ अल्पिष्ठ कनिष्ठ
यवन् <sup>३</sup>	—	{ यवीयस्, कनीयस्,	{ यविष्ठ कनिष्ठ
ह्रस्व <sup>४</sup>	—	ह्रसीयस्,	ह्रसिष्ठ
क्षिप्र	—	क्षेपीयस्,	क्षेपिष्ठ
क्षुद्र	—	क्षोदीयस्,	क्षोदिष्ठ
स्थूल	—	स्थवीयस्,	स्थविष्ठ
दूर	—	द्वीयस्,	द्विष्ठ
दीर्घ	—	द्रावीयस्,	द्राविष्ठ
गुरु	—	गरीयस्,	गरिष्ठ

१ टे ।६।१।१। अस्य टेलोप स्यादिष्ठेमेयस्सु । सि० कौ० ।

२ अन्तिकबद्धयोर्नेसाधौ ।५।३।६३। इष्णन् तथा ईयसुन् प्रत्यय के जुटने पर अन्तिक (मिकट) के स्थान पर नेद तथा बाढ (मला) के स्थान पर साध आदेश होता है।

३ युवाल्पयो कनन्यतरस्याम् ।५।३।६४। युवन् तथा अल्प शब्दों के स्थान में विकल्प से कन् आदेश हो जाता है।

४ स्थूलदूरयुवह्रस्वक्षिप्रक्षुद्राणा यणादिपर पूर्वस्य च गुण ।६।४।१५६। श्लोक शब्दों में परवर्ती य र, ल, व (यन् प्रत्याहार के वर्णों) का लोप हो जाता है और पूर्व के स्वर का गुण हो जाता है। इस प्रकार क्षिप्र के र का लोप हो जायगा तथा क्षिप् को क्षेप् हो जायगा।

उरु	—	वरीयस्,	वरिष्ठ
प्रिय <sup>१</sup>	—	प्रेयस्,	प्रेष्ठ
बहुल	—	बहीयस्,	बहिष्ठ
कृश*	—	कृशीयस्,	कृशिष्ठ
प्रशस्य <sup>२</sup>	—	श्रेयस्, ज्यायस्,	श्रेष्ठ ज्येष्ठ
वृद्ध <sup>३</sup>	—	ज्यायस्, वर्षीयस्,	ज्येष्ठ, वर्षिष्ठ
स्थिर	—	स्थेयस्	स्थेष्ठ
स्फिर	—	स्फेयस्,	स्फेष्ठ
तृप्प्र*	—	त्रपीयस्,	त्रपिष्ठ
दृढ*	—	द्रढीयस्,	द्रढिष्ठ

१ प्रियस्थिरस्फिरोरुबहुलगुरुवृद्धतृप्तदीर्घवृन्दारकाणां प्रस्थस्फवर्बहिगर्वषित्रप्-  
द्राघिवृन्दा । ६।४।१५७। प्रिय के स्थान मे प्र, स्थिर के स्थान मे स्थ, स्फिर के  
स्फ, उरु के वरु, बहुल के बहि, गुरु के गर्, वृद्ध के वर्षि, तृप्त के त्रप्, दीर्घ के द्राघि  
तथा वृन्दारक के स्थान मे वृन्द हो जाता है।

\*२ ऋतो हलादेलघो । ६।४।१६१। लघु ऋकार के स्थान मे र् आदेश हो  
जाता है, इष्ठन्, इमनिच् तथा ईयसुन् प्रत्यय के जुटने पर, किन्तु उस ऋकार  
के पूर्व कोई व्यञ्जन वर्ण अवश्य रहना चाहिए।

२ प्रशस्यस्य अ १५।३।६०। ईयसुन् और इष्ठन् जुडने पर प्रशस्य को  
'श्र' आदेश हो जाता है। इस प्रकार श्रेयस् और श्रेष्ठ रूप होते हैं। फिर 'ज्य  
च' १५।३।६१। के अनुसार 'ज्य' भी आदेश होता है। अतएव ज्यायस और  
ज्येष्ठ भी रूप बनेंगे।

३ वृद्धस्य च १।३।६२। ईयसुन् और इष्ठन् जुडने पर वृद्ध शब्द के स्थान  
मे भी 'ज्य' हो जाता है। फिर ज्यादादीयस ६।४।१६०। के अनुसार 'ज्य'  
के अनन्तर ईयसुन् के ईकार का आकार हो जाता है। इस प्रकार वृद्ध+ईयस्=  
=ज्य+ईयस्=ज्य+आयस्=ज्यायस् शब्द बना, जिसके ज्यायान् इत्यादि रूप  
होने। उपर्युक्त नोट (१) के अनुसार वृद्ध को 'वर्षि' भी आदेश होता है। इस  
प्रकार वर्षीयस् और वर्षिष्ठ भी रूप सिद्ध होवे।

मृदु	—	अदीयस्,	अदिष्ठ
बहु <sup>१</sup>	—	भूयस्,	भूयिष्ठ

—

DR. RUPNATHJI ( DR. RUPAK NATH )

१ बहुलोपो भू च बहु । ६।४।१५८। इयसुन् और इष्ठन् जुड़ने पर बहु को 'भू' आदेश ही जाता है और उसके बाद आने वाले इयसुन् के इकार का लोप ही जाता है । इसी प्रकार 'इष्ठस्य यिट् च' । ६।४।१५९। के अनुसार बहु के बाद आने वाले इष्ठन् के इकार का भी लोप हो जाता है और उसके स्थान पर 'यि' का आदेश होता है ।

# षष्ठ सोपान

## कारक-विचार

६७—पहले कह चुके हैं कि सस्कृत में प्रातिपदिकों (क्रिया से इतर) की सात विभक्तियाँ होती हैं। इन विभक्तियों का किन अर्थों में प्रयोग होता है, यह इस परिच्छेद में दिखाया जायगा।

‘कारक’ का अर्थ है ऐसी वस्तु, जिसका क्रिया के सम्पादन में उपयोग हो। उदाहरण के लिए ‘अयोध्या म रघु ने अपने हाथ से लाख रुपये ब्राह्मणों को दान दिये’, इस वाक्य में दान क्रिया के सम्पादन के लिए जिन-जिन वस्तुओं का उपयोग हुआ वे ‘कारक’ कहलाएँगी। दान की क्रिया किसी स्थान पर हो सकती है, यहाँ अयोध्या में हुई, इसलिए ‘अयोध्या’ कारक हुई, इस क्रिया के करने वाले रघु थे, इसलिए ‘रघु’ कारक हुए, यह क्रिया हाथ से सम्पादित हुई, इसलिए ‘हाथ’ कारक हुआ, रुपये दिये गये, इसलिए ‘रुपये’ कारक हुए और ब्राह्मणों को दिये गये, इसलिए ‘ब्राह्मण’ कारक हुए। क्रिया के सम्पादन के लिए इस प्रकार छ सम्बन्ध स्थापित होते हैं—

क्रिया का सम्पादक—कर्ता

क्रिया का कर्म—कर्म

क्रिया का सम्पादन जिसकी सहायता से हो—करण

क्रिया जिसके लिए हो—सम्प्रदान

क्रिया जिससे निकले या जिससे दूर हो—अपादान

क्रिया जिस स्थान पर हो—अधिकरण

इस प्रकार कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण ये छ कारक हुए। इन्हीं कारकों के व्यवहार में विभक्तियाँ आती हैं।

१ कर्ता कर्म च करण सम्प्रदान तथैव च ।

अपादानाधिकरणे इत्याहु कारकाणि षट् ।।

क्रिया से जिसका सीधा सम्बन्ध होता हो वही कारक कहला सकता है। 'गोविन्द के लडके गोपाल को श्याम ने पीटा'—ऐसे वाक्यों में पीटने की क्रिया से सीधा सम्बन्ध गोपाल (जिसको पीटा) और श्याम (जिसने पीटा) का है, गोविन्द का कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। इसलिए "गोविन्द के" को कारक नहीं कह सकते। गोविन्द का सम्बन्ध गोपाल से है, किन्तु पीटने की क्रिया के सम्पादन में उसका (गोविन्द का) कोई उपयोग नहीं होता। अतः सम्बन्ध में की गयी षष्ठी विभक्ति कारक विभक्ति नहीं मानी जाती।

अब क्रमानुसार प्रथमा आदि विभक्तियों के प्रयोग पर विचार होगा।

## ६८—प्रथमा

(क) प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा।२।३।४६।

प्रथमा विभक्ति का उपयोग केवल (प्रातिपदिक अवस्था में) शब्द का अर्थ बतलाने के लिए अथवा केवल लिङ्ग बतलाने के लिए अथवा परिमाण अथवा वचन बतलाने के लिए किया जाता है। उदाहरणार्थ —

(१) केवल प्रातिपदिकार्थ—प्रातिपदिक का अर्थ है, शब्द, जिसको अंग्रेजी में बेस् (Base) या क्रूड फार्म (Crude form) कहते हैं। प्रत्येक शब्द

१ यद्यपि सूत्र का अक्षरार्थ तो केवल प्रातिपदिकाथ, केवल लिङ्ग, केवल परिमाण तथा केवल वचन को प्रकट करने के लिए प्रथमा का विधान करता है, परन्तु चूँकि प्रातिपदिकार्थ के बिना लिङ्गादि की प्रतीति असम्भव है, अतएव प्रातिपदिक के लिङ्गादि अधिक अर्थ का बोध कराने के लिए प्रथमा का प्रयोग होता है, ऐसे अर्थ समझना चाहिए।

२ केवल प्रातिपदिक का अर्थ प्रकट करने के लिए प्रथमा का प्रयोग होता है—इसके उदाहरण वही शब्द हो सकते हैं, जो या तो अलिङ्ग हैं अर्थात् किसी लिङ्ग का बोध नहीं कराते, जैसे उच्चै, नीचै इत्यादि, अथवा नियत (निश्चित) लिङ्ग वाले हैं, जैसे कृष्ण, श्री, ज्ञानम् इत्यादि। जो अनियतलिङ्ग होते हैं, उनमें लिङ्गमात्र अधिक अर्थ का बोध कराने के लिए प्रथमा होती है, जैसे तट, तटम् इत्यादि (अलिङ्गा नियतलिङ्गाश्च प्रातिपदिकार्थमात्र इत्यस्योदाहरणम्। अनियतलिङ्गास्तु लिङ्गमात्रधिक्यस्य—सि० कौ०)।



का कुछ नियत अर्थ होता है, परन्तु सस्कृत के वैयाकरणों के हिसाब से किसी शब्द में जब तक प्रत्यय लगाकर पद (सुप्तिङन्त पदम्) न बना लिया जाय, तब तक उसका अर्थ नहीं समझा जा सकता। अतएव यदि किसी शब्द के केवल अर्थ का बोध कराना हो तो प्रथमा विभक्ति लगाते हैं, जैसे यदि केवल 'राम' उच्चारण करे तो सस्कृत में यह शब्द निरर्थक होगा, यदि "राम" के तब राम शब्द के अर्थ का बोध होगा। इसीलिए सज्ञा, सर्वनाम, विशेषण ही में नहीं, प्रत्युत अव्ययो तक में भी सस्कृत वैयाकरण प्रथमा लगाते हैं, जैसे नीचै, उच्चै आदि। यदि न लगाएँ तो उन अव्ययों का अर्थ ही न मिले।

(२) प्रातिपदिकाथ के अतिरिक्त लिङ्ग—ऐसे शब्द जिनमें लिङ्ग नहीं होता (जैसे उच्चै आदि अव्यय) और ऐसे शब्द जिनका अर्थ नियत है अर्थात् मालूम है कि यह शब्द केवल पुल्लिङ्ग में होता है (जैसे वृक्ष) अथवा केवल नपुंसकलिङ्ग में होता है (जैसे फलम्) अथवा केवल स्त्रीलिङ्ग में होता है (जैसे कन्या)—इनको छोड़कर बाकी शब्दों के अर्थ और लिङ्ग दोनों प्रथमा विभक्ति के द्वारा ही जान पड़ते हैं, जैसे तट, तटी, तटम्। इन शब्दों में 'तट' से यह ज्ञात होता है कि यह शब्द पुल्लिङ्ग में है और इसका अर्थ किनारा है, 'तटी' स्त्रीलिङ्ग है और इसका अर्थ किनारा है, 'तटम्' नपुंसकलिङ्ग है और इसका भी अर्थ किनारा है।

(३) केवल परिमाण जैसे—प्रस्थो ब्रीहि यहाँ प्रथमा विभक्ति से प्रस्थ अर्थात् आधसेर का परिमाण विदित होता है। कितना चावल? आध सेर चावल—इस अर्थ के लिए यहाँ प्रथमा विभक्ति है।

(४) केवल वचन (सख्या)—जैसे एक, दो, बहव।

### (ख) सम्बोधने च ।२।३।४७।

प्रथमा विभक्ति का उपयोग सम्बोधन करने में भी होता है, जैसे—हे बालका ? (हे बालको), हे कन्या ? (हे कन्याओ) आदि। इसलिए सम्बोधन को अलग विभक्ति नहीं मानते। ऊपर सज्ञाओं के रूप देते समय सम्बोधन के भी रूप कही-कही दिये गये हैं, इससे यह नहीं समझना चाहिए कि सम्बोधन की भी आठवीं विभक्ति होती है। रूप केवल आसानी के लिए दिये गये हैं, क्योंकि सम्बोधन करते समय प्रथमा के एकवचन में कुछ अन्तर पड़ जाता है।

(ब) सस्कृत-व्याकरणों में ऊपर (क) और (ख) में लिखे हुए दो ही सूत्र प्रथमा विभक्ति के उपयोग के लिए मिलते हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि सारे सस्कृत-साहित्य में कर्तृवाच्य के कर्ता (बालक गच्छति, कन्या फलमश्नुते, सुख्यका बृक्षमारोहन्ति) और कर्मवाच्य के कर्म (हरि सेव्यते, पित्र पुत्र ताड्यते, भ्रात्रा भगिनी पाठ्यते, भोजन स्वाद्यते) में जो प्रथमा विभक्ति मिलती है, वह किस नियम अथवा सूत्र से सिद्ध होनी चाहिए। इसका समाधान इस प्रकार है। सस्कृत भाषा में क्रिया अथवा व्यापार को ही वाक्य में प्रधानत्व दिया गया है। क्या करना है, इसके बारे में सबसे पहले पूर्ण निश्चय हो जाना चाहिए, फिर कर्ता, कर्म आदि आवेंगे। ऊपर कारक (२७) का व्याख्यान करते समय कह आये हैं कि क्रिया से सम्बन्ध रखने पर ही कारक हो सकता है। अन्य भाषाओं में किसी में कर्म को प्रधानत्व दिया गया है और किसी में कर्ता को, जैसे अंग्रेजी में कर्ता को। अंग्रेजी में कर्ता निश्चित हो जाता है, फिर उसके अनुसार क्रिया, कर्म आदि आते हैं। परन्तु सस्कृत में क्रिया का निश्चय हो जाना मुख्य है और उसका निश्चय हो जाने पर उसी के सम्बन्ध में अन्य कारक शब्द आते हैं। क्रिया बतला दी जाने पर उसके साथ जिस शब्द का जैसा अन्वय हो, उस शब्द का वैसा कारक समझना चाहिए। उदाहरणार्थ कोई क्रिया जैसे 'गच्छति' ले लीजिए, अब 'गच्छति' से इन बातों का बोध होता है—

(१) क्रिया वर्तमान काल में हो रही है।

(२) इस क्रिया का सम्पादक कोई अन्यपुरुष एकवचन है। अब कोई ऐसा वाक्य ले लीजिए जिसमें "गच्छति" शब्द आता हो, जैसे—

राम भ्राम गच्छति।

इस वाक्य में दो शब्द हैं, जो अन्यपुरुष और एकवचन में हैं, अर्थात् 'राम' और 'भ्रामम्'। 'भ्रामम्' कर्मस्थानीय है—यह आगे द्वितीया के प्रयोग वाले सूत्रों से व्यक्त हो जायगा इसलिए यह कर्ता हो नहीं सकता, बाकी बचा 'राम' शब्द, यही कर्ता हो सकता है। इसी प्रकार कर्मवाच्य के कर्म के विषय में भी क्रिया के साथ जिस शब्द का अन्वय लग जायगा, वही कर्म होगा, जैसे—'सेव्यते' से यह पता चल जाता है कि कोई अन्यपुरुष एकवचन की सजा कर्म हो सकती है। अब

जिस वाक्य में सेव्यते क्रिया आवे जिसका सम्बन्ध कर्म रूप ही से सिद्ध हो अन्य से नहीं, वही कर्म होगा, जैसे—हरि सेव्यते इत्यादि में 'हरि' ।

इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि कर्तृवाच्य में क्रिया का कर्ता और कर्मवाच्य में क्रिया का कर्म यह भी प्रथमा विभक्ति में होते हैं ।

## ६६—द्वितीया

### (क) कर्तुरीप्सितस्य कर्म ११४।४६।

“किसी वाक्य में प्रयोग किये गये पदार्थों में से जिसका कर्ता सबसे अधिक चाहता है उसे कर्म कहते हैं, पाणिनि ने कर्म कारक का इस प्रकार परिभाषा दी है ।

“जिस वस्तु या पुरुष के ऊपर क्रिया का फल समाप्त होता है, उसे कर्म कहते हैं” यह हिन्दी तथा अंग्रेजी में कर्मकारक का लक्षण बतलाया जाता है, किन्तु साहित्य में ऐसे अनेक उदाहरण आते हैं जिन पर क्रिया का फल समाप्त तो होता है, किन्तु वे कर्मकारक नहीं माने जाते जैसे—‘उह घर जाता है’ । यहाँ यद्यपि ‘जाने’ का कार्य ‘घर’ पर समाप्त होता है तथापि ‘घर’ साधारणतः कर्म नहीं माना जाता । संस्कृत में भी ‘घर’ को साधारण नियमों के अनुसार कर्म नहीं मानते, न ‘जाना’ को सकर्मक क्रिया मानते हैं । घर को कर्म मानने के लिए साधारण नियमों के अतिरिक्त विशेष नियम है । इसी प्रकार और भी स्थल दिखाये जायेंगे जो कर्म के साधारण लक्षण के अनुसार कर्म के अन्तर्गत नहीं होते और जिन्हें कर्म-सज्ञा देने के लिए विशेष सूत्रों की रचना करनी पडी ।

कर्ता जिस क्रियान्वयी पदार्थ को अपने व्यापार से प्राप्त करने के लिए सबसे अधिक च्छा या इच्छा रखता है, उसे कर्म कहते हैं ।

(१) कर्ता की चाह का अभिप्राय यह है कि यदि कोई पदार्थ कर्मादि का अभीष्टतम हो परन्तु कर्ता को उसकी प्राप्ति अभीष्ट न हो तो उसकी कर्मसज्ञा नहीं होगी, जैसे ‘भाषेस्वश्व वचनाति’ (उडक के खेत में घोड़े को बाँधता है)— इस वाक्य में बाँधने वाला अपनी बाँधने की क्रिया के द्वारा अश्व ही को वशगत् करना चाहता है । अतएव बन्धनव्यापार द्वारा अश्व ही कर्ता का अभीष्ट है,

उडद नहीं। उडद की चाह अश्व को हो सकती है और उसके प्रलोभन से अश्व का बाँधना सुगमतर भी हो सकता है, परन्तु कर्त्ता को यहाँ उसकी चाह नहीं है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कर्त्ता की इच्छा का ही प्राधान्य कर्मनिर्धारण में निर्णायक होता है, न कि कर्त्ता से अतिरिक्त अन्य किसी की इच्छा का प्राधान्य।

(२) जिसे कर्म सज्ञा दी जायगी, वह पदार्थ कर्त्ता की क्रिया द्वारा उस (कर्त्ता) को अभीष्टतम होना चाहिए, अर्थात् यदि उसी क्रिया से कोई पदार्थ ऐसे सम्बद्ध हो जिन सभी की सामान्य चाहना कर्त्ता रखता है तो उन सबों में जो सब से अधिक ईप्सित होगा, वही कर्मसज्ञा प्राप्त करेगा, दूसरे नहीं। जैसे 'पयसा ओदन भुक्ते' (दूध से भात खाता है) — इस वाक्य में दूध भी भात ही की तरह कर्त्ता को प्रिय है, पर कर्त्ता अपने भोजनव्यापार द्वारा जिसको सबसे अधिक पाना चाहता है, वह भात है, न कि दूध। क्योंकि दूध पेय है, भोज्य नहीं, वह तो केवल भोजन-क्रिया के सम्पन्न में सहायक है।

(३) इसी कारण 'ब्राह्मणस्य पुत्र पन्थान पृच्छति'—इस वाक्य में यद्यपि पूछने वाला कर्त्ता पुत्र की अपेक्षा विज्ञ ब्राह्मण से ही रास्ता पूछना अधिक पसन्द करेगा, तथापि ब्राह्मण की कर्मसज्ञा नहीं हो सकती, क्योंकि ब्राह्मण का 'पृच्छति' क्रिया के साथ कोई सम्बन्ध न होकर पुत्र के साथ विशेष सम्बन्ध है।

### (ख) कर्मणि द्वितीया १२।३।२।

कर्म को बताने के लिए द्वितीया विभक्ति का प्रयोग होता है, जैसे—  
भक्त हरि को भजता है। इसमें 'हरि को' कर्म है, इसलिए हरि शब्द में द्वितीया कृत्नी होगी—भक्तो हरि भजति। ब्रह्मचारी वेदमधीते।

### तथायुक्त चानीप्सितम् ११।४।५०।

(क) कुछ पदार्थ ऐसे भी होते हैं जो कि कर्त्ता द्वारा अनीप्सित होते हुए भी ईप्सित ही की तरह क्रिया से सटे रहते हैं। उनकी भी कर्मसज्ञा होती है। जैसे, 'ओदन भुञ्जानो विष भुक्ते' इस वाक्य में 'विष' अत्यन्त अनीप्सित है, परन्तु 'ओदन' (जो भोजन क्रिया द्वारा कर्त्ता का ईप्सिततम है) की ही तरह वह भी उस क्रिया से सटा हुआ है और ओदन भोजन के साथ उसके भोजन का भी रहना अनिवार्य है। अत 'विष' भी कर्मसज्ञक हो जायगा। इस प्रकार 'ग्राम गच्छन् तृण स्पृशति'—इस वाक्य में भी 'तृण' कर्मसज्ञक होगा।

## (ग) अकथितं च १।४।५१।

(ख) अपादान इत्यादि के द्वारा अविवक्षित कारक 'अकथित' कम कहलाता है।

बहुत से ऐसे पदार्थ हैं जो कई एक धातुओं के कर्मों के साथ नियत रूप में सम्बद्ध रहते हैं और वस्तुतः वे कर्म के अतिरिक्त अन्य कारकों के अर्थ का द्योतित करते हैं। वे ही गौण कर्म के रूप में स्वीकार कर लिये जाते हैं। अतः इनके लिए द्वितीया विभक्ति का ही विधान होता है। यह नियम

## (घ) दुह्याचपचदण्डरुधिप्रच्छिचिन्नूशासुजिमयमुषाम् ।

कर्मयुक् स्यादकथित तथा स्याद्दुहृकृष्वहाम् ॥

इस कारिका में गिनायी गयी धातुओं के ही लिए है। इनमें इन धातुओं की पर्यायवाची धातुएँ भी सम्मिलित समझनी चाहिए।

(१) 'गा दोग्धि पय'—यहाँ पर 'गाय' से दूध दुहता है' ऐसा अर्थ निकलने के कारण 'गाय' सामान्यतः अपादान कारक है, इसलिए उसमें पञ्चमी विभक्ति होनी चाहिए। परन्तु यहाँ पर 'गाय' दूध के निमित्तमात्र के रूप में गृहीत है, अवधि-रूप में नहीं। अतएव उपर्युक्त नियम के अनुसार 'गाय' की कमसज्ञा हुई। इस वाक्य से अभिप्राय यह निकला कि पय कमक गोसम्बन्धी दोहन-व्यापार हुआ। अपादान की विशेष विवक्षा होने पर 'गोदोग्धि पय' ऐसा ही प्रयोग होगा।

(२) 'बलिं व्रते वसुधाम्'—यहाँ 'बलि' गौण कर्म है। अपादान की विशेष विवक्षा होने पर 'बलेर्याचते वसुधाम्'—यह प्रयोग होगा।

(३) 'तण्डुलानोदन पचति'—यहाँ 'तण्डुल' वस्तुतः करणार्थक है, परन्तु वक्ता की इच्छा उसे करण कहने की नहीं, अतएव वह गौण कर्म के रूप में अवस्थित हो गया है।

(४) गर्गान् शत दण्डयति ।

(५) 'व्रजमवरुणद्वि गाम्'—यहाँ सामान्यतः 'व्रज' आधार होता, परन्तु आधार की विवक्षा न होने के कारण उपर्युक्त नियम के अनुसार अकथित कर्म हुआ। इसी प्रकार अन्यत्र भी जानना चाहिए।

- (६) माणवक पन्थान पृच्छन्ति ।  
 (७) वृक्षमवचिनोति फलानि ।  
 (८) माणवक धर्म ब्रूते शास्त्रि वा ।  
 (९) शत जयति देवदत्तम् ।  
 (१०) सुवा क्षीरनिधिं मथ्नाति ।  
 (११) देवदत्त शत मुष्णाति ।  
 (१२) ग्राममजा नयति, हरति, कर्षति, वहति वा ।

इन धातुओं की समानार्थक धातुएँ भी द्विकर्मक होती हैं, जैसे—माणवक धर्म भाषते वक्ति वा, बलि वसुधा भिक्षते इत्यादि

ऊपर कही हुई 'दुहादि' धातुओं के प्रधान कर्म से जिनका सम्बन्ध होता है, वे अकथित अर्थात् अप्रधान या गौण कर्म कहे जाते हैं, जैसे—दुह् का प्रधान कर्म दूध है, दूध से सम्बन्ध रखने वाली है गाम्, 'गाय' अकथित अथवा अप्रधान कर्म है। इसी प्रकार "अवरुणद्धि" का प्रधान कर्म "गाय" है, गाय से सम्बन्ध रखने वाला "बाडा" है, "बाडा" अकथित कर्म है। 'कर्मणि द्वितीया' सूत्र के अनुसार इस अकथित कर्म में द्वितीय विभक्ति हुई है।

पय, वसुधा, ओदन इत्यादि प्रधान कर्म कहे जाते हैं क्योंकि वे कर्ता के इष्टतम हैं और कर्म छोड़कर दूसरे कारक हो ही नहीं सकते। गाम्, व्रजम्, माणवकम् इत्यादि अप्रधान कर्म हैं क्योंकि वे कर्म के अतिरिक्त दूसरे कारक भी हो सकते हैं, जैसे—

- "गा दोग्धि पय" के बदले गो (पञ्चमी) दोग्धि पय ।  
 "व्रजम् अवरुणद्धि गाम्" " " व्रजे अवरुणद्धि गाम् ।  
 "माणवक पन्थान पृच्छति" " " माणवकात् पन्थान पृच्छति ।

(ड) अकर्मकधातुभिर्योगे देशः कालो भावो गन्तव्योऽध्वा  
 च कर्मपञ्जक इति वाच्यम् (वार्तिक)—अकर्मक धातुओं

के योग में देश, काल, भाव तथा गन्तव्य पथ भी कर्म समझे जाते हैं, जैसे—

(१) कुरुन् स्वपिति—कुरुदेश में सोता है ('कुरुन्' देगव्यञ्जक है) ।

१ अर्थनिबन्धनेय सज्ञा । बलि भिक्षते वसुधाम् । माणवक धर्म भाषते अभिषत्ते, वक्तोत्यादि ।—'अकथितञ्च' ११४।५१ पर सि० कौ० ।

(२) मासमास्ते—महीने भर रहता है ('मासम्' कालव्यञ्जक है)

(३) गोदोहमास्ते—गाय दुहने की क्रिया जितनी देर होती है उतनी देर तक रहता है ('गोदोहम्' भावव्यञ्जक है)।

(४) क्रोशमास्ते—कोस भर में रहता है ('क्रोशम्' मार्गव्यञ्जक है)।

### (च) अधिशीङ्स्थासा कर्म ।१।४।४६।

शी, स्था तथा आस् धातुओं के पूर्व यदि 'अधि' उपसर्ग लगा हो तो इन क्रियाओं का आधार कर्म कहलाता है अर्थात् जिस स्थान पर इन धातुओं की क्रियाएँ होती हैं, वह कर्म होता है जैसे—

चन्द्रापीड मुक्ताशिलापट्टम् अधिशिष्ये—चन्द्रापीड मुक्ताशिला की पटरी पर लेट गया।

अर्घासन गोत्रमिदोऽधितस्थौ—इन्द्र के आगे अर्घासन पर बैठा था।

भूपति सिंहासनम् अध्यास्ते—राजा सिंहासन पर बैठा है।

यहाँ ये क्रियाएँ पटरी, आसन और सिंहासन पर, जो आधार हैं, हुई हैं। इसलिए इन शब्दों को कर्म कहेंगे और इनमें द्वितीया दिग्भक्ति होगी। यदि 'अधि' उपसर्ग न लगा होता तो आधार के अधिकरण होने के कारण उसमें सप्तमी होती—शिलापट्टे शिष्ये, अर्घासने नस्थौ, सिंहासने आस्ते।

### (छ) अभिनिविशश्च ।१।४।४७।

अभि तथा नि उपसर्ग जो एक साथ विश् धातु के पहिले आते हैं तो विश् का आधार कर्म कारक हीना है, जैसे—

सन्मार्गम् अभिनिविशते—वह अच्छे मार्ग का अनुसरण करता है।

घन्या सा कामिनी याम् भवन्मनोऽभिनिविशते—वह स्त्री घन्य है, जिसके ऊपर आपका मन लगा है।

यदि 'अभि-नि' साथ-साथ न आकर केवल एक ही आवे तो द्वितीया न होगी, जैसे—

'निविशते यदि शूकशिखा पदेर (नैषध)

### (ज) उपान्वध्याडवसः ।१।४।४८।

यदि वस् धातु के पूर्व उप, अनु, अधि, आ में से कोई उपसर्ग लगा हो तो क्रिया का आधार कर्म होता है, जैसे—

हरि वैकुण्ठम्<sup>१</sup> उपवसति  
 हरि वैकुण्ठम्<sup>२</sup> अनुवसति  
 हरि वैकुण्ठम्<sup>३</sup> अधिवसति  
 हरि वैकुण्ठम्<sup>४</sup> आवसति  
 परन्तु हरि वैकुण्ठे वसति ।

हरि वैकुण्ठ मे वास करते है ।

अन्तिम वाक्य मे 'वसति' का आधार "वैकुण्ठ" कर्म नहीं हुआ क्योंकि "वसति" के पूर्व उप, अनु, अधि, आ मे से कोई उपसर्ग नहीं लगा है ।

### (अ) अभुक्त्यर्थस्यतु न (वार्त्तिक)

जब "उपवस्" का अर्थ "उपवास करना, गल्लाना" होता है, तब "उपवस्" का आधार कर्म नहीं होता, अधिकरण ही रहता है, जैसे—वने उपवसति—वन मे उपवास करता है ।

### (अ) अकर्मक क्रिया

घातोरथान्तरे वृत्तेर्घात्वर्थेनोपसग्रहात् ।  
 प्रसिद्धेरविवक्षात् कर्मणोऽकर्मिका क्रिया ॥

(१) जब घातु का अर्थ बदल जाय जैसे 'वह्' घातु का अर्थ है 'ढोना' (ले जाना), पर 'नदी वसति' इस प्रयोग मे 'वह्' का अर्थ स्पन्दन करना है,

(२) जब घातु के अर्थ मे ही कर्म समाविष्ट हो जैसे 'जीवति' इस प्रयोग मे 'जीवन जीवति' इस प्रकार का अर्थ गम्य होने के कारण जीवन की कर्मता छिपी हुई है,

(३) जब घातु का कर्म अत्यन्त प्रख्यात हो, जैसे 'मेघो वर्षति' यहाँ 'वर्षति' का कर्म 'जलम्' अत्यन्त लोकविख्यात है ।

(४) और जब कर्म का कथन अभीष्ट न हो जैसे (हिताश्रय सश्रृणुते स किं प्रमु' इस प्रयोग मे 'हित' कर्म है, पर उसे कर्म बतलाना वक्ता को अभीष्ट नहीं ।

१, २, ३, ४ ये सभी वास्तव मे अधिकरण हैं, किन्तु नियमविशेष से कर्म हो गये हैं ।



सब सकर्मक धातुएँ भी अकर्मक हो जाती हैं। इसके विपरीत अकर्मक धातुएँ भी उपसर्गपूर्वक होने पर प्रायः सकर्मक हो जाती हैं, जैसे 'प्रमृचित्तमेव जनोऽनुवर्तते' 'अचलतुङ्गशिखरमारोह', 'नोत्पतति वा दिवम्' ऋषीणा पुनराद्याता वाचमर्थोऽनुधावति' इत्यादि।

### (ट) उभसर्वतसोः कार्याधिगुपर्यादिषु त्रिषु। द्वितीयाच्चेडितान्तेषु, ततोऽन्यत्रापि दृश्यते॥

उभय, सर्वत, धिक्, उपर्युपरि, अघोऽघ तथा अध्यधि शब्दों का जिससे संयोग हो तो उसमें द्वितीया होती है, जैसे—

उभयत कृष्ण गोपा —कृष्ण के दोनों ओर खाले हैं।

सर्वत कृष्ण गोपा —कृष्ण के सभी ओर खाले हैं।

धिक् पिचुनम्—चुगुलखोर को धिक्कार है।

धिक् त्वा पापिनम्—तुझ पापी को धिक्कार है।

उपर्युपरि लोक हरर —हरि लोक के ठीक ऊपर हैं।

अघोऽघो लोक पाताल —पाताल लोक के ठीक नीचे है।

नवान् मेघान् अघोऽघ —नये बादलों के ठीक नीचे।

अध्यधि लोकम्—समाज के ठीक ऊपर।

नोट—ऊपर के उदाहरणों से स्पष्ट है कि 'दोनों ओर', 'सभी ओर', 'ठीक ऊपर', 'ठीक नीचे' के साथ हिन्दी में 'का' परसर्ग लगता है, किन्तु संस्कृत में 'का' की स्थानीय षष्ठी न लगकर द्वितीया लगती है। अनुवाद के समय इसका ध्यान रखना चाहिए।

१ धिक् के साथ कभी-कभी प्रथमा और सम्बोधन भी होते हैं, जैसे—धिगिय दरिद्रता, धिगर्या कष्टसश्रया, धिङ् मूढ।

२ उपर्यध्यघस सामीप्ये ।८।१।७। अर्थात् 'सामीप्य' के अर्थ में उपरि, अधि तथा अध आच्चेडित (द्विरुक्त) होते हैं। परन्तु यदि सामीप्य अर्थ न हो तो षष्ठी ही होती है, जैसे—'उपर्युपरि सर्वेषामादित्य इव तेजसा' (महामावत) स० व्या० प्र०—12

### (ठ) अभितःपरितःसमयानिकषाहाप्रतियोगेऽपि (वार्तिक)

अभित (चारो ओर या सब ओर), परित (सब ओर), समया (समीप), निकषा (समीप), हा, प्रति (ओर, तरफ़) शब्द जिस शब्द के सम्बन्ध में प्रयुक्त हों, उसमें द्वितीया होती है, जैसे—

परिजन राजानम् अभित तस्थौ—नौकर राजा के चारो ओर खड़े थे।

रक्षासि वेदी परितो निरास्थत्—राक्षसों को वेदी के चारो ओर से निकाल दिया।

ग्राम समया निकषा वा—ग्राम के समीप।

हा<sup>१</sup> शठम्—हाथ शठ।

मातु हृदय कन्या प्रति स्निग्ध भवति—माता का हृदय कन्या की ओर (कन्या के प्रति) कोमल होता है।

नोट—यहाँ भी हिन्दी और सस्कृत दोनों के प्रयोगों में विभिन्नता है। प्रति के साथ हिन्दी में षष्ठी लगती है, सस्कृत में द्वितीया। इसी प्रकार अभित, परित, समया, निकषा के साथ भी होता है।

### (ड) अन्तराऽन्तरेण युक्ते १२।३।४।

अन्तरा (बीच में), अन्तरेण (विषय में, बिना, छोड़ कर) शब्द जिस शब्द के सम्बन्ध में प्रयुक्त हों, उसमें द्वितीया होती है, जैसे—

अन्तरा त्वा मे हरि—तुम्हारे हमारे बीच में हरि हैं।

रामम् अन्तरेण न किञ्चिद् जानामि—राम के बारे में कुछ नहीं जानता हूँ।

त्वामन्तरेण कोऽन्य प्रतिकर्तुं समर्थ—तुम्हारे बिना दूसरा कौन बदला देने में समर्थ है।

नोट—यहाँ भी हिन्दी में षष्ठी होती है और सस्कृत में द्वितीया।

१ हा के साथ कमी-कमी सम्बोधन भी होता है, जैसे—हा भगवत्य-रुच्यति!

## (ढ) कालाध्वनोरत्यन्तसयोगे ।२।३।५।

जब कोई क्रिया लगातार कुछ समय तक होती रहे या कोई वस्तु कुछ दूरी तक लगातार हो तो समय और मार्गवाचक शब्द में द्वितीया होती है जैसे—  
चत्वारि वर्षाणि वेदम अधिजगे—चार वर्ष तक वेद पढ़ता रहा।

सहस्र वर्षाणि राक्षस तपस्तप्तवान्—राक्षस हजार वर्ष तक लगातार तप करता रहा।

क्रोश कुटिला नदी—नदी कोस पर तक टेढ़ी है।

सभा वैश्रवणी राजन् शतयोजनमायता—हे राजन् कुबेर की सभा सौ योजन लम्बी है।

दशयोजनविस्तीर्णा त्रिंशद्योजनमायता।

छाया वानरसिंहस्य जले चास्तराऽभवत् ॥

वानरश्रेष्ठ (हनुमान् जी) की परछाई जो सिद्धम योजन चौड़ी और तीस योजन लम्बी थी, जल में अधिक मुन्दर लगती थी।

## (ण) एनपा द्वितीया ।२।३।३।

एनप् प्रत्ययान्त शब्द का जिम शब्द में सम्बन्ध होता है, उसमें द्वितीया या षष्ठी होती है, जैसे—

ग्राम ग्रामस्य वा दक्षिणेन—गाँव के दक्षिण की ओर।

तत्रागार घनपतिगृहानुत्तरात्समीपम्—वहाँ पर कुबेर के महल के उत्तर मेरा घर है।

यहाँ दक्षिणेन, उत्तरेण इन दोनों शब्दों में एनप् प्रत्यय है। इन्हें तृतीयान्त नहीं समझना चाहिए। एनप् प्रत्यय के (अमुक दिशा में समीप में इस अर्थ में) लगने पर शब्द प्रत्यय-मा ही रहता है—उसका रूप नहीं चलता।

## (त) गत्यर्थकर्मणि द्वितीयाचतुर्थी चेष्टायामनध्वनि

।२।३।१२।

जब गत्यर्थक धातुओं (ऐसी धातुएँ जिनका अर्थ 'जाना' हो, जैसे, या, गम्, चल्, इण् आदि) का कर्म मार्ग नहीं रहता है और क्रियानिष्पादन में शरीर से व्यापार करना पड़ता है, तो उस कर्म में द्वितीया या चतुर्थी होती है, जैसे—  
गृह गृहाय वा गच्छति।

यहाँ पर 'गृह' मार्ग नहीं है, बल्कि स्थान है और घर जाने में हाथ, पैर तथा शरीर के और अङ्गों को हिलाना-डुलाना पड़ता है, इसलिए गृह, गृहाय दोनो होता है। यदि शत्यर्थक धातु का कर्म "मार्ग" हो तो केवल द्वितीया होती है, जैसे—पन्थान गच्छति।

जहाँ शरीर से व्यापार नहीं करना पड़ता, वहाँ केवल द्वितीया होती है, जैसे—मनसा हरि व्रजति। यहाँ पर हरि के पास मन के द्वारा जाता है, जिसमें जाने वाले को हाथ, पैर अथवा शरीर का और कोई अङ्ग नहीं हिलाना-डुलाना पड़ता एव इसमें शरीर-व्यापार नहीं होता, इसलिए चतुर्थी नहीं हो सकती। इसी प्रकार—

नरपतिहितकर्ता द्वेष्यता याति लोके।

तदानन मृतसुरभि क्षितीश्वरो रस्युपाश्रय न तृप्तिमाययौ।

विद्या ददाति विनय, विनयाद्याति मात्रताम्।

अश्वत्थामा किं न यात स्मृतिं तौ।

पश्चादुमाख्या सुमुखी जगाम।

(थ) दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च ।२।३।३५।

दूर, अन्तिक (निकट) तथा इनके समान अर्थ रखने वाले शब्दों में द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी अथवा सप्तमी होती है, जैसे—ग्रामात्, ग्रामस्य वा दूर, दूरेण, दूरात्, दूरे वा।

वनस्य, वनदि वा अन्तिक, अन्तिकेन, अन्तिकात्, अन्तिके वा।

गृहस्य निकट, निकटेन, निकटात्, निकटे वा।

(द) गौणं कर्मणि दुह्यादेः प्रधाने नीहृकृष्वहाम्।

विभक्तिः प्रथमा ज्ञेया द्वितीया च तदन्यतः ॥

पूर्व कही हुई द्विकर्मक धातुओं के कर्मवाच्य बनाने में दुह् से लेकर मुष् तक के गौण कर्म में और नी, हृ, कृष्, वह् के प्रधान कर्म में प्रथमा लगाते हैं, शेष कर्म में अर्थात् दुह् से मुष् तक के प्रधान कर्म में और नी, हृ, कृष्, वह् के गौण कर्म में द्वितीया होती है, जैसे—

## कर्तृवाच्य

गोप घेनु पयो दोग्धि

देवा समुद्र सुधा ममन्थु

सोऽजा ग्राम नयति, हरति }  
कर्षति, वहति वा }

## कर्मवाच्य

गोपेन घेनु पयो दुह्यते

देवै समुद्र सुधा ममन्थे

{ तेन अजा ग्राम नीयते,  
हियते, कृष्यते, उह्यते वा }

(ध) गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्त्ता  
स णौ (कर्म) ११४।५२।

- (१) ऐसी धातुएँ जिनका अर्थ जाना हो, जैसे—पठ्, या, इण् आदि,  
(२) ऐसी धातुएँ जिनका अर्थ कुछ समझना या ज्ञान प्राप्त करना हो,  
जैसे—बुध् (जानना), ज्ञा (जानना), विद् (जानना) आदि,  
(३) ऐसी धातुएँ जिनका अर्थ खाना हो, जैसे—भक्ष्, भुज् आदि,  
(४) ऐसी धातुएँ जिनका कर्म कोई शब्द हो जैसे—पठ् (पढ़ना), उच्चर्  
(बोलना) आदि, और  
(५) ऐसी धातुएँ जिनका कोई कर्म न हो, जैसे—उत्तिष्ठ (उठना),  
आस् (बैठना) आदि,

इनका साधारण दशा (अणिजन्त) में जो कर्त्ता रहता है, वह णिजन्त अथवा  
प्रेरणार्थक में कर्म ही जाता है, जैसे—

शार्दूलमम्यत् स्वर्गं, वेदार्थं स्वानवेदयत् ।

अम्राज्यच्चाभृत देवान्, वेदमध्यापयद् विधिम् ।

आशयत् सलिले पृथ्वी, य स मे श्रीहरिर्गति ॥

अर्थात् जिन श्रीहरि ने शत्रुओं को स्वर्ग भेजा, आत्मीयों को वेद का अर्थ  
समझाया, देवताओं को अमृत खिलाया, ब्रह्मा को वेद पढाया, पृथ्वी को जल में  
बिठाया, वही मेरे शरणदाता हैं ।

१ सामान्यतः प्रकृतदशा का कर्त्ता णिजन्त या प्रेरणार्थक क्रियाओं में करण  
होता है और तृतीया में रखा जाता है, जैसे 'रामो भार्यां त्यजति' का प्रेरणार्थक  
'रामेण भार्यां त्याजयति' होता है ।

## सापारण रूप

शत्रुव स्वगमगच्छन्  
स्वे वेदाथम् अविदु  
देवा अमृतम् आशन्  
विधि वेदम् अध्वैत  
पृथ्वी सलिले आस्त

## प्रेरणार्थक रूप

शत्रून् स्वर्गमगमयत् ।  
स्वान् वेदाथम् अवेदयत् ।  
देवान् अमृतम् आशपत् ।  
विधि वेदमध्यापयत् ।  
पृथ्वी सलिले मासयत् ।

( 1 ) सूत्र मे अकर्मक धातुओ का तात्पर्य उन्ही धातुओ से है जिनका देश, काल इत्यादि से भिन्न कर्म सम्भव नहीं है। उन धातुओ से नहीं जो कर्म के अविवक्षित होने के कारण अकर्मक रूप में प्रयुक्त होती है। अतएव 'मासम् आस्ते देवदत्त' का प्रेरणार्थक प्रयोग होने पर 'देवदत्त' कर्म हो जायगा जैसे, 'मासमासयति देवदत्तम्' परन्तु 'पचति देवदत्त' का 'पाचयति देवदत्तेन' ही होगा, 'पाचयति देवदत्तम्' नहीं।

( 11 ) सूत्र मे 'अणि' अर्थात् अणिजन्त का गृहण करने का तात्पर्य यह है कि यदि णिजन्त का कर्त्ता भी किसी अन्य से प्रेरित होकर प्रेरित करता है तो वह कर्म अर्थात् द्वितीयान्त नहीं होगा, अपितु तृतीयान्त ही प्रयुक्त होगा, जैसे, 'गच्छति यज्ञदत्त' यदि इस वाक्य का कर्त्ता 'यज्ञदत्त' देवदत्त से प्रेरित होता है तो वह कर्म होकर द्वितीया में रखा जायगा—गमयति यज्ञदत्त देवदत्त । अब यदि 'देवदत्त' स्वर्ग विष्णुदत्त से प्रेरित होकर यज्ञदत्त को जाने के लिए प्रेरित करता है तो 'देवदत्त' कर्म नहीं होगा क्योंकि यह अणिजन्त अर्थात् साधारण क्रिया का कर्त्ता नहीं अपितु णिजन्त या प्रेरणार्थक क्रिया का कर्त्ता है। उस दशा में वाक्य रचना इस प्रकार होगी—गमयति यज्ञदत्त देवदत्तेन विष्णुदत्त ।

( न ) हृक्कोरन्यतरस्याम् ११।४।५३।

ह एव कृ धातुओ के अणिजन्त रूपो का कर्त्ता णिजन्त रूपो में विकल्प से कर्म होता है, जैसे, 'हरति कट मृत्य' का णिजन्त में 'हारयति कट मृत्य मृत्येन वा' हो जायगा ।

( प ) अभिवादिदृशोरात्मने पदे वेति वाच्यम् ( वार्त्तिक )

इस वार्त्तिक के अनुसार अभिपूर्वक वद् धातु तथा दृश् धातु जब प्रेरणार्थक होने पर आत्मनेपद में प्रयुक्त होती है, तब उनका भी प्रकृत दशा का कर्त्ता विकल्प

मे कर्म होता है, जैसे 'अभिवदति देव भक्त' या 'पश्यति इव भक्त' के प्रेरणाथक रूप 'अभिवादयते देव भक्त भक्तेन वा' एवं 'दशयते देव भक्त भक्तेन वा' होगा। आत्मनेपद मे न होने पर 'दृशेरच' वार्तिक के अनुसार 'दर्शयति देव भक्तम्'—ऐसा ही प्रयोग मे होगा। 'अभिवद्' के आत्मनेपदी न होने पर 'अभिवादयति नैव भक्तेन' ही प्रयोग होगा।

### (फ) जल्पतिप्रभृतीनामुपसंख्यानम् (वार्तिक)

इस वार्तिक के अनुसार जल्प, भाष इत्यादि के भी प्रकृत दशा के कर्ता प्रेरणार्थक मे कर्म हो जाते हैं, जैसे, 'पुत्रो धर्मं जल्पति भाषते वा' का 'पुत्र धर्मं जल्पयति भाषयति वा' होगा।

### अपवाद

( i ) नीवह्योर्न—इस वार्तिक के अनुसार 'नी' और 'वह्' धातुओं के प्रेरणार्थक रूपों के प्रयोग मे प्रकृत दशा का कर्ता कर्म न होकर करण ही होता है, जैसे, 'भृत्यो मार नयति वहति वा' का 'भृत्येन मार नाययति वाह्यति वा' ही होगा, 'भृत्य मार नाययति वाहयति वा' नहीं। किन्तु यदि प्रेरणार्थक 'वह्' का कर्ता नियन्ता अर्थात् हाँकने वाला हो तो 'नियन्तृकर्तृकस्य वहेरनिषेध' वार्तिक के अनुसार प्रकृत दशा का कर्ता कर्म ही होगा, जैसे, 'वाहा रथ वहन्ति' का (सूत) 'वाहान् रथ वाहयति' ही होगा।

( ii ) आदिस्त्राद्योर्न—इस वार्तिक के अनुसार अद् और खाद् धातुओं के कर्ता उनके प्रेरणार्थक रूपों मे कर्म न होकर करण ही होंगे, जैसे 'बटुरन्नमति खादति' का प्रेरणार्थक प्रयोग 'बटुनान्नमादयति खादयति' होगा।

( iii ) भक्षरंहिसार्थस्य न—इस वार्तिक के अनुसार अहिंसार्थक भक्ष धातु का प्रकृत दशा का कर्ता प्रेरणार्थक मे कर्म न होकर करण ही होगा, जैसे 'भक्षयति अन्नं बटु' का प्रेरणार्थक रूप 'भक्षयति अन्नं बटुना (देवदत्त)' होगा। परन्तु हिसार्थक—'भक्षयति सस्य बलीवर्दा'—होने पर प्रेरणार्थक रूप 'भक्षयति सस्य बलीवर्दान् (देवदत्त)' ही होगा।

१ यहाँ हिंसा का विचार दो प्रकार से किया जा सकता है—

(१) खेत मे खड़े जौ के पौदों का खाना उनकी हिंसा है—क्षेत्रस्थानां यवानां भक्ष्यमाणानां हिंसा ज्ञेया तस्यांभवस्थाया तेषां चेतनत्वात्—त० ब००।

(२) दूसरे की खेती चरी जाने से उसकी हिंसा होती है—परकीयसस्य भक्षणं परो हिंसितो भवति इति तत्स्वामिनो हिंसा द्रष्टव्या।—टिप्पणी

(iv) 'वृशेच्च'—वार्तिक के व्याख्यान में भट्टोजि ने लिखा है कि 'सूत्रे ज्ञानसामान्यानामेव ग्रहणं नतु तद्विशेषार्थानामित्यनेन ज्ञाप्यते, तेन स्मरति-जिघ्रसीत्यादीनां न'। अर्थात् 'गतिबुद्धि०' सूत्र में ज्ञानसामान्य की वाचक वृष् आदि धातुओं का ग्रहण होना है, अतः ज्ञानविशेष (स्मरण, घ्राण आदि) की वाचक स्मृ, घ्रा इत्यादि धातुओं के कर्ता प्रेरणाथक में कर्म नहीं होंगे, जैसे, स्मारयति घ्रापयति वा देवदत्तेन।

### (ब) कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया १२।३।६।

कर्मप्रवचनीय—कर्मप्रवचनीय सज्ञा उन पदों को भी जाती है, जो यद्यपि न तो किसी विशेष क्रिया के द्योतक हों, न किसी वृष्ठीसदृश सम्बन्ध के वाचक हों और न अन्य किसी क्रियापद को लक्षित करने वाले हों तथापि विभक्ति के विधायक हो जाते हों—

क्रियाया द्योतको नाय, सम्बन्धना न वाचक ।

नापि क्रियापदाक्षेपो सम्बन्धस्य तु भेदक ॥ —वाक्यपदीय

इन कर्मप्रवचनीयों को कुछ-कुछ अंग्रेजी के (Prepositions—प्रव्ययो) के तुल्य समझना चाहिए। उन्हीं की भाँति ये भी शासन करते हुए बहुत विशेष अर्थ लक्षित करते हैं। इनके योग में भी प्रायः कर्म कारक का ही वेधान होता है। इनमें से कुछ दिये जाते हैं—

### १—अनुलक्षणो १।१।४।६४।

जब किसी विशेष हेतु को लक्षित करना होता है, तब 'अनु' कर्मप्रवचनीय बन जाता है और 'जपमनु प्रावर्षत्' इस प्रकार के प्रयोग में हेतु को शासित करता हुआ द्वितीय विभक्ति का विधायक बन जाता है।

'जपमनु प्रावर्षत्' का अन्विष्ट यह है कि जप समाप्त होते ही वृष्ति हो गयी (वृष्ति जप के ही कारण हुई क्योंकि जब तक जप नहीं किया था, तब तक वृष्ति नहीं हुई थी)।

### २—तृतीयार्थे १।१।४।६५।

जब 'अनु' से तृतीया का अर्थ द्योतित हो, तब उसकी कर्मप्रवचनीय सज्ञा होती है, 'नदीमन्ववसिता सेन' (नद्या सह सम्बद्धा इत्यर्थे)।



### ३—हीने ११।४।८६।

‘अनु’ से जब ‘हीन’ अर्थ आतित हो तब भी वह कमप्रवचनीय कहलाता है, जैसे, ‘अनु हरि सुरा’=देवता हरि के बाद ही आने हैं। (हरि से और सभी देवता कुछ उन्नीस ही पडते हैं।)

### ४—उपोऽधिके च ११।४।८७।

‘अधिक’ तथा ‘हीन’ अर्थ का वाचक होने पर ‘उप’ भी कर्मप्रवचनीय कहलाता है। किन्तु जब वह ‘हीन’ अर्थ का द्योतक होता है, तब द्वितीया होगी और जब अधिक अर्थ का द्योतक होगा तो सप्तमी होगी, जैसे—‘हरि सुरा’ अर्थात् देवता हरि से उन्नीस पडते हैं और अधिक अर्थ में ‘ऊपर’ हरेर्गुणा—ऐसा प्रयोग होगा, न कि ‘उप परार्धम्।’ इसका अर्थ होगा—परार्ध से अधिक (ऊपर) ही हरि के गुण होंगे।

### ५—लक्षणैत्थंभूताख्यानभागवीप्सामु प्रतिपर्यन्तवः ११।४।९०।

जब किसी ओर अगुलि-निर्देश करना हो अथवा जब ‘ये इस प्रकार के हैं’ यह बतलाना हो अथवा जब ‘यह उनके हिस्से में पड़ा या पडता है’ यह प्रकट करना हो अथवा पुनरुक्ति दिरलानी हो, तब प्रति, परि और अनु कर्मप्रवचनीय कहे जाते हैं और द्वितीया विभक्ति का विधान करते हैं, यथा—

- (१) वृक्ष प्रति विद्योते विद्युत् (पेड पर बिजली चमक रही है) ।
- (२) भक्तो विष्णु प्रति पयनु वा (विष्णु के ये भक्त हैं) ।
- (३) लक्ष्मी हरि प्रति (लक्ष्मी विष्णु के स्तन में पडी) ।
- (४) वृक्ष प्रति सिञ्चति (प्रत्येक वृक्ष सींचता है) ।

### ६—अभिरभागे ११।४।९१।

भाग को छोडकर अन्य सभी उपर्युक्त अर्थों में ‘अभि’ कर्मप्रवचनीय कहलाता है। जैसे, १—हरिममिवर्तते। २—भक्तो हरिममि। ३—देवै देवमभि-षिञ्चति।

१ यस्मादधिक यस्य चेश्वरवचन तत्र सप्तमी २।३।९। इस नियम से यहाँ सप्तमी होगी।

### ७—अतिरतिक्रमणे च ।१।४।६५।

अतिक्रमण तथा पूजा अथ मे अति कर्मप्रवचनीय कहलाता है। जैसे—  
अति देवान् कृष्ण ।

## १००—तृतीया

### (क) साधकतम करणम् ।१।४।४२।

अपने कार्य की सिद्धि में कर्त्ता जिमकी सबसे अधिक सहायता लेता है, उसे करण कहते हैं, जैसे, 'राम पानी से मुंह धोता है'—यहाँ पर साधारण रूप से तो मुंह धोने में राम अपने हाथ तथा जलपात्र दोनों की सहायता लेता है, यदि हाथ न लगावेगा तो मुंह किस प्रकार धो सकेगा और यदि जलपात्र न होगा तो जल किसमें रक्खेगा। अस्तु, यह सिद्ध हो गया कि राम अपने हाथ तथा जलपात्र दोनों की सहायता लेता है, किन्तु देखना यह है कि मुंह धोने में सबसे अधिक आवश्यकता किसकी पडती है। इस वाक्य में जितने शब्द का प्रयोग किया गया है, उनके देखने से यह स्पष्ट है कि मुंह धोने में सबसे अधिक सहायता "पानी" की है, इसलिए "पानी" करण कारक है और "से" करण कारक का चिह्न है।

नोट—किसी वाक्य में जो सबसे अधिक आवश्यक या सहायक हो उसी को करण कहेंगे। वाक्य से बाहर उससे अधिक भी सहायक हो सकते हैं, किन्तु उनका विचार नहीं किया जाता, जैसे—राम "हाथ से" मुंह धोता है। यहाँ "हाथ से" करण कारक है। यद्यपि 'जल' हाथ से भी अधिक आवश्यक है, किन्तु यह वाक्य में न होने के कारण कारक नहीं है।

### (ख) कर्तृ करणयोस्तृतीया ।२।३।१६।

अनुक्त कर्त्ता (कर्मवाच्य तथा भाववाच्य में कर्त्ता अनुक्त होता है) तथा करण कारक में तृतीया विभक्ति होती है।

'अनुक्ते कर्त्तरि तृतीया' का उदाहरण—

रामेण रावण अहन्यत हतो वा—कर्मवाच्य

रामेण सुप्यते, मया जीव्यते—भाववाच्य

'करणे तृतीया' का उदाहरण—

राम अक्षेण मुख प्रक्षालयति ।

राम रावण क्षणेन हतवान् ।

### (ग) दिवः कर्म च । १।४।४३।

दिव् धातु के साधकतम कारक की विकल्प से कर्मसज्ञा भी होती है, जैसे—  
अक्ष अक्षान् वा दीव्यति ।

### (घ) सङ्गाऽन्यतरस्य कर्मणः । २।३।२२।

सम् पूर्वक ज्ञा धातु के कर्म का विकल्प से करण सज्ञा होती है, जैसे—पित्रा  
पितर वा सजानीते=पिता के मेल में रहता है ।

### (ङ) प्रकृत्यादिभ्य उपसङ्ख्यानम् (वार्तिक)

प्रकृति आदि (स्वाभावादि) शब्दों के भाग में तृतीया होती है, जैसे—  
प्रकृत्या दयालु—स्वभाव से दयालु,

नाम्ना सुतीक्ष्ण चरितेन शान्त—नाम से सुतीक्ष्ण (सुतीक्ष्ण नाम वाले)  
किन्तु चरित से शान्त ।

सुखेन जीवति—सुख से अर्थात् सुखपूर्वक जीता है,

शिशु क्लेशेन स्यात् भ्रूणोति—बच्चा कठिनता से खड़ा हो पाता है,

भ्रूण सरलतया पठति—भ्रूण आसानी से पढ़ लेता है ।

इसी प्रकार 'भोत्रेण गार्ग्य' 'समेनैति', 'विषमेणैति', 'द्विद्रोणेन धान्य क्रीणाति  
इत्यादि प्रयोग भी होंगे ।

नोट—किस सब उदाहरणों के देखने से यह स्पष्ट है कि यह सूत्र प्रायः उन  
स्थलों में लगता है, जो अंग्रेजी में क्रियाविशेषण या क्रियाविशेषणवाक्यांश कह-  
लाते हैं । उदाहरणार्थ, ऊपर के वाक्यों में आये तृतीयान्त प्रकृत्या—Naturally  
(adverb) या By nature (adverbial phrase) से, नाम्ना—By name  
(adverbial phrase) से, सुखेन—Happily अथवा In, happiness  
(adverbial phrase) से, क्लेशेन—With difficulty (adverbial  
phrase) से, सरलता—Easily (adv.) या With ease (adverbial  
phrase) से अनूदित होते हैं ।

(च) अपवर्गं तृतीया ॥२॥३॥६॥—इस सूत्र का पूर्ण अर्थ वस्तुतः कालाध्वनो० के साथ पढ़ने से निकलता है।

फलप्राप्ति अथवा कायसिद्धि को “अपवर्ग” कहते हैं, और अपवर्ग के अर्थ का बोध कराने के लिए काल-सातत्यवाची तथा मार्ग-सातत्यवाची शब्दों में तृतीया होती है, अर्थात् जितने “समय” में या जितना “मार्ग” चलते-चलते कोई कार्य सिद्ध हो जाता है, उस “समय” और “मार्ग” में तृतीय होती है, जैसे—

मासेन व्याकरणम् अधीतवान्—महीने भर में व्याकरण पढ़ लिया, अर्थात् महीने भर व्याकरण पढ़ा और व्याकरण उसको महीने में ही आ गया एव पढ़ने का कार्य महीने में सिद्ध हो गया। यदि मास भर पढ़ने पर भी व्याकरण का अध्ययन समाप्त न होता तो ‘मास’ व्याकरणमधीतवान् (किन्तु नायात)—ऐसा ही प्रयोग होता क्योंकि उस अवस्था में ‘मास’ में ‘कालाध्वनोरत्यन्तसयोगे द्वितीया’ के अनुसार द्वितीया ही होती। इसी प्रकार अन्यत्र भी समझना चाहिए।

क्रोधेन पुस्तक पठितवान्—क्रोध भर में पुस्तक पढ़ डाली, अर्थात् एक क्रोध चलते-चलते पुस्तक पढ़ डाली। इसी प्रकार ‘चतुर्भिर्वर्षेर्गृहनिर्मापितवान्’—चार वर्ष में घर बनवा लिया। ‘पञ्चविंशत्या दिवसैर्ग्रन्थलिखितवान्’—पच्चीस दिन में इसने यह ग्रन्थ लिख डाला।

सप्तभिर्दिने रीरोगो जातः—सात दिन में नीरोग हो गया।

योजनाभ्यां कृत्वा समाप्तवान्—दो योजन भर में कहानी खतम कर दी।

(छ) सङ्गमुक्तेऽप्रधाने ॥२॥३॥१॥

सह के योग में अप्रधान [अर्थात् जो प्रधान (क्रिया के कर्ता) का साथ देता है] में तृतीया होती है, जैसे—पुत्रेण सह पिता गच्छति। यहाँ ‘पुत्रेण’ में तृतीया इसलिए लगी है कि गमन क्रिया के साथ पिता का ही मुख्य सम्बन्ध है। इसी प्रकार ‘पित्रा सह पुत्र गच्छति’ में पुत्र प्रधान है और पिता अप्रधान रूप से उसका साथ देता है अतः उसमें तृतीया हुई? इसी प्रकार ‘साथ’ अर्थवाले साकम्, सार्धम् और समम् के योग में भी अप्रधान में तृतीया होती है, जैसे—

१ एव साकसार्धसमयोगेऽपि।—पा० सू० ॥२॥३॥१॥ पर सि० कौ०

राम जानक्या साक गच्छति—राम जानकी के साथ जाते हैं।

हनुमान् वानरैः सार्धं जानकी मार्गयामास—हनुमान् ने बन्दरो के साथ जानकी को खोजा।

उपाध्याय छात्रैः सम स्नाति—उपाध्याय विद्यार्थियों के साथ नहाता है।

नोट—‘साथ’, ‘सङ्ग’ आदि के साथ जो शब्द आता है, उसमें हिन्दी में ‘का’—जो षष्ठी का स्थानीय है—लगाया जाता है, किन्तु संस्कृत में तृतीया लगाई जाती है।

(ज) पृथग्विनानानाभिस्तृतीयाऽन्यतरस्याम् ।२।३।३२।

पृथक् (अलग), विना, नाना शब्दों के साथ तृतीया, द्वितीया तथा पञ्चमी विभक्तियों में से कोई एक हो सकती है जैसे—

उर्मिला चतुर्दश वर्षाणि लक्ष्मण लक्ष्मणेन लक्ष्मणाद् वा पृथगुवास—उर्मिला चौदह वर्ष तक लक्ष्मण से अलग रही।

रामेण, राम, रामाद्, विना दशरथा नाजीवत्—राम के बिना दशरथ नहीं जिये।

जल, जलेन, जलाद् विना कमलं स्यात्, न शक्नोति—जल के बिना कमल ठहर नहीं सकता।

कौरवा पाण्डवेभ्यः पृथगवसन्—कौरव लोग पाण्डवों से अलग रहते थे।

विना या वर्जनं अर्थ का वाचक होने पर ही ‘नाना’ के योग में द्वितीया, तृतीया या पञ्चमी होती है, जैसे—‘नाना नारीं निष्फला लोकयात्रा’ अर्थात् स्त्री के बिना लोकयात्रा या यमिन निष्फल है।

(झ) येनाङ्गविकारः ।२।३।२०।

जिस विकृत अङ्ग के द्वारा अङ्गी का विकार लक्षित हो, उस (अङ्ग) में तृतीया विभक्ति होती है, जैसे—

अक्षणा काण—एक आँख का काना।

देवदत्त शिरसा खल्वाटोऽस्ति—देवदत्त सिर का गजा है।

गिरिधर कर्णेन बंधिर—गिरिधर कान का दहरा है।

रमेश पादेन खञ्ज—रमेश पैर का लँगडा है।

सुरेश कटघा कुब्ज—सुरेश कमर का कुबड़ा है।

यहाँ श्री हिन्दी के 'क' के स्थान में संस्कृत में तृतीया का प्रयोग होता है।

नोट—विकार का आरोप होने पर ही तृतीया होगी अन्यथा नहीं, जैसे, यदि साधारणतः उसकी गोंड काली है—ऐसा अर्थ प्रकट हो तो 'अक्षि काजस्य'—ऐसा ही प्रयोग होगा।

### (अ) तुल्यार्थतुलोपमाभ्यां तृतीयाऽन्यतरस्याम् ।२।३।७२।

“तुला” तथा “उपमा” इन दो शब्दों को छोड़कर शेष सब तुल्य (समान, बराबर) का अर्थ बताने वाले शब्दों के साथ तृतीया अथवा षष्ठी होती है, जैसे—

कृष्णस्य, कृष्णेन वा तुल्यं सदृशं समो वा—कृष्ण के बराबर या समान।  
दुर्योधनो भीमेन भीमस्य वा तुल्यो बलवान् वासन्—दुर्योधन भीम के बराबर बली नहीं थे।

नाथ मया सम वा पराक्रमं विभक्ति—यह मेरे समान पराक्रम नहीं रखता।

मा लोकवादश्रवणादहासी श्रुतस्य किं तन् सदृशं कुलस्य।

किन्तु तुला और उपमा के साथ षष्ठी होती है—“तुला उपमा वा कृष्णस्य नास्ति”।

### (ट) हेतौ ।२।३।२३।

जिस कारण या प्रयोजन से कोई कार्य किया जाता है, या होता है, उसमें तृतीया होती है, जैसे—

पुण्येन दृष्टो हरिः—पुण्य के कारण हरि दिखाई पड़े।

अध्ययनेन वसति—अध्ययन के प्रयोजन से रहता है।

घन परिश्रमेण भवति—घन परिश्रम से होता है।

तेनापराधेन दण्डचोऽसि—उस अपराध के कारण तुम दण्डनीय हो।

बुद्धि विद्यया वर्धते—बुद्धि विद्या से बढ़ती है।

हेतु मे पञ्चमी भी होती है, यथा—

विद्या ददाति विनयं विनयाच्चाति पात्रताम्।

पात्रत्वाद्धनमाप्नोति घनाद्धर्मं ततः सुखम् ॥

प्रजानां विनयाधानाद्भ्रक्षणाद्भ्रमरणादपि।

स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः ॥

सर्वद्रव्येषु विद्येव द्रव्यमाहुरनुत्तमम् ।  
 ग्रहार्थत्वादनर्घ्यत्वादक्षयत्वाच्च सर्वदा ॥  
 यथा प्रह्लादनाच्चन्द्र प्रतापात्तपनो यथा ।  
 तथैव सोऽभूदन्वर्थो राजा प्रकृतिरञ्जनात् ॥

टिप्पणी—‘गम्यमानाऽपि क्रिया कारकविभक्तौ प्रयोजिका’ अर्थात् वाक्य मे प्रयुक्त न होने पर भी यदि अर्थ-मात्र से क्रिया समझ ली जाय तो भी वह कारक-विधान मे प्रयोजिका बन जाती है, जैसे—

(१) ‘अल (कृत वा) श्रमेण’ । इसका अर्थ होगा—‘श्रमेण साध्य नास्ति’ । यहाँ पर ‘साधन’ क्रिया गम्यमान है, श्रूयमाण नहीं । उस ‘साधन’ क्रिया के प्रति ‘श्रम’ करण कारक है । अतएव ‘श्रम’ मे तृतीया हुई ।

(२) शतेन शतेन वत्सान्पाययति—परिन् शतेन परिच्छिद्य । इसका अर्थ होगा—सौ-सौ करके बछड़ो को दूध पिजाता है । ‘परिच्छिद्य’ (या करके) गम्यमान क्रिया है ।

### (ठ) इत्थंभूतलक्षणे । २।३।१ ।

जब कोई किसी विशेष चिह्न से ज्ञापित हो, तब जिस चिह्न से वह ज्ञापित हो उसमे तृतीया विभक्ति लगती है, जैसे, जटाभिस्तापस—जटाओं से तपस्वी जान पडता है ।

(ज) ‘बढ जाना’ ‘सदृश होना’ अर्थ मे प्रयुक्त होने वाली क्रियाओं मे जिस गुण मे बढ जाना या सदृश होने की बात कही जाती है, उसमे तृतीया होती है, जैसे—

(१) रामः स्वाम्नज गुणं अतिशेते—राम अपने बढे भाई से गुणो मे बढकर है ।

(२) स्वरेण रामभद्रमनुहरति—स्वर मे राम के सदृश है । पर कही-कही इसी अर्थ मे सप्तमी भी होती है, जैसे—

घनदेन समस्त्यागे—त्याग मे कुबेर के समान है ।

(ड) कार्य, अर्थ, प्रयोजन, गुण तथा इसी प्रकार उपयोग या प्रयोजन प्रकट करने वाले अन्य शब्दो के भी योग मे उपयोज्य या आवश्यक वस्तु तृतीया मे रखी जाती है, जैसे—देवपादाना सेवकैर्न प्रयोजनम्, तृणेन कार्यं भवती-

स्वराणाम्, सानुरागेणापि मूढेन मृत्येन को गुण । कोऽर्थं पुत्रेण जातेन यो न विद्वान् न भक्तिमान् ।

(ड) यजेः कर्मणः करणसंज्ञा सम्प्रदानस्य च कर्मसंज्ञा (वार्त्तिक) यच् धातु के कर्म की करण संज्ञा होती है और सम्प्रदान की कर्मसंज्ञा होती है, जैसे—

पशुना रुद्र यजते—रुद्र को पशु देता या चढ़ाता है।

### १०१—चतुर्थी

(क) कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम् ।१।४।३२।

दान के कर्म के द्वारा जिसे कर्ता सन्तुष्ट करना चाहता है, वह पदार्थ सम्प्रदान कहा जाता है ।

जैसे 'विप्राय गा ददाति' । यहाँ गोदान कर्म के द्वारा विप्र को ही सन्तुष्ट करना कर्ता को अभिप्रेत है, अतः वह सम्प्रदान है ।

(ख) क्रियया यमभिप्रैति योऽपि सम्प्रदानम् (वार्त्तिक)

न केवल दान के कर्म के द्वारा जो अभिप्रेत हो वह सम्प्रदान कहा जाय बल्कि किसी विशेष क्रिया के द्वारा भी जो अभिप्रेत हो वह भी सम्प्रदान समझा जाय, जैसे, 'पत्ये-शेते' । यहाँ पति को अनुकूल बनाने के लिए की गयी शयन-क्रिया का अभिप्रेत पति ही है, अतएव 'पति' सम्प्रदान होगा ।

(ग) चतुर्थी सम्प्रदाने ।२।३।३१।

अर्थात् सम्प्रदान में चतुर्थी होती है । इस नियम के अनुसार ऊपर के उदाहरण में "ब्राह्मण" चतुर्थी में होगा, जैसे—“ब्राह्मणाय गा ददाति ।” इसी प्रकार, महा पुस्तक देहि—मुझे पुस्तक दो ।

✓ परन्तु 'अशिष्टव्यवहारे दाण प्रयोगे चतुर्थ्यर्थे तृतीया' (वार्त्तिक) के अनुसार अशिष्ट व्यवहार में दान का पात्र सम्प्रदान नहीं होगा । उसमें चतुर्थी का अर्थ होने पर भी तृतीया होगी, जैसे—'दास्या सयच्छते कामुक' । शिष्ट व्यवहार में 'भाययि सयच्छति' ऐसा ही प्रयोग होगा ।

(घ) रुच्यर्थानां प्रीयमाणः ।१।४।३३।

रुच् धातु तथा रुच् के समान अर्थवाली धातुओं के योग में प्रसन्न होने वाला सम्प्रदान कहलाता है, जैसे—



- (१) विष्णवे रोचते भक्ति —विष्णु को भक्ति अच्छी लगती है।  
 (२) बालकाय मोदका रोचन्ते—लडके को लड्डू अच्छे लगते हैं।  
 (३) सम्यक् भुक्तवते पुरुषाय भोजन न स्वदते—अच्छी तरह खाये हुए पुरुष को भोजन स्वादिष्ट नहीं लगता।

यहाँ पर उदाहरण न० १ में भक्ति से प्रसन्न होने वाले "विष्णु" है, उदाहरण न० २ में लड्डुओं से प्रसन्न होने वाला "बालक" है और उदाहरण न० ३ में भोजन से प्रसन्न होने वाला "पुरुष" है, इसलिए विष्णु, बालकाय और पुरुषाय में चतुर्थी हुई।

### (ड) धारेरुत्तमर्ण ११।४।६५।

णिजन्त धृ (उधार लेना, कर्ज लेना) धातु के योग में महाजन 'र्ज देने वाले' की सम्प्रदान सज्ञा होती है, जैसे—

श्याम अश्वपतये गत धारयति—श्याम ने अश्वपति से एक सौ कर्ज लिया है।

गोविन्दो रामाय लक्ष धारयति—गोविन्द ने राम से एक लाख उधार लिया है।

### (च) क्रुध्द्रुहेर्ष्यासूयार्थाना य प्रति कोप ११।४।३७।

क्रुध्, द्रुह्, ईर्ष्य तथा असूय् धातुओं के योग में तथा इन धातुओं के समान अर्थ रखने वाली धातुओं के योग में जिसके ऊपर क्रोध किया जाता है, वह सम्प्रदान समज्ञा जाता है, जैसे—

स्वामी गुर्याय क्रुध्यति—मालिक नौकर पर क्रोध करता है।

शठा सर्वेभ्यो द्रुह्यन्ति—शठ लोग सबसे द्रोह करते हैं।

दुर्योधन पाण्डवेभ्य ईर्ष्यति स्म—दुर्योधन पाण्डवों से ईर्ष्या करता था।

खला सज्जनेभ्य असूयन्ति—दुष्ट लोग सज्जनों में ऐब निकाला करते

हैं।

इसी प्रकार सीता रावणाय अक्रुप्यत्—सीता जी ने रावण के ऊपर कोप किया।

(छ) कृध्द्रुहोरुणसुमद्योः कर्त्ता । १।४।३६।

इस सूत्र के अनुसार जब द्रुह् तथा द्रुह् लोपसर्गों (उगर्-इति) होती हैं तब जिनके पनि क्रोध या दोह किया जाता है, वह कर्मसज्ञा वाला होता है, सम्प्रदान नहीं, जैसे—ऋरमभिक्रुष्यति—सद्रुह्यति । पिता पुत्र सक्रुष्यति ।

(ज) प्रत्याङ्गभ्या श्रुवः पूर्वस्य कर्त्ता । १।४।४०।

प्रति और आ पूर्वक श्रु धातु के योग में प्रतिज्ञा को प्रवर्तित करने वाले याचन इत्यादि व्यापार के कर्त्ता की सम्प्रदान सज्ञा होती है, जैसे—

कृष्णे विप्राय गा प्रतिशृणोति आशृणोति वा (इसमें यह अर्थ लक्षित होता है कि ब्राह्मण ने ही पहिले 'मुझे गाय दो' यह कहा होगा, तब कृष्ण ने प्रतिज्ञा की होगी । इस प्रकार प्रतिज्ञा को प्रवर्तित करने वाले याचना व्यापार का कर्त्ता होने के कारण ब्राह्मण सम्प्रदान होगा ।)

(झ) परिक्रयणे सम्प्रदानमन्यतरस्याम् । १।४।४४।

निश्चित काल के लिए व्रतन इत्यादि पर किसी को रखना या लगाना उसका 'परिक्रयण' कहलाता है । उस 'परिक्रयण' में जो करण होता है, वह विकल्प से सम्प्रदान होता है, जैसे—शतेन शताय वा परिक्रीत ।

(ञ) तुमथान्वि भाववचनात् । २।३।१६।

किसी धातु में तुमुन् प्रत्यय जोड़ने से जो अर्थ निकलता है (जैसे अत्तुम्—खाने के लिए, पातुम्—पीने के लिए आदि), उसका प्रकट करने के लिए उसी धातु से बनी हुई भाववाचक सज्ञा का प्रयोग करने पर उसमें चतुर्थी होती है, जैसे—

यागाय याति (यष्टु याति)—यज्ञ करने के लिए जाता है ।

इसमें "याग", "यजू" धातु से बना हुआ भाववाचक शब्द है । यजू धातु में तुमुन् जोड़ने से "यष्टु" बनता है जिसका अर्थ "यज्ञ करन के लिए" होता है । इसी अर्थ (यज्ञ करने के लिए) को प्रकट करने के लिए इस भाववाचक 'याग' शब्द में चतुर्थी कर दी गयी है । इसी प्रकार—

शयनाय इच्छति (शयितुम् इच्छति)—सोना चाहता है ।

उत्थावाय यतते (उत्थात् यतते) — उठने की घोषणा करता है।

अरणाय जङ्गलान्त गच्छति (गच्छ् अरणाय गच्छति) — अरण्य के लिए जङ्गलान्त को जाता है।

दानाय वनमर्जयति (दातु वनमर्जयति) — देने के लिए वन कम्पान्त है।

### (ट) स्पृहोरीप्सितः ११।४।३६।

स्पृह् धातु के प्रयोग में जिसे चाहा जाय, वह सम्प्रदानसज्ञक होता है, जैसे—  
पुष्पेभ्य स्पृहयति = फूलों को चाहना करता है।

विभ्यञ्जी — स्पृह् धातु से बने हुए शब्दों में योग में ही 'ईप्सित' का कभी-कभी सम्प्रदान-रूप से प्रयोग देखा जाता है जैसे अश्वेभ्य स्पृहयन्तव (वैराग्य-शतक, ६४) अर्थात् मोनों के इच्छुक, कथमान्यो हरिष्यन्ति पुत्रेभ्य पुत्रिण स्पृहाम् (वेणी सं० अ० ३) अर्थात् फिर दूसरे पुत्रों पुत्रों की इच्छा कैसे करे ? परन्तु प्रायः सप्तमी में ही होता है, जैसे अस्तावती वस्तुषु केषु मागधी (रघु० ६, श्लो० ५)।

### (ठ) तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्यः (वार्त्तिक)

(१) जिस प्रयोजन के लिए कोई कार्य किया जाता है, उस (प्रयोजन) में चतुर्थी होती है, जैसे—

मुक्तये हरिं भजति — मुक्ति के लिए हरि को भजता है।

धनाय प्रयतते — धन के लिए प्रयत्न करता है।

शिशु मोदकाम सोदिति — बच्चा लड्डू के लिए रोता है।

काव्य यशसे भवति — काव्य यश के लिए (होता है)।

(२) अथवा जिस वस्तु के बनाने के लिए किसी दूसरी वस्तु का अस्तित्व रहता है, उसमें चतुर्थी होती है, जैसे—

शकटाय दारु — गाड़ी (बनाने) के लिए लकड़ी।

आभूषणाय सुवर्णम् — जेवर (बनाने) के लिए सोना।

### (ड) क्लृप्सिंपद्यमाने च (वार्त्तिक)

यदि कोई कार्य किसी अन्य परिणाम की प्राप्ति के लिए किया जाय तो उस परिणाम में चतुर्थी होती है, जैसे—

भक्ति ज्ञानाय कल्पते, सम्पद्यते, जायते=भक्ति ज्ञान के लिए होती है अर्थात् भक्ति से ज्ञान होता है।

### (द) उत्पातेन ज्ञापिते च (वार्त्तिक)

भौतिक उत्पातो से सूचित वस्तु में चतुर्थी विभक्ति होती है, जैसे—  
वाताय कपिला विद्युत्=रक्ताभ विद्युत् आधी की सूचना देती है।

### (ण) हितयोगे च (वार्त्तिक)

हित और सुख के योग में भी चतुर्थी विभक्ति होती है, जैसे—  
ब्राह्मणाय हित सुख वा।

### (त) क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः ।२।३।१४।

जब तुम्हें प्रत्ययान्त धातु का प्रयोग परोक्ष रहे, तो उसके “कर्म” में चतुर्थी होती है, जैसे—

फलेभ्यो याति (फलानि आनेतु याति)—फलो को लाने के लिए जाता है।

इस वाक्य का यथार्थ अर्थ “फलानि आनेतु याति” है, किन्तु “फलेभ्यो याति” में तुमुन्त “आनेतुम्” का प्रयोग परोक्ष है और “आनेतुम्” का कर्म “फलानि” है सलिए “फल” शब्द में चतुर्थी हुई। इसी प्रकार—

स्कुर्मो नृसिंहाय (नृसिंहं ननुकूलयितु नमस्कुर्मं)—नृसिंह को अनुकूल करने के लिए हम लोग नमस्कार करते हैं।

स्वयम्भुवे नमस्कृत्य (स्वयम्भुव प्रीणयितु नमस्कृत्य)—ब्रह्मा को प्रसन्न करने के लिए नमस्कार करके।

वनाय गा मुमोच (वन गन्तु)—वन जाने के लिए गाय छोड़ दी।

### (थ) नमःस्वस्तिस्वाहास्वधाऽलंबषड्योगाच्च ।२।३।१६।

नम, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अल तथा वषट् शब्दों के योग में चतुर्थी होती है, जैसे—

तस्मै श्रीगुरुवे नम —उन गुरु जी को नमस्कार।

रामाय नम, तुम्य नम ।

स्वस्ति भवते—आपका कल्याण हो।

प्रजाम्य स्वस्ति—प्रजाओ का कल्याण हो।

अग्नये स्वाहा—अग्नि को यह आहुति है।

पितृभ्य स्वधा।

इन्द्राय वषट्।

दैत्येभ्यो हरि अलम्—हरि दैत्यो के लिए काफी हैं।

अल मल्लो मल्लाय—पहलवान पहलवान के लिए काफी है।

यहाँ अलम् का अर्थ पर्याप्त है, निषेध नहीं।

टिप्पणी—(1) 'उपपदविभक्ते कारकविभक्तिर्बलवती' अर्थात् पद के सम्बन्ध से होने वाली विभक्ति से क्रिया के सम्बन्ध से होने वाली विभक्ति बलवती होती है—इस नियम से 'नमस्करोति' इत्यादि क्रियापदों के योग में चतुर्थी न होकर द्वितीया विभक्ति ही होती है, जैसे—गुरुं नमः, परमेश्वर वा नमस्करोति। 'गणेशाय नमस्कुरु' इत्यादि प्रयोग "क्रियापदस्य च कर्मणि स्थानिन" 1।२।३।१४। नियम के भीतर आ जाते हैं। परन्तु नमस्कार अर्थ वाली प्रणिपत्, प्रणम् इत्यादि धातुओं के साथ नमस्कार का द्वितीया या चतुर्थी दोनों में प्रयोग करते हैं, जैसे—

धातार प्रणिपत्य (कुमार० द्वि०, श्लो० ३)

तस्मै प्रणिपत्य नन्दी (कुमार० तृ०, श्लोक ६०)

तां भक्तिप्रवणेन देवसां प्रणनाम (कादम्बरी)

प्रणम्य त्रिलोचनाय (कादम्बरी)

इन धातुओं में बने हुए प्रणाम इत्यादि शब्दों के योग में चतुर्थी का ही प्रयोग होता है, जैसे—अस्मै प्रणाममकरवम् (कादम्बरी)।

(11) अलं से पर्याप्त अर्थ के वाचक प्रभु (प्रपूर्वक भू धातु से बने क्रियापद भी), समर्थ, शक्त इत्यादि पदों का भी ग्रहण होता है। इसलिए इनके

१ अलमिति पर्याप्त्यर्थग्रहणम्। तेन दैत्येभ्यो हरिरल प्रभु, समर्थ, शक्त इत्यादि। प्रभ्वादियोगे षष्ठ्यधि साधु। 'तस्मै प्रभवति सन्तापादिभ्य' 1।१।१०। 'स एषा ग्रामणी' 1।२।१७८। इति निर्देशात्। 'प्रभुर्बुभूषुर्भुवनत्रयस्येति' सिद्धम्—  
नम स्वस्ति० सूत्र पर सि० कौ०।

धर्य में भी चतुर्था व्यावृत्त होती है, जैसे—दीत्येभ्यां हारि प्रभु, शक्ति, सम्भवां वा । वाधराप न येभ्य प्रभवात् (नीतिशतक, श्लो० ६४) । प्रभो इत्यादि शब्दों के योग में षष्ठो का भी प्रयोग होता है, जैसे—

प्रभुर्बुधुर्भुवनत्रयस्य (माघ० प्रथम०, श्लो० ४९)

(द) कथन अथ वाली कथ्, ल्या, वास् एव चक्ष् धातुओं के अकारणित कारक तथा निपुनक प्रेरणाधिक वाद् धातु के प्रकृत वक्षा क कत्ता का कर्मरूप में प्रयोग होकर सम्प्रदान-रूप में प्रयोग होता है, जैसे—

आर्थं कथयाम तं वृताथम् (शाकु०, अंक १) —देवो तुम्हें सत्य कहता हूँ ।

धस्मि ब्रह्मपारायण जगौ (उत्तररामचरित) —जैसे वेद पढ़ाया ।

एाहे, इमा वनस्पातेसेवा काश्यपाय निवेदयन्निह (शाकु० अंक ४) —आश्री, दुस्रो की यह सेवा जण्व ऋषि का निवेदन कर दे ।

(व) भोजना अथ वाली धातुओं के प्रयोग में जिस व्यावृत्त के पास कोई भोजा जाता है, वह चतुर्था में तथा जिस स्थान पर भोजा जाता है, वह द्वितीया में रक्खा जाता है, जैसे—

भोजेन दूतो रघवे विसृष्ट (रघु०, सर्ग ५, श्लो० ३९) —महाराज भोज ने रघु के पास दूत भेजा ।

माधव पद्मावती प्रहिण्वता (मालतीमा०, अंक १)

(द) मन्यकर्मणाहरे विभाषाऽप्राणिषु ।२।३।१७।

जब अनादर किया जाता है तो 'अन्' (सम्झना, दिवादिगणो) धातु के कर्म में, याद वह प्राणी न हा तों, विकल्प से चतुर्था भी होती है, जैसे—

न त्वा त्म तृणाय वा मन्ये—मैं तुम्हें तिनके के बराबर भी नहीं समझता । जहाँ अनादर न दिखाकर समता या तुलना मात्र प्रकट की जाती है, वहाँ केवल द्वितीया ही होती है, जैसे—

त्वा तृण मन्ये—मैं तुम्हें तृणवत् समझता हूँ ।

(ध) राधीक्ष्योर्यस्य विप्रश्नः ।१।४।३६।

“शुभाशुभकथन” अर्थ में विद्यमान राष् और ईक्ष् धातुओं के प्रयोग में जिसके विषय में प्रश्न किया जाता है, उसकी सम्प्रदान सज्ञा होती है,

जैसे—कृष्णाय राध्यति ईक्षते वा गर्ग ।

१०२—१६५

### (क) ध्रुवभपायेऽपादानम् ।१।४।२४।

ऽपाय विश्लेष (अलग होना) को कहते हैं। उसमें जो ध्रुव या भ्रवाधिभूत (अर्थात् जहाँ से विश्लेष हो) होता है, वह अपादान कहलाता है। जैसे—“वह कोठे से गिर पडा।” यहाँ पर वह कोठे से अलग हो रहा है, इसलिए “कोठे से” अपादान है, इसी प्रकार “पेड से पत्ते गिरते हैं” में “पेड” और “राम गाँव से चला गया” में “गाँव” अपादान है।

### (ख) अपादाने पञ्चमी ।२।३।२६।

अपादान में पञ्चमी होती है। इस सूत्र के अनुसार ऊपर के वाक्यों का स्वरूप इस प्रकार होगा—

स प्रासादात् अपतत्,  
वृक्षात् पर्णानि पतन्ति,  
रामो ग्रामाद् जगाम।

### (ग) जुगुप्साविरामप्रभेदार्थानामुपसख्यानम् (वार्तिक)

जुगुप्सा (घृणा), विरामे (बन्द हो जाना, अलग हो जाना, छोड़ देना, हटना), प्रमाद (भूल या असावधानी करना) के समानार्थक शब्दों के साथ पञ्चमी होती है (अर्थात् जिस वस्तु से घृणा करे, जिससे हटे या जिसे दूर कर दे, जिस काम में भूल करे, इन सब में पञ्चमी विभक्ति का प्रयोग होता है)। धैर्यवान् पुरुष अपने निश्चय से नहीं हटते, राजा कर्म से नहीं टला, पाप से घृणा करता है, धर्म में भूल करता है, अपना कर्तव्य भूल गया। इन वाक्यों में निश्चय आदि शब्दों में सङ्कृत में पञ्चमी होगी, जैसे—न निश्चितार्थाद्विरमन्ति धीरा।

न नव प्रभुराफलयोदयात् स्थिरकर्मा विरराम कर्मण —वह नया राजा तब तक कर्म में न हटा जब तक कि उसे फल न मिल गया।

वत्सैतस्माद्विरम विरमात् पर न क्षमोज्जिम।

प्रत्यावत्त पुनरिव स मे जानकीविप्रयोग ॥ (उत्तररामचरित, अक १)

पापाज्जुगुप्सते । धर्मात्प्रमाद्यति ।

कश्चित्कान्ताविरहगुहणा स्वाधिकारात्प्रमत्त । (मेघदूत, श्लो० १)

**टिप्पणी**—जिसके विषय में भूल या असावधानी होती है, उसमें सप्तमी का प्रयोग भी होता है, जैसे—

न प्रमाद्यन्ति प्रमदासु विपश्चित (मनु०-२-२१३)

### (घ) भीत्रार्थानां भयहेतुः ११४।२५।

जिससे डर मालूम हो अथवा जिसके डर के कारण रक्षा करनी हो, उस कारक को अपादान कहते हैं, जैसे—

चौराद् विभेति—चोर से डरता है।

सर्पाद् भयम्—साँप से डर है।

इतने भय के कारण “चोर” और “साँप” हैं, इसलिए ये अपादान हैं।

रक्ष मा नरकपातात्—नरक से गिरने से भूझे बचाओ।

भीमाद् दुःशासन त्रातुम्—भीम से दुःशासन को बचाने के लिए।

यहाँ भी “नरकपात” तथा “भीम” भय के कारण हैं, इसलिए अपादान है।

### (ङ) पराजेरसोक्तः ११४।२६।

परा पूर्वक जिघातु के प्रयोग में जो असह्य होता है, उसकी अपादान सज्ञा होती है। जैसे—

अध्ययन्तु पराजयते—वह अध्ययन से भागता है (अध्ययन उसके लिए असह्य या कष्टप्रद है)। परन्तु हगने के अर्थ में द्वितीया ही होती है, जैसे—  
‘शत्रून् पराज्यते’ अर्थात् शत्रुओं को पराजित करता है।

### (च) वारणार्थानामोप्सितः ११४।२७।

जिससे कोई वस्तु या पुरुष दूर किया जाता है या मना किया जाता है, वह अपादान होता है, जैसे—

यवेभ्यो गा वारयति—जौ से गाय को रोकता है।

मित्र पापात् निवारयति—मित्र को पाप से दूर रखता है।



यहाँ पर रोकने वाले की इच्छा जौ बचाने की और पाप से हटाने की है, गाय को जौ से दूर करता है और मित्र को पाप से इसलिए 'जौ' और 'पाप' में अपादान कारक होने के कारण पञ्चमी का प्रयोग हुआ।

### (छ) अन्तर्धौयेनादर्शनमिच्छति ।१।४।२८।

जब कोई अपने को किसी से छिपाता है तो जिससे छिपाता है वह अपादान होता है, जैसे—

मातुर्निलीयते कृष्ण—कृष्ण अपनी माता से छिपता है।

यहाँ पर कृष्ण अपने को "माता से" छिपाता है, इसलिए "माता से" अपादान कारक हुआ।

### (ज) आख्यातोपयोगे ।१।४।२८।

(नियमपूर्वकविद्यास्वीकारे वक्ता प्राक्भूत् स्यात्)।

जिस गुरु या अध्यापक या मनुष्य से कोई चीज नियमपूर्वक पढ़ी जाती है, अथवा मालूम की जाती है, वह गुरु या अध्यापक या अन्य मनुष्य अपादान होता है, जैसे—

उपाध्यायाद् अधीते—उपाध्याय से पढ़ता है।

कौशिकाद् विदितशापया—विश्वामित्र से शाप जान करके उसने।

मया तीर्थादभिनयविद्या शिक्षिता—मैंने अध्यापक से अभिनय-कला सीखी (मालविका०)।

अध्यापकाद् गणितं पठति—अध्यापक से गणित पढ़ता है।

तेभ्योऽधिगन्तुं निगमान्तविद्या वाल्मीकिपाश्चादिह पर्यटामि (उत्तर०)—  
उन लोगों से वेदान्त पढ़ने के लिए मैं वाल्मीकि के यहाँ से इस स्थान पर चली आई हूँ।

'नियमपूर्वक' न होने पर षष्ठी होगी, जैसे—'नटस्य गाथा शृणोति'।

### (झ) जनकर्तुः प्रकृतिः ।१।४।३०।

जन् घातु के कर्ता का आदि कारण अपादान होता है, जैसे—

कामात्क्रोधोऽभिजायते—काम से क्रोध पैदा होता है।

यहाँ “अभिजायते” का कर्ता “क्रोध” है, और इस कर्ता (क्रोध) का “आदि कारण” “काम” है, इसलिए ‘काम’ अपादान कारक है। इसी प्रकार ब्रह्मण प्रजा प्रजायन्ते—ब्रह्मा जी से सारी प्रजा उत्पन्न होती है।

**दिष्णी**—जिससे कोई उत्पन्न होता है, उसमें प्रायः सप्तमी भी होती है, जैसे—परदारेषु जायेते द्वौ सुतौ कुण्डगोलकौ (मनु० अ० ३-१७५ श्लो०), शुकनासस्यापि रेणुकाया तनयो जात (कादम्बरी), स स्त आर्याया कन्या-रत्नमजीजनत।

### (ज) भुवः प्रभवश्च ।१।४।३।१।

उत्पन्न होने वाले का जो ‘प्रभव’ अर्थात् उत्पत्तिस्थान होता है, वह अपादान कहलाता है, जैसे—हिमवतो गङ्गा प्रभवति।

### (ट) ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च (वार्तिक)

जब ल्यप् (प्रेक्ष्य, आनीय आदि) प्रथवा क्त्वा प्रत्ययान्त (दृष्ट्वा, गत्वा आदि) क्रिया वाक्य में प्रकट नहीं की जाती किन्तु छिपी रहती है, तो उस क्रिया के कर्म और आधार पञ्चमी में होते हैं, जैसे—

श्वशुराज्जिह्वेति—ससुर से लज्जा करती है।

वास्तव में इस वाक्य का पूर्णरूप से प्रकट करने पर इसका रूप यों होगा—

“श्वशुर वीक्ष्य दृष्ट्वा वा जिह्वेति,” अर्थात् ससुर को देखकर लज्जा करती है, ‘श्वशुराज्जिह्वेति’ में ‘दृष्ट्वा’ या ‘वीक्ष्य’ प्रकट नहीं किया गया है, इसलिए ‘दृष्ट्वा’ का कर्म ‘श्वशुर’ पञ्चमी में हो गया।

आसनात्प्रेक्षते—आसन से देखता है।

इसका वास्तविक आकार पूर्णरूप से प्रकट करने पर यों होगा—

“आसने उपविश्य स्थित्वा वा प्रेक्षते” अर्थात् आसन पर बैठ कर देखता है। “आसनात्प्रेक्षते” में “उपविश्य” या “स्थित्वा” प्रकट नहीं किया गया है, इसलिए “उपविश्य” का आधार ‘आसन’ सप्तमी में न होकर पञ्चमी में हो गया।

## (ठ) यतश्चाध्वकालनिर्माणं तत्र पञ्चमी (वार्तिक)

जिस स्थान या समय से किसी दूसरे स्थान या समय की दूरी दिखाई जाती है, वह स्थान या समय पञ्चमी विभक्ति में रखा जाता है।

## तद्युक्तादध्वनः प्रथमासप्तम्यौ (वार्तिक)

(१) और जो स्थान की दूरी दिखाई जाती है, उसका वाचक शब्द प्रथमा या सप्तमी विभक्ति में रखा जाता है, जैसे—

मम गृहात् प्रयाग योजनत्रयमस्ति, अथवा मम गृहम् प्रयाग योजनत्रये अस्ति।

यहाँ जिस स्थान से दूरी दिखाई गई है वह “घर” है, इसलिए घर पञ्चमी विभक्ति में रखा गया है, और जितनी दूरी दिखाई गई है वह “तीन योजन” है, इसलिए ‘तीन योजन’ प्रथमा में अथवा सप्तमी में रखा गया है। इसी प्रकार उदाहरण हो सकते हैं—

कर्णपुरात् प्रयाग अष्टादशयोजनानि अष्टादशयोजनेषु वा।

भरद्वाजाश्रमात् गङ्गायमुनेषु सङ्गम क्रोश क्रोशे वा इत्यादि।

## कालात् सप्तमी वक्तव्या (वार्तिक)

(२) और जो समय की दूरी दिखाई जाती है, उसका वाचक शब्द सप्तमी विभक्ति में रखा जाता है, जैसे—

कार्तिक्या आश्विन्याणी मासे—कार्तिकी पूर्णिमा से अश्विन की पूर्णिमा एक महीने पर होती है।

यहाँ कार्तिकी पूर्णिमा से समय की दूरी दिखाई गई है, इसलिए उसमें पञ्चमी हुई और एक महीने की दूरी दिखाई गई है, इसलिए “महीने” में सप्तमी हुई। इसी प्रकार अन्य उदाहरण हो सकते हैं—

अस्मात् दिवसात् गुरुपूर्णिमा दशसु दिवसेषु।

आश्विनमासस्य प्रथमदिवसात् विजयदशमी पञ्चविंशतिदिवसेषु, इत्यादि।

(३) पञ्चमी विभक्ते २।३।४२। (विभक्त का अर्थ इस स्थल में विभाग या भेद है।)

ईयसुन् अथवा तरप् प्रत्ययान्त विशेषण (देखिए न० ६६) के द्वारा अथवा साधारण विशेषण या क्रिया के द्वारा जिससे किसी वस्तु का तुलनात्मक तारतम्य दिखाया जाता है, उसमे पञ्चमी होती है, किन्तु वे दोनो वस्तुएँ मित्र जाति, गुण, क्रिया तथा सज्ञा वाली होनी चाहिए, जैसे—

प्रजा सरक्षति नृप सा वर्द्धयति पार्थिवम् ।  
 वर्धनाद्रक्षण श्रेय तदभावे सदप्यसत् ॥  
 माता गुह्यतरा भूमे खात्पितोच्चरस्तथा ।  
 श्रेयान् स्वधर्मो विगुण परधर्मात्स्वनुष्जितोत् ॥  
 एकाक्षर पर ब्रह्म, प्राणायाम पर तप ।  
 सावित्र्यास्तु पर नास्ति, मौनात् सत्यं विशिष्यते ॥

यहाँ वर्धन रक्षण, माता भूमि, स्वधर्म परधर्म आदि उदाहरणो मे दो विभिन्न वस्तुओ मे तारतम्य बताया गया है ।

(ढ) अन्यारादितरर्तेदिक्शब्दोच्चूत्तरपदाजाहियुक्ते ।२।३।२।

अन्य, आरात्, इतर, ऋते, दिक्वाचक<sup>२</sup> पूर्व दक्षिण आदि तथा अञ्च् घातु से युक्त दिक्वाचक प्रत्यक्, उदक् प्रमृति दक्षिणा, उत्तरा प्रमृति एव दक्षिणाहि, उत्तराहि प्रमृति शब्दो के अर्थ मे पञ्चमी होती है, जैसे—

- (१) अन्यो मित्र इतरो वा कृष्णात् ।
- (२) आराद्वनात् ।
- (३) ऋते कृष्णात् ।
- (४) चैत्रदि पूर्व फाल्गुन ।
- (५) अक् प्रत्यग्वा ग्रामात् ।
- (६) दक्षिणा ग्रामात् ।
- (७) दक्षिणाहि ग्रामात् ।

टिप्पणी—( १ ) यद्यपि सूत्र के 'अन्य' शब्द से उस अर्थ के बोधक मित्र इतर, पर, अपर इत्यादि समस्त शब्दो का ग्रहण होता है तथापि दिग्दर्शन के लिए 'इतर' का पृथक् ग्रहण हुआ है ।

१ अन्य इत्यर्थग्रहणम् । इतरग्रहण प्रपञ्चार्थम् ।—सि० कौ०

(11) यद्यपि' सूत्र 'मे आया हुआ 'अञ्चूत्तरपद' भी 'दिक्शब्द' ही है और इसी से उसका भी ग्रहण हो जाता है, तथापि उसका पृथक् ग्रहण 'षष्ठघतसर्थ प्रत्ययेन' ।२।३।३०। सूत्र से दिग्वाची शब्दों के योग में होने वाली षष्ठी का बोध करने के लिए किया गया है, अन्यथा 'ग्रामस्य पुर' की तरह 'ग्रामस्य प्राक्' प्रयोग होता, 'ग्रामात् प्राक्' न होता ।

(111)<sup>१</sup> 'अपादाने पञ्चमी' सूत्र पर व्याख्यान लिखते हुए महाभाष्यकार ने 'कार्तिक्या प्रभृति' प्रयोग किया है । इससे सूचित होता है कि 'प्रभृति' तथा इसके अर्थ में प्रयुक्त होने वाले 'आरभ्य' इत्यादि अन्य शब्दों के योग में भी पञ्चमी होती है, जैसे—

(१) शैशात् प्रभृति पोषिता प्रियाम् (उत्तररामचरित) ।

(२) भवात् प्रभृति आरभ्य वा सेव्यो हरिः (सि० कौ०) ।

इसी प्रकार 'अपपरिबहिरञ्चव पञ्चम्या' ।२।१।१२। सूत्र में आये हुए 'बहि' के योग में पञ्चमी समास होने के कारण बहि के योग में पञ्चमी विभक्ति ज्ञापक सिद्ध होती है, —'ग्रामाद् बहि' अर्थात् गाँव से बाहर ।

इसी प्रकार (1V) ऊर्ध्वं, परं अनन्तर के योग में भी पञ्चमी होती है, जैसे—

(१) तस्मात् परम् अनन्तर वा ।

(२) मुहूर्त्तद्विध्वंसं त्रिये ।

(ग) पञ्चम्यपाडपरिभिः ।२।३।१०।

कर्मप्रवचनीयसज्ञक अप, आङ् और परि के योग में पञ्चमी होती है, (अपपरी वर्जने) आङ् मर्यादावचने ।१।४।८८, ८९। अर्थात् वर्जन अर्थ में

१ अञ्चूत्तरपदस्य तु दिक्शब्दत्वेऽपि 'षष्ठघतसर्थप्रत्ययेन' इति षष्ठी बाधितु पृथग्रहणम् ।

२ 'अपादाने पञ्चमी' इति सूत्रे 'कार्तिक्या प्रभृति' इति भाष्यप्रयोगात् प्रभृत्यर्थयोगे पञ्चमी । 'अपपरिबहि०' इति समासविधानाज्ज्ञापकात् बहिर्योगे पञ्चमी ।—सि० कौ०

‘अप’ तथा ‘परि’ और मर्यादा तथा अभिविधि अर्थ में ‘आङ्’ कर्मप्रवचनीय कहलाते हैं), जैसे—

(१) अप परि वा हरे ससार—मगवान् को छोड़ कर अन्यत्र ससार रहता है।

(२) आ जन्मन आ मरणात् स्वकर्त्तव्य पालयेन्नर—मनुष्य को जन्म से लेकर (अभिविधि अर्थ में) मृत्यु तक (मर्यादा अर्थ में) अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए।

(त) प्रतिनिधिप्रतिदाने च यस्मात् ॥२॥३॥११॥

प्रतिनिधि एव प्रतिदान (विनिमय) के अर्थ में कर्मप्रवचनीय सजा प्राप्त करने वाले ‘प्रति’ के योग में पञ्चमी होती है, जैसे—

(१) प्रद्युम्न कृष्णात् प्रति—प्रद्युम्न कृष्ण के प्रतिनिधि हैं।

(२) तिलेभ्य प्रति यच्छति माषान्—तिलों के बदले में उडद देता है (अर्थात् तिल से उडद बदलता है)।

(थ) विभाषागुणेऽस्त्रियाम् ॥२॥३॥२५॥

हेतु या कारण प्रकट करने वाले गुणवाचक अस्त्रीलिङ्ग शब्द विकल्प से तृतीया या पञ्चमी में रक्खे जाते हैं, जैसे—

जाड्येन जाड्यात् वा बद्ध (सि० कौ०)—वह अपनी मूर्खता के कारण पकड़ा गया।

गुणवाचक के होने पर अस्त्रीलिङ्ग होते हुए भी तृतीया ही होगी, जैसे, धनेन कुलम्।

इसी प्रकार गुणवाचक होते हुए भी स्त्रीलिङ्ग होने पर तृतीया ही होगी, जैसे—

बुद्ध्या मुक्त—वह अपनी बुद्धि के कारण छोड़ दिया गया।

टिप्पणी—प्रस्तुत सूत्र में विभाषा न केवल विभक्ति (तृतीया और पञ्चमी) के सम्बन्ध में ही गृहीत है अपितु गुण और अस्त्रियाम् के विषय में भी। अतएव ‘धूम’ के गुणवाचक न होने पर भी ‘धूमात् वल्लिमान्’ तथा ‘अनुपलब्धि’ के स्त्रीलिङ्ग होने पर भी ‘नास्ति घटोऽनुपलब्धे’ प्रयोग सही है।

## १०३—सप्तमी

(क) आधारोऽधिकरणम् ।१।४।४५। सप्तम्यधिकरणे  
च ।२।३।३६।

कर्ता और कर्म के द्वारा किसी भी क्रिया का आधार 'अधिकरण' कहलाता है। 'अधिकरण' में सप्तमी का प्रयोग होता है।

औपश्लेषिक, वैषयिक तथा अभिव्यापक रूप से आधार तीन प्रकार का होता है—

(१) औपश्लेषिक आधार—जिसके साथ आधेय का भौतिक सश्लेष हो, जैसे, 'कटे आस्ते'—यहाँ 'चटाई' से बैठने वाले का भौतिक सश्लेष प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हो रहा है।

(२) वैषयिक आधार—जिसके साथ आधेय का बौद्धिक सश्लेष हो, जैसे, 'मोक्षे इच्छास्ति'—इसमें इच्छा का 'मोक्ष' में अधिष्ठित होना पाया जाता है।

(३) अभिव्यापक आधार—जिसके साथ आधेय का व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध हो, जैसे, 'तिलेषु तैलम्'—यहाँ तैल में एक जगह अलग नहीं दिखाई पड़ सकता पर निश्चयात्प्रक रूप से वह सभी तिलों में व्याप्त है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। ये त्रिविध आधार अधिकरण कहलाते हैं और इनमें सप्तमी का विधान होता है।

दूर एवं अन्तिक पर्यं वाले शब्दों में भी सप्तमी का प्रयोग होता है—  
जैसे—

(४) ग्रामस्य दूरे अन्तिके वा—गाँव से दूर या समीप।

दिप्यन्ती—क्रिया के आधार की भाँति उसका समय भी सप्तमी में रक्खा जाता है, जैसे—

आषाढस्य प्रथमदिवसे (मेघ०) आषाढ़ के पहले ही दिन।

शैशवेऽम्यस्तविद्यानाम् (रघु०)—बाल्यकाल में विद्याभ्यास करने वाले रघुवशियो का।

### (ख) क्तप्रत्ययेन्विषयस्य कर्मण्युपसंस्थानम् (वार्त्तिक)

क्त प्रत्ययान्त शब्द में हन् प्रत्यय लगकर बने हुए शब्द के योग में उसके कर्म में सप्तमी विभक्ति होती है, जैसे, अघीती व्याकरणे ।

### (ग) साध्वसाधुप्रयोगे च (वार्त्तिक)

साधु और असाधु के प्रयोग में भी सप्तमी विभक्ति होती है, जैसे—‘साधुः कृष्णो मातरि’ (कृष्ण अपनी माँ के लिए बहुत अच्छे थे), ‘असाधुर्मातुले’ (पर अपने मामा के लिए बहुत बुरे) ।

### (घ) निमित्तात्कर्मयोगे (वार्त्तिक)

जिस निमित्त से अर्थात् जिस फल की प्राप्ति के लिए कोई क्रिया की जाती है, वह निमित्त या फल यदि उस क्रिया के कर्म से युक्त अथवा समवेत हो तो उसमें सप्तमी विभक्ति होती है, जैसे,

‘चर्मणि द्वीपिन हन्ति दन्तयोर्द्वन्ति कुञ्जरम् ।

केशेषु चमरी हन्ति सीम्नि पुष्कलको हत’ ॥

यहाँ पर ‘द्वीपी’ कर्म के साधु उसका चर्म समवेत है और फलमूत चर्म की प्राप्ति के लिए ही बध-व्यापार होता है। इसलिए ‘चर्म’ में सप्तमी हुई है। इसी प्रकार दन्तयो, केशेषु तथा सीम्नि में भी सप्तमी हुई है।

दृष्यन्ती—‘हितो’ इस सूत्र के द्वारा ‘अध्ययनेन वसति’ इत्यादि प्रयोगों की भाँति यहाँ भी तृतीया होनी चाहिए थी, परन्तु ‘निमित्तात् कर्मयोगे’ के द्वारा उसका निवारण हो जाता है और तृतीया के स्थान में सप्तमी होती है।

### (ङ) कश्चनिर्धारणम् ।२।३।४१।

यदि किसी वस्तु का अपने समुदाय की अन्य वस्तुओं से किसी विशेषण द्वारा कोई विशेष निर्देश किया जाता है, अर्थात् विशिष्टता दिखाई जाती है तो वह समुदायवाचक शब्द सप्तमी अथवा षष्ठी में रखा जाता है, जैसे—

कविषु कालिदास श्रेष्ठ  
या  
कवीणां कालिदास-श्रेष्ठः

कवियों में कालिदास सबसे बड़े हैं।



गोषु कृष्णा बहुक्षीरा या	}	गायो मे काली गाय बहुत दूध देनेवाली होती है।
गवा कृष्णा बहुक्षीरा		
छात्रेषु मैत्र पटु, या	}	विद्याधियो मे मैत्र तेज है।
छात्राणा मैत्र पटु,		

इन उदाहरणों में यह दिखाया गया है काली गाय में कुछ विशिष्टता है, कालिदास और मैत्र में कुछ विशिष्टता है। ये तीनों विशेष कारण से अपने-अपने समुदाय में (गायो, कवियो और छात्रों में) विशिष्ट है।

### (च) सप्तमीपञ्चम्यौ कारकमध्ये ।२।३।५।

दो कारक शक्तियों के बीच के काल और स्थान के वाचक शब्द सप्तमी या पञ्चमी विभक्ति में रक्खे जाते हैं, जैसे—

अद्य मुक्त्वाऽयं श्रद्धे श्रद्धाद्वा भोक्ता आज खाकर फिर तीन दिन में (या तीन दिनों के बाद) खाएगा।

इहस्थोऽयं क्रोशे क्रोशाद्वा लक्ष्य विध्यन्—यहाँ स्थित होकर यह एक कोश स्थित लक्ष्य को वेध देगा।

### (छ) प्रसितोत्सुकाम्यां तृतीया च ।२।३।४।४।

प्रसित (इच्छुक या अनिर्लाभुक) तथा उत्सुक शब्दों के योग में सप्तमी या तृतीया विभक्ति का प्रयोग होता है, जैसे—

निद्रया निद्रया वा प्रसित उत्सुको वा—नीद का इच्छुक।

(ज) कोषग्रन्थो मे के अर्थ में—इस अर्थ को प्रकट करने के लिए सप्तमी विभक्ति का प्रयोग होता है, जैसे, वाणी बलिसुते शरे (अमरकोष)—बलि के पुत्र तथा शर के अर्थ में 'बाण' शब्द प्रयुक्त होता है।

(झ) व्यवहार' या 'आचरण' अर्थ वाले शब्दों के योग में भी सप्तमी विभक्ति का प्रयोग होता है, जैसे—

आर्योऽस्मिन् विनयेन वर्तताम्—श्रीमान् इसके साथ विनयपूर्वक व्यवहार करें।

क्रुश प्रियसखीवृत्ति सपत्नीजने (शकुन्तला)—सपत्नियों (सौतो) के साथ प्रिय सखी का व्यवहार करना।

गुरुषु शिष्टो व्यवहारस्तस्य—गुरुजनो के साथ उसका व्यवहार बड़ा शिष्ट है।

(ज) स्नेह, आदर, अनुराग तथा इनका अर्थ देने वाले अन्य शब्दों के योग में सप्तमी विभक्ति आती है, जैसे—

अस्ति मे सोदरस्नेहोऽप्येतेषु (शकुन्तला)—इन पर मेरा सगे भाई का सा स्नेह भी है।

स्वयोषिति रति—अपनी स्त्री पर प्रेम।

देवे चन्द्रगुप्ते दृढमनुरक्ता प्रकृतय (मुद्राराक्षस)—महाराज चन्द्रगुप्त में प्रजा का बड़ा अनुराग है।

दण्डनीत्या नात्यादृतोऽभूत् (दशकुमार)—दण्डनीति के प्रति उसका बहुत आदरभाव नहीं था।

न तापसकन्यकाया ममाभिलाष (शकुन्तला)—तपस्वी कण्व की कन्या पर मेरा प्रेम नहीं है।

दिप्यणी—परन्तु अनुपूर्वक रञ्जु घातु से बने हुए शब्दों का द्वितीयान्त के साथ भी प्रयोग पाया जाता है, जैसे एषा भवन्तमनुरक्ता (शकुन्तला), अपि वृषलमनुरक्ता प्रकृतय (मुद्राराक्षस)। किन्तु ऐसे प्रयोगों में 'अनु' को 'कर्मप्रवचनीय' तथा उसके योग में द्वितीया का प्रयोग समझना चाहिए।

(ट) 'कारण' अर्थ के वाचक शब्दों के प्रयोग में 'कार्य' के वाचक शब्द में प्रायः सप्तमी आती है, जैसे—

दैवमेव हि चूणं वृद्धौ क्षये कारणम् (नीति०, ८४)—मनुष्य की वृद्धि और उसके विनाश में माय्य ही एक-मात्र कारण है।

(ठ) पूज् घातु तथा उससे बने हुए अन्य शब्दों के योग में सप्तमी का प्रयोग होता है, जैसे—

असाधुदर्शी तत्रभवान् काश्यपो य इमामाश्रमधर्मं नियुङ्क्ते (शकु०)—पूज्य काश्यप (कण्व) ने जो इसे आश्रम के कर्मों में लगा रक्खा है, यह ठीक नहीं किया।

त्रैलोक्यस्यापि प्रभुत्व तस्मिन् युज्यते—त्रिभुवन का भी राज्य उसके लिए उचित ही है।

टिप्पणी—युज् धातु के बाद वाले 'उचित' अर्थ में विद्यमान उपपूर्वक 'पद्' इत्यादि धातुओं तथा उनसे बने शब्दों के योग में भी सप्तमी आती है, षष्ठी भी प्रायः प्रयुक्त होती है जैसे—

अथवोपपन्नमेतदृषिकल्पेऽस्मिन् राजनि (शकु०, द्वि० अ०)—अथवा इस ऋषिकल्प महाराज के लिए यह उचित ही है।

उपपन्नमिद विशेषण वायो—वायु के लिए यह विशेषण ठीक (उचित) ही है।

(डै) क्षिप्, मुच्, अस्, पत् (णिजन्त) इत्यादि धातुओं तथा इनसे बने हुए शब्दों के प्रयोग में जि० पर कोई वस्तु रखी या छोड़ी जाती है, उसमें सप्तमी होती है, जैसे—

मृगेषु शरान् मुमुक्षु—हिरणो पर बाण छोड़ने को इच्छुक।

योग्यसचिवे न्यस्त समस्तो भर ( रत्नावली )—समस्त राज्यभार योग्य मन्त्री पर छोड़ दिया गया है।

न खलु न खलु बाण सन्निपात्योऽस्मिन् (शकु०)—इस (सुकुमार हिरणशरीर) पर बाण न छोड़ो न छोड़ो।

शुकनासनामिन् मन्त्रिणि राज्यभारमारोप्य—शुकनास नामक मन्त्री पर राज्यभार सौंप (छोड़) कर।

(ढ) व्यापृत, आसक्त, अग्र, तत्पर, कुशल, निपुण, शाण्ड, पर, प्रवीण इत्यादि शब्दों के योग में भी सप्तमी प्रयुक्त होती है, जैसे—

गृहकर्म्मणि व्यापृता, अग्रा, तत्परा वा—घर के कामों में तत्पर।

अक्षेषु निपुण शाण्ड, प्रवीण वा—जुए में दक्ष।

(ण) अपूर्वक राध् तथा उससे बने शब्दों के प्रयोग में जिसके प्रति अपराध होता है, उसमें चतुर्थी ('ऋध्द्रुहे०' सूत्र के अनुसार) के अतिरिक्त प्रायः सप्तमी और कभी-कभी षष्ठी भी होती है, जैसे, कस्मिन्नपि पूजाह्येऽपराद्धा शकुन्तला (शकु०, अ० ६)—किसी गुरुजन के प्रति शकुन्तला अपराध कर बैठी है।

अपराद्धोऽस्मि तत्रभवत कण्वस्य (शकु०, ७)—मैंने पूज्य कण्व के प्रति अपराध किया है।

### (त) यस्य च भावेन भावलक्षणम् ।२।२।३७।

जब किसी कार्य के हो जाने पर दूसरे कार्य का होना प्रतीत होता है, तो जो कार्य हो चुकता है उसको सप्तमी में रखते हैं, जैसे—

सूर्यो अस्त गते गोपा गृहम् अगच्छन्—सूर्य के अस्त हो जाने पर ग्वाले अपने घर चले गये।

रामे वन गते दशरथ प्राणान् तत्याज—राम के वन चले जाने पर दशरथ जी ने अपना प्राण त्याग दिया।

सुरेशो गायति सर्वे जहसु—सुरेश के गाने पर सब हँस पड़े।

सर्वेषु श्यानेषु श्यामा रोदिति—सब के सो जाने पर श्यामा रोती है।

यहाँ पर सूर्य के अस्त होने पर ग्वालो का घर जाना, राम के वन जाने पर दशरथ का प्राण त्याग करना, सुरेश के गाते पर सब का हँसना तथा सबके सो जाने पर श्यामा का रोना प्रतीत होता है, इसलिए सूर्य, रामे, सुरेशे, सर्वेषु—ये सब के सब सप्तमी में हैं। ] End

दिप्पणी—अंग्रेजी में जिसे Nominative absolute कहते हैं, वही संस्कृत में यह 'सति सप्तमी' अथवा 'भावे सप्तमी' (Locative absolute) है।

१०४—ऊपर के सप्तमों से यह विदित हुआ कि—

प्रथमा विभक्ति	कर्तृवाच्य के कर्त्ता तथा सम्बोधन के लिए,
द्वितीया विभक्ति	कर्म के लिए,
तृतीया विभक्ति	करण के लिए,
चतुर्थी विभक्ति	सम्प्रदान के लिए,
पञ्चमी विभक्ति	अपादान के लिए,

सप्तमी विभक्ति अधिकरण के लिए प्रधान रूप से प्रयोग में आती है। अर्थात् ये छ विभक्तियाँ एक-एक करके छहो कारको का बोध कराती हैं। शेष रही षष्ठी विभक्ति, इसका क्या प्रयोग है? ऊपर (६७) में कह आये हैं कि केवल ऐसे शब्द (सज्ञा अथवा सर्वनाम) जिनका क्रिया से सीधा सम्बन्ध स्थापित हो सकता है, कारक कहे जाते हैं। इन कारको का सम्बन्ध क्रिया से स्थापित करने के लिए षष्ठी को छोड़कर और सारी विभक्तियाँ आती हैं। वाक्य

की क्रिया से षष्ठी का कोई सम्बन्ध नहीं रहता, वह तो सज्ञा का सज्ञा से अथवा सज्ञा का सर्वनाम से सम्बन्ध स्थापित करती है, जैसे—

श्याम गोविन्दस्य पुत्र ताडितवान् ।

यहाँ मारने की क्रिया से गोविन्द का कोई सम्बन्ध नहीं, सम्बन्ध है तो गोविन्द के पुत्र का और श्याम का। हाँ, गोविन्द का पुत्र से सम्बन्ध है, किन्तु गोविन्द और पुत्र दोनों सज्ञाएँ हैं। “श्याम मम पुत्र ताडितवान्” यहाँ ‘मेरा’ का ‘पुत्र’ से सम्बन्ध है, क्रिया से नहीं, और ‘मेरा’ सर्वनाम है और ‘पुत्र’ सज्ञा है। इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि षष्ठी किसी कारक का बोध नहीं करती। उसका क्या उपयोग है, यह नीचे के सूत्रों से प्रकट होगा।

### १०५—षष्ठी

#### (क) षष्ठी शेषे ।२।३।५०।

इस सूत्र का अर्थ यह है कि जो बात और विभक्तियों से नहीं बतलाई जा सकती, उनको बतलाने के लिए षष्ठी होती है। वे बातें सम्बन्धविशेष हैं। जहाँ स्वामी तथा मृत्य, जन्य तथा जनक, कार्य तथा कारण इत्यादि सम्बन्ध दिखाये जाते हैं, वहाँ षष्ठी होती है, जैसे—

राज्ञ पुरुष — राजा का पुरुष ।

यहाँ पर ‘राजा’ स्वामी है, ‘पुरुष’ मृत्य है। इस “स्वामी तथा मृत्य” का सम्बन्ध दिखाने के लिए “राज्ञ” में षष्ठी हुई है।

बालकस्य माता — बालक की माँ ।

यहाँ पर ‘बालक’ जन्य अर्थात् “पैदा होने वाला” है और ‘माता’ जननी अर्थात् “पैदा करने वाली” है, एव इसमें “जन्य-जनक” सम्बन्ध है और इसी को दिखलाने के लिए “बालकस्य” में षष्ठी हुई है।

मृत्तिकाया घट — मिट्टी का घड़ा ।

यहाँ पर ‘मिट्टी’ कारण है और ‘घड़ा’ कार्य है। एव इसमें “कार्यकारण” सम्बन्ध है और इसी को दिखाने के लिए ‘मृत्तिकाया’ में षष्ठी हुई है।

#### (ख) षष्ठी हेतुप्रयोगे ।२।३।२६।

जब ‘हेतु’ शब्द का प्रयोग होता है, तो जो शब्द कारण या प्रयोजन रहता है, वह और ‘हेतु’ शब्द—दोनों षष्ठी में रखे जाते हैं, जैसे—

अन्नस्य हेतो वसति—वह अन्न के वास्ते रहता है, अर्थात् अन्न पाने के प्रयोजन से रहता है।

यहाँ रहने का कारण या प्रयोजन “अन्न” है, इसलिए “अन्नस्य” और “हेतो” दोनो मे षष्ठी हुई है।

अध्ययनस्य हेतो काश्या तिष्ठति—अध्ययन के लिए काशी मे टिका है।

यहाँ पर टिकने का प्रयोजन या कारण “अध्ययन” है, इसलिए “अध्ययनस्य” और “हेतो” दोनो मे षष्ठी हुई है।

### (ग) सर्वनामस्तृतीया च ।२।३।३७।

जब हेतु शब्द के साथ किसी सर्वनाम का प्रयोग होता है, तो सर्वनाम और हेतु शब्द—दोनों में तृतीया, पञ्चमी या षष्ठी होती है, जैसे—

“कस्य हेतो अत्र वसति

या

कस्मात् हेतो अत्र वसति

या

केन हेतुना अत्र वसति

—किस लिए यहाँ टिका है ?

यहाँ पर “किम्” शब्द सर्वनाम है, इसलिए “कस्य” मे षष्ठी, “केन” मे तृतीया और “कस्मात्” मे पञ्चमी हुई है। इसी प्रकार—

तेन

हेतुना

तस्माद्

हेतो

तस्य

हेतो

—उस कारण से।

येन

हेतुना

यस्मात्

हेतो

यस्य

हेतो

—जिस कारण से।

### घ) निमित्तपर्यायप्रयोगे सर्वासा प्रायदर्शनम् (वार्त्तिक)

“निमित्त” शब्द का अर्थ रखने वाले (कारण, हेतु, प्रयोजन आदि) शब्दों का प्रयोग होने पर सर्वनाम मे तथा निमित्त का अर्थ रखने वाले शब्दों मे प्रायः सभी विभक्तियाँ होती हैं, जैसे—

किं

निमित्तम्

को

हेतु

तत्

प्रयोजनम्

”

”

क

हेतु

”

”

केन	निमित्तेन	केन	हेतुना	तेन	प्रयोजनेन
कस्मै	निमित्ताय	कस्मै	हेतवे	तस्मै	प्रयोजनाय
कस्मात्	निमित्तात्	कस्मात्	हेतो	तस्मात्	प्रयोजनात्
कस्य	निमित्तस्य	कस्य	हेतो	तस्य	प्रयोजनस्य
कस्मिन्	निमित्ते	कस्मिन्	हेतौ	तस्मिन्	प्रयोजने

वार्त्तिक में हुए 'प्राय' का तात्पर्य यह है कि जब सर्वनाम का प्रयोग नहीं रहता तब प्रथमा, द्वितीया नहीं होती, शेष सब विभक्तियाँ होती हैं, जैसे—

ज्ञानेन निमित्तेन  
ज्ञानाय निमित्ताय  
ज्ञानात् निमित्तात्  
ज्ञानस्य निमित्तस्य  
ज्ञाने निमित्ते

—ज्ञान के वस्ते।

टिप्पणी—यद्यपि उपर्युक्त वार्त्तिक से समा विभक्तियों का प्रयोग विहित है, तथापि प्राचीन काव्यकारों के काव्यग्रन्थों में तृतीया, पञ्चमी तथा षष्ठी का ही प्रयोग पाया जाता है। इसके अतिरिक्त 'कि निमित्त, प्रयोजन, कारणम्, अर्थम्' इत्यादि द्वितीयान्त प्रयोग भी कम नहीं पाये जाते।

### (ड) षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन २।३।३०।

अतसुच् (तस्) प्रत्यय में अन्त होने वाले शब्दों (दक्षिणत, उत्तरत आदि) तथा इस प्रत्यय का अर्थ रखने वाले प्रत्ययों में अन्त होने वाले शब्दों (उपरि, अध, अग्रे, आदौ, पुर आदि) का जिस शब्द के साथ योग हो, उसमें षष्ठी होती है, जैसे—  
ग्रामस्य दक्षिणत ।  
रथस्योपरि, रथस्य उपरिष्ठात् ।  
पतिव्रतानाम् अग्रे कीर्तनीया सुदक्षिणा ।  
वृक्षस्य अध, वृक्षस्य अधस्तात् ।  
सस्य स्थित्वा कथमपि पुर कौतुकाधानहेतो ।

टिप्पणी—उपरि, अधि, अध जब दोहरा कर आते हैं, तब षष्ठी का प्रयोग नहीं होता किन्तु द्वितीया की (देखिये ६८ ड)।

## (च) दूरान्तिकार्थः षष्ठ्यन्यतरस्याम् ।२।३।३४।

दूर, अन्तिक (समीप) तथा इनके समान अर्थ रखने वाले शब्दों का प्रयोग होने पर षष्ठी तथा पञ्चमी होती है, जैसे—

वन ग्रामस्य ग्रामाद् वा दूरम्—जङ्गल गाँव से दूर है।

प्रत्यासन्नौ माधवीमण्डपस्य—माधवी लता के कुञ्ज के समीप।

कर्णपुर प्रयागस्य प्रयागाद् वा समीपम्—कानपुर/प्रयाग से (के) समीप है।

टिप्पणी—जिससे दूरी दिखाई जाती है, उसमें षष्ठी या पञ्चमी होती है, किन्तु दूर-वाची या निकट-वाची शब्दों में द्वितीया आदि (देखिए ६६ थ)।

## (छ) अर्थोऽर्थदयेशां कर्मणि ।२।३।५२।

अधि पूर्वक "इ" धातु (स्मरण करना), दय् (दया करना), ईश् (समर्थ होना) तथा इन्ही अर्थ वाली अन्तः के कर्म में षष्ठी होती है, जैसे—

मातु स्मरति—माता की याद करता है।

स्मरन् राघवबाणानां किव्यथे रघुवर—रामचन्द्रजी के बाणों की याद करता हुआ रावण दुःखी हुआ।

प्रभवति निजस्य कन्यकाजनस्य राज—महाराज अपनी पुत्री के ऊपर समर्थ हैं।

गात्राणाममीशोऽस्मि सवृत्त—अपने अङ्गों का भालिक न रहा।

कथञ्चिदोशा मनसा बभूवु—लोगों ने बड़ी कठिनाई से अपने मन को अपने वक्त्र में रक्खा।

शौचस्तिकत्व विभवा न येषां चन्ति तेषां दयसे न कस्मात्—जिनका धन प्रातः काल तक भी नहीं टिकता, उनके ऊपर तू क्यों नहीं दया करता।

रामस्य दयमान—राम के तू दया करता हुआ।

टिप्पणी (१)—सामान्यतः कर्म में द्वितीया ही होती है, जैसे, स्मरसि गोदावरीम् (उत्तररामचरित)। इस प्रकार त्रपूर्वक भू धातु तथा उससे बने शब्दों के योग में चतुर्थी भी होती है (द्रष्टव्य पृ० २०५, टिप्पणी II)।



(ii) उपर्युक्त वाक्यों में षष्ठी का प्रयोग कर्म कारक को व्यक्त करने के लिए किया गया है। अगले सूत्र में भी कर्ता और कर्म में षष्ठी विभक्ति कही जायगी। यह षष्ठी 'षष्ठी शेषे' सूत्र में 'शेष' अर्थात् सज्ञाओं और सर्वनामों के पारस्परिक सम्बन्ध-सामान्य को प्रकट करने के लिए बताई गई षष्ठी से भिन्न है। इसे कारक-षष्ठी कहते हैं। इस षष्ठी को नियम १०४ का अपवाद समझना चाहिए।

### (ज) कर्तृकर्मणोः कृति ।२।३।६५।

जब कोई क्रिया कृदन्त रूप से प्रकट की जाती है (जैसे जाने की क्रिया "गति" से, याद करने की "स्मृति" से) तो उस क्रिया का जो कर्ता या कर्म होता है, वह कृदन्त शब्द के साथ षष्ठी में रक्खा जाता है, उदाहरणार्थ—

कृष्णस्य कृति —कृष्ण का कार्य।

यहाँ पर करना क्रिया का बोधक 'कृति' शब्द है जो कि कृ धातु में कृत् क्तिन् प्रत्यय जोड़ने से बना है और इसका कर्ता 'कृष्ण' है इसलिए कृत्प्रत्ययान्त 'कृति' शब्द के साथ कर्ता 'कृष्ण' में षष्ठी हुई है। इसी प्रकार—

रामस्य गति —राम की गति (चाल)।

बालकाना रोदनम्—बालकों का रोना।

ऋतूनामाहर्ता—यज्ञों को करने वाला।

वेदस्य अध्येता—वेद का अध्ययन करने वाला।

यहाँ पर "अध्येता" अधि उपसर्ग पूर्वक "इङ्" धातु तथा तृच् प्रत्यय से बना है, इसका कर्म 'वेद' है। इसलिए कृदन्त "अध्येता" शब्द के साथ कर्म 'वेद' में षष्ठी हुई। इसी प्रकार 'ऋतूनाम्' में भी तृजन्त 'आहर्ता' के योग में षष्ठी हुई है।

इसी प्रकार—

विषस्य भोजनम्—विष का खाना।

राक्षसाना घात —राक्षसों का वध।

राज्यस्य प्राप्ति —राज्य की प्राप्ति।

टिप्पणी—'गुणकर्मणि वेध्यते' (वास्तिक)—कृदन्त के गौण कर्म में विकल्प से षष्ठी होती है, जैसे—नेता अश्वस्य स्तुघ्नस्य वा।

### (अ) उभयप्राप्तौ कर्मणि ।२।३।६६।

जहाँ कर्ता और कर्म दोनो आये हो, वहाँ कृदन्त के योग में कर्म में ही षष्ठी होगी, कर्ता में नहीं, जैसे—

आश्चर्यो गवा दोहोऽगोपेन ।

टिप्पणी—स्त्री प्रत्यययोरकाकारयोर्नाय नियम (वार्तिक)—किन्तु जब स्त्रीलिङ्ग कृत् प्रत्यय 'अक' (प्वुच्) या 'अ' हो तो कर्ता में भी षष्ठी होती है, जैसे, 'भेदिका विभित्वा वा रुद्रस्य जगत'—यहाँ भेदन क्रिया के कर्ता 'रुद्र' में भी षष्ठी हुई है। 'शेषे विभाषा' वार्तिक से अन्य स्त्रीलिङ्ग कृत् प्रत्ययों के प्रयोग में कर्ता में विकल्प से षष्ठी होती है, जैसे, 'विचित्रा जगत कृतिर्हेरैरिणा वा'—इस वाक्य में कर्ता 'हरि' में विकल्प से षष्ठी हुई है। किन्तु कुछ लोगों के मतानुसार यह विकल्प स्त्रीलिङ्ग कृत् प्रत्ययों के ही कर्ता के विषय में नहीं अपितु लिङ्गों के कृत् प्रत्ययों के कर्ता के विषय में भी है, जैसे—शब्दानामनुशासनमाचार्येण आचार्यस्य वा, आचार्य के द्वारा शब्दों का उपदेश।

### (अ) न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम् ।२।२।६६।

'कर्तृकर्मणो कृति' सूत्र से सभी कृदन्त प्रत्ययों के योग में कर्ता तथा कर्म में षष्ठी का विधान किया गया था, किन्तु 'नलोकाव्यय'—सूत्र 'कर्तृकर्मणो कृति' के क्षेत्र को छोटा करने वाला है। इसका अर्थ है—

लकार के अर्थ में प्रयोग किये जाने वाले प्रत्ययों में अन्त होने वाले शब्दों के योग में, उ, उक् में होने वाले कृदन्त शब्दों के योग में, कृदन्त अव्यय के योग में, निष्ठा (क्त, क्तवतु) में अन्त होने वाले शब्दों के योग में, खल् तथा खल् के समान अर्थ रखने वाले प्रत्ययों में अन्त होने वाले शब्दों के योग में तथा तृत् प्रत्ययों में अन्त होने वाले शब्दों के योग में षष्ठी नहीं होती।

जो प्रत्यय जिस लकार में प्रयुक्त होता है, वह नीचे दिखाया जाता है—

१ स्त्रीप्रत्यय इत्येके । केचिदविशेषेण विभाषामिच्छन्ति—सि० कौ० ।

२ तृप्तिप्रत्याहार । "शतृशानचाविति तृशब्दादारभ्य आतृनो नकरात्"  
—सि० कौ०

शतृ तथा शानच्—लट् लकार के अर्थ मे ।

क्वसु तथा कानच्—लिट् लकार के अर्थ मे ।

शतृ (स्यत्) तथा शानच् (स्यमान्)—लृट् लकार के अर्थ मे ।

शतृ तथा शानच् 'तृन्' प्रत्याहार के अन्तर्गत भी हैं, इसलिए उनका उदाहरण यहाँ न दिया जाकर उसी जगह पर दिया जायगा, यहाँ पर क्वसु, कानच्, स्यत् स्यमान के उदाहरण दिये जायेंगे—

क्वसु—काशी जग्मिवान् पुरुष स्वर्गं लभते=काशी गया हुआ पुरुष स्वर्ग पाता है ।

कानच्—परोपकार चक्राणा जना ख्यातिं गन्धर्वाति=परोपकार कर चुके हुए लोग विख्यात हो जाते हैं ।

स्यत्—वन्यान् विनेष्यन् इव दुष्टसत्वात्=जङ्गल के दुष्ट जीवों को सिखाता हुआ-सा ।

स्यमान्—अक्षयवट पूजयिष्यमाणा यात्रिण गङ्गातीरे एव स्थास्यन्ति=जो यात्री अक्षयवट की पूजा करना चाहेंगे, वे गङ्गा के तीर ही टिक जायेंगे ।

'उ' तथा 'उक' प्रत्यय के उदाहरण—

उ—हरिं दिदृक्षु =हरि को देखने का इच्छुक ।

उक—दैत्यान् घातुको हारि =हरि दैत्यों के हन्ता हैं ।

कृदन्त अव्यय प्रधानतया ण्मुल्, क्त्वा, ल्यप्, तुमुन् इत्यादि लगाकर बनाये जाते हैं; उनके उदाहरण—

ण्मुल्—स्मारं स्वगृहचरितं दारुभूतो मुरारि =अपने घर का चरित याद कर-कर के मुरारि काष्ठ हो गये ।

क्त्वा—ससारं सृष्ट्वा=ससार को रचकर ।

ल्यप्—सीता परित्यज्य लक्ष्मणोऽयासीत्=सीता को त्याग कर लक्ष्मण जी चले गये ।

तुमुन्—यशोऽधिगन्तुं सुखमीहितुं वा मनुष्यसख्यामतिवर्तितुं वा=यश पाने के लिए या सुख चाहने के लिए या मनुष्यों से बढ़ जाने के लिए ।

क्त तथा क्तवतु 'निष्ठा' कहलाते हैं, उनके उदाहरण—

क्त—विष्णुना हता दैत्या = दैत्य लोग विष्णु से मार डाले गये ।

क्तवतु—दैत्यान् हतवान् विष्णु = विष्णु ने दैत्यो को मार डाला ।

खल्—सुकर प्रपञ्चो हरिणा = हरि ससार-प्रपञ्च आराम से कर डालते हैं ।

तून् प्रत्याहार के अन्तर्गत ये प्रत्यय हैं—शतृ, शानच्, शानन्, चानस्, तून् ।  
इनके उदाहरण ये हैं—

शतृ—बालक पश्यन् = लडके को देखता हुआ ।

शानच्—क्लेश सहमान = दुःख सहता हुआ ।

शानन्—सोम पवमान = सोमरस को आनता (परिष्कृत करता) हुआ ।

चानस्—आत्मान मण्डयमान = अपने को अलकृत करता हुआ ।

तून्—कर्ता कटान् = चटाइयो को बनाने वाला ।

नोट—इन सब प्रत्ययो का व्याख्यान “कृदन्त-विचार” में आगे मिलेगा ।

### (८) क्तस्य च वर्तमाने । २।३।६७।

जब क्तप्रत्ययान्त शब्द (जो कि भूतकाल का बोधक होता है, जैसे—स गत = वह गया) वर्तमान के अर्थ में प्रयुक्त होता है, तो षष्ठी होती है, जैसे—  
अह राज्ञो मतो बुद्ध पूजितो वा—मुझे राजा मानते हैं, जानते हैं अथवा पूजते हैं ।

यहाँ पर मत, बुद्ध तथा पूजित में जो क्त प्रत्यय का प्रयोग किया गया है, वह वर्तमान के अर्थ में है, इस वाक्य की व्याख्या यो होगी—

मम राजा मन्यते, बुध्यते, पूजयति वा ।

विदित तप्यमान च तेन मे भुवनत्रयम् (रघुवश, १०।३६)—मैं जानता हूँ कि उससे तीनों भुवन पीडित होते हैं ।

यहाँ पर भी 'विदित' का क्त प्रत्यय वर्तमान के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । वर्तमानकाल के स्वरूप में लाने पर इस वाक्य का आकार यो होगा—तेन तप्यमान भुवनत्रयम् अह वेधि ।

**टिप्पणी—**( 1 ) यह सूत्र 'न लोकाव्यय०' सूत्र मे निष्ठा प्रत्ययो के योग मे निर्दिष्ट षष्ठी-निषेध का अपवाद है।

( 11 ) 'नपुसके भावे क्त १३।३।११४' सूत्र के अनुसार 'भाव' (क्रिया से सूचित होने वाला कार्य) के अर्थ मे 'क्त' प्रत्यय लगाकर बने हुए नपुसक-लिङ्ग शब्दो के योग मे भी 'कर्तृकर्मणो कृति' के अनुसार षष्ठी ही होती है, जैसे—

मयूरस्य नृत्तम्=मयूर का नर्तन।

छात्रस्य हसितम्=छात्र का हँसना।

**( ठ ) कृत्यानां कर्त्तरि वा १२।३।७१।**

जिन शब्दो के अन्त मे कृत्य प्रत्यय लगे रहते है, उनका प्रयोग होने पर कर्ता मे तृतीया या षष्ठी होती है, जैसे—

गुरु मया पूज्य	}	गुरुजी मेरे पूज्य हैं।
या		
गुरु मम पूज्य		

न वञ्चनीया प्रभवोऽनुजीविमि —भृत्यो को अपने स्वामियो को न ठगना चाहिए।

यहाँ स्पष्ट है कि "अह" तथा "अनुजीविन" जो कि यथार्थ कर्ता हैं, कृत्य-क्रियाओ के साथ तृतीया या षष्ठी मे हो जाते है।

**( ड ) षष्ठी चानादरे २।३।३६।**

जिसका अनादर या तिरस्कार करके कोई कार्य किया जाता है, उसमे षष्ठी वा सप्तमी होती है—जैसे—

पश्यतोऽपि राज्ञः पश्यत्यपि राज्ञि वा द्विगुणमपहरन्ति घूर्ता—राजा के देखते रहने पर भी घूर्त लोग दुगुना चुरा लेते है।

रुदत पुत्रस्य रुदति पुत्रे वा वन प्राव्राजीत्—रोते हुए पुत्र का तिरस्कार करके वह सन्यासी हो गया।

निवारयतोऽपि पितु निवारत्यपि पितरि वा अघ्ययन परित्यक्तवान्—पिता के मना करने पर भी उनका तिरस्कार करके उसने अघ्ययन त्याग दिया।

१ कृत्य प्रत्यय ये हैं—तव्यत्, तव्य, अनीयर्, यत्, ण्यत् क्यप् और केलिमर्।

दवदहनजटालज्वालजालाहतानाम्,

परिगलितलताना म्लायता भूरुहाणाम् ।

अयि जलघर ! शैलश्रेणिशृङ्गेषु तोय

वितरति बहु कोऽय श्रीमदस्तावकीन ॥

(एँ बादल ! तेरा वह कैसा भारी गर्व है कि जगल की आग की ज्वालाओं से मस्म होते हुए, गलित लताओं वाले, मुरझाते हुए वृक्षों का अनादर करके तू पर्वतों के शिखरों पर तमाम पानी देता है।)

यहाँ पर 'वृक्षो' का अनादर किया गया है, इसीलिए 'भूरुहाणाम्' में षष्ठी हुई है।

(ठ) जासिनिप्रहणनाटक्रथपिषाहिसायाम् ।२।३।५६।

हिसार्थक-जस् (णिजन्त), नि तथा प्र पूर्वक हन्, क्रथ (णिजन्त), नट (णिजन्त) तथा पिष्-घातुओं के कर्म में षष्ठी विभक्ति होती है, जैसे—

निजौजसोज्जासयितु जगद्द्रुहम् (माघ० १-३७),—जगत् के द्रोहियों को अपने तेज (बल) से मारने के लिए।

चौरस्य निहन्तु, प्रहन्तु अणिहन्तु वा—चोर को मारने के लिए।

अपराधिन नाटयितु काथयितु वा—अपराधियों का बध करने के लिए।

क्रमेण पेष्टु भुवनद्विषामपि (माघ० १-४०)—क्रमश लोक-द्रोहियों का विनाश करने के लिए।

(ण) व्यहृणोः समर्थयोः ।२।३।५७।

समान अर्थ वाली व्यय (वि+अव) पूर्वक ह् घातुओं के कर्म में षष्ठी विभक्ति होती है (जुआ तथा क्रय-विक्रय-व्यवहार अर्थ में ये घातुयें समानार्थक होती हैं), जैसे—

शतस्य व्यवहारण वा—सौ का व्यवहार या जुआ।

टिप्पणी—परन्तु इसी अर्थ में द्वितीया का भी प्रायेण प्रयोग दीख पड़ता है, जैसे—

पणस्य कृष्णां पाञ्चालीम् (महाभारत)—पञ्चालराज की कन्या द्रौपदी को दाँव पर रख दो।

## (त) दिवस्तदर्थस्य ।२।३।५८।

‘उसी’ अर्थात् द्यूत एव क्रयविक्रय-व्यवहार अर्थ में दिव् घातु के कर्म में भी षष्ठी विभक्ति होती है, जैसे—

शतस्य दीव्यति—सौ का जुआ खेलता है।

परन्तु दिव् उपर्युक्त-अर्थ न होने पर कर्म में द्वितीया ही होती है, जैसे—  
ब्राह्मण दीव्यति—ब्राह्मण की स्तुति करता है।

## (थ) चतुर्थी चाशिष्यायुष्यमद्रमद्रकुशलसुखार्थहितैः ।२।३।३७।

आशीर्वाद अभिप्रेत होने पर आयुष्य, मद्र, मद्र, कुशल, सुख, अर्थ, हित तथा इनके अर्थ वाले अन्य शब्दों के योग में चतुर्थी या षष्ठी होती है, जैसे—

आयुष्य चिरजीवित वा कृष्णाय कृष्णस्य वा स्यात्—कृष्ण चिरञ्जीवी हो।

वत्साय वत्सस्य वा मद्र, मद्र, कुशल, निरामय, सुख, श, हित, पथ्य वा स्यात्—पुत्र सुखी हो।

द्विष्णी—‘हितयोगे च’ वार्तिक में हित के योग में चतुर्थी ही बताई गई है, षष्ठी नहीं। आशीर्वाद अभिप्रेत न होने पर केवल चतुर्थी होगी—वार्तिक का यह अभिप्राय समझना चाहिए, जैसा कि उपर्युक्त सूत्र के व्याख्यान में तत्त्व-बोधिनीकार ने स्पष्ट किया है—“हितयोगे च” इत्यनाशिषि चरितार्थमित्या-शिष्यय विकल्पः।

(द) अनुकरण करने या सदृश होने के अर्थ में अनु-पूर्वक कृ घातु के कर्म में षष्ठी भी होती है, जैसे—

ततोऽनुकुर्यात्तस्या स्मितस्य (कुमार० १-४४)—तब शायद उसके स्मित (मुस्कान) की समता कर सके।

श्यामतया भगवतो हरेरिवानुकुर्वतीम् (कादम्बरी)—अपनी श्यामता द्वारा भगवान् विष्णु की समता करती हुई।

द्वितीया जैसे—

सर्वाभिरन्याभि कलाभिरनुचकार त वैशम्पायन. (कादम्बरी)—  
वैशम्पायन भी सभी कलाओं में उस (चन्द्रापीड) के समान हो गया।

(घ) अनुसूय, योग्य, सदृश तथा इसी अर्थ वाले अन्य शब्दों के योग में सप्तमी के अतिरिक्त षष्ठी भी प्रायः प्रयुक्त होती है, जैसे—

सखे पुण्डरीक ! नैतदनुरूप भवत (कादम्बरी)—मित्र पुण्डरीक ! यह आपको उचित नहीं।

सदृशमेवैतत्स्नेहस्यानवलेपस्य (शकुन्तला)—यह अभिमान-विहीन प्रेम के सर्वथा उचित ही है।

(न) कृते, मध्ये, समक्ष आदि के योग में भी षष्ठी विभक्ति प्रयुक्त होती है, जैसे—

एषा मध्ये केचिदेव विद्यार्थिन अपरे तु धनार्थिन एव—इनमें कुछ ही विद्या प्राप्त करना चाहते हैं, अन्य लोग तो धन ही चाहते हैं।

अमीषा प्राणाना कृते (भर्तृहरि का वैयाकरण)—इन प्राणों के लिए।

राज समक्षमेव—महाराज के समक्ष ही।

(प) अशाशिभाव या अवयवलयविभाव होने पर अशी या अवयवी में षष्ठी विभक्ति होती है, जैसे—

जलस्य बिन्दु—जल का बुँद।

अयुत शरदा ययौ (रघु० १०-१)—दस सहस्र वर्ष बीत गये।

रात्रे पूर्वम्—रात्रि का प्रथम भाग।

दिनस्य उत्तरम्—दिन का उत्तरवर्ती भाग।

(फ) प्रिय, वल्लभ तथा इसी अर्थ में प्रयुक्त होने वाले अन्य शब्दों के योग में षष्ठी हास है, जैसे—

प्रकृत्यैः प्रिया सीता रामस्यासीत् (उत्तररामचरित, ६)—सीता स्वभावतः राम को प्रिय थी।

काय कस्य न वल्लभ—शरीर किसे प्रिय नहीं होता ?

(ब) विशेष, अन्तर इत्यादि शब्दों के प्रयोग में, जिनमें विशेष या अन्तर दिखाया जाता है, वे षष्ठी में होती हैं, जैसे—

एतावानेवायुष्मत शतक्रतोश्च विशेष (शकु०)—आयुष्मान् (आप) और इन्द्र में इतना ही अन्तर है।

भवतो मम च समुद्रपल्लवलयोरिवान्तरम्—श्रीमान् और मुझ में समुद्र और सरोवर का सा अन्तर है।



(म) जब किसी कार्य या घटना के हुए कुछ काल बीता हुआ बताया जाता है, तो बीती हुई घटना के वाचक शब्द षष्ठी में प्रयुक्त होते हैं। जैसे—

अद्य दशमो मासस्तातस्योपरतस्य (मुद्रा०, अ० ६)—पिता को मरे हुए आज दश महीने हो रहे हैं।

कतिपये सवत्सरास्तस्य तपस्तप्यमानस्य (उत्तररामचरित, ४)—तप करते हुए उन्हें कई वर्ष हो गये हैं।

DR. RUPNATHJI (DR. RUPAK NATH)

## सप्तम सोपान

### १०६—समास-विचार

(क) छठे सोपान में विभक्तियों का प्रयोग बताया गया है। किन्तु कही-कही शब्दों की विभक्तियों का लोप करके शब्द छोटे कर लिये जाते हैं। यह तब सम्भव होता है, जब दो से अधिक शब्द एक साथ जोड़ दिये जाते हैं। इस साथ में जोड़ने को ही 'समास' कहते हैं।

'समास' शब्द 'सम्' (भली प्रकार) उपसर्ग लगा कर अस् (फेंकना) धातु से बना है और इसका प्रायः वही अर्थ है जो 'संक्षेप' शब्द का, अर्थात् दो या अधिक शब्दों को इस प्रकार साथ रख देना कि उनके आकार में कुछ कमी भी हो जाये और अर्थ भी पूर्ण विदित हो, जैसे—

समाया पति = समापति ।

यहाँ 'समापति' का वही अर्थ है जो 'समाया पति' का, किन्तु दोनों को साथ कर देने से "समाया" शब्द के विभक्तिसूचक प्रत्यय (—या) का लोप हो गया और इस कारण शब्द 'समापति' 'समाया पति' से छोटा हो गया।

जैसे दो शब्दों को जोड़ कर समास करते हैं, वैसे दो या अधिक समास (समस्त शब्द) भी जोड़े जा सकते हैं, जैसे—

राज्ञः पुरुषः—राजपुरुष, धनस्य वार्ता=धनवार्ता, इस प्रकार दो समस्त शब्द हुए। यदि ये दोनों जोड़ दिये जायें तो राजपुरुषस्य धनवार्ता="राज-पुरुषधनवार्ता"—यह एक समस्त पद बना। इस प्रकार कितने ही शब्दों को जोड़कर लम्बे-लम्बे समास बनाये जा सकते हैं। सस्कृत-साहित्य में किसी-किसी ग्रन्थ में ऐसे-ऐसे समास हैं जो कई पक्तियों के हैं। इनका अर्थ निकालना कठिन हो जाता है और ग्रन्थ जटिल हो जाता है।

(ख) किसी समस्त शब्द को तोड़ कर उसका पूर्वकाल का रूप दे देना "विग्रह" कहलाता है। विग्रह का अर्थ है—टुकड़े-टुकड़े करना, समस्त शब्द

के टुकड़े करके ही पूर्व रूप दिखाया जा सकता है, इसलिए वह विग्रह है। उदाहरणार्थ 'घनवात' का विग्रह 'घनस्य वात' हुआ।

किन शब्दों को कैसे और किन के साथ जोड़ सकते हैं, इसके सूक्ष्म से भी सूक्ष्म नियम संस्कृतव्याकरणकारों ने नियत कर रखे हैं। ऐसा नहीं है कि जिस शब्द को जब चाहा तब दूसरे के साथ जोड़ दिया।

उदाहरणार्थ—

'रघुवश का लेखक कालिदास प्रसिद्ध कवि था' इस वाक्य का अनुवाद हुआ 'रघुवशस्य लेखक कालिदास प्रसिद्ध कवि आसीत्'। इसे संस्कृत वाक्य में यदि समास करें तो इस प्रकार होगा 'रघुवशलेखककालिदास प्रसिद्धकविः आसीत्'। "कवि" और "आसीत्" में समास नहीं हुआ, "कालिदास" और "प्रसिद्ध" में नहीं हुआ।

कब किन दशांशों में समास हो सकता है, इसके मुख्य-मुख्य नियम इस सोपान में दिये जाएंगे।

१०७ (क)—समास के मुख्य चार भेद हैं—

- (१) अव्ययीभाव ।
- (२) तत्पुरुष ।
- (३) द्वन्द्व और
- (४) बहुव्रीहि ।

तत्पुरुष के अन्तर्गत दो प्रसिद्ध समास और हैं—(१) कर्मधारय और (२) द्विगु, इसलिए कभी-कभी समास के छ भेद पाये जाते हैं। इन छ भेदों के नाम इस श्लोक में आते हैं —

द्वन्द्वौ द्विगुरपि चाह मद्गेहे नित्यमव्ययीभाव ।  
तत्पुरुष कर्मधारय येनाहं स्याम्बहुव्रीहि ॥

(ख) समास के चार भेद समास में आये हुए दोनों शब्दों की प्रधानता अथवा अप्रधानता पर किये गये हैं।

अव्ययीभाव समास में समास का प्रथम शब्द प्रायः प्रधान रहता है, तत्पुरुष में प्रायः दूसरा, द्वन्द्व में प्रायः दोनों प्रधान रहते हैं और बहुव्रीहि में दोनों में से

एक भी प्रधान नहीं रहता, दोनों मिल कर एक तीसरे शब्द के ही विशेषण होते हैं।

### १०८—अव्ययीभाव समास

(क) 'अव्ययीभाव' शब्द का यौगिक अर्थ है—जो अव्यय नहीं था, उसका अव्यय हो जाना। यह अर्थ ही इस समास की एक प्रकार से कुजी है। अव्ययीभाव समास में प्रायः दो पद रहते हैं—इनमें से प्रथम प्रायः अव्यय रहता है और दूसरा सज्ञा शब्द। दोनों मिलकर अव्यय हो जाते हैं। किसी अव्ययीभाव शब्द के रूप नहीं चलते। अन्तिम शब्द को 'नपुसकलिङ्ग' के एकवचन में जैसा रूप होता है, वही रूप अव्ययीभाव समास का हो जाता है और वही नित्य रहता है। जैसे—

यथाकामम्=काममनतिक्रम्य इति यथाकामम् (इच्छानुसार)।

“यथाकामम्” में दो शब्द आये (१) यथा और (२) काम, इनमें 'यथा' शब्द प्रधान है, दोनों मिल कर एक अव्यय हुए (यथाकाम के रूप नहीं चलेंगे) और अन्तिम शब्द 'काम' ने पुल्लिङ्ग होते हुए भी, वह रूप धारण किया जो वह तब धारण करता जब नपुसकलिङ्ग के एकवचन में होता। इसी प्रकार 'यथा-शक्ति' (शक्तिमनतिक्रम्य इति), 'अन्तर्गिरि' (गिरिषु इति), उपगङ्गम् (गङ्गाया समीपे), प्रत्यहम् (अह अह)।

(ख) अव्ययीभाव समास बनाते समय इन नियमों को ध्यान में रखना चाहिए।

(१) दूसरे शब्द का अन्तिम वर्ण दीर्घ रहे तो ह्रस्व कर दिया जाता है। यदि अन्त में “ए” अथवा “ऐ” हो तो उसके स्थान में “इ” और यदि “ओ” अथवा “औ” हो तो उसके स्थान में “उ” हो जाता है, जैसे—

उप+गङ्गा (गङ्गाया समीपे)=उपगङ्ग (और इसको नपु० एकवचन में नित्य रखते हैं, इसलिए)=उपगङ्गम्।

१ अव्ययीभावश्च ।२।४।१८।—इस सूत्र के अनुसार अव्ययीभाव नपुसकलिङ्ग में होता है।

२ ह्रस्वो नपुसके प्रातिपदिकस्य ।१।२।४७।

उप+नदी (नद्या समीपे)=उपनदि ।

उप+वधू (वध्वा समीपे)=उपवधु ।

उप+गो (गो समीपे)=उपगु ।

उप+नौ (नाव समीपे)=उपनु ।

(२) अन्' मे अन्त होने वाली सज्ञाओं मे समासान्त टच् प्रत्यय (पुल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग मे नित्य ही और नपुसकलिङ्ग' मे विकल्प से) जुड़ने से 'अन्' का लोप हो जाता है और टच् का 'अ' जुड़ जाता है, जैसे—

उप+राजन् (राज्ञ समीपे)+टच्=उपराज=उपराजम्, इसी प्रकार अध्यात्मन् ।

उप+सीमन् (सीमन् समीपे)+टच्=उपसीम=उपसीमम् ।

(नपु०) उप+चर्मन् (चर्मण समीपे)+टच्=उपचर्म अथवा उपचर्मम् (उपचर्मम् यदि अन् निकाल दिया जाय, अर्थात् उपचर्म यदि 'अन्' न निकाला जाय तो) ।

(३) यदि अव्ययीभाव समास के अन्त मे झय्य' प्रत्याहार का कोई वर्ण आवे, तो विकल्प से समासान्त टच् प्रत्यय जुड़ता है, जैसे—

उप+समिध्+टच्=उपसमिधम्, टच् के अभाव मे, उपसमित् ।

उप+सरित् (सरित् समीपे)+टच्=उपसरितम्, टच् के अभाव में, उपसरित् ।

१ अनश्च १५।४।१०८।—अर्थात् अन्नन्त अव्ययीभाव समास मे टच् (तद्धित) प्रत्यय समाता है। 'नस्तद्धिते' १६।४।१४४। के अनुसार 'टि' अर्थात् 'अन्' का लोप होगा और फिर टच् का अ आगे जुड़ जायगा ।

२ नपुसकान्तव्यतरस्याम् १५।४।१०९।—अन्नन्त नपुसकलिङ्ग शब्द अव्ययीभाव समास के अन्त मे आवे तो विकल्प से टच् प्रत्यय लगेगा । टच् लगने पर 'नस्तद्धिते' के अनुसार प्रथम तो अन् का लोप हो जायगा । फिर टच् का अ जुड़ने पर नपुसकलिङ्ग मे 'उपचर्मम्' बनेगा । टच् न लगने पर उपचर्मन् बन कर और 'नलोप प्रातिपदिकान्तस्य' से 'न' का लोप होकर 'उपचर्म' बनेगा ।

३ झय १५।४।१११।

(४) शरद्<sup>१</sup>, विपाश्, अनस्, मनस्, उपानह, अनडुह, दिव्, हिमवत्, दिश्, दृश्, विश्, चेतस्, चतुर्, तद्, यद्, कियत्, जरस्—इनमें अकार अवश्य जोड़ दिया जाता है, जैसे—

उपशरदम्, अधिमानसम्, उपदिशम् ।

(५) नदी<sup>२</sup>, पौर्णमासी तथा आग्रहायणी शब्दों के अव्ययीभाव समास के अन्त में आने पर विकल्प से टच् प्रत्यय लगता है। इस प्रकार के शब्दों के साथ अव्ययीभाव समास बनने पर दो-दो रूप सिद्ध होंगे। उप+नदी=उपनदि, उपनदम् । उप+पौर्णमासी=उपपौर्णमासि, उपपौर्णमासम् । उप+आग्रहायणी=उपाग्रहायणि, उपाग्रहायणम् ।

गिरि<sup>३</sup> शब्द के भी अव्ययीभाव के अन्त में आने पर विकल्प से टच् लगता है। इस प्रकार, उप+गिरि=उपगिरि, उपगिरिम् ।

(ग) अव्ययीभाव<sup>४</sup> में जो अव्यय आते हैं उनके प्राय ये अर्थ होते हैं :-

(१) किसी विभक्ति का अर्थ, यथा—अधि+हरि (हरौ इति)=अधिहरि (हरि के विषय में) ।

(२) समीप का अर्थ, यथा—उप+गङ्गा अर्थात् (गङ्गाया समीपमिति)=उपगङ्गम् (गङ्गा के समीप) ।

(३) समृद्धि का अर्थ, यथा—सु+मद्र (मद्राणा समृद्धि)=सुमद्रम् (मद्र देश की समृद्धि) ।

(४) व्यृद्धि (नाश, दरिद्रता) का अर्थ, यथा—दुर्+यवन (यवनाना व्यृद्धि)=दुर्यवनम् ।

१ अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्य १५।४।१०७। जरायाजरश्च (वार्तिक)  
—अव्ययीभाव समास के अन्त में आने पर शरद् इत्यादि शब्द 'टच्' प्रत्यय जुड़ने से अवश्य ही अकारान्त हो जाता है।

२ नदीपौर्णमास्याग्रहायणीभ्य १५।४।११०।

३ गिरेश्च सेनकस्य १४।५।११२।

४ अव्यय विभक्तिसमीपसमृद्धिवृद्धयर्थाभावात्ययासम्प्रतिशब्दप्रादुर्भावपश्चा-  
च्छाऽऽनुपूर्व्ययोगपक्षसादृश्यसम्प्रतिसाकल्यान्तवचनेषु १२।१।६।

- (५) अभाव, यथा—निर्+मशक (मशकानामभाव) = निर्मशकम् (मच्छरो से विमुक्त) ।
- (६) अत्यन्त (नाश), यथा—अति+हिम (हिमस्यात्यय) = अतिहिमम् (जाड़े की समाप्ति) ।
- (७) असम्प्रति (अनौचित्य), यथा—अति+निद्रा (निद्रा सम्प्रति न युज्यते)—अतिनिद्रम् (निद्रा के अनुपयुक्त काल में) ।
- (८) शब्द-प्रादुर्भाव (शब्द का प्रकाश), यथा—इति+हरि (हरि-शब्दस्य प्रकाश) = इतिहरि (हरि शब्द का उच्चारण) ।
- (९) पश्चात्, यथा—अनु+विष्णु (विष्णु पश्चात्) = अनुविष्णु (विष्णु के पीछे) ।
- (१०) 'यथा' का भाव (योग्यता), यथा—अनु+रूप (रूपस्य योग्यम्) = अनुरूपम् (योग्य या उचित) ।
- ,, (वीप्सा), यथा—प्रति+अर्थ (अर्थमर्थं प्रति) = प्रत्यर्थम् (प्रत्येक अर्थ में) ।
- ,, (अनितक्रम), यथा—यथा+शक्ति (शक्तिमनतिक्रम्य) = यथाशक्ति (शक्ति के अनुसार) ।
- ,, (सादृश्य), यथा—सह+हरि (हरे सादृश्यम्) = सहरि (हरि के सदृश्य) ।
- (११) आनुपूर्व्य (अर्थात् क्रम), यथा—अनु+ज्येष्ठ (ज्येष्ठस्यानु-पूर्व्यम्) = अनुज्येष्ठम् (ज्येष्ठ के अनुसार) ।
- (१२) यौगपद्य (एक साथ होना), यथा—सह+चक्र (चक्रेण युगपत्) = सचक्रम् अर्थात् चक्र के साथ ही (अव्ययीभाव समास में काल से भिन्न अर्थ में सह का 'स' हो जाता है) ।
- (१३) सादृश्य का उदाहरण ऊपर (१०) के अन्तर्गत आ चुका है ।

१ योश्चतावीप्सापदार्थानतिवृत्तिसादृश्यानि यथार्था ( भट्टोजिहृत वृत्ति से )

२ अव्ययीभावे चाकाले ।६।३।८१।

(१४) सम्पत्ति (योग्यतानुसार सम्पत्ति को 'सम्पत्ति' कहते हैं, योग्यता से अधिक किसी देवता आदि के प्रसाद से प्राप्त हो तो उसे 'समृद्धि' या ऋद्धि कहते हैं। इसी कारण ऊपर 'समृद्धि' के आ चुकने पर भी यहाँ 'सम्पत्ति' शब्द आया), यथा—स+क्षत्र ('क्षत्राणां सम्पत्ति')=सक्षत्रम् ।

(१५) साकल्य (सब को शामिल कर लेना), यथा—सह+तृणम् (तृणमपि अपरित्यज्य)=सतृणम् (सब कुछ) ।

(१६) अन्त ('तक' के अर्थ में), यथा—सह+अग्नि (अग्निग्रन्थपर्यन्तम्)=साग्नि (अग्निकाण्डपर्यन्तम्) ।

काल' से अतिरिक्त अर्थ में अव्ययीभाव समास में 'सह' का स हो जाता है। कालवाचक शब्द के साथ समास किये जाने पर 'सह' ही रहता है, यथा—सह+पूर्वाह्न=सहपूर्वाह्नम् होगा ।

अवधारण' अर्थ में 'यावद्' के साथ भी अव्ययीभाव समास बनता है; जैसे 'यावन्त दलोकास्तावन्तोऽभ्युत्पणामा'—इस अर्थ में यावच्छ्लोकम् समासपद बनेगा ।

मर्यादा<sup>१</sup> और अभिविधि के अर्थ में आङ् के साथ विकल्प से अव्ययीभाव समास बनते हैं। समास न करने पर पञ्चमी विभक्ति करनी पड़ती है, जैसे आ मुक्ते इति आमुक्ति अर्थात् मुक्ति-पर्यन्त । 'आमुक्ति (आ मुक्तेर्वा) ससार । इसी प्रकार अभिविधि में 'आबालम् (आ बालेभ्यो वा) हरिभक्ति' ।

अभिमुख्यद्योतक<sup>२</sup> "अभि" और "प्रति" लक्षण अर्थात् चिह्नवाची पद के साथ अव्ययीभाव समास बनाते हैं, जैसे—अग्निमभि इति अग्न्यग्नि, अग्नि प्रति इति प्रत्यग्नि । अग्न्यग्नि प्रत्यग्नि (अग्नि की ओर) शलभा पतन्ति ।

१ द्रष्टव्य पिछले पृष्ठ का नोट न० २ ।

२ यावदवधारणे ।२।१।१८।

३ आङ् मर्यादाभिविध्यो ।२।१।१३।

४ सक्षणेनाभिप्रती अभिमुख्ये ।२।१।१४।



जिस<sup>१</sup> पदार्थ से किसी का सामीप्य दिखाया जाता है, उस लक्षणभूत पदार्थ के साथ सामीप्यसूचक “अनु” अव्ययीभाव बनता है, जैसे अनुवनमशनर्गत् (वनस्य समीपमित्यर्थ) ।

“पारे”<sup>२</sup> और “मध्ये” (सप्तम्यन्त) शब्द षष्ठ्यन्त पद के साथ अव्ययीभाव समास बनाते हैं, और विकल्प से षष्ठी तत्पुरुष भी, जैसे गङ्गाया पारे इति पारेगङ्गम् गङ्गापारे। इसी प्रकार मध्येगङ्गम् या गङ्गामध्ये।

### १०६—तत्पुरुष समास

(क) तत्पुरुष उस समास को कहते हैं, जिसमें प्रथम शब्द द्वितीय शब्द की विशेषता बताये।

चूँकि तत्पुरुष का प्रथमपद वैशिष्ट्यबोधक होता है अथवा विशेषण का कार्य करता है और उत्तर पद विशेष होता है, और चूँकि विशेष्य प्रधान होता है, इसीलिए तत्पुरुष को प्रायेण, ‘उत्तरपदार्थप्रधानस्तत्पुरुषः’—ऐसी व्याख्या की गई है।

जैसे—राज्ञ पुरुष = राजपुरुष—इहाँ “राज्ञ” एक प्रकार से “पुरुष” का विशेषण है, अथवा कृष्ण सर्प = कृष्णसर्प—“कृष्ण” शब्द “सर्प” शब्द का विशेषण है। (किन्तु नित्य-समास वाले कृष्णसर्प का विग्रह नहीं होगा)।

(ख) तत्पुरुष शब्द के दो अर्थ हो सकते हैं—(१) तस्य पुरुष = तत्पुरुष (२) स पुरुष = तत्पुरुष। इन दो अर्थों के अनुसार ही तत्पुरुष समास के दो मुख्य भेद हैं। (१) अधिकरण अर्थात् जिसमें समास का प्रथम शब्द किसी दूसरी विभक्ति में हो। (२) समानाधिकरण अर्थात् जिसमें प्रथम शब्द की विभक्ति और दूसरे शब्द की विभक्ति एक ही हो। ऊपर के उदाहरणों में “राजपुरुष” अधिकरण तत्पुरुष का उदाहरण है और “कृष्णसर्प” समानाधिकरण का।

### ११०—व्यधिकरणतत्पुरुष समास

व्यधिकरण तत्पुरुष समास के छ भेद होते हैं—

(१) द्वितीया तत्पुरुष।

(२) तृतीया तत्पुरुष।

१ अनुर्यत्समया ।२।१।१५।

२ पारे मध्ये षष्ठ्या वा ।२।१।१८।

- (३) चतुर्थी तत्पुरुष ।  
 (४) पञ्चमी तत्पुरुष ।  
 (५) षष्ठी तत्पुरुष ।  
 (६) सप्तमी तत्पुरुष ।

यदि समास का प्रथम शब्द द्वितीया विभक्ति में रहा हो, तो वह “द्वितीया तत्पुरुष” होगा। इसी प्रकार जिस विभक्ति में प्रथम शब्द रहेगा, उसी के नाम पर इस समास का नाम होगा।

सात विभक्तियों में केवल प्रथमा विभक्ति ही नहीं है। यदि प्रथम शब्द प्रथमा विभक्ति में रहे तो व्यधिकरण तत्पुरुष हो ही नहीं सकता, समानाधिकरण हो जायगा। इस कारण ये छह ही भेद व्यधिकरण के होते हैं।

(क) द्वितीया तत्पुरुष—यह समास षोडशे से ही शब्दों में होता है। मुख्य ये हैं—

(१) द्वितीया<sup>१</sup> जब श्रित, श्रिता, पतित, गत, अत्यन्त, प्राप्त, आपन्न शब्दों के संयोग में आती है, तब द्वितीया तत्पुरुष समास होता है,

यथा—

- कृष्ण श्रित = कृष्णाश्रित (कृष्ण पर आश्रित हुआ) ।  
 दुःखमतीत = दुःखातीत (दुःख के पार गया हुआ) ।  
 अग्नि पतित = अग्निपतित (अग्नि में गिरा हुआ) ।  
 प्रलय गत = प्रलयगत (विनाश को प्राप्त) ।  
 मेघम अत्यस्त = मेघात्यस्त (मेघ के पार पहुँचा हुआ) ।  
 जीवन प्राप्त = जीवनप्राप्त (जीवन पाया हुआ) ।  
 कष्टम् आपन्न = कष्टापन्न (कष्ट पाया हुआ) इत्यादि ।

आपन्न<sup>२</sup> और प्राप्त शब्द द्वितीयान्त के साथ समास बनाने पर प्रथम भी प्रयुक्त होते हैं जैसे प्राप्तजीवन और आपन्नकष्ट ।

१ द्वितीयाश्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नै १२।१।२४।

२ प्राप्तापन्ने च द्वितीयया १२।२।४।

गमी' आदि शब्दों के साथ भी द्वितीया तत्पुरुष होता है, जैसे, ग्राम गमी इति ग्रामगमी । अन्न बुभुक्षु इति अन्नबुभुक्षु (अन्न का मूखा) ।

कालवाची<sup>३</sup> द्वितीयान्त शब्द क्तान्त कृदन्त शब्दों के साथ द्वितीया तत्पुरुष समास बनाते हैं। जैसे मास प्रमित (परिच्छेत्तुमारब्धवानित्यर्थ) इति 'मास-प्रमित' प्रतिपच्चन्द्र ।

अत्यन्त सयोग<sup>४</sup> या सातत्य व्यक्त करने वाले कालवाची द्वितीयान्तशब्द भी द्वितीया तत्पुरुष समास बनाते हैं, जैसे, मुहूर्तम् सुखमिति मुहूर्तसुखम् । इसी प्रकार मुहूर्तव्यापि, क्षणस्थायि इत्यादि ।

टिप्पणी—इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि पहिला नियम केवल कालवाचक शब्दों के विषय में है और दूसरा अत्यन्तसयोग प्रकट करने वाले कृदन्तों के साथ द्वितीया तत्पुरुष बनाते हैं, परन्तु दूसरे में उत्तरपद क्तान्त नहीं होता ।

(ख) तृतीया तत्पुरुष—जब तत्पुरुष समास का प्रथम शब्द तृतीया विभक्ति में हो तब उसे तृतीया तत्पुरुष कहते हैं । यह समास अधिकतर इन दशाओं में होता है—

(१) जब तृतीयान्त कर्त्ता या करण कारक हो और साथ वाला शब्द कृदन्त हो, यथा—

हरिणा व्रत = हरिव्रात (इस उदाहरण में "हरिणा" तृतीयान्त है और कर्त्ता है, और "व्रात" कृदन्त है जो "क्त" प्रत्यय से बना है) ।

नखैर्मिन्न = नखमिन्न (यहाँ "नखै" तृतीयान्त है और करण है और "मिन्न" कृदन्त है जो 'मिद्' धातु से क्त प्रत्यय जोड़कर बना है) ।

१ गम्यादीनामुपसख्यानम् ।

२ काला ।२।१।२८।

३ अत्यन्तसयोगे च ।२।१।२९।

४ कर्तृकरणे कृता बहुलम् ।२।१।३२।

जब<sup>१</sup> तृतीयान्त शब्द के साथ पूर्व, सदृश, सम शब्दों में से कोई आके अथवा ऊन (कम), कलह (लड़ाई), निपुण (चतुर), मिश्र (मिला हुआ), श्लक्ष्ण (चिकना) शब्दों में से अथवा इनके समान अर्थ रखने वालों में से कोई शब्द आवे, यथा—

मासेन पूर्व = मासपूर्व, मात्रा सदृश = मातृसदृश, पित्रा सम = पितृसम, धान्येन ऊनम् = धान्येनोत्तमम्, धान्येन विकलम् = धान्यविकलम्, वाचा कलह = वाक्कलह, वाचा युद्ध = वाग्युद्ध, आचारेण निपुण = आचारनिपुण, आचारेण कुशल = आचारकुशल, गुडेन मिश्र = गुडमिश्रम्, गुडेन युक्तम् = गुडयुक्तम्, घर्षणेन श्लक्ष्णम् = घर्षणश्लक्ष्णम्, कुट्टनेन श्लक्ष्णम् = कुट्टनश्लक्ष्णम् अर्थात् कूटने से चिकना ।

अवर<sup>२</sup> शब्द की भी गणना इन्हीं शब्दों के साथ करनी चाहिए । अर्थात् अवर के साथ भी तृतीया तत्पुरुष समास बनेगा, जैसे मासेन अवर = मासावर, अर्थात् एक माह छोटा ।

सस्कार<sup>३</sup> करने वाले द्रव्य का वाचक तृतीयान्त शब्द अन्न-वाचक शब्द के साथ तृतीया तत्पुरुष समास बनाता है, जैसे दध्ना ओदन इति दध्योदन ।

(घ) चतुर्थी तत्पुरुष—जब तत्पुरुष समास का शब्द चतुर्थी विभक्ति में रहे, तब उसे चतुर्थी तत्पुरुष कहते हैं । मुख्यतया यह तब होता है, जब कोई वस्तु (जो किसी से बनी हो या बनती हो) चतुर्थी में आवे और जिससे वह बनी हो वह उसके अन्तर आवे, जैसे—

यूपाय दारु = यूपदारु, कुम्भाय मृत्तिका = कुम्भमृत्तिका ।

चतुर्थ्यन्त शब्द तदर्थ, बलि, हित, सुख तथा रक्षित के साथ भी चतुर्थी तत्पुरुष बनाते हैं, जैसे, द्विजाय अयमिति द्विजार्थ । भूतेभ्यो बलि इति भूत-बलि । ब्राह्मणाय हितम् इति ब्राह्मणहितम् । इसी प्रकार गोहितम्, गोसुखम्, गोरक्षितम् इत्यादि ।

१ पूर्वसदृशसमानार्थकलहनिपुणमिश्रश्लक्ष्णै । २।१।३१।

२ अवरस्योपसख्यानम् (वार्त्तिक) ।

३ अन्नेन व्यञ्जनम् । २।१।३४।

४ चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितै । २।१।३६।

**नोट**—अर्थ<sup>१</sup> शब्द के साथ जो समास बनते हैं, वे वस्तुतः चतुर्थी तत्पुरुष होते हुए भी नित्य समास कहाते हैं, क्योंकि उनका अपने पदों से विग्रह ही नहीं सकता। उन समस्त पदों के लिङ्ग विशेष्य के अनुसार होते हैं।

(च) पञ्चमी तत्पुरुष—जब तत्पुरुष समास का प्रथम शब्द पञ्चमी विभक्ति में आवे, तब उस तत्पुरुष समास को पञ्चमी तत्पुरुष कहते हैं।

मुख्यरूप<sup>२</sup> से यह समास तब होता है, जब पञ्चम्यन्त शब्द 'भय, भीति और मी' के साथ आवे, जैसे—

चौराद् भय = चौरभय, स्तेनाद् भीत = स्तेनभीत, वृकाद् भीति = वृकभीति, अयशस भी = अयशोमी, इत्यादि।

(छ) स्तोक्,<sup>३</sup> अन्तिक, दूर तथा इनके वाचक अन्य शब्द एव कृच्छ्र, शब्द पञ्चम्यन्त के साथ समास बनाते हैं परन्तु पञ्चमी का लोप नहीं होता, जैसे—

स्तोकात् मुक्त = स्तोकान्मुक्त,

अन्तिकात् आगत = अन्तिकादागत

दूरात् आगत = दूरादागत,

कृच्छ्रात् आगत = कृच्छ्रादागत,

(ज) षष्ठी तत्पुरुष समास उसे कहते हैं जिसमें प्रथम शब्द षष्ठी विभक्ति में हो। यह समास प्रायः सभी षष्ठ्यन्त शब्दों के साथ होता है। जैसे—राज्ञः पुरुष = राजपुरुष।

इसके कुछ अपवाद हैं, उनमें से मुख्य-मुख्य यहाँ दिये जाते हैं—

(१) जब षष्ठी तृच् प्रत्यय में अन्त होने वाले कर्त्ता, भर्त्ता, स्रष्टा

१ अर्गेण नित्यसमासो विशेषलिङ्गता चेति वक्तव्यम्। (वात्तिक)

२ पञ्चमी मयेन ।२।१।३७। भयभीतभीतिभीभिरिति वाच्यम्। (वात्तिक)

३ स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि क्तेन ।२।१।३६।

४ षष्ठी ।२।२।८।

५ तृजकाम्या कर्त्तरि ।२।२।१५। (और जहाँ 'त्रिभुवनविघातु' आदि में षष्ठी समास दिखाई पड़े उसे षष्ठी वाली समझनी चाहिए, कर्त्तरि षष्ठी नहीं)।

आदि अथवा अक् प्रत्यय मे अन्त होने वाले पाचक, याजक, सेवक आति कर्तृ-  
वाचक शब्दो के साथ आवे, जैसे—

घटस्य कर्ता, जगत स्रष्टा, घनस्य हर्ता, अन्नस्य पाचक ।

किन्तु याजक<sup>१</sup> इत्यादि शब्दो के साथ षष्ठी समास होता है, जैसे—  
ब्राह्मणयाजक । “इत्यादि” शब्द से पूजक, परिचारक, परिवेषक, स्नातक,  
अध्यापक, उत्पादक, होतृ, पोतृ, भर्तृ (पति), रथगणक तथा पत्तिगणक शब्दो  
को समझना चाहिए । इनके साथ षष्ठी-समास बनता है ।

(२) निर्धारण<sup>२</sup> (किसी वस्तु की दूसरो से विशिष्टता दिखाने) के अर्थ  
से प्रयोग मे आई हुई षष्ठी का समास नहीं होता, जैसे—

‘नृणा द्विज श्रेष्ठ’, ‘गवा कृष्णा बहुक्षीरा’ इत्यादि मे समास नहीं होगा ।

किन्तु<sup>३</sup> यदि तरप् प्रत्यय मे अन्त होने वाले गुणवाची शब्द के साथ षष्ठी  
आवे तो वहाँ समास हो जायगा और साथ ही साथ तरप् प्रत्यय का लोप भी हो  
जायगा, जैसे—

सर्वेषा श्वेततर सर्वश्वेत, सर्वेषा महत्तर सर्वमहान् ।

पूरणार्थक<sup>४</sup> प्रत्ययो से बने हुए शब्दो के साथ, गुणवाचक शब्दो के साथ,  
सुहित अर्थात् तृप्ति अर्थ वाले शब्दो के साथ, शतृ एव शानच् प्रत्ययान्त शब्दो  
के साथ, कृदन्त अव्ययी के साथ, तव्य प्रत्यय से बने शब्दो के साथ तथा समा-  
नाधिकरण शब्दो के साथ षष्ठी तत्पुरुष समास नहीं होता । जैसे—सता षष्ठ,  
काकस्य काष्ण्यम्, फलाना सुहित, द्विजस्य कुर्वन् कुर्वाणो वा, ब्राह्मणस्य कृत्वा  
ब्राह्मणस्य कर्तव्यम्, तक्षकस्य, सर्पस्य ।

द्विष्यणा—तव्यत् से बने शब्दो के साथ षष्ठी समास होता है । वस्तुत  
तव्य और तव्यत् मे कोई अन्तर नहीं । तत् से केवल इतना सूचित होता है कि

१ याजकादिभिश्च ।२।२।६।

२ न निर्धारणे ।२।२।१०।

३ गुणात्तरेण तरलोपश्चेति वक्तव्यम् । (वात्तिक)

४ पूरणगुणसुहितार्थसदव्ययतव्यसमानाधिकरणेन ।२।२।११।

तथ्यत् से बने शब्द स्वरित स्वर वाले होते हैं। 'स्वकर्तव्यम्' समस्त पद तो बनेगा ही और उसमे अन्तस्वरित होगा। समानाधिकरण के भी सम्बन्ध में इतना जानना आवश्यक है कि विशेषणपूर्वपदकर्मधारय (जो समानाधिकरण तत्पुरुष का एक भेद है और जिसमे दोनों पद समानाधिकरण अर्थात् समान लिङ्ग और विभक्ति वाले होते हैं) के अतिरिक्त समानाधिकरण शब्दों में ही समास का निषेध इस स्थल में किया गया है।

पूजार्थवाची' क्त प्रत्ययान्त शब्दों के साथ भी षष्ठी तत्पुरुष समास नहीं होता, जैसे राज्ञा मतो बुद्ध पूजितो वा। 'राजमत' इत्यादि पद नहीं बन सकते।

सप्तमी तत्पुरुष समास उसे कहते हैं, जिसका प्रथम शब्द सप्तमी विभक्ति में रहा हो। यह समास भी विशेष दशाओं में ही होता है। कुछ ये हैं—

(१) जब<sup>३</sup> सप्तम्यन्त शब्द शौण्ड (चूत), घूर्त, कितव (शठ), प्रवीण, सवीत (भूषित), अन्तर, अधि, पट, पण्डित, कुशल, चपल, निपुण, सिद्ध<sup>१</sup>, शुष्क, पक्व और बन्ध इन शब्दों में से किसी के साथ आवे, जैसे—

अक्षेषु शौण्ड = अक्षशौण्ड, प्रेणिघ घूर्त = प्रेमघूर्त, द्यूते कितव = द्यूतकितव, समाया पण्डित = समापण्डित, आतपे शुष्क = आतपशुष्क, कटाहे पक्व = कटाहपक्व, चक्रे बन्ध = चक्रबन्ध ।

(२) जब<sup>४</sup> ध्वाङ्क्ष (कौवा) शब्द अथवा इसके समान अर्थ रखने वाले शब्दों के साथ, निन्दा करने के लिए सप्तमी आवे, जैसे—

तीर्थे ध्वाङ्क्ष = तीर्थध्वाङ्क्ष (तीर्थ का कौवा अर्थात् लोलुप), श्राद्धे काक = श्राद्धकाक इत्यादि ।

### समानाधिकरण तत्पुरुष समास

१११ (क)—समानाधिकरण का अर्थ है ऐसी वस्तुएँ जिनका अधिकरण समान अर्थात् एक हो, जैसे—यदि गोविन्द और श्याम एक ही आसन पर बैठे

१ क्तेन च पूजायाम् । २।२।१२।

२ सप्तमी शौण्डे । २।१।४०।

३ शिद्धशष्कपक्वबन्धैश्च । २।१।४१।

४ ध्वाङ्क्षेण क्षेपे । २।१।४२। ध्वाङ्क्षेणेत्यर्थ ग्रहणम् (वार्त्तित) ।

हो तो वह आसन उन दानो का समानाधिकरण हुआ, किन्तु यदि दोनो अलग-अलग आसनो पर बैठे हो तो अलग-अलग अधिकरण हुआ, अर्थात् “व्यधिकरण” हुआ। इसी प्रकार यदि एक ही समय मे दो मनुष्य उपस्थित हो तो उनकी उपस्थिति समानाधिकरण हुई और यदि भिन्न-भिन्न समय मे हो तो उपस्थिति व्यधिकरण हुई। इसी प्रकार शब्दो के विषय मे भी, जैसे—

राज्ञ + पुरुष—इसमे यह आवश्यक नही कि राजा और उसका पुरुष दोनो एक स्थान और एक समय मे हो, इसलिए यहाँ समानाधिकरण नही है, किन्तु कृष्ण + सर्प यहाँ कालापन साँप के साथ-साथ है, वह साँप जहाँ-जहाँ और जिस-जिस समय मे रहेगा, कालापन भी उसके साथ-साथ रहेगा, नही तो उसको कृष्ण सर्प नही कह सकेगे, इसलिए इस उदाहरण मे समानाधिकरण है।

(ख) तत्पुरुष समास का लक्षण ऊपर बता आये है कि ऐसा समास जिसका प्रथम शब्द दूसरे का विशेषण-स्वरूप हो, ऐसा तत्पुरुष समास जिसमे (समास मे आये हुए) दोनो शब्दो का समानाधिकरण हो, समानाधिकरण तत्पुरुष अथवा कर्मधारय तत्पुरुष कहलाता है। कर्मधारय समास की क्रिया समास के दोनो शब्दो को धारण कर सकती है, इसलिए यह नाम पडा है, जैसे—‘कृष्णसर्प अपसर्पति’ इस वाक्य मे सर्प जब-जब क्रिया करता है, तो कृष्णत्व उसके साथ रहता है। “राज्ञ पुरुष अपसर्पति” मे राजा पुरुष के साथ नही है।

(ग) व्यधिकरण तत्पुरुष और समानाधिकरण तत्पुरुष मे मोटे तौर से यह भेद है कि पहले मे समास शब्द प्रथमा को छोड़कर और किसी विभक्ति मे होता है, दूसरे मे प्रथमा मे होता है।

(घ) कर्मधारय समास मे प्रथम शब्द या तो द्वितीया का विशेषण होना चाहिए और द्वितीया शब्द सज्ञा होना चाहिए, अथवा दोनो सज्ञा हो, किन्तु प्रथम विशेषण स्थानीय हो अथवा दोनो विशेषण हो जिसमे समय पडने पर किसी तीसरे शब्द का सयुक्त विशेषण रहे। नीचे कई प्रकार के कर्मधारय समास दिये जाते हैं।

११२ (क)—जब<sup>३</sup> प्रथम शब्द विशेषण हो और दूसरा विशेष्य, तो उस कर्मधारय समास को ‘विशेषणपूर्वपद कर्मधारय’ कहते है, जैसे—कृष्ण

१ तत्पुरुष समानाधिकरण कर्मधारय ११२।४२।

२ विशेषण विशेष्येण बहुलम् १२।१।५७।



सर्प = कृष्णसर्प । नीलम् उत्पलम् = नीलोत्पलम् । रक्त कमलम् = रक्त-कमलम् ।

(१) 'किम्' शब्द का अर्थ जब 'खराब', 'बुरा' होता है, तब इस पद का समास किसी सज्ञा से होकर पूरा कर्मधारय समास हो जाता है, जैसे—

कुत्सित पुरुष = किम्पुरुष, कुत्सित देश = किदेश, कुत्सित सखा = किसखा, कुत्सित प्रभु = किम्प्रभु ।

### (ख) उपमानपूर्वपदकर्मधारय

जब किसी वस्तु से उपमा दी जाय तो वह वस्तु जिससे उपमा दी जाय और वह गुण जिसकी उपमा हो, मिल कर कर्मधारय समास होंगे और इस समास का नाम 'उपमानपूर्वपद' कर्मधारय होगा। जैसे अन इव श्याम = घनश्याम । चन्द्र इव आल्लादक = चन्द्राल्लादक ।

प्रथम उदाहरण में किसी वस्तु की 'बादल' से उपमा दी गई है और यह बतलाया गया है कि वह वस्तु ऐसी श्याम है जैसे बादल। यहाँ 'बादल' उपमान और 'श्याम' सामान्य गुण है। इस प्रकार दूसरे उदाहरण में 'चन्द्र' उपमान और 'आल्लादक' सामान्य गुण है। इस समास में उपमान प्रथम आता है, इसीलिए इसको 'उपमानपूर्वपद' कहते हैं।

### (ग) उपमानोत्तरपदकर्मधारय

जब उपमित (जिस वस्तु की उपमा दी जाय) और उपमान (जिससे उपमा दी जाये)—दोनों साथ-साथ आवे, तब उस कर्मधारय समास को 'उपमानोत्तरपद कर्मधारय' कहते हैं, क्योंकि यहाँ उपमान प्रथम शब्द न होकर द्वितीय होता है, जैसे—मुख कमलमिव = मुखकमलम् । पुरुष व्याघ्र इव = पुरुषव्याघ्र ।

नोट—(ख) के अन्तर्गत समासों में वह गुण कर दिया गया है जिसके कारण उपमा होती है, यहाँ (ग) के अन्तर्गत समासों में वह गुण प्रकट नहीं किया जाता, केवल यह बता दिया जाता है कि उपमेय और उपमान समान हैं।

१ किं क्षेपे । २।१।६४।

२ उपमानानि सामान्यवचनै । २।१।५५।

३ उपमित व्याघ्रादिभि सामान्याप्रयोगे । २।१।५६।

मुखकमलम्, पुरुषव्याघ्र आदि इस श्रेणी के समासों का दो प्रकार से विग्रह कर सकते हैं। (१) मुखमेव कमलम् और पुरुष एव व्याघ्र और (२) मुख कमलमिव और पुरुष व्याघ्र इव।

पहले को रूपक समास कहेंगे क्योंकि एक पर दूसरे को आरोप किया गया है। (काव्यों के प्राचीन टीकाकारों ने ऐसे रूपक समास के स्थलो पर मयूर व्यसकादि समास माना है।) और दूसरे को उपमितसमास कहेंगे, क्योंकि इसमें उपमा है।

### (घ) विशेषणोभयपदकर्मधारय

दो समानाधिकरण विशेषणों के समास को 'विशेषणोभयपद कर्मधारय' कहते हैं, जैसे—कृष्णश्च श्वेतश्च=कृष्णश्च (अश्व)।

इसी प्रकार दो क्त प्रत्यय में अन्त होने वाले शब्द जो वस्तुतः विशेषण ही होते हैं, इसी प्रकार समास बनाते हैं, जैसे—स्नातश्च अनुलिप्तश्च=स्नातानुलिप्त।

दो विशेषणों में से एक दूसरे का प्रतिवादी भी हो सकता है, जैसे—चरञ्च अचरञ्च=चराचरम् (अगत)। कृतञ्च अकृतञ्च=कृताकृतम् (कर्म)।

## द्विगु समास

११३—जब कर्मधारय समास में प्रथम शब्द सख्यावाची हो और दूसरा कोई सज्ञा हो, तो उस समास को 'द्विगु समास' कहते हैं।

'द्विगु' शब्द में स्वयं प्रथम शब्द 'द्वि' सख्यावाची और दूसरा 'गु' (गो) सज्ञा है।

(क) द्विगु समास तभी होता है, जब या तो उसके अनन्तर कोई तद्धित प्रत्यय लगता हो, जैसे—

१ सख्यापूर्वो द्विगु ।२।१।३२।

२ तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च ।२।१।५१।

(१) षष्+मातृ=षष्मातृ+अ (तद्धित प्रत्यय)=षष्मातुर (षष्णा मातृणामपत्य पुमान्),

या उसको किसी और शब्द के समास में आना हो, जैसे—

(२) पञ्चगाव घन यस्य स =पञ्चगवघन ।

यहाँ 'पञ्चगव' यह द्विगु समास न बनता यदि उसको 'घन' के साथ फिर समास में न आना होता। उपर्युक्त समास साधारण द्विगु (सामान्य द्विगु) के उदाहरण समझे जाने चाहिए।

(ख) या द्विगु<sup>१</sup> समास किसी समूह (समाहार) का द्योतक हो। इस दशा में वह सदा नपुसकलिङ्ग<sup>२</sup> एक वचन में रहेगा, जैसे—

पञ्चाना गवा समाहार =पञ्चगवम् ।

पञ्चाना ग्रामाणा समाहार =पञ्चग्रामम् ।

पञ्चाना पात्राणाम् समाहार =पञ्चपात्रम् ।

चतुर्णां युगाना समाहार =चतुर्युगम् ।

त्रयाणां भुवनाना समाहार =त्रिभुवनम् इत्यादि ।

(३) वट, लोक तथा मूल इत्यादि अकारान्त शब्दों के साथ समाहार द्विगु समास होने पर समस्त पद ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग हो जाता है। परन्तु पात्र, भुवन, युग इत्यादि में अन्त होने वाले द्विगु समास नहीं।

पञ्चाना मूलाना समाहार =पञ्चमूली ।<sup>३</sup>

पञ्चाना वटाना समाहार =पञ्चवटी ।

त्रयाणां लोकाना समाहार =त्रिलोकी ।

(४) यदि समाहार द्विगु का उत्तरपद आकारान्त हो तो समस्तपद विकल्प से स्त्रीलिङ्ग होता है।

पञ्चाना खट्वाना समाहार =पञ्चखट्वा ।

१ द्विगुरेकवचनम् ।२।४।१।

२ स नपुसकम् ।२।४।१७। अर्थात् समाहार में द्विगु आर द्वन्द्व नपुसक-लिङ्ग में होते हैं।

३ अकारान्तोत्तरपदो द्विगु स्त्रियामिष्ट । पात्रान्तस्य न । (वार्त्तिक)

४ आबन्तो वा (वार्त्तिक)

### ११४—अन्यतत्पुरुष समास

ऊपर तत्पुरुष समास के जो मुख्य दो भेद व्यधिकरण और समानाधिकरण हैं, उनका विचार किया गया है। यहाँ कुछ ऐसे तत्पुरुष समासों का विचार किया जायगा जो वस्तुतः तत्पुरुष होते हुए भी कुछ वैशिष्ट्य रखते हैं।

#### (क) नञ् तत्पुरुष समास

जब तत्पुरुष में प्रथम शब्द 'न' (नञ्) रहे और दूसरे कोई सज्ञा या विशेषण रहे तो उसे यह नाम दिया जाता है।<sup>१</sup> यह 'न' व्यञ्जन के पूर्व 'अ' में और स्वर के पूर्व 'अन्' में बदल जाता है<sup>२</sup> यथा—

न ब्राह्मण = अभ्राह्मण (ऐसा मनुष्य जो ब्राह्मण न हो), न गर्दभ = अगर्दभ (ऐसा जानवर जो गदहा न हो), न अञ्जम् = अनञ्जम् (जो कमल न हो), न सत्यम् = असत्यम्, न चरम् = अचरम्, न कृतम् = अकृतम्, न आगतम् = अनागतम्।

ऊपर के उदाहरणों से स्पष्ट है कि 'न' शब्द भी एक प्रकार से विशेषण का कार्य करता है, इसलिए तत्पुरुष का मुख्य भाव कि समास का प्रथम शब्द विशेषण अथवा विशेषणस्थानीय होना चाहिए, विद्यमान है।

#### (ख) प्रादि तत्पुरुष समास

जब तत्पुरुष में प्रथम शब्द कु शब्द हो अथवा 'प्र' आदि उपसर्गों में से कोई हो, अथवा गतिसज्ञक कोई पद हो, तब उसे 'प्रादि' तत्पुरुष कहते हैं।<sup>३</sup>

इन प्रादि उपसर्गों से विशेष विशेषण का अर्थ निकलता है, इसीलिये यह एक प्रकार से कर्मधारय समास है। उदाहरणार्थ—

कुत्सित पुरुष = कुपुरुष।

प्रगत<sup>४</sup> (बहुत विद्वान्) आचार्य = प्राचार्य,

१ नञ् ।२।२।६।

२ नलोपो नञ् ।६।३।३। तस्मान्नुडचि ।६।३।७।५।

३ कुगतिप्रादय ।२।२।१८।

४ प्रादयो गताद्यर्थे प्रथमया।

प्रगत (बडे) पितामह = प्रपितामह,  
 अतिक्रान्त<sup>१</sup> मर्यादाम् = अतिमर्याद (जिसने हृद पार कर दी हो),  
 उद्गत (ऊपर पहुँचा हुआ) वेलाम् (किनारा) = उद्वेल,  
 अवक्रुष्ट<sup>२</sup> कोकिलया = अवकोकिल (कोकिला से उच्चारण किया हुआ—  
 मुग्ध)

परिरलानोऽध्ययनाय<sup>३</sup> = पर्यध्ययन (पढ़ने से थका हुआ),  
 निर्गत<sup>४</sup> गृहात् = निर्गृह (घर से निकला हुआ) इत्यादि ।

### (ग) गति तत्पुरुष समास

कुछ कृत प्रत्ययो मे अन्त होने वाले शब्दों के साथ कुछ विशेष शब्दों (ऊरी आदि) का समास होता है, तब उस समास को गति तत्पुरुष कहते हैं ।

ऊरी<sup>५</sup> आदि निपात क्रिया के योग में गति कहलाते हैं । इसी से यह समास गति-समास कहलाता है । च्वि तथा डाच् प्रत्ययो से युक्त शब्द भी गति कहलाते हैं । दो एक उदाहरण ये हैं—

ऊरी कृत्वा = ऊरीकृत्य । शुक्लोभूय (सफेद होकर) । नीलीकृत्य (नीला करके) । इसी प्रकार स्वीकृत्य, पटपटाकृत्य ।

'मूषण'<sup>६</sup> अर्थवाची होने पर 'अलम्' की भी गति सज्ञा होती है । अल (मूषित) कृत्वा—अलकृत्य (मूषित करके) ।

आदर<sup>७</sup> तथा अनन्दर अर्थ में 'सत्' और 'असत्' भी क्रमशः गति कहलाते हैं, जैसे, सत्कृत्य (आदर करके) ।

१ अत्यादयः क्रान्त्याद्यर्थे द्वितीयया ।

२ अवादयः क्रुष्टाद्यर्थे तृतीयया ।

३ पर्यादयो ग्लानाद्यर्थे चतुर्थ्या ।

४ निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या ।

५ ऊर्यादिच्चिडाचश्च । १।४।६१।

६ मूषणेऽलम् । १।५।६४।

७ आदरानादरयो सदसती । १।४।६३।

अपरिग्रह<sup>१</sup> से भिन्न (अर्थात् मध्य) अर्थ मे “अन्तर्” भी गति कहलाता है, जैसे, अन्तर्हस्य—मध्ये हत्वा इत्यर्थ ।

साक्षात्<sup>२</sup> इत्यादि भी कृधातु के साथ विकल्प से गति कहलाते हैं । गति-सन्नक होने पर ‘साक्षात्कृत्य’ बनेगा, अन्यथा ‘साक्षात्कृत्वा’ ।

पुर<sup>३</sup> नित्य गति कहलाता है । समास होने पर “पुरकृत्य” बनेगा ।

“अस्तम्”<sup>४</sup> शब्द मान्त अव्यय है और गति-सन्नक होता है । समास होने पर “अस्तगत्य” रूप होगा ।

“तिर”<sup>५</sup> शब्द अन्तर्धान के अर्थ मे नित्य गति-सन्नक होता है—तिरोमूय ।

तिर<sup>६</sup> कृ के साथ विकल्प से गति होता है—तिरस्कृत्य और तिर कृत्य या तिर कृत्वा ।

### (घ) उपपद तत्पुरुष समास

जब तत्पुरुष का प्रथम शब्द कोई ऐसा पद हो जिसके कर्म आदि रूप से रहने पर ही उस समास के द्वितीय शब्द का वह रूप सिद्ध हो सकता है, तब उसे उपपद तत्पुरुष समास कहते हैं । द्वितीय शब्द का कोई रूप क्रिया न होना चाहिए बल्कि कृदन्त का होना चाहिए, किन्तु ऐसा हो जो प्रथम शब्द के न रहने पर असम्भव हो जाए । प्रथम शब्द को उपपद<sup>७</sup> कहते हैं, इसी से इस समास का नाम उपपद समास पड़ा । उदाहरणार्थ—

कुम्भ करोति इति=कुम्भकार ।

१ अन्तर् परिग्रहे । २।४।६५।

२ साक्षात्प्रभृतीनि च । १।४।७४।

३ पुरोऽव्ययम् । १।४।६७।

४ अस्त च । १।४।६८।

५ तिरोज्ज्त्वाँ । १।४।७१।

६ विभाषा कृञि । १।५।७६।

७ उपपदमतिङ् । २।२।१६।

८ तत्रोपपद सप्तमीस्थम् । ३।१।६२।

यहाँ समास में 'कुम्भ' और 'कार' दो शब्द हैं। 'कुम्भ' कर्म रूप से उपपद है। 'कार' क्रिया का रूप नहीं, कृदन्त का है, किन्तु यदि पूर्व में उपपद न हो तो 'कार' अपने आप नहीं ठहर सकता। 'कार' उपपद से स्वाधीन कोई शब्द नहीं है, हम 'कार' का प्रयोग अकेले नहीं कर सकते, केवल 'कुम्भ' या किसी और उपपद के साथ ही कर सकते हैं, जैसे—चर्मकार, स्वर्णकार। इसी प्रकार—सामगायतीति सामग। यहाँ 'साम' उपपद रहने के कारण 'ग' शब्द है, 'ग' का प्रयोग अकेले नहीं हो सकता, कोई उपपद अवश्य रहना चाहिए। इसी प्रकार—घन ददातीति घनद, कम्बल ददातीति कम्बलद, गा ददातीति गोद आदि होगा।

जिन तृतीयान्त' आदि पदों के रहने पर क्त्वा और णमुल् प्रत्ययों का विधान किया जाता है, वे विकल्प से समास बनाते हैं, जैसे उच्चै कृत्य, एकषामभूय आदि। समास न होने पर उच्चै कृत्वा होगा।

### (च) अलुक् तत्पुरुष समास

समास में प्रथम शब्द की विभक्ति के प्रत्यय का लोप हो जाता है यह ऊपर बता चुके हैं, जैसे—कुम्भ+कार=कुम्भकोर। चरणयो+सेवक=चरणसेवक। किन्तु कुछ ऐसे समास हैं जिनमें पूर्व पद की विभक्ति का लोप नहीं होता, उनको अलुक् समास कहते हैं। अलुक् समास के केवल ऐसे उदाहरण हैं जो साहित्य में पूर्व ग्रन्थकारों के ग्रन्थों में मिलते हैं। उनके अतिरिक्त किसी समास में विभक्ति (प्रत्यय) का लोप न करने का हम लोगों को अधिकार नहीं है। अलुक् समास के कुछ उदाहरण ये हैं—

मनसागप्या (किसी स्त्री का नाम), जनुषान्व (जन्मान्व), परस्मैपदम्, आत्मनेपदम्, दूरादागत, देवानाप्रिय (मूर्ख), [देवप्रिय (देवताओं को प्रिय) षष्ठी तत्पुरुष समास भी बनता है, पर भिन्न अर्थ में] पश्यतोहर (देखते-देखते चुराने वाला, अर्थात् सुनार या डाकू), युधिष्ठिर, (युद्ध में डटा रहने वाला), अन्तेवासी (शिष्य), सरसिजम् (कमल), खेचर (पक्षी, देव, सिद्ध आदि आकाश में चलने वाले) इत्यादि।

### (छ) मध्यमपदलोपी तत्पुरुष समास

ऐसे तत्पुरुष समास जिनमें पूर्वपद का उत्तर भाग गायब हो गया हो, जिसे साधारण दशा में रहना चाहिए था, “मध्यमपदलोपी समास” के नाम से बोले जाते हैं। ऐसे ‘शाकपार्थिव’ आदि समस्त शब्द प्रसिद्ध हैं। उदाहरणार्थ—

शाकप्रिय पार्थिव = शाकपार्थिव । देवपूजक ब्राह्मण = देवब्राह्मण ।

इन उदाहरणों में ‘प्रिय’ और ‘पूजक’ शब्द जो मध्य में आते हैं, रहने चाहिए थे, किन्तु नहीं रहे।

टिप्पणी—इसका नाम वार्तिककार के ‘शाकपार्थिवादीना सिद्धये उत्तरपदलोपस्योपसंख्यानम्’ वार्तिक के अनुसार ‘शाकपार्थिव समास या उत्तरपदलोपी समास रखना ही ठीक है। पर प्राचीन टीकाकारों की टीकाओं में इन समासों का मध्यमपदलोपी नाम भी मिलता है। इसी से ऊपर मध्यमपदलोपी शीर्षक दिया गया।

### (ज) मयूरव्यंसकादि तत्पुरुष समास

कुछ ऐसे तत्पुरुष समास हैं जिनमें नियमों का प्रत्यक्ष उल्लङ्घन है, उनको पाणिनि ने मयूरव्यसकादि नाम देकर अलग कर दिया है, जैसे—

व्यसक मयूर = मयूरव्यसक (चालाक मोर) ।

यहाँ व्यसक शब्द विशेषण होने के कारण, प्रथम होना चाहिए था और मयूर दूसरा।

अन्यो राजा = राजान्तरम् । अन्यो ग्राम = ग्रामान्तरम् । इसी प्रकार अन्य ‘अन्तर’ शब्द वाले उदाहरण होते हैं।

उचक् च अवाक् चेति उच्चावचम् । निश्चित च प्रचित्ते चेति निश्चप्रचम् । चिदेव इति चिन्मात्रम् ।

टिप्पणी—राजान्तरम्, चिदेव इत्यादि समास “द्विजार्थ” की भाँति ही नित्य-समास हैं, क्योंकि इनका अपने पदों से विग्रह नहीं होता। इन्हें संस्कृत वैयाकरणों ने मयूरव्यसकादि समास के अन्तर्गत रखा है। इनके अतिरिक्त जिनका विग्रह होना ही नहीं, वे भी नित्य समास कहलाते हैं, जैसे, जीमूतस्येव<sup>१</sup> ।

१ इवेन समासो विभक्त्यलोपश्च (वा०)



### द्वन्द्व समास

११५—जब<sup>१</sup> ऐसे दो या अधिक पद रक्खे जाते हैं, जो 'च' शब्द से जुड़े हुए थे, तब उस समास को द्वन्द्व समास कहते हैं।

इस<sup>२</sup> समास में दोनों पद प्रधान रहते हैं अथवा उनके समूह का प्रधानत्व रहता है। द्वन्द्व समास तीन प्रकार का होता है—

- (१) इतरेतर द्वन्द्व ।
- (२) समाहार द्वन्द्व ।
- (३) एकशेष द्वन्द्व ।

टिप्पणी—एकशेष वस्तुतः समास है ही नहीं, द्वन्द्व समास की तो बात ही क्या? सिद्धान्तकौमुदी के 'सर्वसमासशेष' प्रकरण (२२) में मट्टोजिदीक्षित ने एक शेष को एक पृथक् वृत्ति ही मानी है। वृत्तियाँ भी प्रकार हैं—

'कृतद्वितसमासैकशेषसनाद्यन्तघातुरूपा पञ्च वृत्तयः । परार्थाभिधान वृत्ति । अर्थात् कृत् तद्वित, समास, एकशेष तथा सन् इत्यादि प्रत्ययो से बने घातुरूप—ये पाँच प्रकार की वृत्तियाँ हैं, 'वृत्ति' परार्थाभिधान को कहते हैं अर्थात् दूसरे पद के अर्थ में अन्तर्भूत जो विशेष अर्थ होता है, उसे परार्थ कहते हैं और उस परार्थ का कथन जिसके द्वारा हो, उसे वृत्ति कहते हैं। इस प्रकार एक शेष तो समास की ही भाँति एक स्वतन्त्र 'वृत्ति' है—दूसरे पद के अर्थ में अन्तर्भूत किसी विशिष्ट अर्थ को अंकट करने का स्वतन्त्र ढग है। परन्तु आधुनिक व्याकरण-पुस्तकों के लेखक सरलता के लिए उसे द्वन्द्व के अन्तर्गत ही रखते हैं और उसी का एक प्रकार मानते हैं। हाँ, इन आधुनिक व्याकरणों के मत के पक्ष में इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इतरेतर द्वन्द्व समास और एकशेष और वृत्ति के विग्रह में कुछ साम्य अवश्य है और वह यह कि दोनों प्रायः एक ही प्रकार से किये जाते हैं।

#### (क) इतरेतर द्वन्द्व

जब समास में आये हुए दोनों पद अपना प्रधानत्व और व्यक्तित्व रखते हैं, तब उसे इतरेतर द्वन्द्व कहते हैं, जैसे—रामश्च कृष्णश्च=रामकृष्णौ ।

१ चार्थे द्वन्द्व ।२।२।२१।

२ उभयपदार्थप्रधानो द्वन्द्व (सि० कौ०) ।

यदि दोनो मिलकर दो हों, तो द्विवचन में समास रखा जाता है और यदि दो से अधिक हों, तो बहुवचन में, जैसे—

रामश्च लक्ष्मणश्च=रामलक्ष्मणौ । रामश्च भरतश्च लक्ष्मणश्च=राम-  
भरतलक्ष्मणा , रामश्च भरतश्च लक्ष्मणश्च शत्रुघ्नश्च=रामभरतलक्ष्मणशत्रुघ्ना ।

ऋकार<sup>१</sup> में अन्त होने वाले (विद्या-सम्बन्ध तथा योचि-सम्बन्ध के वाचक) पद या पदों के साथ जब द्वन्द्व समास होता है, तब अन्तिम पद के पूर्व स्थित ऋकारान्त पद के स्थान में आकार हो जाता है, उदाहरणार्थ—होता च पोता चेति होतापोतारौ, माता च पिता च=मातापितरौ, होता च पोता च उद्गाता च=होतृपोतोद्गातार ।

इसी प्रकार देवतावाचक पदों के द्वन्द्व में वायु को छोड़कर किसी भी शब्द के आगे रहने पर पूर्व पद के अन्त में आकार आदेश हो जाता है। जैसे—मित्रश्च वरुणश्च=मित्रावरुणौ, किन्तु वायु शब्द के रहने पर अग्निवायु ही होगा न कि अग्नावायु। किन्तु इस सूत्र की प्रवृत्ति केवल उन्ही देवताओं के द्वन्द्व में होती है जिनका साहचर्य प्रसिद्ध है।

इस द्वन्द्व समास में (और तत्पुरुष) में भी जो अन्तिम शब्द होता है, उसी के अनुसार पूरे समास को लिङ्ग होता है, जैसे—

मयूरी च कुक्कुटश्च=मयूरीकुक्कुटी । कुक्कुटश्च मयूरी च=कुक्कुटमयूरी ।

### (ख) समाहार द्वन्द्व

जब समास में ऐसी सजाएँ आँवें जो 'च' से जुड़ी हुई होने पर अपना अर्थ बतलाती हैं, पर प्रधानतया एक समाहार (समूह) का बोध कराती हैं, तब वह समाहार द्वन्द्व कहलाता है। इस समास को सदा नपुंसकलिङ्ग एकवचन में ही रखते हैं, उदाहरणार्थ—आहारश्च निद्रा च भयञ्च=आहारनिद्राभयम् ।

इस समाहार में आहार, निद्रा और भय का अर्थ है, पर प्रधानतया जीवों के लक्षण का बोध होता है। जीवों में खाना, पीना, सोना और डर ये ही मुख्य

१ आनङ् ऋतो द्वन्द्वे ।६।३।२५।

२ देवता द्वन्द्वे च ।६।३।२६। वायुशब्दप्रयोगे प्रतिषेध (वा०)

बार्ते होती हैं। इसी प्रकार—पाणी च पादौ च=पाणिपादम् (हाथ और पैर के अतिरिक्त प्रधानतया अङ्ग-मात्र का बोध होता है), अहिनकुलम् (साँप और नेवले के अतिरिक्त प्रधानतया ये दोनों जन्मवैरी हैं, यह बोध होता है)।

समाहार<sup>१</sup> द्वन्द्व बहुधा उन दशाओं में होता है, जब उसमें आये हुए शब्द—

(१) मनुष्य अथवा पशु के शरीर के अङ्ग के वाचक हो—पाणी च पादौ च पाणिपादम् (हाथ और पैर)।

(२) गाने-बजाने वालों के (सष के) अंग के वाचक हो—मार्दङ्गिकाश्च पाणविकाश्च=मार्दङ्गिकपाणविकम् (मृदङ्ग और पणव बजाने वाले)।

(३) सेना के अङ्ग के वाचक हो—अश्वारोहाश्च पदातयश्च=पदा-त्यश्वारोहम् (पैदल और घुडसवार), इसी प्रकार—रथिकाश्वारोहम्।

(४) अचेतन पदार्थ के वाचक हो (द्रव्य हो, गुण नहीं)—गोघूमश्च चणकश्च=गोघूमचणकम्।

(५) नदियों के भिन्न लिङ्ग वाले नाम हो—गङ्गा च शोणश्च=गङ्गा-शोणम्, (किन्तु गंगा च यमुना च=गङ्गायमुने होगा क्योंकि ये एक ही लिङ्ग के हैं)।

(६) देशों के भिन्न लिङ्ग वाले नाम हो—कुरवश्च कुरुक्षेत्रश्च=कुरु-कुरुक्षेत्रम्। किन्तु यदि ग्रामों के नाम हो तो समाहार द्वन्द्व नहीं बनता, जैसे—

जाम्बव (नगर) च शालूकिनी (ग्राम) च=जाम्बवशालूकिन्यौ। परन्तु यदि दोनों नगर<sup>२</sup> के नाम हों तो समाहार ही होता है, जैसे—मथुरा च पाटलिपुत्र च=मथुरापाटलिपुत्रम्।

(७) क्षुद्र जीवों के नाम हो—यूका च लिक्षा च यूकालिक्षम् (जुएँ और लीखें)।

१ परवल्लिङ्ग द्वन्द्वतत्पुरुषयो १२।४।२६।

द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम् १२।४।२। जातिरप्राणिनाम् १२।४।६।  
विशिष्टलिङ्गो नदीदेशोऽग्रामा १२।४।७। क्षुद्रजन्तव २।४।८। येषा च विरोध  
शाश्वतिक १२।४।९।

२ आग्रामा इत्यत्र नगरप्रतिषेधो वक्तव्यः ।

(द) जन्मवैरी जीवो के नाम हों—सर्पश्च नकुलश्च=सर्पनकुलम्, मूषकश्च मार्जारश्च=मूषकमार्जारम् ।

वृक्ष<sup>१</sup>, मृग, तृण, धान्य, व्यञ्जन, पशु, शकुनि (वृक्ष<sup>२</sup> इत्यादि से वृक्षविशेष इत्यादि का ग्रहण करना चाहिए) के वाचक शब्दों के समास तथा अश्ववडवे, पूर्वापर तथा अधरोत्तरे समास भी विकल्प से समाहार द्वन्द्व समास होते हैं जैसे—प्लक्षान्यग्रोधम्, प्लक्षान्यग्रोधा, रुरूपषतम्, रुरूपषता, कुशकाशम्, कुशकाशा, श्रीहियवन्, श्रीहियवा, दधिघृतम्, दधिघृते, गोमहिषम्, गोमहिषा, शुकबकम्, शुकबका, अश्वडम्, अश्ववडवे, पूर्वापरम्, पूर्वापरे, अधरोत्तरम्, अधरोत्तरे ।

### (ग) एकशेष द्वन्द्व

जब दो या अधिक शब्दों में से द्वन्द्व समास में केवल एक ही शेष रह जाय, तब उसको एकशेष द्वन्द्व कहते हैं, जैसे—समता च पिता च=पितरौ । श्वश्रुश्च श्वशुरश्च=श्वशुरौ ।

एकशेष<sup>१</sup> द्वन्द्व में केवल समान रूप वाले शब्द (जैसे रामश्च रामश्चेति रामौ, इसी प्रकार रामश्च रामश्चेति रामा) अथवा समान अर्थ रखने वाले विरूप शब्द भी आ सकते हैं। समास का वचन समास के अङ्गभूत शब्दों की संख्या के अनुसार होगा। यदि समास में पुल्लिङ्ग शब्द तथा स्त्रीलिङ्ग शब्द दोनों मिले हों तो समास पुल्लिङ्ग में रहेगा। उदाहरणार्थ—

सरूप—ब्राह्मणौ च ब्राह्मणश्च=ब्राह्मणौ । शूद्रौ च शूद्रश्च=शूद्रौ ।  
अजश्च अजा च=अजौ । चटकश्च चटका च=चटकौ ।

विरूप—वेक्रदण्डश्च कुटिलदण्डश्च=वेक्रदण्डौ या कुटिलदण्डौ । घटश्च कलशश्च=घटौ या कलशौ ।

१—द्वन्द्व समास करते समय नीचे लिखे नियमों का ध्यान रखना चाहिए—

१ विभाषा वृक्षमृगतृणधान्यव्यञ्जनपशुशकुन्यश्ववडवपूर्वापरधरोत्तराणाम् । २।४।१२।

२ वृक्षादौ विशेषाणामेव ग्रहणम् । (वार्त्तिक)

३ सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ । १।२६।४। विरूपाणामपि समानार्थानाम् । (वार्त्तिक)

(१) घिसञ्जक (ह्रस्व इकारान्त<sup>१</sup> उकारान्त) शब्द प्रथम रखना चाहिए, जैसे—हरिश्च हरश्च=हरिहरौ ।

यदि<sup>१</sup> कई घिसञ्जक हो तो एक को प्रथम रखना चाहिए, बाकी बचे हुआ को चाहे जहाँ रख सकते हैं, जैसे—

हरिश्च हरश्च गुरुश्च=हरिहरगुरुव या हरिगुरुहरा ।

(२) स्वर<sup>१</sup> से आरम्भ होने वाले और 'अ' में अन्त होने वाले शब्द प्रथम आने चाहिए, जैसे—इन्द्रश्च अग्निश्च=इन्द्राग्नी । ईश्वरश्च अकृतिश्च ईश्वर-प्रकृती ।

(३) वर्णों के तथा भाइयों के नाम ज्येष्ठ के क्रम में आने चाहिए, जैसे—ब्राह्मणश्च क्षत्रियश्च=ब्राह्मणक्षत्रियौ (क्षत्रियब्राह्मणौ नहीं), रामश्च लक्ष्मणश्च=रामलक्ष्मणौ (लक्ष्मणरामौ नहीं), इसी प्रकार युधिष्ठिरार्जुनौ ।

(४) जिस<sup>१</sup> शब्द में कम अक्षर हो, वह पहिले आना चाहिए, जैसे, शिवश्च केशवश्च=शिवकेशवौ (केशवशिवौ नहीं, क्योंकि शिव में दो अक्षर हैं, केशव में तीन) ।

### बहुव्रीहि समास

११७(क)—जब<sup>१</sup> समास में आये हुए दोनो (या अधिक हो तो सब) शब्द मिलकर किसी अन्य शब्द के विशेषण स्वरूप रहते हैं, तो उसे बहुव्रीहि समास कहते हैं। बहुव्रीहि शब्द का यौगिक अर्थ है—बहु व्रीहि (घान्य) यस्य अस्ति स बहुव्रीहि (जिसके पास बहुत चावल हो)। इसमें दो शब्द हैं—“बहु” और “व्रीहि”। प्रथम शब्द दूसरे शब्द का विशेषण है और दोनो मिलकर

१ ब्रह्मे चि । २ । ३ । ४ । ५ ।

२ अनेकप्राप्तावेकत्र नियमोऽनियम शेषे । (वार्त्तिक)

३ अजाद्यदन्तम् । २ । ३ । ४ । ५ ।

४ वर्णानामानुपूर्व्येण । आतुज्यायस । (वार्त्तिक)

५ अल्पाचूतरम् । २ । ३ । ४ । ५ ।

६ अनेकमन्यपदार्थे । २ । ३ । ४ । ५ । अनेक प्रथमान्तमन्यस्य पदस्यार्थे वर्तमान

वा समस्यते स बहुव्रीहि ।

किसी तीसरे के विशेषण हैं। इसीलिए इस प्रकार के समासो का नाम 'बहुव्रीहि' पडा।

(ख) बहुव्रीहि और तत्पुरुष मे यह भेद है कि तत्पुरुष मे प्रथम शब्द द्वितीय शब्द का विशेषण होता है, जैसे—पीतम् अम्बरम्=पीताम्बरम् (पीला कपडा)—कर्मधारय तत्पुरुष। बहुव्रीहि मे इसके अतिरिक्त यह होता है कि दोनो मिलकर किसी तीसरे शब्द के विशेषण होते हैं, जैसे—पीताम्बर =पीतम् अम्बर यस्य स (जिसका कपडा पीला हो, अर्थात् श्रीकृष्ण)।

इस प्रकार एक ही समास प्रकरण की आवश्यकता अनुसार तत्पुरुष या बहुव्रीहि हो सकता है। इसके उदाहरण के लिए एक मनोरञ्जक आख्यायिका है।

एक बार एक याचक फटे-फटाये कपडे पहने किसी राजा के निकट जाकर बोला—

'अहञ्च त्वञ्च राजेन्द्र, लोकनाथावुभावपि'। (हे राजश्रेष्ठ! मैं भी लोकनाथ हूँ और आप भी' अर्थात् हम दोनो लोकनाथ हैं)।

याचक की यह उक्ति सुनकर समा के राजकर्मचारी घुष्टता पर बिगड कर कहने लगे—देखो, इस पागल को क्या सूझा कि हमारे महाराज की बराबरी करने चला है, निकालो। तब तक याचक श्लोक का दूसरा अंश भी बोल उठा—

'बहुव्रीहिरह राजन् षष्ठीतत्पुरुषो भवान्' ॥ हे नृप! मैं बहुव्रीहि (समास) हूँ और आप षष्ठीतत्पुरुष, —अर्थात् मेरी दशा मे "लोकनाथ" का अर्थ होगा "लोका प्रजा नाथ पालका यस्य स"—जिसकी सभी रक्षा करें और पालन करें और आपकी दशा मे "लोकनाथ" का अर्थ होगा "लोकस्य नाथ"—ससार मर के स्वामी। यह सुनकर सब लोग हँस पडे और याचक को उचित पारितोषिक देकर उसका लोकनाथत्व दूर किया गया।

बहुव्रीहि समास मे समास के दोनो शब्दो मे से किसी मे प्रधानत्व नही रहता, दोनो मिल कर तीसरे का (जिसके वह विशेषण स्वरूप होते हैं) ही प्राधान्य सूचित करते हैं।

१ अन्यपदार्थप्रधानो बहुव्रीहि—सि० कौ०।

### (ग) इस समास के मुख्य दो भेद हैं

(१) समानाधिकरण बहुव्रीहि ।

(२) व्यधिकरण बहुव्रीहि ।

समानाधिकरण बहुव्रीहि वह है, जिसके दोनो या सभी शब्दो का एक ही अधिकरण (विभक्ति) हो, अर्थात् वे प्रथमान्त हो, जैसे—पीताम्बर ।

व्यधिकरण बहुव्रीहि वह है, जिसके दोनो शब्द प्रथमान्त न हो, केवल एक ही शब्द प्रथमान्त हो, दूसरा षष्ठी या सप्तमी मे हो, जैसे—

चन्द्रशेखर —चन्द्र शेखरे यस्य स = (शिव) ।

चक्रपाणि —चक्र पाणौ यस्य स = (विष्णु) ।

चन्द्रकान्ति —चन्द्रस्य कान्ति इव कान्ति यस्य स ।

बहुव्रीहि समास का विग्रह करने के लिए वियह में 'यत्' शब्द के किसी रूप का आना आवश्यक है। इस 'यत्' से प्रकट किया जाता है कि समास मे आए हुए शब्द किसी अन्य शब्द से ही सम्बन्ध रखते हैं।

११८ (क)—समानाधिकरण बहुव्रीहि के छ भेद होते हैं—

द्वितीयानिष्ठ समानाधिकरण बहुव्रीहि ।

तृतीयानिष्ठ समानाधिकरण बहुव्रीहि ।

चतुर्थीनिष्ठ समानाधिकरण बहुव्रीहि ।

पञ्चमीनिष्ठ समानाधिकरण बहुव्रीहि ।

षष्ठीनिष्ठ समानाधिकरण बहुव्रीहि और

सप्तमीनिष्ठ समानाधिकरण बहुव्रीहि ।

यह भेद विग्रह में आये हुए 'यत्' शब्द की विभक्ति से जाने जाते हैं। यदि 'यत्' द्वितीया मे हो तो समास द्वितीया समानाधिकरण बहुव्रीहि होगा और इसी प्रकार अन्य भेद होंगे, उदाहरणार्थ—

द्वि० स० ब०—प्राप्तमुदक य स प्राप्तोदक (ग्राम) —ऐसा गाँव जहाँ पानी पहुँच चुका हो। आरूढो वानरो य स आरूढवानर (वृक्ष) ।

तृ० स० ब०—जितानि इन्द्रियाणि येन स जितेन्द्रिय (पुरुष) —जिसने इन्द्रियो को वश मे कर रक्खा हो। ऊढ रथ येन स ऊढरथ

(अनड्वान्)—ऐसा बैल जिसने रथ खीचा हो। दत्त चित्त येन स दत्तचित्त (पुरुष)—ऐसा पुरुष जो चित्त दिये हो, लगाये हो।

च० स० ब०—उपहृत पशु यस्मै स उपहृतपशु (स्त्र)—जिसके लिए पशु (बल्यर्थ) लाया गया हो। दत्तघन (पुरुष)।

प० स० ब०—उद्धृतम् ओदन यस्या सा उद्धृतौदना (धात्री)—ऐसी बटलोई जिससे मात निकाल लिया गया हूँ; निर्गत धन यस्मात् स निर्घनः (पुरुष)। निर्गत बल यस्मात् स निर्बल (पुरुष)।

ष० स० ब०—पीतम् अम्बर यस्य स पीताम्बर (हार)। महान्ती बाहू यस्य स महाबाहु, इसी प्रकार लम्कर्ण, चित्रगु।

स० स० ब०—वीरा पुरुषा यस्मिन् स वीरपुरुष (ग्राम)—ऐसा गाँव जिसमे वीर पुरुष हो।

(ख) व्यधिकरण बहुव्रीहि के दोनो शब्द प्रथमा विभक्ति मे नहीं रहते, केवल एक शब्द होता है, दूसरा षष्ठी या सप्तमी मे रहता है, जैसे—

पाणो यस्य स चक्रपाणि। इसी प्रकार चन्द्रशेखर, चन्द्रकान्ति इत्यादि।

(ग) नीचे लिखे बहुव्रीहि भी कमी-कमी पाये जाते हैं—

(१) नम्<sup>१</sup> के साथ अस् अथवा अस् के समान अर्थ वाली<sup>२</sup> धातुओ से बने शब्द का तथा यदि उपसर्गों के साथ किसी धातु से बने शब्द का विकल्प से लोप हो जाता है और उनके इस प्रकार रूप बनते हैं—अविद्यमान पुत्र यस्य स अपुत्र (अथवा अविद्यमानपुत्र), उत्कन्धर (अथवा उद्गतकन्धरा), विजीवित (अथवा विगतजीवित)।

(२) सह<sup>३</sup> और तृतीयान्त सज्ञा—सीतया सह इति ससीत (राम)।

११६—बहुव्रीहि बनाते समय नीचे लिखे नियमों का ध्यान रखना चाहिए—

१ नवोऽस्त्यर्थानां वाच्यो वा चोत्तरपदलोप । (वार्त्तिक)

२ प्रादिभ्यो धातुजस्य वाच्यो वा चोत्तरपदलोप (वार्त्तिक)

३ तेन सहेति तुल्ययोगे।२।२।१८।



(१) समानाधिकरण<sup>१</sup> बहुव्रीहि में यदि प्रथम शब्द पुल्लिङ्ग शब्द से बना हुआ स्त्रीलिङ्ग शब्द (रूपवद्—रूपवती, सुन्दर—सुन्दरी आदि) हो किन्तु ऊकारान्त न हो और दूसरा शब्द स्त्रीलिङ्ग हो, तो प्रथम शब्द का स्त्रीलिङ्ग रूप हटा कर आदिम रूप (पुल्लिङ्ग) रक्खा जाता है, जैसे—

रूपवती भार्या यस्य स रूपवद्भार्य (रूपवतीभार्य नहीं) ।

इस उदाहरण में समास का प्रथम शब्द “रूपवती” था और द्वितीय “भार्या” । प्रथम शब्द “रूपवद्” (पु०) से बना था और ऊकारान्त न था, ईकारान्त था तथा द्वितीय शब्द “भार्या” स्त्रीलिङ्ग में था । इसलिए प्रथम शब्द का पुल्लिङ्ग रूप आ गया । इसी प्रकार—

चित्रा गाव यस्य स चित्रगु (चित्रागु नहीं), इसी प्रकार जरद्भार्य । परन्तु गङ्गा भार्या यस्य स गङ्गाभार्य (गङ्गाभार्य नहीं) क्योंकि गङ्गा शब्द किसी पुल्लिङ्ग शब्द का स्त्रीलिङ्ग रूप नहीं है ।

वामोरुभार्य —वामोरु भार्या यस्य स (क्योंकि यहाँ प्रथम शब्द ऊकारान्त है, आकारान्त या ईकारान्त नहीं) ।

किन्तु यदि प्रथम शब्द किसी का नाम हो, पूरणी सख्या हो, उसमें अङ्ग का नाम आता हो और वह ईकारान्त हो, जाति का नाम हो इत्यादि, अथवा यदि द्वितीय शब्द प्रियादिगण में मन्त्रित कोई शब्द या क्रमसख्या हो, तो पूर्वपद का पूर्वभाव नहीं होता । क्रमानुसार जैसे—

दत्ताभार्य (जिसकी दत्ता नाम वाली स्त्री है),  
पञ्चमीभार्य (जिसकी पाँचवी स्त्री है),  
सुकेशीभार्य (जिसकी अच्छे केशों वाली स्त्री है),  
शूद्राभार्य (जिसकी स्त्री शूद्रा है), कल्याणी प्रिया यस्य स कल्याणीप्रिय,  
कल्याणी पञ्चमी यासा ता कल्याणीपञ्चमा ।

(२) यदि<sup>२</sup> समास के अन्त में इन् में अन्त होने वाले शब्द आदों और

१ स्त्रिया पुवद्भाषितस्कादनूङ् समासनाधिकरणे स्त्रियामपूरणी प्रियादिषु ।६।३।३४।

२ इत् स्त्रियाम् ।५।४।१५२।

यदि पूरा समास स्त्रीलिङ्ग बनाना हो तो नित्य कप् (क) प्रत्यय जोड़ दिया जाता है, जैसे—

बहव दण्डिन यस्या सा बहुदण्डिका (नगरी) ।

किन्तु यदि पुल्लिङ्ग बनाना हो तो कप् जोड़ना या न जोड़ना इच्छा पर है, जैसे—

बहुदण्डिको ग्राम, बहुदण्डी ग्राम वा ।

यदि<sup>१</sup> नदीसन्नक पद अथवा ह्रस्व ऋकारान्त पद उरर पद रूप में हो तो समासान्त कप् प्रत्यय जुट जाता है, जैसे कल्याणी पञ्चमी यस्य स कल्याण-पञ्चमीक पक्ष ।

ईश्वर कर्ता यस्य स ईश्वरकर्तृक (समास) ।

अन्न घातृ यस्य स अन्नघातृक (पुरुष) ।

सुशीला माता यस्य स सुशीलमातृक (मनुष्य) ।

रूपवती स्त्री यस्य स रूपवत्स्त्रीक (मनुष्य) ।

सुन्दरी वधू यस्य स सुन्दरवधूक (पुरुष) ।

(३) उरस्, सर्पिस् इत्यादि शब्दों के अन्त में आने पर अनिवार्य रूप से कप् प्रत्यय लगता है, जैसे—

ब्यूढम् उरो यस्य स व्यूढोरस्क (चौड़ी छाती वाला) । प्रिय सर्पि यस्य स प्रियसर्पिष्क (जिसे घृत प्रिय हो) ।

(४) जब<sup>२</sup> बहुव्रीहि समास के अन्तिम शब्द में अन्य नियमों के अनुसार कोई विकार न हुआ हो तो उसमें इच्छानुसार कप् (क) जोड़ सकते हैं, जैसे—

उदात्त मना यस्य स उदात्तमनस्क अथवा उदात्तमना । इसी प्रकार महायशस्क अथवा महायशा यदि विकल्पसिद्ध रूप है ।

किन्तु व्याघ्रस्य इव पादौ यस्य स व्याघ्रपात् (यहाँ व्याघ्रपात्क नहीं हुआ, क्योंकि समास का अन्तिम शब्द 'पाद' दूसरे नियम से पाद् हो गया और इस प्रकार शब्द में विकार उत्पन्न हो गया) ।

१ नद्युतश्च ।५।४।१५३।

२ उर प्रभृतिभ्य कप् ।५।४।१५१।

३ शेषाद्विभाषा ।५।४।१५४।

(५) यदि अन्तिम शब्द आकारान्त (टाबन्त) हो, तो कप् के बाद में होने पर इच्छानुसार आकार को अकार भी कर सकते हैं। जैसे—पुष्पमालाक, पुष्पमालक। कप् के अभाव में पुष्पमाल होगा।

### १२०—समासान्त प्रकरण

(क) यदि तत्पुरुष समास के अन्त में राजन्, अहन् या सखि शब्द आवे तो इनमें समासान्त टच् प्रत्यय जुड़ता है और इनका रूप राज, अह और सख हो जाता है, जैसे—

महान् राजा=महाराज, इसी प्रकार सिन्धुराज इत्यादि।

उत्तमम् अह =उत्तमाह (अच्छा दिन)।

कृष्णस्य सखा=कृष्णसख।

कही-कही अहन् शब्द का 'अह' हो जाता है, जैसे—सर्वाह (सारे दिन), सायाह (सायकाल)।

किन्तु ऊपर उदाहृत नियम नक् तत्पुरुष में नहीं लगता, जैसे—न राजा=अराजा, न सखा=असखा।

इसी प्रकार<sup>१</sup> पूजनार्थक (श्रेष्ठवाचक) शब्द के पूर्व पद रूप में रहने पर भी समासान्त प्रत्यय नहीं लगता, जैसे—शोभन राजा=सुराजा।

टिप्पणी—ऊपर 'महाराज' में महान् के मूल शब्द 'महत्' के स्थान में 'महा' हो गया है। इसका नियम यह है कि 'महत्' शब्द यदि समानाधिकरण कर्मधारय अथवा बहुव्रीहि समास का प्रथम शब्द हो तो वह 'महा' हो जाता है; जैसे—महाराज, महायशा। किन्तु महता सेवा=महत्सेवा क्योंकि महत् और सेवा समानाधिकरण नहीं है।

(ख) ऋत्, पुर, अप्, घृत् तथा पथिन् शब्द जब समास के अन्तिम शब्द होते हैं, तो समास के अन्त में 'अ' प्रत्यय जुड़ जाता है, जैसे—

१ आपोजन्यतरस्याम् ।७।४।१५।

२ राजाह सखिम्यष्टच् ।५।४।६१।

३ न पूजनात् ।५।४।६६।

४ आन्महत समानाधिकरणजातीययोः ।६।३।४६।

५ ऋत्पूर्वेषु पथामानक्षे ।५।४।७४।

ऋच अर्वम्=अर्वचं ,

बिष्णो पू =बिष्णुपुरम्,

विमला आप यस्य तत् विमलाप (सर) ।

राजस्य धू =राज्यधुरा । किन्तु अक्ष (गाड़ी) की धुरी का अभिप्राय हो तो नहीं, जैसे—अक्षधू ।

(ग) अह<sup>१</sup>, सर्व, एकदेश (भाग) सूचक शब्द, सख्यात् एष पुष्य के साथ रात्रि का समास होने पर समासान्त अच् प्रत्यय लगता है और समस्त पद व्रान्त हो जाता है । सख्या और अव्यय के साथ भी ऐसा ही होता है । जैसे—अहश्च रात्रिश्चेति अहोरात्र । सर्वा रात्रि सर्वरात्र । पूर्वं रात्रे पूर्वरात्र । इसी प्रकार सख्यातरात्र, पुष्यरात्र । नवाना रात्रीणा समाहारो नवरात्रम् । अतिक्रान्तो रात्रिमतिरात्र ।

इन समासों के लिङ्ग के सम्बन्ध में इतना ज्ञातव्य है कि 'सख्यापूर्वं रात्र क्लीबम्' (वार्त्तिक) के अनुसार सख्यापूर्वं रात्रान्त समास जैसे—द्विरात्रम्, नवरात्रम्, इत्यादि नपुसकलिङ्ग में लिंग, शेष पुल्लिङ्ग में ।

उपरि<sup>२</sup> लिखित 'सर्व' इत्यादि के साथ 'अहन्' शब्द का समास होने पर 'अह्ल' हो जाता है । फिर अह्लोऽहन्तात् । १८।७। के अनुसार अकारान्त पूर्वपद के रकार के बाद 'अह्ल' के 'न' को 'ण' हो जाता है, जैसे सर्वाह्ल, पूर्वाह्ल, सख्याताह्ल ।

परन्तु<sup>३</sup> सख्यावाची शब्द के साथ 'अहन्' का समाहार अर्थ में समास होने पर 'अह्ल' आदेश नहीं होता, जैसे—

सप्तानामह्ला समाहार सप्ताह । इसी प्रकार द्वयह, त्रयह इत्यादि ।

नोट—अह्ल<sup>४</sup> और अह<sup>५</sup> में अन्त होने वाले समास पुल्लिङ्ग होते हैं किन्तु पुष्य<sup>६</sup> और सुदिन पूर्वपद वाले तथा अह<sup>५</sup> अन्त वाले समास नहीं ।

१ अह सर्वैकदेशसख्यातपुष्याच्च रात्रे । १।४।८७।

२ अह्लोऽह्ल एतेभ्य । १।४।८८।

३ न सख्यादे समाहारे । १।४।८९।

४ रात्राह्लाहा पुंसि । २।४।२९।

५ पुष्यसुदिनाभ्यामह्ल क्लीबनेष्टा । (वार्त्तिक)

(ब) समस्त पद का जाति या सज्ञा (नाम) अर्थ होने पर अनस्, अश्मन्, अयस् और सरस् उत्तर पद वाले समास पदों में टच् प्रत्यय जुड़ता है, जैसे, जाति अर्थ में—उपानसम्, अमृताश्म, कालावसम्, मण्डूकसरसम्। सज्ञा अर्थ में—महानसम् (रसोई घर), पिण्डाश्म, लोहितायसम्, जलसरसम्।

(ङ) नञ्, दु और सु के साथ प्रजा और मेघा का बहुव्रीहि समास होने पर असिच् प्रत्यय लगता है, जैसे, अप्रजा, दुष्प्रजा, सुप्रजा। अपेघा, दुर्मेघा, सुमेघा। ये सब 'अस्' में अन्त होते हैं। इनके रूप इस प्रकार होंगे—अप्रजा, अप्रजसौ, अप्रजस इत्यादि।

(च) धर्म के पूर्व यदि केवल एक ही पद हो तो बहुव्रीहि समास में धर्म के बाद अनिच् जुड़ता है—जैसे कल्याणधर्मा (धर्मन्) 'उत्पत्यतेऽस्तु मम कोऽपि समानधर्मा कालो ह्यय निरवधिर्विपुला त पृथ्वी ॥' (भवभूति)।

(छ) प्र और सम् के साथ 'जानु' का बहुव्रीहि समास होने पर 'जानु' का 'ज्ञु' आदेश हो जाता है। उदाहरणार्थ—प्रगते जानुनी यस्य स प्रज्ञु, इसी प्रकार सज्ञु।

ऊर्ध्व के साथ विकल्प से ऊर्ध्व होता है, जैसे, ऊर्ध्वञ्च या ऊर्ध्वजानु।

(ज) धनुष् में अन्त होने वाले बहुव्रीहि समास में अनङ् आदेश हो जाता है, जैसे, पुष्प धनुर्यस्य स पुष्पधन्वा। इसी प्रकार शाङ्गधन्वा। किन्तु समस्त पद के नामवाची होने पर विकल्प से अनङ् होगा, जैसे, शतधन्वा, शतधनुः।

(झ) जायाया बहुव्रीहि में निङ् आदेश हो जाता है, जैसे, युवती जाया

१ अनेऽस्माय सरसा जातिसज्ञयो ।५।४।६४।

२ नित्यमसिच् प्रजामेघयो ।५।४।१२२।

३ धर्मादिनिच् केवलात् ।५।४।१२४।

४ प्रसम्या जानुनोर्ज्ञु ।५।४।१२६।

५ ऊर्ध्वादिभाषा ।५।४।१३०।

६ धनुषश्च ।५।४।१३२। वा सज्ञायाम् ।५।४।१३३।

७ जायाया निङ् ।५।४।१३४।

यस्य स युवजानि । इसी प्रकार भूजानि (राजा), महीजानि (राजा) इत्यादि बनेंगे ।

(ब) 'उन्', पूति, सु तथा सुरभि पूर्वपद वाले तथा 'गन्ध' शब्द मे अन्त होने वाले बहुव्रीहि समास मे इकार जुड जाता है, जैसे, उद्गतो गन्धो यस्य स उद्गन्धि । इसी प्रकार पूतिगन्धि, सुगन्धि, सुरभिगन्धि ।

(ट) बहुव्रीहि समास मे हस्ति<sup>१</sup> इत्यादि शब्दो को छोडकर यदि कोई उपमान शब्द पूर्व मे हो और बाद मे पाद शब्द हो तो पाद के अन्तिम वर्ण 'अ' का लोप हो जाता है, जैसे, व्याघ्रस्य इव पादौ यस्य स व्याघ्रपात् । हस्ति इत्यादि पूर्वपद होने पर हस्तिपाद, कुसूलपाद इत्यादि समास बनेगे ।

(ठ) कुम्भपदी<sup>२</sup> इत्यादि स्त्रीलिङ्ग शब्दो मे भी 'पाद' के अकार का लोप हो जाता है । फिर पाद<sup>३</sup> के स्थान मे पत् होकर डीप् जुडता है, जैसे— कुम्भपदी, एकपदी । स्त्रीलिङ्ग न होने पर कुम्भपाद समास बनेगा ।

१ गन्धस्येदुत्पूतिसुसुरभिभ्य १५।४।१३५।

२ पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्य १५।४।१३८।

३ कुम्भपदीषु च १५।४।१३६।

४ पाद पत् १६।४।१३०।

# अष्टम सोपान

## तद्धित-विचार

१२१—प्रातिपदिको (सज्ञा, सर्वनाम, विशेषण आदि) में जिन प्रत्ययों को जोड़ कर कुछ और भी निकाला जाता है, उन प्रत्ययों को तद्धित प्रत्यय कहते हैं—

दिते अपत्यम्=दैत्य (दिति+प्य) । इसमें प्य (तद्धित प्रत्यय) जोड़कर दिति के लड़के का बोध कराया गया है । कषायेण रक्तम्=कषायम् (वस्त्रम्)—‘कषाय रंग में रंगा हुआ’ । यहाँ ‘कषायेण’ शब्द के उपसन्त अण् प्रत्यय कर ‘कषाय से रंगे हुए’ का अर्थ निकाला गया ।

कुशाम्बेन निर्वृता=कुशाम्बी (एक नगरी का नाम) ।

‘यहाँ ‘कुशाम्बे’ शब्द के उपरान्त अण् प्रत्यय लगाकर ‘कुशाम्ब की बनाई हुई’ का अर्थ निकाला गया है । इसी प्रकार और भी कितने ही अर्थों का बोध कराने के लिए तद्धित प्रत्यय जोड़े जाते हैं ।

‘तद्धित’ शब्द का अर्थ है—‘तिस्य प्रयोगेभ्य हिता इति तद्धिता’—ऐसे प्रत्यय जो भिन्न-भिन्न प्रयोगों के काम में आ सकें । किन् किन् प्रयोगों में तद्धित प्रत्यय जोड़े जाते हैं, यह नीचे दिखाया जायगा ।

१२२—तद्धित प्रत्यय लगाने के समय नीचे लिखे नियमों का ध्यान रखना चाहिए । महर्षि पाणिनि ने इन प्रत्ययों के नामों में ऐसे अक्षर रख दिये हैं, जिनसे कुछ और बातों का भी बोध होता है, जैसे—यदि किसी प्रत्यय में व् अथवा ण् हो तो उस शब्द के (जिसमें यह प्रत्यय जुड़ेंगे) प्रथम स्वर की वृद्धि होगी, इत्यादि । ऐसे अक्षर कभी प्रत्यय के आदि में और कभी अन्त में रहते हैं और वृद्धि, ण् आदि की सूचना देने के लिए रखे जाते हैं ।

(१) तद्धित प्रत्यय में यदि व् अथवा ण् इत् हो तो जिस शब्द में ऐसा प्रत्यय जोड़ा जायगा, उस शब्द में जो भी प्रथम स्वर आवेगा उसको वृद्धि रूप ग्रहण करना होगा ।

जैसे—दिति+ण्य (य) = द्+इ+ति+य=द्+ऐ+त्य=दैत्य इत्यादि ।

यदि<sup>१</sup> ऐसा प्रत्यय हो जिसमें क् इत् हो, तब भी यही विधि होगी, जैसे, वर्षा+ठक् (इक) = व्+अ+र्षा+इक = व्+आ+र्ष्+इक = वार्षिक ।

**नोट**—दैत्य में दूसरी 'इ' का और वर्षा में 'आ' का कैसे लोप हो गया, इसके लिए नीचे के नियम देखिए ।

(२) किसी स्वर अथवा य से आरम्भ होने वाले प्रत्ययों के पूर्व, शब्दों के अन्तिम स्वर में विकार उत्पन्न होते हैं—अ, आ, इ, ई का तो लोप ही हो जाता है<sup>२</sup>, उ और ऊ के स्थान में गुण रूप (ओ) हो जाता है<sup>३</sup> और ओ तथा औ के साथ साधारण सन्धि के नियम लगते हैं, जैसे—

अकारान्त—कृष्ण+अण्=कार्ष्ण (कृष्ण के अ का लोप),  
 आकारान्त—वर्षा+ठक् (इक) = वार्षिक (वर्षा के आ का लोप),  
 इकारान्त—गणपति+गण्=गणपति (गणपति की इ का लोप),  
 ईकारान्त—गर्भिणी+अण्=गर्भिणी (गर्भिणी की ई का लोप),  
 उकारान्त—शिशु+अण्=शिशु (शिशु के उ के स्थान में गुण रूप ओ),  
 ऊकारान्त—वधू+अण्=वधु (वधू के ऊ के साथ में गुण रूप ओ),  
 ओकारान्त—गो+यत्=गव्+य=गव्यम्<sup>४</sup>,  
 औकारान्त—नौ+ठक्=नव्+आव+इक=नाविक<sup>५</sup> ।

(३) शब्दों के अन्तिम न् का ऐसे प्रत्ययों के सामने जो किसी व्यञ्जन से आरम्भ होते हैं, बहुधा लोप हो जाता है, जैसे—राजन्+मतुप् (क्त्), राज+वत् = राजवान् । यदि प्रत्यय स्वर से अथवा य् से आरम्भ होते हों तो न्

१ किति च ।७।२।११८।

२ यस्येति च ।६।४।१४८।

३ ओर्गुण ।६।४।१४६।

४ वान्तो यिप्रत्यये ।६।१।७६।

५ एचोऽयवायाव ।६।१।७८।



के साथ पूर्ववर्ती स्वर का भी कभी-कभी लोप हो जाता है, जैसे—आत्मन्+  
(ईय)=आत्म+ईय=आत्मीय ।

(४) प्रत्यय के अन्त में आया हुआ हल् अक्षर केवल वृद्धि, गुण आदि किसी विधि की सूचना देने को होता है, शब्द के साथ नहीं जुड़ता, जैसे—अण् का ण् केवल वृद्धि की सूचना के लिए है, केवल अ जोड़ा जायगा ।

(५) प्रत्यय<sup>१</sup> में आये हुए ठ् के स्थान में इक हो जाता है, जैसे—  
ठक्=इक ।

(६) प्रत्यय<sup>१</sup> के यु, वु के स्थान में क्रम से 'अन' और 'अक' हो जाते हैं, जैसे—युट्=यु=अन, वुक्=वु=अक ।

(७) प्रत्यय<sup>१</sup> के आदि में आये हुए फ्, द्, ख्, झ्, ष् के स्थान में क्रम से आयन्, एय्, ईन्, इय् हो जाते हैं, अर्थात्

फ्=आयन्

द्=एय्

ख्=ईन्

झ्=ईय्

ष्=इय्

### अपत्यार्थ

१२३—अपत्य<sup>१</sup> शब्द का अर्थ है—सन्तान, 'पुत्र अथवा पुत्री' । अपत्या-  
घिकार में ऐसे प्रत्ययों का विचार होगा, जिनको सज्ञाओं में जोड़ने से किसी पुरुष  
या स्त्री की सन्तान का बोध होता है ।

इन<sup>१</sup> प्रत्ययों में पौत्र शब्द का व्यवहार पौत्र आदि अपत्य के अर्थ में आया  
है । नीचे मुख्य मुख्य नियम दिये जाते हैं ।

१ नस्तद्धिते ।६।४।१४४।

२ ठस्येक ।७।३।५०।

३ युवोरनाको ।७।१।१।

४ आयनयीनीयिय फडस्रल्लघा प्रत्ययादीनाम् ।७।१।२।

५ तस्यापत्यम् ।४।१।६२।

६ आपत्य पौत्रप्रभृति गोत्रम् ।४।१।१६२।

(क) अपत्य<sup>१</sup> का अर्थ बताने के लिए अकारान्त प्रातिपदिक के अनन्तर इम् प्रत्यय लगता है, जैसे—दशरथ+इम्=दाशरथि (दशरथ का लडका)। दक्षस्य अपत्यं=दाक्षि (दक्ष+इम्), इत्यादि।

(ख) जिन<sup>२</sup> प्रातिपदिकों में स्त्री प्रत्यय लगा हो, उनमें अपत्य का अर्थ बताने के लिए ढक् (एय्) लगाना चाहिए, जैसे—विनता+ढक्=वैनतेय (विनता का पुत्र)। भगिनी+ढक्=भागिनेय (भाञ्जा) इत्यादि।

जिन<sup>३</sup> प्रातिपदिकों में केवल दो स्वर हो और स्त्रीप्रत्ययान्त हो, और जो<sup>४</sup> प्रातिपदिक दो स्वर वाले तथा इकारान्त हो (इम्-म-अन्त होने वाले न हों), उनमें अपत्यार्थ सूचित करने के लिए ढक् प्रत्यय जुड़ता है, जैसे—दत्ताया अपत्यं पुमान्=दात्तेय (दत्ता+ढक्), अत्रेरपत्यं पुमान्=आत्रेय (अत्रि+ढक्)।

(ग) अश्वपति<sup>५</sup> आदि (अश्वपति, शापति, घनपति, गणपति, राष्ट्रपति, कुलपति, गृहपति, पशुपति, धान्यपति, जन्वपति, सभापति, प्राणपति, क्षेत्रपति) प्रातिपदिकों में ञ् प्रत्यय लगाकर अपत्यार्थ सूचित किया जाता है, जैसे—गणपति+ञ्=गाणपतम् इत्यादि।

(घ) राजन्<sup>६</sup> और स्वशूर शब्दों के अनन्तर अपत्यार्थ में यत् (य) प्रत्यय लगता है, राजन्+यत्=राजन्य<sup>७</sup> (राजवंश वाले क्षत्रिय), स्वशूर+यत्=स्वशूर्य (साला)।

राजन् शब्द में यत् प्रत्यय जाति के ही अर्थ में जोड़ा जाता है।

१ अत १४।१।१६५।

२ स्त्रीभ्यो ढक् १४।१।१२०।

३ ञ् १४।१।१२१।

४ इतश्चानिम् १४।१।१२२।

५ अश्वपत्यादिभ्यश्च १४।१।१८४।

६ राजश्वशूरशब्दत् १४।२।१३७।

७ वाचावर्कर्मणो १६।४।१६८।

८ राज्ञो जातामेवेति वाच्यम् । (वार्त्तिक)

## मत्वर्थाय

१२४—हिन्दी में जो अर्थ 'वान', 'वाला' आदि प्रत्ययों से सूचित होता है (जैसे गाडीवान, इक्कावान आदि) उसी अर्थ का बोध कराने वाले प्रत्ययों को मत्वर्थाय (मत्तुप् प्रत्यय के अर्थवाले) कहते हैं। उनमें से मुख्य दो-चार का ही यहाँ विचार किया जायगा।

(क) किसी वस्तु का किसी दूसरी वस्तु में होना सूचित करने के लिए—जिस वस्तु को सूचित करना हो उसके अनन्तर—मत्तुप् (मत्) प्रत्यय लगता है, जैसे—

गाव अस्य सन्ति इति=गोमान् (गो+मत्तुप्)।

जब किसी वस्तु के बाहुल्य, निन्दा, प्रशंसा, नित्यभाग, अधिकता अथवा सम्बन्ध का बोध कराना हो तो प्रायः मत्वर्थाय प्रत्यय लगते हैं, जैसे—

गोमान् (बहुत गावों वाला)।

कुकुदावर्तिनी कन्या (कुकुडी लडकी)। (मत्वर्थाय इति)

रूपवान् (अच्छे रूप वाला)।

क्षीरी वृक्ष (जिसमें नित्य दूध रहता हो)। ( " " )

उदरिणी कन्या (बड़े पेट वाली लडकी)। ( " " )

दण्डी (दण्ड के साथ रहने वाला साधु)। ( " " )

मत्तुप् प्रत्यय विशेषकर मत्वर्थाय शब्दों (रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि) के उपरान्त लगता है, जैसे—गुणवान्, रसवान् इत्यादि।

नोट—यदि मत्तुप् प्रत्यय के पूर्व ऐसे शब्द हो जो म् अथवा अवर्ण अथवा पाँचों वर्णों के प्रथम चार वर्णों में अन्त होते हैं, अथवा जिनको उपधा (अन्तिम अक्षर के पूर्ववाला अक्षर उपधा कहलाता है) म् अथवा अवर्ण हो, तो मत्तुप् के म् स्थानों में व् हो जाता है, जैसे विद्यावान्, लक्ष्मीवान्, यशस्वान्, विद्युत्वान्,

१ तदस्यास्त्यस्मिन्निति मत्तुप् ।५।२।१५४। भूमन्निन्दाप्रशंसासु नित्ययोगेऽतिशयाने । सम्बन्धेऽस्तिविवक्षाया भवन्ति मत्तुबादय । (वार्त्तिक) ।

२ मादुपधायाश्च मतोर्बोऽयवादिभ्य ।५।२।१५। क्षय ।५।२।१०।

तडित्वान् इत्यादि। कुछ (यव आदि) शब्दों में यह नियम नहीं लगता है, जैसे, यवमान्।

(ख) अकारान्त<sup>१</sup> शब्दों के अन्तर इनि (इन्) और ठन् (इक) भी लगते हैं, जैसे—

दण्डी (दण्ड+इनि), दण्डिक (दण्ड+ठन्)।

(ग) तारक<sup>२</sup> आदि (तारका, पुष्प, मञ्जरी, मूत्र, मूत्र, प्रचार, विचार, कुड्मल, कण्ठक, मुकुल, कुसुम, किसलय, पल्लव, खण्ड, वेग, निद्रा, मुद्रा, बुभुक्षा, पिपासा, श्रद्धा, अभ्र, पुलक, द्रोह, सुख, दुःख, उत्कर्ष, भर, व्याधि, वर्मन्, व्रण, गौरव, शास्त्र, तरङ्ग, तिलक, चन्द्रक, अन्वकार, गर्व, मुकुर, हर्ष, उत्कर्ष, रण, कुवलय, क्षुब्ध, सीमन्त, ज्वर, रोग, पण्डा, कञ्जल, तृष्, कोरक, कल्लोल, फल, कञ्चुल, शृङ्गार, अद्भुत, बकुल, कलङ्क, कर्म, कन्दल, मूर्च्छा, अङ्गार, प्रतिबिम्ब, प्रत्यय, दीक्षा, गज ये इस गण के मुख्य शब्द हैं) शब्दों के अनन्तर यह उत्पन्न (प्रकट) हो गया है जिसमें—इत अर्थ को बोध कराने के लिए इतच् (इत्) प्रत्यय लगाते हैं, जैसे—

तारका+इतच्=तारकित् (तारे निकल आये हैं जिसमें)।

पिपासित (प्यास है जिसमें—प्यासा)।

पुष्पित, कुसुमित आदि इसी प्रकार बनाते हैं।

### भावार्थ तथा कर्माथ

१२५—किसी शब्द से भाववाचक सज्ञा बनाने के लिए उस शब्द में त्व अथवा तल् (ता) जोड़ देते हैं। त्व में अन्त होने वाले शब्द सदा नपुसकलिङ्ग में होते हैं और तल् में अन्त होने वाले स्त्रीलिङ्ग में, जैसे—

गा+त्व=गोत्वम्, गो+तल्=गोता, शिशु+त्व=शिशुत्वम्, शिशु+तल्=शिशुता इत्यादि।

१ अत इनिठनौ १५।२।११५।

२ तदस्य सञ्जात तारकादिभ्य इतच् १५।२।३६।

३ तस्य भावस्त्वतलौ १५।१।११६।

(क) पृथु<sup>१</sup> आदि (पृथु, मृदु, महत्, पटु, तनु, लघु, बहु, साधु, आशु, उरु, गुरु, बहुल, खण्ड, दण्ड, चण्ड, अकिञ्चन, बाल, होड, पाक, वत्स, मन्द, स्वादु, ह्रस्व, दीर्घ, प्रिय, वृष, ऋजु, क्षिप्र, क्षुद्र, अणु) शब्दों के अनन्तर भाव का अर्थ सूचित करने के लिए इमनिच् (इमन्) प्रत्यय भी विकल्प से लगाते हैं। जिस शब्द में यह प्रत्यय लगाते हैं, वह यदि व्यञ्जन से आरम्भ हो और उसके अनन्तर ऋकार (मुदु, पृथु आदि) आवे तो उस ऋकार के स्थान में र हो जाता है। इमनिच् प्रत्यय में अन्त होने वाले शब्द सभी पुल्लिङ्ग में होते हैं, जैसे—

पृथु+इमनिच्=प्रथिमन् (महिमन् के अनुसार रूप लगे), पृथुत्वम्, पृथुता, अदिमन्, महिमन्, पटिमन्, तनिमन्, लघिमन्, भूमन् आदि।

(ख) वर्णवाची<sup>२</sup> शब्दों (नील, शुक्ल आदि) के अनन्तर तथा दृढ आदि (दृढ, वृढ, परिवृढ, मृश, कृश, वक्र, शुक्र, चुक्र, अक्र, कृष्ट, लवण, ताम्र, शीत, उष्ण, जड, बधिर, पण्डित, मधुर, मूर्ख, मूक, निर) के अनन्तर इमनिच् अथवा प्यञ् (य) भाव के अर्थ में लगाते हैं, जैसे—

शुक्लस्य भाव शुक्लिमा, शीक्यम् (अथवा शुक्लत्व, शुक्लता)। इसी प्रकार—

माघुर्यम्, मघुरिमा, दाढ्यम्, द्रुढिमा, दृढत्व, दृढता आदि।

प्यञ् में अन्त होने वाले शब्द नपुंसकलिङ्ग में होते हैं।

(ग) गुणवाची<sup>३</sup> शब्दों के अनन्तर तथा ब्राह्मण आदि (ब्राह्मण, चोर, धूर्त, आराधय, विराधय, उपराधय, उपराधय, एकभाव, द्विभाव, त्रिभाव, अन्यभाव, सवादिन्, सवेशिन्, सभाषिन्, बहुभाषिन्, शीर्षघातिन्, विघातिन्, समस्थ, विषमस्थ, परमस्थ, मध्यस्थ, अनीश्वर, कुशल, चपल, निपुण, पिशुन, कुतूहल, बालिश, अलस, दुष्पुरुष, राजन्, गणपति, अधिपति, दायद, विषम, विपात, निपात—ये सब इस गण के मुख्य शब्द हैं) शब्दों के अनन्तर कर्म या भाव अर्थ सूचित करने के लिए प्यञ् (य) प्रत्यय लगता है, जैसे—

ब्राह्मणस्य भाव कर्म वा=ब्राह्मण्यम्। इसी प्रकार—

१ पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा । ५।१।१२२। र ऋतो ह्लादेलर्घो । ६।४।१६१।

२ वर्णदृढादिभ्य प्यञ् च । ५।१।११३।

३ गुणवचनब्राह्मणादिभ्य कर्मणि च । ५।१।१२४।

चौर्यम्, धौर्यम्, अपराध्यम्, ऐकभाव्यम्, सामस्थ्यम्, कौशल्यम्, चापल्यम्, नैपुण्यम्, पैशुन्यम्, कौतुहल्यम्, बालिश्यम्, आलस्यम्, राज्यम्, आधिपत्यम्, दायाद्यम्, जाड्यम्, मालिन्यम्, मौढ्यम् आदि ।

(घ) इ<sup>१</sup>, उ, ऋ अथवा लृ मे अन्त होने वाले शब्दों के अनन्तर (यदि पूर्व वर्ण मे लघु अक्षर हो, जैसे, शुचि, मुनि आदि—पाण्डु नहीं) भाव अथवा कर्म का अर्थ दिखाने के लिए अञ् (अ) प्रत्यय जोड़ते हैं, जैसे—

शुचेर्भावं कर्म वा शौचम्, मुनेर्भावं कर्म वा मनेनम् ।

(च) यदि<sup>२</sup> किसी के तुल्य क्रिया करने का अर्थ हो तो जिसके समान क्रिया की जाती है, उसके अनन्तर वति (वत्) प्रत्यय जोड़ देते हैं, जैसे—ब्राह्मणेन तुल्यमधीते=ब्राह्मणवत् अधीते ।

(छ) यदि<sup>३</sup> किसी मे अथवा किसी के तुल्य कोई वस्तु हो, तब भी वति प्रत्यय जोड़ते हैं, जैसे—

इन्द्रप्रस्थे इव प्रयागे दुर्ग =इन्द्रप्रस्थवत् प्रयागे दुर्ग (जैसा किला इन्द्रप्रस्थ मे है, वैसा ही प्रयाग मे है) ।

चैत्रस्य इव मैत्रस्य गावः =चैत्रवन्मैत्रस्य गावः (जैसी गाएँ चैत्र की है, वैसी ही मैत्र की हैं) ।

(ज) यदि<sup>४</sup> किसी के समान किसी की मूर्ति अथवा चित्र हो अथवा किसी के स्थान पर कोई सब लिया जाय तो उस शब्द के अनन्तर कन् (क) प्रत्यय लगाकर इस अर्थ का प्राप्ति कराते हैं, जैसे—

अश्व इव प्रतिकृति =अश्वक (अश्व के समान मूर्ति अथवा चित्र है जिसका)

पुत्रक (पुत्र के स्थान पर किसी वृक्ष अथवा पक्षी को जब पुत्र मानें) ।

१ इगन्ताच्च लघुपूर्वात् । १।१।१३१।

२ तेन तुल्य क्रिया चेद्वति । १।१।११५।

३ तत्र तस्येव । १।१।११६।

४ इवे प्रतिकृतौ । १।३।६६।

## समूहार्थ

१२६—किसी वस्तु के समूह का अर्थ बतलाने के लिए उस वस्तु के अनन्तर अण् (अ) प्रत्यय लगाया जाता है, जैसे—

बकानां समूह = बाकम् ।

काकानां समूह = काकम् ।

वृकानां समूह = वार्कम् (भेडियो का समूह) ।

(मायूरम्, कापोतम्, मैक्षम्, गार्मिणम् ।)

(क) ग्राम<sup>१</sup>, जन, बन्धु, गज, सहाय शब्दों के अनन्तर समूह के अर्थ के लिए तल् (ता) लगता है—

ग्रामता (ग्रामो का समूह), जनता, बन्धुता, गजता, सहायता ।

## सम्बन्धार्थ व विकारार्थ

१२७—“यह<sup>१</sup> इसका है” इस अर्थ को बताने के लिए जिसका सम्बन्ध बताना हो, उसके अनन्तर अण् लगाते हैं, जैसे—

उपगोरिदम् (उपगु+अण्) = औपगवम् ।

देवस्य अयम् = दैव ।

ग्रीष्म+अण् = ग्रैष्मम्, नैशम् आदि ।

इसका लिङ्ग सम्बद्ध वस्तु के लिङ्ग के अनुसार बदलता है ।

(क) सम्बन्ध<sup>१</sup> अर्थ दिखाने के लिए हल और सीर शब्द के अनन्तर ठक् (इक्) लगता है, जैसे—हालिकम्, सैरिकम् ।

(ख) जिस वस्तु से बनी हुई (विकारस्वरूप) कोई दूसरी वस्तु विज्ञानी हो तो उसके अनन्तर अण् प्रत्यय लगाते हैं, जैसे—

१ तस्य समूह १४।२।३७। भिक्षादिभ्योऽण् १४।२।३८।

२ ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल् १४।२।४३। गजसहायाम्या चेति वन्तव्यम् । (बा०)

३ तस्येदम् १४।३।१२०।

४ हलसीराट् ठक् १४।३।१२४।

५ तस्य विकार १४।३।१३४।

भस्मनो विकार = भस्मन (भस्म से बना हुआ) ।

मार्तिक (मिट्टी से बना हुआ, मिट्टी का विकार) ।

(ग) प्राणिवाचक<sup>१</sup>, ओषधिवाचक तथा वृक्षवाचक शब्दों के अनन्तर यही प्रत्यय 'अवयव' का भी अर्थ बतलाता है, विकार तो बताता ही है, जैसे—

मयूरस्य विकार अवयवो वा = मायूर ।

मर्कटस्य विकार अवयवो वा = मार्कट ।

मूर्वाया विकार अवयवो वा = मूर्वा काण्डम् भस्म वा ।

पिप्पलस्य विकार अवयवो वा = पैप्पल ।

(घ) उ<sup>२</sup>, ऊ मे अन्त होने वाले शब्द के अनन्तर अवयव का अर्थ दिखाने के लिए अञ् (अ) प्रत्यय होता है, जैसे—

देवदारु + अञ् = देवदारवम्, भाद्रदारवम् ।

(च) विकार<sup>३</sup> अथवा अवयव का अर्थ बताने के लिए विकल्प से मयट् प्रत्यय भी आ सकता है, किन्तु खाने-पहनने की वस्तुओं के अनन्तर नहीं, जैसे—

अश्मन विकारो अवयवो वा = अश्मनम् अश्ममयम् वा । इसी प्रकार भस्मनम्, भस्ममयम्, सौवर्णम्, सुवर्णमयम् इत्यादि ।

किन्तु 'मौद्ग सूप' (मूँग की दाल) के लिए 'मुद्गमय सूप' नहीं होगा ।

इसी प्रकार 'कार्पासमाच्छादनम्' के लिए 'कार्पासमयाच्छादनम्' नहीं होगा ।

### परिमाणार्थ तथा सख्यार्थ

१२६—जो प्रत्यय परिमाण (कितना आदि) बताने के लिए लगाये जाते हैं, उन्हें परिमाणार्थ प्रत्यय कहते हैं ।

(क) यत्, तत्, एतत् के अनन्तर वतुप् प्रत्यय लगता है और वतुप् का व 'घ' (ग) में परिवर्तित हो जाता है । इस प्रकार कियत् और इयत् शब्द बनेंगे, किवत् या इवत् नहीं ।

१ अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्य १४।३।१३५।

२ ओरञ् १४।३।१३६।

३ मयड्वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयो १४।३।१४३।

४ यत्तदेतेभ्य परिमाणे वतुप् । किमिदम्या वो घ १५।२।६३,४० ।



इनका विस्तृत रूप विशेषण विचार में दिखाया जा चुका है ।

(ख) मात्रच् प्रत्यय लगाकर प्रमाण, परिमाण और सख्या का सशय हटाकर निश्चय स्थापित किया जाता है, जैसे—

शम प्रमाणम्=शममात्रम् (निश्चय ही शम प्रमाण है) ।

सेरमात्रम् (सेर ही भर) ।

पञ्चमात्रम् (पाँच ही) ।

(ग) पुरुष और हस्तिन् के अनन्तर अणु प्रत्यय लगाकर प्रमाण बताया जाता है, जैसे—

पौरुषम् (जलमस्या सरिति)=इस नदी में आदमी भर (आदमी के डूबने भर) पानी है । इसी प्रकार हास्तिनम् (जलम्) ।

(घ) किम् शब्द के अनन्तर डति (अति) लगाकर सख्या का और परिमाण का भी बोध कराते हैं, जैसे, किम्+डति=कति—कितने ।

(च) सख्या शब्द के अनन्तर तयप् लगाकर सख्यासमूह का बोध कराते हैं, जैसे द्वितयम्, त्रितयम् आदि ।

द्वि और त्रि के अनन्तर इसी अर्थ में अयच् प्रत्यय भी लगता है—द्वयम्, त्रयम् ।

### हितार्थ

१२६—जिसके हित की कोई वस्तु हो, उसके अनन्तर छ (इय) प्रत्यय लगता है, जैसे—

वत्सेभ्य हित दुग्धम्=वत्सीयम् दुग्धम् (बछड़ों के लिए दूध) ।

इसी अर्थ में शरीर के अवयववाची शब्दों के अनन्तर तथा उकारान्त

१ प्रमाणपरिमाणभ्या सख्यायाश्चापि सशये मात्रज्वक्तव्य । वा० ।

२ पुरुषहास्तिभ्यामण् च ।१।२।३८।

३ किम् सख्यापरिमाणे डति च ।१।२।४१।

४ सख्याया अवयवे तयप् ।१।२।४१। द्वित्रिभ्या तयस्यायज्वा ।१।२।४३।

५ तस्मै हितम् ।१।१।१।

६ शरीरावयवाच्च ।१।१।६।

७ उववादिभ्यो यत् ।१।१।२।

शब्दो ग्रीर गो आदि (गो, हविस्, अक्षर, विष, बहिस्, अष्टका, युग, मेघा, नामि, नश्वन् का शून् वा शुन् हो जाता है, कूप, दर, खर, असुर, वेद, बीज—ये इस गण के मुख्य शब्द हैं) के अनन्तर 'यत्' प्रत्यय लगता है, जैसे—

दन्तेभ्य हिता (ओषधि) = दन्त्या (दन्त+यत्) । इसी प्रकार कर्ष्या, गोभ्य हित=गव्यम् (गो=यत्), शरवे हित=शरव्यम् (शरु+यत्), शून्यम्, शुन्यम्, असुर्यम्, वेद्यम्, बीज्यम् आदि ।

### क्रियाविशेषणार्थ

१३०—कुछ तद्धित प्रत्यय ऐसे हैं, जिनके जोड़ने से वह प्रयोजन सिद्ध होता है जो हिन्दी में दिशावाची, कालवाची आदि क्रियाविशेषणों से होता है ।

(क) पञ्चमी<sup>१</sup> विभक्ति के अर्थ में सत्रा सर्वनाम तथा विशेषण के अनन्तर तथा परि (सर्वार्थक) ग्रीर अग्नि (उभयार्थक) उपसर्गों के अनन्तर तसिल् (तस्) लगता है । इस प्रत्यय के पूर्व तथा नीचे लिखे प्रत्ययों के पूर्व सर्वनाम के रूप में कुछ हेर-फेर हो जाता है जैसे—

त्वत्, मत्त, युष्मत्त, अस्मत्त, अत्, यत् तत्, मध्यत्, परत्, कुत्, सर्वत्, इत्, अमृत्, उभयत्, परित्, अमित ।

(ख) सप्तमी<sup>२</sup> विभक्ति के अर्थ में सर्वनाम तथा विशेषण के अनन्तर त्रल् प्रत्यय लगता है, जैसे—तत्र, यत्र, बहुत्र, सर्वत्र, एकत्र इत्यादि । परन्तु इदम्<sup>३</sup> में त्रल् न लगकर 'इ' लगता है ग्रीर 'इह' रूप बनता है ।

(ग) कर्त्वा, क्त्वा आदि अर्थ प्रकट करने के लिए सर्व, एक, अन्य, किम्, यद् तथा तद् शब्दों के अनन्तर 'दा' प्रत्यय लगता है—

सर्वदा, एकदा, अन्यदा, कदा, यदा, तदा ।

१ पञ्चम्यास्तसिल् १५।३।७। पर्यभिभ्या च १५।३।९। सर्वोभयार्थाभ्यामेव (वा०) ।

२ सप्तम्यास्त्रल् १५।३।१०।

३ इदमो ह् १५।३।११।

४ सर्वोभयार्थकियत्तद् काले दा १५।३।१५।

इसी<sup>१</sup> अर्थ मे 'दानीम्' प्रत्यय भी लगता है—कदानीम्, यदानीम्, तदानीम्, इदानीम् आदि ।

(घ) ऐसे<sup>२</sup> वैसे आदि शब्दो के द्वारा 'प्रकार' अर्थ को बताने के लिए थास् (था) प्रत्यय लगाते हैं—यथा, तथा इत्यादि । परन्तु इदम्<sup>३</sup>, एतद् तथा किम्<sup>४</sup> में 'थम्' लगता है—कथम्, इत्थम् ।

(च) आगे<sup>५</sup> पीछे आदि शब्दो का अर्थ बताने के लिए पूर्व आदि दिशावाची शब्दो के अनन्तर प्रथमा, पञ्चमी तथा सप्तमी के अर्थ मे अस्ताति (अस्तात्) प्रत्यय लगता है, उदाहरणार्थ—

पूर्व+अस्ताति=पुरस्तात् । इसी प्रकार अघस्तात्, भवस्तात्, भवरस्तात्, उपरिष्ठात् ।

इसी<sup>६</sup> प्रकार एनप् लगाकर प्रथमा और सप्तमी का अर्थ बताने के लिए दक्षिणेन, उत्तरेण, अघरेण, पश्चिमेन तथा 'आति' लगाकर पश्चात्, उत्तरात्, अघरात्, दक्षिणात् शब्द बनाते हैं ।

(छ)<sup>७</sup> 'दो बार', 'तीन बार' आदि की तरह 'बार' शब्द का अर्थ लाने के लिए सख्यावाची शब्दो के अनन्तर कृत्वसुच् (कृत्वस्) प्रत्यय लगाते हैं; जैसे—

पञ्चकृत्व भुङ्क्ते (पाँच बार खाता है) ।

इसी प्रकार—षट्कृत्व, अष्टकृत्व आदि ।

इसी अर्थ मे द्वि,<sup>८</sup> त्रि, चतुर् के अनन्तर सुच् (स्) लगता है, जैसे—

१ दानी च ।५।३।१८।

२ प्रकारवचने थाल् ।५।३।२३।

३ इदमस्थम् ।५।३।२४। एतदोऽपि वाच्य (वा०) । किमथ् ।५।३।२५।

४ दिक्शब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाम्यो दिग्देशकालेष्वस्ताति ।५।३।२७।

५ एनकन्यतरस्यामदूरेऽपञ्चम्या ।५।३।३५। पश्चात् ।५।३।३२।

उत्तराघरदक्षिणादाति ।५।३।३४।

६ सख्याया क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्वसुच् ।५।४।१७।

७ द्वित्रिचतुर्म्यं सुच् ।५।४।१८।

द्वि = दो बार । त्रि = तीन बार । चतु = चार बार ।

इसी अर्थ में 'एक' से भी सुच् लगता है और 'एक' के स्थान में 'सकृत्' आदेश हो जाता है, जैसे—

एक + सुच् — सकृत् + सुच् = सकृत् ।<sup>१</sup>

बहु<sup>२</sup> के अनन्तर कृत्वसुच् और घा दोनो प्रत्यय लगते हैं, जैसे—  
बहुकृत्व, बहुधा—बहुत बार ।

### शैषिक

१३१—जिन अर्थों का बोध अपत्यार्थ, चातुरापिक, रक्ताद्यर्थक प्रत्ययो से नहीं होता, वे तद्धित अर्थ पाणिनि-व्याकरण में 'शेष' शब्द से बतलाये गये हैं । 'शेष' तद्धित अर्थों के लिए अण् आदि जोड़े जाते हैं ।

उदाहरणार्थ—

चक्षुषा गृह्यते (रूप) = चक्षुष् + अण् ।

श्रवणेन श्रूयते (शब्द) = श्रावण (श्रवण + अण्) ।

अश्वैरुह्यते (रथ) = आश्व ।

चतुर्भिरुह्यते (शकटम्) = चातुरम् ।

चतुर्दश्या दृश्यते (रक्त) = चातुर्दशम् ।

(क) ग्राम<sup>३</sup> शब्द के अनन्तर शैषिक प्रत्यय 'य' और 'खञ्' (ईन) होते हैं, जैसे—ग्राम्य, ग्रामीण ।

बु<sup>४</sup>, प्राच्, अपाच्, उदच्, प्रतीच् शब्दों के अनन्तर 'यत्' होता है, जैसे—  
दिव्यम्, प्राच्यम्, अपाच्यम्, उदीच्यम्, प्रतीच्यम् ।

१ एकस्य सकृच्च ।५।४।१६।

२ त् के बाद में स्थित सुच् के स् का सयोगान्तलोप हो जाता है ।

३ विभाषा बहोर्धाजिविक्रुष्टकाले ।५।४।२०।

४ शेषे ।४।२।६२।

५ ग्रामाद्यखञौ ।४।२।६४।

६ बुप्रागपागुदक्प्रतीचो यत् ।४।२।१०१।

अमा<sup>१</sup>, इह, स्व तथा नि के अनन्तर और तसि-प्रत्ययान्त तथा त्रल्-प्रत्ययान्त शब्दों के अनन्तर त्यप् (त्य) आता है, जैसे—अमात्य, इहत्य, कुक्कत्, नित्य, स्वतस्त्य, यतस्त्य, कुत्रत्य, तत्रत्य, अत्रत्य आदि।

(ख) जिस<sup>२</sup> शब्द के स्वरो में पहला स्वर वृद्धि वाला (आ, ऐ, औ) हो, उन शब्दों को तथा त्यद् आदि (त्यद्, तद्, यद्, एतद्, इदम्, अदस्, एक, द्वि, युष्मद्, अस्मद्, भवत्, किम्) शब्दों को पाणिनि ने 'वृद्ध' नाम दिया है। इन वृद्धों के अनन्तर शैषिक छ (ईय) प्रत्यय लगता है, जैसे—

शाला+छ=शालीय, माला+छ=मालीय, तद्+छ=तदीय। इसी प्रकार यदीय, एतदीय, युष्मदीय, अस्मदीय, भवदीय आदि।

(ग) युष्मद्<sup>३</sup> और अस्मद् शब्दों के अनन्तर इसी धर्म में 'छ' के अतिरिक्त षण् और खञ् भी विकल्प से हो सकते हैं, किन्तु इनके जुड़ने पर युष्मद् और अस्मद् के स्थान में बहुवचन में युष्माक और अस्माक तथा एकवचन में तवक और ममक आदेश हो जाते हैं, जैसे—

युष्मद्—युष्माक (+अण्)=युष्माक, (+खञ्)=युष्माकीण (तुम्हारा)। तवक (+अण्) तावक, (+खञ्)=तावकीण (तेरा), अस्मद् (+छ)=युष्मदीय।

अस्मद्—अस्माक (+अण्)=अस्माक, (+खञ्)=अस्माकीण (हमारा), ममक, (+अण्)=मामक, (+खञ्)=मामकीण (मेरा), अस्मद् (+छ)=अस्मदीय।

नोट—'विशेषण विचार' में इनका उल्लेख आ चुका है।

(घ) कालवाची शब्दों के अनन्तर शैषिक ठञ् प्रत्यय होता है, जैसे—

१ अग्र्ययात्पु १४।२।१०४। अमेहक्वतसिन्नेय एव। वा०। त्यन्नेर्ध्रुव इति वक्तव्यम्। वा०।

२ वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद्वृद्धम्। त्यदादीनि च। १।१।७३, ७४। वृद्धाच्छ ४।१।११४।

३ युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ्च। तस्मिन्नधि च युष्माकस्माकौ ४।३।१, २।

४ कालादठञ् ४।३।११।

मास+ठञ् (इक)=मासिक। इसी प्रकार सांवत्सरिक, सायंप्रातिक, पौन-पुनिक आदि।

परन्तु<sup>१</sup> सन्धिवेला शब्द, सन्ध्या, अमावास्या, त्रयोदशी, चतुर्दशी, पौर्णमासी, प्रतिपद् तथा ऋतुवाची (ग्रीष्म आदि) शब्द और नक्षत्रवाची शब्दों के अनन्तर अण् होता है, जैसे—

सान्धिवेलम्, सान्ध्यम्, अमावस्यम्, त्रयोदशम्, चतुर्दशम्, पौर्णमासम्, प्रतिपदम्, ग्रीष्मम् (वार्षिकम्=वर्षा+ठक्, प्रावृषेण्यम्=प्रावृष+एण्य), शारदम्, हैमन्तम्, शैशिरम्, वासन्तम्, पौषम् आदि।

(च) साय<sup>२</sup>, चिर, प्राह्णे, प्रगे शब्दों के अनन्तर तथा अव्ययो के अनन्तर शैषिक टधु-टधुल् (अन) लगते हैं तथा शब्द और प्रत्यय के बीच में त् मी ऊपर से आ जाता है, जैसे—

साय+त्+टधुल् (अन)=सायन्तनम्। इसी प्रकार चिरन्तनम्, प्राह्णेतनम्, प्रगेतनम्, दोषातनम्, दिवातनम्, इदानन्तनम्, तदानीन्तनम् इत्यादि।

(छ) दो<sup>३</sup> में से एक का अतिशय दिखाने के लिए तरप् और ईयसुन् प्रत्यय लगते हैं और दो से अधिक<sup>४</sup> में से एक का अतिशय दिखाने के लिए तमप् और इष्टन्, जैसे—

लघु से लघीयस्, लघुतर (दो के लिए) और लघिष्ठ और लघुतम (दो से अधिक के लिए)। इनका विस्तारपूर्वक वर्णन विशेषण-विचार (१०३) में आ चुका है।

(ज) किम् के अनन्तर, एत् प्रत्ययान्त (प्राह्णे, प्रगे आदि) शब्दों के अनन्तर, अव्ययो के अनन्तर तथा तिङन्त के अनन्तर तमप्+आमु=(तमाम) लगाया जाता है, उदाहरणार्थ—

१ सन्धिवेलाद्युतुनक्षत्रेभ्योऽण् ।४।३।१६।

२ सायचिरप्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्टधुटधुलौ तुट् च ।४।३।२३।

३ द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ ।५।३।५७।

४ अतिशयाने तमबिष्टनौ ।५।३।३५।

५ किमेत्तिङ्गव्ययघादांस्त्रय्यप्रकर्षे ।५।४।११।

किन्तमाम्, प्राह्लेतमाम्, उच्चैस्तमाम् (खूब ऊँचा), पचतितमाम् (खूब अच्छी तरह पकाता है)। इसी प्रकार नीचैस्तमाम्, गच्छतितमाम्, दहतितमाम् आदि।

किन्तु द्रव्यसम्बन्धी प्रकर्षं सूचित होने पर 'आमु' नहीं लगता, जैसे—  
उच्चैस्तम तरु।

(झ) कुछ<sup>१</sup> कमी दिखाने के लिए कल्पप् (कल्प), देश्य, देशीयर् (देशीय) प्रत्यय लगाये जाते हैं, जैसे—

विद्वत्कल्प, विद्वद्देशीय—कुछ कम विद्वान् पुरुष।

पञ्चवर्षकल्प, पञ्चवर्षदेश्य, पञ्चवर्षदेशीय—कुछ कम पाँच बरस का।

यजतिकल्पम्—जरा कम यज्ञ करता है।

(ट) अनुकम्पा<sup>२</sup> का बोध कराने के लिए कन् (क) प्रत्यय लगाते हैं, जैसे—

पुत्रक (बेचारा लडका), मिक्षुक (बेचारा मिलाखरी) आदि।

(ठ) जब<sup>३</sup> कोई वस्तु कुछ से कुछ हो जाये, इतनी बदल जाये कि काली न हो तो काली हो जाये, मीठी न हो तो मीठी हो जाये अर्थात्<sup>४</sup> जो पहले नहीं थी, वह हो जाय, तो च्वि प्रत्यय लगा कर इस अर्थ का बोध कराते हैं। यह प्रत्यय केवल कृ घातु, भू घातु और भस् घातु के योग में आता है। च्वि<sup>५</sup> का लोप हो जाता है, किन्तु पूर्व पद का अकार अथवा आकार उकार में बदल जाता है, और यदि<sup>६</sup> अन्य स्वर पूर्व में आवे तो वह दीर्घ हो जाता है, जैसे—

अकृष्ण कृष्ण क्रियते=कृष्ण+च्वि+क्रियते=कृष्ण+ई+क्रियते=  
कृष्णीक्रियते।

१ ईषदसमाप्ता कल्पब्देश्यदेशीयर् १५।३।१५।

२ अनुकम्पायाम् १५।४।७६।

३ कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्वि १५।४।५०।

४ अभूततद्भाव इति वक्तव्यम्। (वार्तिक)

५ अस्य च्वौ ७।४।३२।

६ च्वौ च ७।४।२६।

अब्रह्मा ब्रह्मा भवति 'ब्रह्मीभवति' (जो ब्रह्मा नहीं है, वह ब्रह्मा होता है),  
अगङ्गा गङ्गा स्यात् 'गङ्गीस्यात्' (जो गङ्गा नहीं है, वह गङ्गा हो जाए) । इसी  
प्रकार शूचीभवति, पटूकरोति इत्यादि ।

जब किसी वस्तु का दूसरी वस्तु में पूर्णतया परिणत हो जाना दिखाना हो  
तो च्वि के अतिरिक्त साति (सात्) प्रत्यय भी लगाते हैं, जैसे—

कृत्स्न इन्धनम् अग्नि भवति=इन्धनम् 'अग्निसात्' भवति, 'अग्नीभवति'  
वा (इंधन आग हो जाता है) ।

अग्नि भस्मसात् भवति, भस्मीभवति वा=आग भस्म हो जाती है ।

### प्रकीर्णक

१३२—ऊपर उल्लिखित अर्थों के अतिरिक्त और भी कितने ही अर्थों के लिए  
तद्धित प्रत्यय जोड़े जाते हैं । प्रधान अर्थ नीचे दिये जाते हैं—

(क) यदि किसी वस्तु में दूसरी वस्तु की सत्ता हो, अर्थात् वह वहाँ विद्यमान  
हो तो जिस वस्तु में सत्ता हो, उसके अनन्तर अण् प्रत्यय जोड़ा जाता है, जैसे—

स्रुघ्ने भव 'स्रुघ्न' (स्रुघ्न+अण्)—स्रुघ्न में वर्तमान है ।

इसी अर्थ में शरीर के पदार्थों में तथा दिशु, वर्ग, पूग, पक्ष, पथिन्, रहस,  
उखा, साक्षिन्, आदि, अन्त, मेघ, यूथ, न्याय, वश, काल, मुख, जघन शब्दों में  
यत् (य) जोड़ा जाता है, जैसे—

दन्त्य, मुख्य, नारिक्य, किश्य, पूग्य, वर्ग्य (पुरुष), पक्ष्य (राजा), रहस्य  
(मन्त्र), उख्यम्, साक्ष्यम्, आद्य (पुरुष), अन्त्य, मेघ्य, यूथ्य, न्याय्य, वश्य,  
काल्य, मुख्य (सैन्य आदि के अङ्ग के अर्थ में), जघन्य (नीच) । इनका सिद्ध  
विशेष्य के अनुसार होगा ।

इसी अर्थ में कुछ अव्ययीभाव समासों के अनन्तर 'अ्य' (य) लगता है;  
जैसे परिमुख भवम् 'पारिमुख्यम्' ।

१ विभाषा साति कात्स्न्ये १५।४।५२।

२ तत्र भव १४।३।५३।

३ दिगादिभ्यो यत् । शरीरावयवाच्च १४।३।५४,५५।

४ अव्ययीभावाच्च १४।३।५६।



(ख) यदि<sup>१</sup> किसी मे किसी मनुष्य का निवास (अपना अथवा पूर्वजो का, हो और यह बतलाना हो कि वह अमुक स्थान का निवासी है, तो स्थानवाचक शब्द मे अण् प्रत्यय लगता है, जैसे—

मथुराया निवास अभिजनो वाऽस्य—माथुर, भाटनागर ।

यदि<sup>२</sup> किसी देश को जनविशेष के निवास अथवा और किसी सम्बन्ध से बताना हो, तो जनवाची शब्द के अनन्तर अण् लगाते है, जैसे—

शिबीना विषयो देश—शैब देश (शिवि लोगो के रहने का देश) ।

(ग) यदि<sup>३</sup> किसी वस्तु, स्थान अथवा मनुष्य आदि से कोई वस्तु आवे और यह दिखाना हो कि यह अमुक स्थान, अमुक वस्तु अथवा मनुष्य से आई है, तो स्थानादिवाचक शब्द के अनन्तर बहुधा अण् प्रत्यय लगाने है, जैसे—

श्रुध्नादागत सौघ्न ।

आमदनी<sup>४</sup> के स्थान (दुकान, कारखाना) आदि के अनन्तर ठक् (इक) होता है, जैसे—

शुल्कशालया आगत शौल्कशालिक ।

जिनसे<sup>५</sup> विद्या अथवा जन्म (योनि) का सम्बन्ध हो, उनमे बुञ् (अक) होता है, जैसे—

उपाध्यायादागता विद्या औपध्यायिका, पितामहादागत धन पैतामहकम्, किन्तु ऋकारान्त<sup>६</sup> शब्दो मे इसी अर्थ मे ठक् लगता है, जैसे—आतृकम्, हौतृकम् । 'पितृ' मे 'यत्' और वेञ् दोनों होते हैं—पितृञ्, पैतृकम् ।

(घ) यदि<sup>७</sup> कोई मनुष्य किसी वस्तु से जुआ खेले, कुछ खो दे, कुछ

१ सोऽस्य निवास । ४।३।८६। अभिजनश्च । २।३।६०।

२ विषयो देश । ४।२।५२। तस्य निवास । ४।२।६६।

३ तत आगत । ४।३।७४।

४ ठगायस्थानेभ्य । ४।३।७५।

५ विद्यायोनिःसम्बन्धेभ्योवुञ् । ४।३।७७।

६ ऋतष्ठञ् । ४।३।७८। पितुर्यञ्च । ४।३।७९।

७ तेन दीव्यतिखनतजयतिजितम् । ४।४।२। तरति । ४।४।२। चरति

जीते, तैरे, चले तो उस वस्तु के अनन्तर ठक् प्रत्यय लगाकर उस मनुष्य का बोध होता है, जैसे—

अक्षैर्दीव्यति आक्षिक (अक्ष+ठक्)—ऐसा मनुष्य जो अक्ष (पाँसे) से जुआ खेलता है।

अभ्रया खनति आभ्रिक, फावडे से खोदने वाला।

अक्षैर्जयति आक्षिक, पाँसो से जीतने वाला।

उडुपेन तरति औडुपिक, डोगी से तैरने वाला।

हस्तिना चरति हास्तिक, हाथी पर चलने वाला।

(च) अस्ति<sup>१</sup>, नास्ति, दिष्ट इनके अनन्तर मति के अर्थ में प्रहरणवाचो शब्दों के अनन्तर, 'यह प्रहरण इसके पास है' इस अर्थ में, जिस बात के करने का शील (स्वभाव) हो उसके अनन्तर और जिस काम पर नियुक्त किया गया हो उसके अनन्तर, मनुष्य का बोध कराने के लिए ठक् प्रत्यय लगता है, जैसे—

अस्ति परलोक इति मतिर्यस्य स आस्तिक (अस्ति+ठक्)।

नास्ति परलोक इति मतिर्यस्य स नास्तिक।

दिष्टमिति मतिर्यस्य स दिष्टिक (भाग्यवादी)।

अपूपभक्षण शीलमस्य अपूपिक (जिसकी पुआ खाने की आदत हो)।

आकरे नियुक्त — आकरिक (खजाची)।

(छ) 'वश' में आया हुआ के अर्थ में वश के अनन्तर, अनुकूल के अर्थ में धर्म, पथ, अर्थ और न्याय के अनन्तर, प्रिय के अर्थ में हृद् (हृदय) के अनन्तर तथा यदि किसी वस्तु के लिए अच्छा और योग्य कोई हो तो उस वस्तु के अनन्तर यत् प्रत्यय लगता है, जैसे—

वश गत 'वश्य' (वश+यत्), धर्मादिनपेत 'धर्म्यम्' (धर्मानुकूल), पथ्यम् अर्थ्यम्, न्याय्यम्, हृदयस्य प्रिय 'हृद्य' (प्रिय), शरणे साधु 'शरष्य'

१ अस्तिनास्तिदिष्ट मति १४।४।६०। प्रहरणम् १४।४।५७। शीलम् १४।४।६१। तत्र नियुक्त १४।४।६९।

२ वश गत । धर्मपथ्यर्थन्यायादनपेते । हृदयस्य प्रिय । तत्र साधु १४।४।५६, ६२, ६५, ६८।

(शरण लेने के लिए अच्छा), कर्मणि, साधु, 'कर्मण्य' (काम के लिए अच्छा) ।

(ज) जिस<sup>१</sup> वस्तु के जो योग्य होता है, उस मनुष्य का बोध कराने के लिए उस वस्तु के अनन्तर ठञ् आदि प्रत्यय लगाये जाते हैं, जैसे—

प्रस्थमर्हति (असौ याचक) 'प्रास्थिक' (प्रस्थ+ठञ्) अर्थात् प्रस्थ भर अन्न के योग्य ।

द्रोणमर्हति 'द्रौणिक', (द्रोण+ठञ्)

श्वेतच्छत्रमर्हति 'श्वैतच्छत्रिक' (श्वेतच्छत्र+ठञ्)

इसी अर्थ में दण्ड आदि (दण्ड, मुसल, मधुपर्क, कर्षा अर्ध, मेघ, मेघा, सुवर्ण, उदक, वध, युग, गुहा, भाग, इम, मङ्ग) शब्दों के अनन्तर यत् प्रत्यय लगता है, जैसे—

(झ) दण्ड्य, मुसल्य, मधुपर्क्य, अर्घ्य, मध्य, वध्य, युग्य, गृह्य, भाग्य, मग्य आदि ।

(ञ) प्रयोजन<sup>२</sup> के अर्थ में ठञ् प्रत्यय लगता है, जैसे—

इन्द्रमह प्रयोजनमस्य 'ऐन्द्रमात्रिक' (पदार्थ) —इन्द्र के उत्सव के लिए । प्रयोजन का अर्थ फल अथवा कारण दोनों हैं ।

(ट) जिस<sup>३</sup> रग से रंगा हुआ वस्तु हो, उस रङ्गवाची शब्द के अनन्तर अण् प्रत्यय लगाते हैं जैसे—

कषाय+अण्=कषायम् (वस्त्रम्) ।

मञ्जिष्ठा+अण्=मञ्जिष्ठम् ।

किन्तु लाक्षण्य, रौचन, शान, कर्दम के अनन्तर ठक् (लाक्षिक, रौचनिक, शाकलिक, कार्दमिक), नीली के अनन्तर अन् (नीली+अन्—नील), पीत के

१ तदमर्हति ।५।१।६३। दण्डादिभ्य ५।१।६६।

२ प्रयोजनम् ।५।१।१०६।

३ तेन रक्त रागात् ।४।२।२१। लाक्षारोचनात् ठक् ।४।२।२। शकल-कर्दमाम्यामुपसंस्थानम् (वा०) नील्या अन् (वा०) । पीतात्कन् (वा०) हरिद्रामहारजनाभ्यामन् (वा०) ।

अनन्तर कन् (पीतकम्) तथा हरिद्रा और महारजन के अनन्तर अञ् (हारिद्रम्, माहारजनम्) इसी अर्थ में लगता है।

(ठ) नक्षत्र<sup>१</sup> से युक्त समयवाची शब्द बनाने के लिए नक्षत्रवाची शब्द में अण् जोड़ते हैं, जैसे—

चित्रया युक्त मास चैत्र,  
पुष्येण युक्ता रात्रि = पौषी (रात्रि) इत्यादि।

(ड) जिस<sup>२</sup> वस्तु में खाने, पीने की वस्तु तैयार की जाये तो यह बोध कराने के लिए कि अमुक वस्तु में यह वस्तु तैयार हुई है, उस वस्तु के अनन्तर अण् प्रत्यय लगते हैं, जैसे—

भ्राष्ट्रे सस्कृता (यवा) भ्राष्ट्रा (भांड में मूने हुए जा)।  
पयसि सस्कृत (भक्तम्) पायसम् (दूध में बना हुआ भात)।  
पयसा संस्कृतम् पायसम् (दूध से बनी चीज)।  
किन्तु दधि शब्द के अनन्तर ठक् लगता है—  
दध्ना संस्कृतम् दाधिकम् (दही में बनी चीज)।

किसी वस्तु (मिर्च, घी आदि) से सस्कार की हुई वस्तु के अनन्तर ठक् लगता है, जैसे—

तैलेन संस्कृतम् तैलिकम् (तेल से बनी वस्तु), घातिकम् (घी से बनी),  
मारीचिकम् (मिर्च से छौकी हुई)।

(ढ) जिस खेल में कोई प्रहरण प्रयोग में लाया जाये तो उस खेल का बोध कराने के लिए प्रहरणवाची शब्द के अनन्तर ण (अ) प्रत्यय लगते हैं, जैसे—

दण्ड प्रहरणमस्या क्रीडाया सा 'दाण्डा' (डंडेबाजी),  
मुष्टि प्रहरणमस्या क्रीडाया सा 'मौष्टा' (मुक्केबाजी),

१ नक्षत्रेण युक्त काल १४२।३।

२ संस्कृत भक्षा १४२।१६। दध्नष्ठक् १४२।१८। संस्कृतम् १४४।३।

३ तदस्या प्रहरणमिति क्रीडाया ण १४२।५७।

कोई चीज पढने वाले या जानने वाले का बोध कराने के लिए व (ऋ, लगता है, जैसे—

व्याकरणमधीते वेद वा=वैय्याकरण (व्याकरण+व)

(त) “इसमे<sup>२</sup> वह वस्तु है”, “उससे यह बनी है”, “इसमे उसका निवास है”, “यह उससे दूर नहीं है”—ये सब अर्थ दिखाने के लिए अण् प्रत्यय जोड़ते हैं, जैसे—

उदुम्बरा सन्त्यास्मिन् देशे ‘अदुम्बर’ देश,

कुशाम्बे निर्वृता ‘कौशाम्बी’ (नगरी),

शिबीना निवासो देश ‘शैव’ देश,

विदिशाया अदूरभव (नगरम्) ‘वैदिशम्’।

इन चार अर्थों के बोधक प्रत्ययों को चातुरर्थिक तद्धित प्रत्यय कहते हैं।

यदि<sup>३</sup> जनपद का अर्थ लाना हो तो चातुरर्थिक प्रत्ययों का लोप हो जाता है।

पञ्चालाना निवासो जनपद =पञ्चाला। इसी प्रकार कुरव, वङ्गा, कलिङ्गा आदि।

जनपदवाची शब्द सदा बहुवचन में रहते हैं।

इ<sup>४</sup> ई, उ, ऊ में अन्त होने वाले स्त्रीलिङ्ग शब्दों में चातुरर्थिक मतुप् प्रत्यय लगता है, जैसे—इक्षुमती।

---

१ तदर्थं तद्धित १४।२।५६।

२ तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि । तेन निर्वृत्तम् । तस्य निवास । अदूरभवश्च  
१४।२।६७-७०।

३ जनपदे लुप १६।२।८१।

४ नद्या मतुप् १४।२।८५।

# नवम सोपान

## १३३—क्रिया-विचार

### लकारो के विषय मे नियम

सस्कृत क्रियाओ पर विचार करते समय सर्वप्रथम उनसे अति निकट सम्बन्ध रखने वाले लकारो का उल्लेख करना आवश्यक है। ये लट् हैं—लट्, लिट्, लुट्, लृट्, लेट्, लोट्, लङ्, लिङ्, लुङ्, लृङ्। इन्हें लकार कहते हैं। ये विभिन्न कालो के वाचक हैं, साथ ही कुछ लकार आज्ञा, निमन्त्रण आदि अर्थ-विशेष (Moods) को भी द्योतित करते हैं। इनमे लेट् लकार का प्रयोग केवल वैदिक सस्कृत मे होता है। वहाँ इस लकार का प्रयोग लिङ् लकार के अर्थ मे होता है।<sup>१</sup> इन पर विस्तृत विचार आगे इसी अध्याय मे किया जायगा। इन लकारो के स्थान पर तिङ् प्रत्यय आदेश रूप मे होते हैं। इन तिङ् प्रत्ययो मे प्रारम्भ के नव तिप्, तस्, क्षि, सिप् थस्, थामिप्, वस् मस् परस्मैपद प्रत्यय कहे जाते हैं तथा बाद के नव त, आताम्, आ, थास्, आथास्, ध्वम्, इट्, वहि, महिङ् आत्मनेपद।<sup>२</sup>

जो धातु अनुदात्तेत् तथा ङित् होती हैं, उनसे और स्वरितेत् एव ङित् धातु, जिनसे क्रियाफल कर्त्ता को मिलने वाला हो, तो आत्मनेपद प्रत्यय जुडने हैं, शेष धातुओ से कर्त्ता अर्थ मे परस्मैपद प्रत्यय जुडते हैं।

### लट् लकार

वर्तमान काल के अर्थ मे लट् लकार का प्रयोग होता है।<sup>३</sup>

(१) य, व, र, ल, ङ, म, अ, ण, न, क्ष, भ जिनके आदि मे आते हो ऐसे सार्वभौतिक (अर्थात् तिङ् और शित्) प्रत्ययो के परवर्ती होने पर पूर्व की धातु के अदन्त अग को दीर्घ हो जाता है।

१ लिङ्गर्थे लेट् ।३।४।७।

२ वर्तमाने लट् ।३।२।११३।

३ अतो दीर्घो यदि ।७।३।१०१।

(२) टकारान्त<sup>१</sup> लकारो मे आत्मनेपद मे अन्तिम स्वर के समेत अन्तिम व्यञ्जन (टि) के स्थान पर एकार आदेश होता है।

(३) यदि<sup>२</sup> घातु का अकार पूर्ववर्ती हो तो आताम्, आयाम् प्रत्ययो के जुड़ने पर प्रत्ययो के आकार को इ (इय्) आदेश हो जाता है।

(४) टकारान्त<sup>३</sup> लकारो मे “थास्” के स्थान पर “से” आदेश हो जाता है।

## लिट् (परोक्षभूत)

(१) भूतकाल की उस अवस्था को द्योतित करने के लिए लिट् लकार का प्रयोग होता है वक्ता ने जिसका प्रत्यक्ष दर्शन न किया हो।<sup>४</sup> उसके प्रत्यय निम्नलिखित हैं—

### परस्मैपद

प्रथमपुरुष	णल् (अ),	अतुक्	उस्
मध्यमपुरुष	थल्	अथस्,	अ
उत्तमपुरुष	णल् (अ),	त्	म

(२) जिस<sup>५</sup> घातु को पूर्व ही द्वित्व न हुआ हो उसका लिट् लकार की प्रक्रिया मे द्वित्व होता है। जुहोत्यदिगण के सम्बन्ध मे नियम बतलाते समय इसके नियम दिये जायेंगे।

(३) ह और य को छोड़कर अन्य व्यञ्जनों से शुरू होने वाले आर्ध-घातुक प्रत्ययो के परवर्ती होने पर लिट् लकार मे घातु और प्रत्यय के बीच इट् (इ) का आगम होता है।<sup>६</sup>

१ टित आत्मनेपदाना टेरे ।३।४।७६।

२ आतो इति । ७।२।८१।

३ थास से ।३।४।८०।

४ परोक्षे लिट् ।३।२।११५।

५ लिटि घातोरनम्यासस्य ।६।१।८।

६ आर्धघातुकस्येड्वलादे ।७।२।३५।

(४) इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ स्वरो से शुरू होने वाली तथा गुण स्वर से युक्त धातुओं (ऋच्छ को छोड़कर) के पश्चात् लिट् लकार में 'आम्' का आगम होता है तथा 'आम्' जुड़ने पर जिस पद की धातु रहती है, उस पद में कृ, भ, अस् धातुओं का रूप आगे जुड़ता है।

### लुट् (अनद्यतन भविष्यत् काल)

(१) लृङ् और लृट् में ष्य अथवा स्य और लुट् में तासि (तास्) प्रत्यय धातु के आगे शप् के स्थान पर आदिष्ट होते हैं।

(२) प्रथम पुरुष के लुट्-लकारीय प्रत्ययों के स्थान पर क्रमशः डा (आ), रो, रस् आदेश होते हैं और डा के पूर्ववर्ती डकार का लोप हो जाता है। रौ और रस् के जुड़ने पर तास् के सकार का लोप हो जाता है एवं सकारादि के जुड़ने पर भी तास् के सकार का लोप हो जाता है।

### लृट् लकार

(१) इस लकार का अर्थ सामान्य भविष्यत्काल को द्योतित करना है<sup>१</sup> अर्थात् इसकी प्रक्रिया बहुत सरल है। केवल सेट् धातु के पश्चात् 'ष्य' और अनिट् धातु के पश्चात् 'स्य' जुड़ता है और शेष प्रक्रिया लृट् लकार के ही समान होती है। हाँ, शप् के कारण जो विशेष परिवर्तन लकार में हो जाते हैं, वे यहाँ नहीं होते।

### लिङ् लकार

(१) विधि, आज्ञा और आशिष् को द्योतित करना इस लकार का अभिप्राय है।<sup>२</sup>

(२) लिङ् लकार में परस्मैपद में निम्नलिखित प्रत्यय जुड़ते हैं—  
प्रथम पुरुष—तु, ताम्, अन्तु (कही-कही अतु)।

मध्यम पुरुष—हि, तम्, त।

उत्तम पुरुष—नि, व, म।

१ अनद्यतने लुट् ।३।३।१५।

२ लृट् शेषे च ।३।३।१३।

३ लोट् च ।३।३।१६२। आशिषि लिङ्लोटौ ।३।३।१७३।



- (३) अदन्त अग के पश्चात् 'हि' का लोप हो जाता है ।
- (४) लोट् लकार के उत्तम पुरुष मे 'आट्' (आ) का आगम होता है और वह 'पित्' की तरह समझा जाता है ।
- (५) लोट् लकार मे आत्मनेपद मे निम्नलिखित प्रत्यय होते हैं—  
 प्रथमपुरुष—ताम्, एताम्, अन्ताम् ।  
 मध्यमपुरुष—स्व, एथाम्, ध्वम् ।  
 उत्तमपुरुष—ऐ, वहै, महै ।
- (६) 'हुं' घातु तथा प्रत्येक वर्ग के प्रथमाक्षर, द्वितीयाक्षर, तृतीयाक्षर तथा चतुर्थाक्षर एव श, ष, स, ह मे अन्त होने वाली घातुओं के पश्चात् "हि" के स्थान पर धि आदेश होता है, जैसे जुहुधि, अद्धि ।
- (७) अम्यस्त (जिनको द्वित्व हुआ है उन) घातुओं के पश्चात् अन्तु के स्थान पर अतु आदेश होता है, जैसे ददतु ।
- (८) व्यञ्जानन्त घातुओं के पश्चात् ऋणादि गण मे "हि" के पूर्व इना के स्थान पर आन (शानच्) आदेश होता है और हि का लोप हो जाता है । जैसे, गृहाण ।

### लङ् लकार

- (१) अनद्यतन भूतकाल का व्यापार द्योतित करना इस लकार का अभिप्राय है ।<sup>१</sup>
- (२) लङ्, लुङ्, लृङ् लकारों मे घातु के पूर्व अट् (अ) का आगम होता है ।
- (३) लिङ्, लङ्, लुङ्, लृङ् लकारों मे ति, अन्ति, सि, मि—इन इकारान्त प्रत्ययों के इकार का लोप हो जाता है ।

### लिङ् लकार

१—विधि (आज्ञा), निमन्त्रण, आमन्त्रण (कामचारानुज्ञा), अधीष्ट (सत्कारपूर्वको व्यापार), सम्प्रश्न और प्रार्थना—इन छ अर्थों मे इस लकार का प्रयोग होता है ।<sup>२</sup>

१ अनद्यतने लङ् ।३।२।१११।

२ विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनेषु लिङ् ।३।३।१६१।

७—लिङ्ग लकार में परस्मैपद प्रत्ययो और घातुओं के बीच में यासुट् (यास्) का आगम होता है और इस यास् के सकार का लोप भी प्रायः हुआ करता है।

३—लिङ्ग लकार में झि (अन्ति) के स्थान पर (उस्) आदेश होता है।

४—अदन्त अग के पश्चात् यास् के स्थान पर “इय्” आदेश होता है और यदि य से भिन्न कोई व्यञ्जन आगे आवे तो इय् के यकार का लोप हो जाता है।

५—आत्मनेपद में प्रत्यय और घातु के बीच में सीयुट् (सीय्) आदेश होता है और लिङ्ग के सार्धघातुक होने से ‘स्’ का तथा नियम ४ के अनुसार यकार का भी लोप होता है।

६—लिङ्ग लकार में ‘अ’ के स्थान पर ‘अ’ आदेश होता है।

७—उत्तमपुरुष में ‘इट्’ के स्थान पर ‘अ’ आदेश होता है।

### आशीलिङ्ग

(१) केवल आशीर्वाद अर्थ व्यक्त करने के लिए आशीलिङ्ग का प्रयोग होता है।<sup>१</sup>

(२) विधिलिङ्ग और आशीलिङ्ग में निम्नलिखित अन्तर,—

(क) आशिष् में यासुट् के आगम के पश्चात् गुण और वृद्धि दोनों नहीं हो सकते, जैसे कि विधिलिङ्ग में होते हैं।

(ख) यासुट् से स् का लोप नहीं होता।

(ग) आत्मनेपदी घातुओं के सीयुट् (सीय्) के पश्चात् त और थ के पूर्व में सुच् (स्) का आगम होता है तथा आशीलिङ्ग के सार्धघातुक होने से ‘म्’ का लोप नहीं होता, जैसे, एधिषीष्ट।

### लुङ्ग लकार

(१) सामान्य भूतकाल के व्यापार को लक्षित करने के लिये इस लकार का प्रयोग होता है।<sup>२</sup> सभी लकारों से इसका रूप बहुत बहुरगी और जटिल

१ आशिषि लिङ्गलोटी ।३।३।७३।

२ लुङ्ग ।३।२।११०। भूतार्थबृत्तेर्घातोलुङ्ग स्यात् ।

है। इसलिए इसके नियम बहुत अधिक हैं। उनमें से मुख्य नियम यहाँ दिख जा रहे हैं।

(२) लुङ लकार में शप् के स्थान पर 'ञि' आदेश होता है। इस 'ञि' के स्थान पर सिच् (स्) आदेश होता है।

(३) गा (इ), स्था, पा, भू तथा धु-सञ्जक (दा और घा) धातुओं में जब परस्मैपदी प्रत्यय जुड़े, तब सिच् का लोप हो जाता है।

(४) भू और सू धातुओं के योग में लुङ लकार के प्रत्यय जुड़ने पर गुण नहीं होता।

(५) मा के योग में केवल लुङ लकार का ही प्रयोग होता है और साथ ही साथ धातु के पूर्व अट् का योग भी नहीं होता है।

(६) सिच् (स्) के पश्चात् अपृक्त-सञ्जक का ईट् (ई) आगम होता है।

(७) यदि अकार के पश्चात् 'झ' न जुड़ता हो तो आत्मनेपद में प्रथम पुरुष बहुवचन के वाचक 'झ' के स्थान पर 'अत्' आदेश होता है।

(८) (क) कर्तृवाच्य में लुङ लकार में ष्यन्त धातुओं तथा अि, द्रु, श्रु धातुओं के पश्चात् च्लि के स्थान पर चङ् (अ) आदेश होता है।

(ख) 'णि' के कारण जिस अग की वृद्धि हो जाती है, उसका चङ् के कारण ह्रस्व हो जाता है और 'णि' की इ का भी लोप उस दशा में हो जाता है जब कि इकरादि प्रत्यय आगे न जुड़ता हो।

(ग) चङ् के कारण अनभ्यास वाली धातु के प्रथम एकाच् भाग का द्वित्व करना पड़ता है।

(९) लुङ में अच् के स्थान पर 'घस्' (घस्लृ), हन् के स्थान पर 'वघ' और इ के स्थान पर 'व' आदेश होते हैं।

### लृट् (क्रियातिपत्ति—Condition)

इस लकार की क्रिया बहुत सरल है। भविष्यत् लृट् और लृङ् के रूपों के सामञ्जस्य से इसकी प्रक्रिया चलती है। इस लकार में भविष्यत् लृट् से

१ अस्तिसिचोऽपृक्ते ।७।३।६६।

२ लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ ।३।३।१३६।

‘स्य’ लेकर घातु के पहले ‘अ’ जोड़कर लड़ लकार के नियमों के अनुसार प्रत्यय जोड़ते हैं।

१३४—संस्कृत भाषा के प्रायः सभी शब्द घातुओं से बने हैं, क्या सज्ञा, क्या विशेषण, क्या क्रिया, क्या अव्यय आदि। कुछ शब्द ऐसे हैं जो कि ऊपर से घातु से बने नहीं जान पड़ते, किन्तु वैयाकरण उनको भी घातुओं से निर्मित सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। व्याकरण की दृष्टि से ‘घातु’ शब्द का अर्थ है ‘शब्दयोनि’, अर्थात् जिससे शब्दों की उत्पत्ति हो। ‘घातुपाठ’ में कुल १८८० घातुओं की गणना है। इन्हीं से प्रत्यय विशेष जोड़-जोड़ कर संस्कृत भाषा के शब्द बनते हैं।

घातुओं में कृत् प्रत्यय जोड़ कर सज्ञा, विशेषण आदि बनते हैं। इनका विचार आगे ग्यारहवें सोपान में किया जाएगा। घातुओं में तिङ् प्रत्यय जोड़ कर क्रियाएँ बनाई जाती हैं। इस सोपान में क्रिया की दृष्टि से ही विचार किया गया है।

(क) घातुएँ दस विभागों में विभक्त की गई हैं। इनको ‘गण’ कहते हैं। उनके नाम ये हैं—भ्वादि, अदादि, जुहोत्यादि, स्वादि, तुदादि, रुदादि, तनादि, ऋदादि और चुरादि। इनको क्रम से प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम, षष्ठ, सप्तम, अष्टम, नवम तथा दशम गण भी कहते हैं। गण का अर्थ है—“समूह”। घातुओं के उस समूह को जिसके आदि में भू घातु है, भ्वादिगण कहते हैं, इसी प्रकार अदादि भी हैं। जिन घातुओं के रूप एक प्रकार से चलते हैं, वे एक गण में रक्खी गई हैं। प्रत्येक गण में रूप चलाने के लिए क्या विशेषता लानी होती है, यह आगे प्रत्येक गण के विचार के समय उल्लेख किया जाएगा।

(ख) रूप चलाने की सुगमता के लिए घातुओं का विभाग, सेट्, वेट्, अनिट्—इन तीन भागों में भी किया जाता है। सेट् का अर्थ है—इट् सहित, अर्थात् जिनके रूपों में घातु और आर्धघातुक प्रत्यय के बीच में एक “इ” आ जाती है। यह “इ” कुछ ही प्रत्ययों के पूर्व आती है, सब के पूर्व नहीं। वेट्

१ भ्वाद्यदादी जुहोत्यादि दिवादि स्वादिरेव च।

तुदादिश्च रुदादिश्च तनादिऋचुरादयः ॥

(वा+इट्) विभाग में वे धातुएँ हैं, जिनके उपरान्त इ विकल्प से आती हैं और अनिट् विभाग में वे हैं जिनमें इट् नहीं लाई जाती।

(ग) कुछ धातुएँ सकर्मक होती हैं, और कुछ अकर्मक। सकर्मक धातुओं के रूपों के साथ किसी कर्म की आकाक्षा रहती है, अकर्मक धातुओं के रूपों के साथ नहीं।

(घ) संस्कृत भाषा में लकारों के स्थान पर आदेश रूप में होने वाले प्रत्यय दो प्रकार के होते हैं—परस्मैपद और आत्मनेपद। परस्मैपद का सीधा अर्थ है—“वह पद जो दूसरे के लिए हो”, और आत्मनेपद का अर्थ है—“वह पद जो अपने लिए हो”। सम्भवतः ऐसी क्रियाएँ जिनका फल दूसरे के लिए हो, परस्मैपद में होनी चाहिए और ऐसी क्रियाएँ जिनका फल अपने लिए हो, आत्मनेपद में होनी चाहिए। जैसे, ‘स वपति’ (वह बोता है)—यहाँ ‘वपति’ परस्मैपद की क्रिया है और इससे यह तात्पर्य निकलता है कि बोने की क्रिया का जो फल होगा, वह दूसरे के लिए होगा, बोने वाले के लिए नहीं। यदि ‘स वपते’ (वह बोता है) कहा जाय तो इसका अर्थ होगा कि बोने की क्रिया का फल बोने वाले को मिलेगा। परन्तु क्रिया के रूपों को इस दृष्टि से प्रयोग करने का नियम केवल व्याकरणों में ही दिखाया गया है, संस्कृत के प्रायः सभी ग्रन्थकार इस नियम का उल्लंघन करते आये हैं। धातुएँ ‘पदों’ के हिसाब से भी विभक्त हैं, कुछ परस्मैपद में होती हैं, कुछ आत्मनेपद में ही और कुछ दोनों में। इससे परस्मैपदी धातु, आत्मनेपदी धातु और उभयपदी धातु—ये तीन विभाग धातुओं के होते हैं। कभी-कभी विशेष दशा में कोई एक पद की धातु दूसरे पद की हो जाती है। इसका विचार आपर किया जायगा।

१३५—क्रिया बनाने के लिए धातुओं के रूप तीन वाच्यों में होते हैं—कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य और भाववाच्य। इनको कभी-कभी ‘कर्तृ प्रयोग’ ‘कर्मणि प्रयोग’ और ‘भावे प्रयोग’ भी कहते हैं। हिन्दी में भी इन तीन प्रयोगों की प्रथा है, जैसे—मैं खाना खाता हूँ (अहं भोजनमश्चि), यह कर्तृवाच्य में, मुझसे खाना खाया जाता है (मया भोजनमश्चते), यह कर्मवाच्य में तथा मुझसे चला नहीं जाता (मया न अट्चते), यह भाववाच्य में। केवल सकर्मक

वातुओ की क्रियाओ मे कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य सम्भव होते हैं, अकर्मक घातुओ के रूपो के साथ कर्तृवाच्य और भाववाच्य । अग्रजी मे केवल कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य होते है, भाववाच्य नही । हिन्दी मे कर्तृवाच्य मे बोलना अधिक मुहावरेदार समझा जाता है किन्तु सस्कृत मे कर्मवाच्य अथवा भाववाच्य मे ।

पूर्वोक्त लकारो के प्रयोग के विषय मे कुछ लिम्नाड्डित बातें ध्यान मे रखनी चाहिए ।

(१) वतमानकाल की क्रिया का प्रयोग वर्तमान समय मे होने वाली वस्तु के विषय मे किया जाता है, जैसे—स गच्छति, स कट करोति, वय कुम आदि ।

(२) आज्ञा का प्रयोग किसी को कुछ करने की आज्ञा देने के लिए किया जाता है, जैसे—त्व पाठशाला गच्छ, मूय मह्य धन दत्त, आदि । आज्ञा बहुधा सामने उपस्थित मनुष्य को ही दी जाती है, इसलिए आज्ञा का प्रयोग बहुधा मध्यम पुरुष मे ही होता है, परन्तु ऐसे प्रयोग, जैसे—मै कर्हूँ (अह करवाणि), वह करे (स करोतु) आदि भी आवश्यकतानुसार होते है ।

(३) विधिलिङ्ग का प्रयोग किसी को आदेश देने के लिए किया जाता है, जैसे प्रमु का अपने सेवक को आज्ञा देना । प्राय यदि आज्ञा के रूप का प्रयोग हो तो नरम आदेश समझना चाहिए, विधि का प्रयोग हो तो कडा । विधि का प्रयोग 'चाहिए' अर्थ का बोध कराने के लिए भी होता है, जैसे—स कुर्यात् (उसको करना चाहिए) ।

(४, ५, ६) तीन भूतकाल—सस्कृत मे भूतकाल की क्रिया का बोध कराने के लिए तीन काल—अनद्यतनभूत, परोक्ष और सामान्यभूत हैं । इनके प्रयोग मे थोडा अन्तर है । अनद्यतन भूत का अर्थ है—ऐसा भूतकाल जो आज न हुआ हो, अर्थात् इस काल के रूप ऐसी दशा मे लाए जाने चाहिए जब क्रिया आज समाप्त न हुई हो, कल या इससे पूर्व समाप्त हुई हो, जैसे—'मै आज पढने गया', यहाँ 'गया' शब्द का अनुवाद सस्कृत मे अनद्यतनभूत की क्रिया से न होगा, किसी और से होगा । परोक्षभूत का अर्थ है—ऐसा अतीतकाल जो आँखो के सामने न हुआ हो । यदि कोई क्रिया अपनी आँखो के सामने हुई है

तो उस दशा में परोक्ष भूत का प्रयोग न होगा, जैसे—'मैं पाठशाला गया', यहाँ जाने की क्रिया मेरे समक्ष हुई, इसलिए यहाँ "गया" का अनुवाद परोक्षभूत के रूप में न करके किसी और के रूप से करना होगा। तीसरा भूतकाल अर्थात् मामान्यभूत सब कही प्रयोग में लाया जा सकता है, चाहे क्रिया आज समाप्त हुई हो अथवा बरसो पहले।

**नोट**—संस्कृत में वर्तमान काल की क्रिया के अनन्तर 'स्म' शब्द जोड़ कर एक साधारण भूतकाल बनाया जाता है। यह प्रायः किसी-कहातिरूप में वचन के काम में लाया जाता है, जैसे—कश्चिद्राजा प्रतिवसतिस्म। 'स्म' का प्रयोग प्रायेण भूतकाल की ऐसी क्रियाओं को प्रकट करने के लिए होता था जिनमें अभ्यास, आदत इत्यादि की बात रहती थी। इस प्रकार इसका प्रयोग अंग्रेजी में used to, won't to, habituated to इत्यादि के अर्थ में होता था, जैसे एक जङ्गल में एक शेर रहा करता था। (There used to live a lion in a forest) का अनुवाद संस्कृत में कश्चिद्राजने एक सिंह प्रतिवसति स्म—इस प्रकार होगा। यहाँ वाक्य से यह ध्वनिता होता है कि वह बहुत समय तक जङ्गल में रहने का अभ्यासी (आदी) हो गया था। परन्तु इसका प्रयोग मभा प्रकार की भूतकाल की क्रियाओं को भी प्रकट करने के लिए होता है।

(७, ८) दोनो भविष्यकाल—अभविष्यकाल की क्रिया का बोध कराने के लिए दो काल हैं—अनद्यतन भविष्य और सामान्य भविष्य। इनमें से पहले का प्रयोग ऐसी दशा में नहीं हो सकता जब क्रिया आज ही होने को हो। दूसरे का सब कही प्रयोग हो सकता है।

(९) आशीर्वाद का प्रयोग आशीर्वादात्मक होता है, जैसे—तुम सो वध तक जिओ—त्व जीव्या शरदा शतम्। कभी-कभी आशीर्वाद अथवा

१ इस प्रकार परोक्षभूत का प्रयोग उत्तम पुरुष में होता ही नहीं, क्योंकि स्वयं की हुई क्रिया परोक्ष नहीं हो सकती। परन्तु चित्तविक्षेप की अवस्था में किया गया काम परोक्षभूत से भी वर्णित हो सकता है और किए हुए कार्य को छिपाने से भी उत्तम पुरुष में लिट् का प्रयोग होता है। उत्तमपुरुष चित्तविक्षेपादिना पारोक्ष्यम्—सि० कौ०। अत्यन्तापह्लवे लिट् वक्तव्य (वा०)।

आकाक्षा प्रकट करने के लिए आज्ञा अथवा विधि का भी प्रयोग होता है, जैसे—  
त्व जीव शरदा शतम्, जीवेम शरदा शतम् इत्यादि ।

(१०) क्रियातिपत्ति का प्रयोग ऐसे अवसर पर होता है, जहाँ एक क्रिया का होना दूसरी क्रिया के होने पर निर्भर हो, जैसे—यदि वह आता तो मैं उसके साथ जाता (यदि स आगमिष्यतिर्हि अहं नूनं तेन सह अगमिष्यम्) । इस क्रियातिपत्ति के अर्थ में कभी-कभी भविष्य भी प्रयोग में आता है । यथा—यदि वह आयेगा तो मैं उसके साथ जाऊँगा (यदि स आगमिष्यति तर्हि अहं तेन सह गमिष्यामि) । इसी प्रकार कभी वर्तमान और कभी आज्ञा के रूप भी काम में लाये जाते हैं ।

इन दस लकारों के प्रत्यय परस्मैपद और आत्मनपद दोनों में दिये जाते हैं । प्रत्येक लकार में तीन पुरुष और तीन वचन होते हैं (देखिए नियम ८१) । हिन्दी में क्रिया बहुधा कर्तृवाच्य में कर्ता के लिङ्ग के अनुसार (जैसे—राम जाता है, गौरी जाती है, राम गया, गौरी आई, राम जायगा, गौरी जायगी) तथा कमवाच्य में कर्म के लिङ्ग के अनुसार (जैसे—मुझसे किताब नहीं पढ़ी जाती, मुझसे अखबार नहीं पढ़ा जाता आदि) बदलती है, परन्तु संस्कृत में क्रिया कर्ता या कर्म के लिङ्ग के अनुसार नहीं बदलती (राम गच्छति या गौरी गच्छति, रामोऽगच्छत् या गौरी अगच्छत्, रामो गमिष्यति या गौरी गमिष्यति, मया पुस्तिका न पठ्यते या मया समाप्तपत्रं न पठ्यते आदि) ।

१३६—लकारों के प्रत्यय इस प्रकार हैं—

### (क) वर्तमान काल (लट्)

#### परस्मैपद

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	ति	तस्	अन्ति
म० पु०	सि	थस्	थ
उ० पु०	मि	वस	मस



## आत्मनेपद

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	ते	इते	अन्ते
म० पु०	से	इथे	ध्वे
उ० पु०	इ	वहे	महे

नोट—दूसरे, तीसरे, पाँचवे, सातवे, आठवे और नवें गण की धातुओं से आत्मनेपद में ये प्रत्यय जुड़ते हैं।

प्र० पु०	ते	आते	अते
म० पु०	से	आथे	ध्वे
उ० पु०	ए	वहे	महे

## (ख) आज्ञा (लोट्)

## परस्मैपद

प्र० पु०	तु	ताम्	अन्तु
म० पु०	तु या तात्	तम्	त
उ० पु०	आनि	आव	आम

## आत्मनेपद

प्र० पु०	ताम्	इताम्	अन्ताम्
म० पु०	स्व	इथाम्	ध्वम्
उ० पु०	ऐ	आवहै	आमहै

नोट—दूसरे, तीसरे, पाँचवें, आठवें और नवें गण की धातुओं के उपरान्त परस्मैपद में ऊपर लिखे ही प्रत्यय लगते हैं, केवल म० पु० एकवचन में 'हि' जोड़ा जाता है। इन गणों में आत्मनेपद में ये प्रत्यय लगते हैं—

प्र० पु०	ताम्	आताम्	आताम्
म० पु०	स्व	आथाम्	ध्वम्
उ० पु०	ऐ	आवहै	आमहै

## (ग) विधिलिङ्

## परस्मैपद

प्र० पु०	ईत्	ईताम्	ईयु
म० पु०	ई	ईतम्	ईत
उ० पु०	ईयम्	ईव	ईम

## आत्मनेपद

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	इत	ईयाताम्	ईरन्
म० पु०	ईथा	ईयाथाम्	ईध्वम्
उ० पु०	ईय	ईवहि	ईमहि

नोट—दूसरे, तीसरे, पाँचवे, आठवे और नवे गण की धातुओं के उपरान्त आत्मनेपद मे ये प्रत्यय लगते हैं—

प्र० पु०	यात्	याताम्	यु
म० पु०	या	यातम्	यात
उ० पु०	याम	याव	याम

## (घ) अनद्यत्तभूत (लङ्)

## परस्मैपद

प्र० पु०	त्	ताम्	अन्
म० पु०	स	तम्	त
उ० पु०	अम्	व	म

## आत्मनेपद

प्र० पु०	व	इताम्	अन्त
म० पु०	था	इथाम्	ध्वम्
उ० पु०	इ	वहि	महि

नोट—दूसरे, तीसरे, पाँचवें, आठवे और नवे गण की धातुओं के उपरान्त आत्मनेपद मे ये प्रत्यय लगते हैं—

प्र० पु०	त	आताम्	अत
म० पु०	था	आथाम्	ध्वम्
उ० पु०	इ	वहि	महि

## (च) परोक्षभूत (लिट्)

## परस्मैपद

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अ	अतु	उ
म० पु०	थ	अथु	अ
उ० पु०	अ	व	म

## आत्मनेपद

प्र० पु०	ए	आते	इरे
म० पु०	से	आथे	ध्वे
उ० पु०	ए	वहे	महे

नोट—परोक्ष भूत के एक प्रकार के रूप इन प्रत्ययों को जोड़ कर बनते हैं। दूसरे प्रकार के रूप घातु में कृ, भू अथवा मस के रूप जोड़ कर बनते हैं। इस दशा में घातु और इन रूपों के बीच के—आम्—जोड़ दिया जाता है। जिस पद की घातु होती है, उसी पद के रूप जोड़े जाते हैं, जैसे—ईड् घातु से ईडाञ्चक्रे, ईडाम्बभूव, ईडामास आदि।

## (छ) सामान्यभूत (लुङ्)

सामान्यभूत के रूप संस्कृत में सात प्रकार के होते हैं, कुछ किसी गण की घातुओं में लगते हैं, कुछ किसी में। इन सात प्रकार के प्रत्ययों में भी कुछ भेद होता है। उदाहरणार्थ, प्रथम प्रकार के सामान्यभूत और अनद्यतनभूत के प्रत्ययों में केवल प्र० पु० के बहुवचन में अन् के स्थान में उस् हो जाता है। दूसरे प्रकार के सामान्यभूत के प्रत्यय ठीक अनद्यतनभूत के हैं, केवल घातु और प्रत्ययों के बीच में अ जोड़ दिया जाता है। तीसरे प्रकार के भी प्रत्यय अनद्यतनभूत के हैं, केवल प्रत्यय जोड़ने के पूर्व घातु का द्वित्व (अभ्यास) करके अ जोड़ते हैं।

सामान्यभूत के चौथे प्रकार के प्रत्यय ये हैं—

## परस्मैपद

प्र० पु०	सीत्	स्ताम्	सु
म० पु०	सी	स्तम्	स्त
उ० पु०	सम्	स्व	स्म

## आत्मनेपद

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	स्त	साताम्	सत
म० पु०	स्था	साथाम्	ध्वम्
उ० पु०	सि	स्वहि	स्महि

पञ्चम प्रकार के प्रत्यय ये हैं—

## परस्मैपद

प्र० पु०	ईत्	इष्टाम्	इषु
म० पु०	ई	इष्टम्	इष्ट
उ० पु०	इषम्	इष्व	इष्म

## आत्मनेपद

प्र० पु०	इष्ट	इष्टान्	इषत
म० पु०	इष्ठा	इष्थाश्चाम्	इषध्वम्
उ० पु०	इषि	इष्वाहि	इष्महि

छठे प्रकार के रूप केवल परस्मैपद में होते हैं और उसके प्रत्यय पाँच प्रकार के ही हैं, केवल उनके पूर्व सू और जोड़ दिया जाता है, सीत् (स ईत्) आदि।

सातवें प्रकार के प्रत्यय ये हैं—

## परस्मैपद

प्र० पु०	सत्	सताम्	सन्
म० पु०	स	सतम्	सत्
उ० पु०	सिन्	साव	साम

## आत्मनेपद

प्र० पु०	सत	साताम्	सन्त
म० पु०	सथा	साथाम्	सध्वम्
उ० पु०	सि	सावहि	सामहि

सात प्रकार के सामान्यभूत के रूप कौन किस धातु के होते हैं, यह व्याकरण प्रवेशिका में बताना कठिन है। गण-विशेषों की मुख्य-मुख्य धातुओं के जो रूप होते हैं, वे आगे दिखा दिये गये हैं।

## (ज) अनद्यतन भविष्य (लृट्)

## परस्मैपद

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	ता	तारौ	तार
म० पु०	तासि	तास्य	तास्य
उ० पु०	तास्मि	तास्व	तास्म

## आत्मनेपद

प्र० पु०	ता	तारौ	तार
म० पु०	तासे	तासाथे	ताध्वे
उ० पु०	ताहे	तास्वहे	तास्महे

धातुओ मे ये प्रत्यय जोडे जाते हैं। इनके प्रथम पुरुष के रूप कर्तृवाचक ऋकारान्त दातृ आदि (४४ ग) के प्रथमा पुल्लिङ्ग रूप हैं और मध्यम तथा उत्तम पुरुष मे प्रथमा एकवचन मे अस् (होना) के वर्तमान काल के रूप जोड देने से निकल सकते हैं।

## (झ) सामान्य भविष्य (लृट्)

## परस्मैपद

प्र० पु०	स्यति	स्यत	स्यन्ति
म० पु०	स्यसि	स्यथ	स्यथ
उ० पु०	स्यामि	स्याव	स्याम

## आत्मनेपद

प्र० पु०	स्यते	स्येते	स्यन्ते
म० पु०	स्यसे	स्येथे	स्यध्वे
उ० पु०	स्ये	स्यावहे	स्यामहे

## (ट) आशीर्लिङ्ग

## परस्मैपद

प्र० पु०	यात्	यास्ताम्	यासु
म० पु०	या	यास्तम्	यास्त
उ० पु०	यासम्	यास्व	यास्म

## आत्मनेपद

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	सीष्ठ	सीयास्ताम्	सीरन्
म० पु०	सीष्ठा	सीयास्थाम्	सीष्वम्
उ० पु०	सीय	सीवहि	सीमहि

## (ठ) क्रियातिपत्ति (लृङ्)

## परस्मैपद

प्र० पु०	स्यत्	स्यताम्	स्यन्
म० पु०	स्य	स्यतम्	स्यत
उ० पु०	स्यम्	स्याव	स्याम

## आत्मनेपद

प्र० पु०	स्यत	स्यताम्	स्यन्त
म० पु०	स्यथा	स्यथाम्	स्यष्वम्
उ० पु०	स्य	स्यावहि	स्यामहि

नोट १—इस प्रकार ऊपर क्यो लकारो के प्रत्यय दिये गये हैं। इनमे से अनद्यतन भूत, सामान्यभूत और क्रियातिपत्ति मे धातु के पूर्व 'अ' जोडा जाता है और परोक्षभूत मे धातु का द्वित्व (अभ्यास) कर दिया जाता है। अभ्यास करने के नियम ये है—

धातु के प्रथम स्वर को दो बार लाते हैं (जैसे उख् का अभ्यस्त रूप उख्), यदि प्रथम स्वर के पूर्व मे कोई व्यजन हो तो उस व्यजन सहित उस स्वर को लाते हैं (जैसे पस् से पपात्)। यदि आरम्भ मे सयुक्ताक्षर हो तो सयुक्ताक्षर के प्रथम व्यजन के साथ स्वर आता है (जैसे प्रच्छ से पप्रच्छ), किन्तु यदि सयुक्ताक्षर के आदि मे श्, ष्, स् मे से कोई हो तो दूसरा अर्थात् श्, ष् स् के बाद वाला ही व्यजन साथ वाले स्वर के साथ आता है (जैसे स्पर्ध से पस्पर्ध)। अभ्यास मे आने वाला अक्षर यदि ष्चवर्गों का द्वितीय अथवा चतुर्थ हो तो क्रम से उसके स्थान पर प्रथम अथवा तृतीय आ जाता है (जैसे छिद् से चिच्छिद्, भुज से बुभुज्)। कवर्गीय अक्षर का अभ्यास करना हो तो उसके जोड का चवर्गीय अक्षर लाना चाहिए। (जैसे कम् से चकम्, खन्=कखन्=चखन्)। इसी प्रकार ह् के

स्थान पर ज् (जैसे हु से जुहु) होता है। अभ्यास में दीर्घ स्वर का ह्रस्व (जैसे दा से ददा, नी से ननी), ऋ का अ (जैसे कृ से चकृ), ए अथवा ऐ का इ (जैसे सेव् से सिषेव्), और ओ अथवा औ का उ (जैसे गोप् से जुगोप, ढौक् से डुढौक्) हो जाता है।

नोट २—दस लकारों में से वर्तमान, आज्ञा, विधि और अनद्यतनभूत को सार्वधातुक कहते हैं और शेष छ को आर्षधातुक। सार्वधातुक लकारों के प्रत्यय जुड़ने के पूर्व धातुओं में प्रत्येक गण में अलग-अलग कुछ विकार किए जाते हैं—कमी-कमी धातु के रूप में कुछ परिवर्तन हो जाता है (जैसे गम् धातु का गच्छ हो जाता है, प्रच्छ का पृच्छ)। आर्षधातुओं में यह नहीं किया जाता (जैसे गम् से सामान्यभूत में अगमत् आदि, प्रच्छ से अप्राक्षीत् आदि)।

इस सोपान में केवल कर्तृवाच्य के रूप दिये जा रहे हैं। अन्य वाच्यों का विस्तार अगले सोपान में किया जायगा।

### म्वादिगण

१३७—म्वादिगण की प्रथम धातु 'म्' है, इसलिए इस गण का यह नाम पडा। दसों गणों में यह प्रमुख है। धातु पाठ में इसकी १०३५ धातुएँ गिनाई गई हैं। इस हिसाब से जितनी और नौ गणों की धातुएँ मिलाकर हैं, उनसे कहीं अधिक इस एक गण में हैं। संस्कृत में जो महत्त्व अकारान्त शब्दों का है वही, क्रिया में म्वादिगण का है।

इस गण की धातुओं के अनन्तर (प्रत्यय लगाने के पूर्व) शप् (अ) जोड़ दिया जाता है तथा धातु की उपधा का ह्रस्व स्वर अथवा धातु का अन्तिम स्वर गुणवर्ण में बदल जाता है, जैसे—म् धातु में वर्तमान के प्रत्यय जोड़ने हो तो म्+शप्(अ) +ति=म्+ऊ+अ+ति=म्+ओ (गुण) +अ+ति=म्+अव्+अ+ति= भवति, रूप प्रथम पुरुष के एकवचन में बनेगा। इसी प्रकार जि+शप्+ति=ज्+इ+अ+ति=ज्+ए+अ+ति=ज्+अय्+अ+ति=जयति, इसी प्रकार नयति आदि। उपधाभूत ह्रस्व स्वर का गुण, जैसे—बुष्+शप्+ति=बु+उ+ध्+अ+ति=बु+ओ+ध्+अ=ति+बोधति। जिन धातुओं की उपधाएँ 'अ' अथवा अन्त में अ होगा, उनमें गुणसन्धि करने से भी अ ही रहता है।

## १३८—परस्मैपदी भू—होना

वर्तमान—लट

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	भवति	भवत	भवन्ति
म० पु०	भवसि	भवथ	भवथ
उ० पु०	भवामि	भवाव	भवाम

आज्ञा—लोट (होबो, जाण्यो)

प्र० पु०	भवंतु	भवताम्	भवन्तु
म० पु०	भव	भवतम्	भवत
उ० पु०	भवानि	भवाव	भवाम

विधि—लिट्

प्र० पु०	भवेत्	भवेताम्	भवेयु-
म० पु०	भवे	भवेतम्	भवेत
उ० पु०	भवेयम्	भवेव	भवेम

अनद्यतनभूत—लृङ्

प्र० पु०	अभवत्	अभवताम्	अभवन्
म० पु०	अभव	अभवतम्	अभवत
उ० पु०	अभवम्	अभवाव	अभवाम

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	बभूव	बभूवतु	बभूवु
म० पु०	बभूविथ	बभूवथु	बभूव
उ० पु०	बभूव	बभूविथ	बभूविम

सामान्यभूत—लृङ्

प्र० पु०	अभूत्	अभूताम्	अभूवन्
म० पु०	अभू	अभूतम्	अभूत
उ० पु०	अभूवम्	अभूव	अभूम



## अनद्यतनभविष्य—लृट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० प्र०	भविता	भवितारौ	भवितार
म० पु०	भवितासि	भवितास्थ	भवितास्थ
उ० पु०	भवितास्मि	भवितास्व	भवितास्म

## सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	भविष्यति	भविष्यत	भविष्यन्त
म० पु०	भविष्यसि	भविष्यथ	भविष्यथ
उ० पु०	भविष्यामि	भविष्याव	भविष्याम

## आशीर्षिक

प्र० पु०	भूयात्	भूयास्ताम्	भूयासु
म० पु०	भूया	भूयास्तम्	भूयास्त
उ० पु०	भूयासम्	भूयास्व	भूयास्म

## क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अभविष्यत्	अभविष्यताम्	अभविष्यन्
म० पु०	अभविष्य	अभविष्यतम्	अभविष्यत
उ० पु०	अभविष्यम्	अभविष्याव	अभविष्याम

## १३६—भ्रूविगण की अन्य धातुओं के रूप

परस्मैपदी, गम्—जाना

## वर्तमान—लट्

प्र० पु०	गच्छति	गच्छत	गच्छन्ति
म० पु०	गच्छसि	गच्छथ	गच्छथ
उ० पु०	गच्छामि	गच्छाव	गच्छाम
लोट्	प्र० प्र०	एकवचन	गच्छतु
विधि	प्र० पु०	एकवचन	गच्छेत्
लङ्	प्र० पु०	एकवचन	अगच्छत्

## परोक्षभूत—लिट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	जगाम	जग्मतु	जग्मु
म० पु०	जगमिथ, जगन्थ	जग्मथु	जग्म
उ० पु०	जगाम, जगम	जग्मिव	जग्मिम

## सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अगमत्	अगमताम्	अगमन्
म० पु०	अगम	अगमतम्	अगमत
उ० पु०	अगमम्	अगमाव	अगमाम

## अनद्यतनभविष्य—लृट्

प्र० पु०	गन्ता	गन्तारौ	गन्तार
म० पु०	गन्तासि	गन्तास्थ	गन्तास्थ
उ० पु०	गन्तास्मि	गन्तास्व	गन्तास्म

## सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	गमिष्यति	गमिष्यत	गमिष्यन्ति
म० पु०	गमिष्याथ	गमिष्यथ	गमिष्यथ
उ० पु०	गमिष्याम	गमिष्याव	गमिष्याम

## आशीर्लिङ्

प्र० पु०	गम्यात्	गम्यास्ताम्	गम्यासु
म० पु०	गम्या	गम्यास्तम्	गम्यास्त
उ० पु०	गम्यासम्	गम्यास्व	गम्यास्म

## क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अगमिष्यत्	अगमिष्यताम्	अगमिष्यन्
म० पु०	अगमिष्य	अगमिष्यतम्	अगमिष्यत
उ० पु०	अगमिष्यम्	अगमिष्याव	अगमिष्याम

परस्मैपदी—गौ—गाना

वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	गायति	गायत	गायन्ति
म० पु०	गायसि	गायथ	गायथ
उ० पु०	गायामि	गायाव	गायाम
लोट्	प्र० पु०	एकवचन	गायतु
विधि	प्र० पु०	एकवचन	गायत्
लङ्	प्र० पु०	एकवचन	अगायत्

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	जगौ	जगतु	जगु
म० पु०	जगिथ, जगाथ	जगतु	जग
उ० पु०	जगौ	जगितु	जगिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अगासीत्	अगासिष्टाम्	अगासिषु
म० पु०	अगासी	अगासिष्टम्	अगासिष्ट
उ० पु०	अगासिषम्	अगासिष्व	अगासिष्व

अनद्यतनभविष्य—लृट्

प्र० पु०	गाता	गातारौ	गातार
म० पु०	गातासि	गातास्थ	गातास्थ
उ० पु०	गातास्मि	गातास्व	गातास्म

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	गास्यति	गास्यत	गास्यन्ति
म० पु०	गास्यसि	गास्यथ	गास्यथ
उ० पु०	गास्यामि	गास्याव	गास्याम

१ ग्लै (प०, क्षीण होना), घ्यै (प०, ध्यान करना), ग्लै (प०, मुरझाना) के रूप नै की तरह होते हैं।

## आशीलिङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	गेयात्	गेयास्ताम्	गेयासु
म० पु०	गेया	गेयास्तम्	गेयास्त
उ० पु०	गेयासम्	गेयास्व	गेयास्म
लृङ्	अगास्यत्		

## परस्मैपदा

जि—जीतना

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	जयति	जयत	जयन्ति
म० पु०	जयसि	जयथ	जयथ
उ० पु०	जयामि	जयाथ	जयाम
लोट्	प्र० पु०	एकवचन	जयतु
विधि	प्र० पु०	एकवचन	जयेत्
लङ्	प्र० पु०	एकवचन	अजयत्

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	जिगाय	जिग्यतु	जिग्यु
म० पु०	जिगयिथ	जिग्यथु	जिग्य
उ० पु०	जिगाय, जिगय	जिग्यिथ	जिग्यिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अजैषीत्	अजैष्टाम्	अजैषु
म० पु०	अजैषी	अजैष्टम्	अजैष्ट
उ० पु०	अजैषम्	अजैष्ठ	अजैष्ठम

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	जेता	जेतारौ	जेतार
म० पु०	जेतासि	जेतास्थ	जेतास्थ
उ० पु०	जेतास्मि	जेतास्व	जेतास्म

सामान्यभविष्य—लृट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	जेष्यति	जेष्यत	जेष्यन्ति
म० पु०	जेष्यसि	जेष्यथ	जेष्यथ
उ० पु०	जेष्यामि	जेष्याव	जेष्याम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	जीयात्	जीयास्ताम्	जीयासु
म० पु०	जीया	जीयास्तम्	जीयास्त
उ० पु०	जीयासम्	जीयास्व	जीयास्म

क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अजेष्यत्	अजेष्यताम्	अजेष्यन्
म० पु०	अजेष्य	अजेष्यतम्	अजेष्यत
उ० पु०	अजेष्यम्	अजेष्याम	अजेष्याम

परस्मैपदी

दृश—दिखना

दर्शनान—लट्

प्र० पु०	पश्यति	पश्यत	पश्यन्ति
म० पु०	पश्यसि	पश्यथ	पश्यथ
उ० पु०	पश्यामि	पश्याव	पश्याम
लोट्	प्र० पु०	एकवचन	पश्यतु
विधि	प्र० पु०	एकवचन	पश्येत्
लङ्	प्र० पु०	एकवचन	अपश्यत्

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	ददर्श	ददृशतु	ददृशु
म० पु०	ददर्शिसि, ददृष्ट	ददृशथु	ददृश
उ० पु०	ददर्शामि	ददृशिव	ददृशिम

## सामान्यभूत—लुङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	{ अदशत् अद्राक्षीत्	{ अदर्शताम् अद्राष्टाम्	{ अदर्शन् अद्राक्षु
म० पु०	{ अदर्श अद्राक्षी	{ अदर्शतम् अद्राष्टम्	{ अदर्शत अद्राष्ट
उ० पु०	{ अदर्शम् अद्राक्षम	{ अदर्शवि अद्राक्ष्व	{ अदर्शामि अद्राक्षम

## अनद्यतनभविष्य—लृट्

प्र० पु०	द्रष्टा	द्रष्टारौ	द्रष्टार
म० पु०	द्रष्टासि	द्रष्टास्य	द्रष्टास्थ
उ० पु०	द्रष्टास्मि	द्रष्टास्व	द्रष्टास्म

## सामान्यभावष्य—लृट्

प्र० पु०	द्रक्ष्यति	द्रक्ष्यत	द्रक्ष्यन्ति
म० पु०	द्रक्ष्यसि	द्रक्ष्यथ	द्रक्ष्यथ
उ० पु०	द्रक्ष्यामि	द्रक्ष्याव	द्रक्ष्याम

## आशीर्लिङ्

प्र० पु०	दृश्यात्	दृश्यास्ताम्	दृश्यासु
म० पु०	दृश्या	दृश्यास्तम्	दृश्यास्त
उ० पु०	दृश्यासम्	दृश्यास्व	दृश्यास्म

## क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अद्रक्ष्यत्	अद्रक्ष्यताम्	अद्रक्ष्यन्
म० पु०	अद्रक्ष्य.	अद्रक्ष्यतम्	अद्रक्ष्यत
उ० पु०	अद्रक्ष्यम्	अद्रक्ष्याव	अद्रक्ष्याम

उभयपदीः धृ—धरना

परस्मैपद

वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	धरति	वरत	धरन्ति
म० पु०	धरसि	धरथ	धरथ
उ० पु०	धरामि	धराव	धराम
लोट्	प्र० पु०	एकवचन	धरथु
विधि	प्र० पु०	एकवचन	धरेत्
लङ्	प्र० पु०	एकवचन	अधरत्

परोक्षभूत—लिङ्

प्र० पु०	दधार	दधतु	दधु
म० पु०	दधर्थ	दधथु	दध
उ० पु०	दधार, दधर	दधिव	दधिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अघार्षीत्	अघार्ष्टाम्	अघार्षु
म० पु०	अघार्षी	अघार्ष्टम्	अघार्ष्ट
उ० पु०	अघार्षम्	अघार्ष्व	अघार्ष्व
लुट्	प्र० पु०	एकवचन	घर्ता
लृट्	प्र० पु०	एकवचन	घरिष्यति

आशीलिङ्

प्र० पु०	धियात्	धियास्ताम्	धियासु
म० पु०	धिया	धियास्तम्	धियास्त
उ० पु०	धियासम्	धियास्व	धियास्म

१ त् (उ०, पार करना), भृ (उ०, भरण-पोषण करना), सृ (प० चलना), स्मृ (प०, स्मरण करना), हृ (उ०, हरण करना) के रूप धृ के समान होते हैं।

## क्रियातिपत्ति—लृङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अघरिष्यत्	अघरिष्यताम्	अघरिष्यन्
म० पु०	अघरिष्य	अघरिष्यतम्	अघरिष्यत
उ० पु०	अघरिष्यम्	अघरिष्याव	अघरिष्याम

## आत्मनेपद

## वर्तमान—लट्

प्र० पु०	घरते	घरेते	घरन्ते
म० पु०	घरसे	घरेथे	घरध्वे
उ० पु०	घरे	घरावहे	घरामहे
लोट्	प्र० पु०	एकवचन	घरताम्
विधि	प्र० पु०	एकवचन	घरेत
लङ्	प्र० पु०	एकवचन	अघरत

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	दध्रे	दध्राते	दधिरे
म० पु०	दधिषे	दध्राथे	दधिध्वे
उ० पु०	दध्रे	दधिवहे	दधिमहे

## सामान्यभूत—लङ्

प्र० पु०	अघृत	अघृषानाम्	अघृषत
म० पु०	अघृष	अघृषायाम्	अघृष्वम्
उ० पु०	अघृषि	अघृष्वहि	अघृष्महि

## अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	घर्ता	घर्तारौ	घर्तार
म० पु०	घर्तासे	घर्तासाथे	घर्ताध्वे
उ० पु०	घर्ताहि	घर्तास्वहे	घर्तास्महे

## सामान्यभविष्य—लृङ्

प्र० पु०	घरिष्यते	घरिष्येते	घरिष्यन्ते
म० पु०	घरिष्यसे	घरिष्येथे	घरिष्यध्वे
उ० पु०	घरिष्ये	घरिष्यावहे	घरिष्यामहे



आशीर्लिङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	घृषीष्ट	घृषीयास्ताम्	घृषीरन्
म० पु०	घृषीष्ठा	घृषीयास्थाम्	घृषीध्वम्
उ० पु०	घृषीय	घृषीवहि	घृषीमहि

क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अघरिष्यत	अघरिष्येताम्	अघरिष्यन्त
म० पु०	अघरिष्यथा	अघरिष्येथाम्	अघरिष्यध्वम्
उ० पु०	अघरिष्ये	अघरिष्यावहि	अघरिष्यामहि

उभयपदौ नी—ले जान्

परस्मैपद

वर्तमान—लृट्

प्र० पु०	नयति	नयन्	नयन्ति
म० पु०	नयसि	नयथ	नयथ
उ० पु०	नयामि	नयाव	नयाम
लोट्	प्र० पु०	एकवचन	नयतु, नयतात्
विधि	प्र० पु०	एकवचन	नयेत्
लङ्	प्र० पु०	एकवचन	अनयत्

परौक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	निनाय	निन्यतु	निन्यु
म० पु०	निनयिथ, निनेथ	निन्यथु	निन्य
उ० पु०	निनाय, निनय	निन्यिव	निन्यिम

सामान्यभूत—लृङ्

प्र० पु०	अनैषीत्	अनैष्टाम्	अनैषु
म० पु०	अनैषी	अनैष्टम्	अनैष्ट
उ० पु०	अनैषम्	अनैष्व	अनैष्व

## अनद्यतनभविष्य—लृट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	नेता	नेतारौ	नेतार
म० पु०	नेतासि	नेतास्थ	नेतास्थ
उ० पु०	नेतास्मि	नेतास्व	नेतास्म

## सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	नेष्यति	नेष्यत	नेष्यन्ति
म० पु०	नेष्यसि	नेष्यथ	नेष्यथ
उ० पु०	नेष्यामि	नेष्याव	नेष्याम

## आशीर्लिङ्

प्र० पु०	नीयात्	नीयास्ताम्	नीयासु
म० पु०	नीया	नीयास्तम्	नीयास्त
उ० पु०	नीयासम्	नीयास्व	नीयास्म

## क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अनेष्यत्	अनेष्यताम्	अनेष्यन्
म० पु०	अनेष्य	अनेष्यतम्	अनेष्यत
उ० पु०	अनेष्यम्	अनेष्याव	अनेष्याम

## आत्मनेपद

## वर्तमान—लट्

प्र० पु०	नयते	नयते	नयन्ते
म० पु०	नयसे	नयथे	नयध्वे
उ० पु०	नये	नयावहे	नयामहे
लोट्	प्र० पु०	एकवचन	नयताम्
विधि	प्र० पु०	एकवचन	नयेत
लङ्	प्र० पु०	एकवचन	अनयत

परोक्षभूत—लिट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	निन्ये	निन्याते	निन्यिरे
म० पु०	निन्यिषे	निन्याथे	निन्यिध्वे, ह्वे
उ० पु०	निन्ये	निन्यिवहे	निन्यिमहे

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अनेष्ट	अनेषाताम्	अनेषत
म० पु०	अनेष्टा	अनेषाथाम्	अनेष्वम्
उ० पु०	अनेषि	अनेष्वहि	अनेष्महि

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	नेता	नेतारो	नेतार
म० पु०	नेतासे	नेतासाथे	नेताध्वे
उ० पु०	नेताहे	नेतास्वहे	नेतास्महे

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	नेष्यते	नेष्येते	नेष्यन्ते
म० पु०	नेष्यसे	नेष्यथे	नेष्यध्वे
उ० पु०	नेष्ये	नेष्यावहे	नेष्यामहे

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	नेषीष्ट	नेषीयास्ताम्	नेषीरन्
म० पु०	नेषीष्टा	नेषीयास्थाम्	नेषीध्वम्
उ० पु०	नेषीय	नेषीवहि	नेषीमहि

क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अनेष्यत	अनेष्येताम्	अनेष्यन्त
म० पु०	अनेष्यथा	अनेष्येथाम्	अनेष्यध्वम्
उ० पु०	अनेष्ये	अनेष्यावहि	अनेष्यामहि

## परस्मैपदी

पठ्—पठना

वर्तमान—लट

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	पठति	पठत	पठन्ति
म० पु०	पठसि	पठथ	पठथि
उ० पु०	पठामि	पठाव	पठाम
लोट्	प्र० पु०	एकवचन	पठतु, पठतात्

विधिलिङ्

प्र० पु०	पठेत्	पठेताम्	पठेयु
म० पु०	पठे	पठेत्तम्	पठेत
उ० पु०	पठेयम्	पठेव	पठेम

अपठत्तनभूत—लङ्

प्र० पु०	अपठत्	अपठताम्	अपठन्
म० पु०	अपठ	अपठतम्	अपठत
उ० पु०	अपठम	अपठाव	अपठाम

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	पपाठ	पेठतु	पेठु
म० पु०	पैठिथ	पेठथु	पेठ
उ० पु०	पपाठ, पपठ	पेठिव	पेठिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अपाठीत्	आपाठिष्टाम्	अपाठिषु
म० पु०	अपाठी	अपाठिष्टम्	अपाठिष्ट
उ० पु०	अपाठिषम्	अपाठिष्वा	अपाठिष्म

## अनद्यतनभविष्य—लृट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	पठिता	पठितारौ	पठितार
म० पु०	पठितासि	पठितास्थ	पठितास्थ
उ० पु०	पठितास्मि	पठितास्व	पठितास्म

## सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	पठिष्यति	पठिष्यत	पठिष्यन्ति
म० पु०	पठिष्यसि	पठिष्यथ	पठिष्यथ
उ० पु०	पठिष्यामि	पठिष्याव	पठिष्याम

## आशीलिङ्

प्र० पु०	पठघात्	पठघास्ताम्	पठघासु
म० पु०	पठघा	पठघास्तम्	पठघास्त
उ० पु०	पठघासम्	पठघास्व	पठघास्म

## क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अपठिष्यत्	अपठिष्यताम्	अपठिष्यन्
म० पु०	अपठिष्य	अपठिष्यतम्	अपठिष्यत
उ० म०	अपठिष्यम्	अपठिष्याव	अपठिष्याम

## परस्मैपदी

पा (पिब्)—पीना

## वर्तमान—लट्

प्र० पु०	पिबति	पिबत	पिबन्ति
म० पु०	पिबसि	पिबथ	पिबथ
उ० पु०	पिबामि	पिबाव	पिबाम
लोट्	प्र० पु०	एकवचन	पिबतु, पिबतात्
बिधि	प्र० पु०	एकवचन	पिबेत्
लङ्	प्र० पु०	एकवचन	अपिबत्

## परोक्षभूत—लिट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	पपौ	पपतु	पपु
म० पु०	पपिथ, पपाथ	पपथु	पप
उ० पु०	पपौ	पपिव	पपिम

## सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अपात्	अपाताम्	अपु
म० पु०	अपा	अपातम्	अपात
उ० पु०	अपाम्	अपाव	अपाम

## अनद्यतनभविष्य—लृट्

प्र० पु०	पाता	पातारौ	पातार
म० पु०	पातासि	पातास्थ	पातास्थ
उ० पु०	पातास्मि	पातास्व	पातास्म

## स्वामीभविष्य—लृट्

प्र० पु०	पास्यति	पास्यत	पास्यन्ति
म० पु०	पास्यसि	पायस्थ	पास्यथ
उ० पु०	पास्यामि	पास्याव	पास्याम्

## आशीर्लङ्

प्र० पु०	पेयात्	पेयास्ताम्	पेयासु
म० पु०	पेया	पेयास्तम्	पेयास्त
उ० पु०	पेयासम्	पेयास्व	पेयास्म

## क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अपास्यत्	अपास्यताम्	अपास्यन्
म० पु०	अपास्य	अपास्यतम्	अपास्यत
उ० पु०	अपास्यम्	अपास्याव	अपास्याम

आत्मनेपदी

लम्—पाना

वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	लभते	लभेते	लभन्ते
म० पु०	लभसे	लभथे	लभध्वे
उ० पु०	लभे	लभावहे	लभामहे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	लभताम्	लभेताम्	लभन्ताम्
म० पु०	लभस्व	लभेथाम्	लभध्वम्
उ० पु०	लभै	लभावहे	लभामहे

विधिलिङ्

प्र० पु०	लभेत	लभेयाताम्	लभेरन्
म० पु०	लभेथा	लभेयाथाम्	लभेध्वम्
उ० पु०	लभेय	लभेवहि	लभेमहि

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अलभत	अलभेताम्	अलमन्त
म० पु०	अलभथा	अलभेथाम्	अलमध्वम्
उ० पु०	अलभे	अलभावहि	अलमामहि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	लेभे	लेमाते	लेभिरे
म० पु०	लेभिषे	लेमाथे	लेभिध्वे
उ० पु०	लेभे	लेभिवहे	लेभिमहे

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अलब्ध	अलप्साताम्	अलप्सत
म० पु०	अलब्धा	अलप्साथाम्	अलब्ध्वम्
उ० पु०	अलप्सि	अलप्स्वहि	अलप्समहि

## अनद्यतनभविष्य—लृट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	लब्धा	लब्धारौ	लब्धार
म० पु०	लब्धासे	लब्धासाथे	लब्धाध्वे
उ० पु०	लब्धाहे	लब्धास्वहे	लब्धास्महे

## सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	लप्स्यते	लप्स्येते	लप्स्यन्ते
म० पु०	लप्स्यसे	लप्स्यथे	लप्स्यध्वे
उ० पु०	लप्स्ये	लप्स्यावहे	लप्स्यामहे

## आशीर्लिङ्

प्र० पु०	लप्सीष्ट	लप्सीय्यरताम्	लप्सीरन्
म० पु०	लप्सीष्ठा	लप्सीयास्थाम्	लप्सीध्वम्
उ० पु०	लप्सीय	लप्सीवहि	लप्सीमहि

## क्रियातिपाति—लृङ्

प्र० पु०	अलप्स्यत	अलप्स्येताम्	अलप्स्यन्त
म० पु०	अलप्स्यथा	अलप्स्येथाम्	अलप्स्यध्वम्
उ० पु०	अलप्स्ये	अलप्स्यावहि	अलप्स्यामहि

## आत्मनेपदी

वृत्—होना

## वर्तमान—लट्

प्र० पु०	वर्तते	वर्तते	वर्तन्ते
म० पु०	वर्तसे	वर्तथे	वर्तध्वे
उ० पु०	वर्ते	वर्तावहे	वर्तामहे
लोट्	प्र० पु०	एकवचन	वर्तताम्
विधि	प्र० पु०	एकवचन	वर्तते
लङ्	प्र० पु०	एकवचन	अवर्तत



परोक्षभूत—लिट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	ववृते	ववृताते	ववृतिरे
म० पु०	ववृतिषे	ववृताथे	ववृतिध्वे
उ० पु०	ववृते	ववृतिवहे	ववृतिमहे

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	{ अवर्तिष्ट अवृतत्	{ अवर्तिषाताम् अवृतताम्	{ अवर्तिषत अवृतन्
म० पु०	{ अवर्तिष्ठा अवृत	{ अवर्तिषाथाम् अवृततम्	{ अवर्तिध्वम्, ढ्वम् अवृतत
उ० पु०	{ अवर्तिषि अवृतम्	{ अवर्तिष्वहि अवृताव	{ अवर्तिष्महि अवृताम
लृट्	प्र० पु०	एकवचन	वर्तिता

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	वर्तिष्यते	वर्तिष्येते	वर्तिष्यन्ते
म० पु०	वर्तिष्यसे	वर्तिष्येथे	वर्तिष्यध्वे
उ० पु०	वर्तिष्ये	वर्तिष्यावहे	वर्तिष्यामहे

अथवा

प्र० पु०	वत्स्यति	वत्स्यंत	वत्स्यन्ति
म० पु०	वत्स्यसि	वत्स्यथ	वत्स्यथ
उ० पु०	वत्स्यामि	वत्स्याव	वत्स्यामि

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	वर्तिषोष्ट	वर्तिषीयास्ताम्	वर्तिषीरन्
म० पु०	वर्तिषीष्ठा	वर्तिषीयास्थाम्	वर्तिषीध्वम्
उ० पु०	वर्तिषीय	वर्तिषीवहि	वर्तिषीमहि

१ लुङ्, लृट् तथा लृङ् मे यह परस्मैपदी भी हो जाती है ।

## क्रियातिपत्ति—लृङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अवतिष्यत	अवतिष्येताम्	अवतिष्यन्त
म० पु०	अवतिष्यथा	अवतिष्येथाम्	अवतिष्यध्वम्
उ० पु०	अवतिष्य	अवतिष्यावहि	अवतिष्यामहि

## अथवा

प्र० पु०	अवत्स्यत्	अवत्स्यताम्	अवत्स्यन्
म० पु०	अवत्स्यं	अवत्स्यंतम्	अवत्स्यत
उ० पु०	अवत्स्यम्	अवत्स्यन्त	अवत्स्यामि

## उभयपदी

## श्वि—सहस्रात् लेना

## परस्मैपद

## वतमान—लट्

प्र० पु०	श्रयति	श्रयत	श्रयन्ति
म० पु०	श्रयसि	श्रयथ	श्रयथ
उ० पु०	श्रयामि	श्रयाव	श्रयाम
लोट्	प्र० पु०	एकवचन	श्रयतु
विधि	प्र० पु०	एकवचन	श्रयेत्
लङ्	प्र० पु०	एकवचन	अश्रयत्

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	शिश्राय	शिश्रियतु	शिश्रियु
म० पु०	शिश्रियथ	शिश्रियथु	शिश्रिय
उ० पु०	शिश्राय, शिश्रिय	शिश्रियिष	शिश्रियिम

## सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अशिश्रियत्	अशिश्रियताम्	अशिश्रियन्
म० पु०	अशिश्रिय	अशिश्रियतम्	अशिश्रियत
उ० पु०	अशिश्रियम्	अशिश्रियाव	अशिश्रियाम

## अनद्यतनभविष्य—लुट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	श्रियता	श्रियतारौ	श्रियतार
म० पु०	श्रियतासि	श्रियतास्थ	श्रियतास्थ
उ० पु०	श्रियतास्मि	श्रियतास्व	श्रियतास्म

## सामान्यभविष्य—लुट्

प्र० पु०	श्रियिष्यति	श्रियिष्यत	श्रियिष्यन्ति
म० पु०	श्रियिष्यसि	श्रियिष्यथ	श्रियिष्यथ
उ० पु०	श्रियिष्यामि	श्रियिष्याव	श्रियिष्याम

## आशीर्लिङ्

प्र० पु०	श्रीयात्	श्रीयास्ताम्	श्रीयासु
म० पु०	श्रीया	श्रीयास्तम्	श्रीयास्त
उ० पु०	श्रीयासम्	श्रीयास्व	श्रीयास्म

## क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अश्रियिष्यत्	अश्रियिष्यताम्	अश्रियिष्यन्
म० पु०	अश्रियिष्य	अश्रियिष्यतम्	अश्रियिष्यत
उ० पु०	अश्रियिष्यम्	अश्रियिष्याव	अश्रियिष्याम

## आत्मनेपद

## वर्तमान—लट्

प्र० पु०	श्रयते	श्रयन्ते	श्रयन्ते
म० पु०	श्रयसे	श्रयथे	श्रयध्वे
उ० पु०	श्रये	श्रयावहे	श्रयामहे
लोट्	प्र० पु०	एकवचन	श्रयाताम्
विधि	प्र० पु०	एकवचन	श्रयेत्
लृङ्	प्र० पु०	एकवचन	अश्रयत्

## परोक्षभूत—लिट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	शिश्चिये	शिश्चियाते	शिश्चियिरे
म० पु०	शिश्चियिष	शिश्चियाथे	शिश्चियिध्वे-द्वे
उ० पु०	शिश्चिये	शिश्चियिवहे	शिश्चियिमहे

## सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अशिश्चियत	अशिश्चियेताम्	अशिश्चियन्त
म० पु०	अशिश्चियथा	अशिश्चियेथान्	अशिश्चियध्वम्
उ० पु०	अशिश्चिये	अशिश्चियेविहि	अशिश्चियामहि

## अनद्यतनभविष्य—लृट्

प्र० पु०	श्रियिता	श्रियितारौ	श्रियितार
म० पु०	श्रियितासे	श्रियितासाथे	श्रियिताध्वे
उ० पु०	श्रियिताहे	श्रियितास्वहे	श्रियितास्महे

## सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	श्रियिष्यते	श्रियिष्येते	श्रियिष्यन्ते
म० पु०	श्रियिष्यसे	श्रियिष्येथे	श्रियिष्यध्वे
उ० पु०	श्रियिष्ये	श्रियिष्यावहे	श्रियिष्यामहे
आशी०	प्र० पु०	एकवचन	श्रियिषीष्ट
लृङ्	म० पु०	एकवचन	अश्रियिष्यत

## परस्मैपदी

श्रु—मुनना

## वर्तमान—लट्

प्र० पु०	शृणोति	शृणुत	शृण्वन्ति
म० पु०	शृणोषि	शृणुथ	शृणुथ
उ० पु०	शृणोमि	शृणुव , शृण्व	शृणुम , शृण्व

आज्ञा—लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	शृणोतु	शृणुताम्	शृण्वन्तु
म० पु०	शृणु	शृणुतुम्	शृणुत
उ० पु०	शृणवानि	शृणवाव	शृणवाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	शृणुयात्	शृणुयाताम्	शृणुयु
म० पु०	शृणुया	शृणुयातम्	शृणुयात
उ० पु०	शृणुयाम्	शृणुयाव	शृणुयाम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अशृणोत्	अशृणुताम्	अशृण्वन्
म० पु०	अशृणो	अशृणुतम्	अशृणुत
उ० पु०	अशृणवम्	अशृणुव, अशृण्व	अशृणुम, अशृण्म

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	शुश्राव	शुश्रुवतु	शुश्रुवु
म० पु०	शुश्राथ	शुश्रुवथु	शुश्रुव
उ० पु०	शुश्राव, शुश्रुव	शुश्रुविव	शुश्रुविम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अश्रोषीत्	अश्रोष्टाम्	अश्रोषु
म० पु०	अश्रोषी	अश्रोष्टम्	अश्रोष्ट
उ० पु०	अश्रोषम्	अश्रोष्व	अश्रोष्म
लृट्	श्रोता	श्रोतारौ	श्रोतार
लृट्	श्रोष्यति	श्रोष्यत	श्रोष्यन्ति
लृट्	श्रूयात्	श्रूयास्ताम्	श्रूयासु
लृङ्	अश्रोष्यत्	अश्रोष्यताम्	अश्रोष्यन्

## परस्मैपद

स्था—ठहरना

वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	तिष्ठति	तिष्ठत	तिष्ठन्ति
म० पु०	तिष्ठसि	तिष्ठथ	तिष्ठथ
उ० पु०	तिष्ठासि	तिष्ठाव	तिष्ठाम
लोट्	प्र० पु०	एकवचन	तिष्ठतु, तिष्ठतात्
विधि	प्र० पु०	एकवचन	तिष्ठेत्
लङ्	प्र० पु०	एकवचन	अतिष्ठत्

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	तस्थौ	तस्थतु	तस्थु
म० पु०	तस्थित, तस्थाथ	तस्थथु	तस्थ
उ० पु०	तस्थौ	तस्थिव	तस्थिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अस्थात्	अस्थाताम्	अस्थु
म० पु०	अस्थाथ	अस्थातम्	अस्थात
उ० पु०	अस्थाम्	अस्थाव	अस्थाम

अनद्यतनभविष्य—लृट्

प्र० पु०	स्थाता	स्थातारी	स्थातार
म० पु०	स्थातासि	स्थातास्य	स्थातास्य
उ० पु०	स्थातास्मि	स्थातास्व	स्थातास्म

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	स्थास्यति	स्थास्यत	स्थास्यन्ति
म० पु०	स्थास्यसि	स्थास्यथ	स्थास्यथ
उ० पु०	स्थास्यामि	स्थास्याव	स्थास्याम

## आशीलिङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहवचन
प्र० पु०	स्थेयात्	स्थेयास्ताम्	स्थेयासु
म० पु०	स्थेया	स्थेयास्तम्	स्थेयास्त
उ० पु०	स्थेयासम्	स्थेयास्व	स्थेयाम्

## क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अस्थास्यत्	अस्थाम्यताम्	अस्थास्यन्
म० पु०	अस्थास्य	अस्थाम्यतम्	अस्थास्यत
उ० पु०	अस्थास्यम्	अस्थाम्याव	अस्थाम्याम

१४०—भ्वादिगण की मुरय मातृआ की सूची और रूप का दिग्दशन—

क्रन्द् (प०)—रोना । लट्—क्रन्दति । लिट्—चक्रन्द चक्रन्दतु, चक्रन्दु, चक्रन्दथ । लृङ्—अक्रन्दीत्, अक्रन्दिष्ठांम्, अक्रन्दिषु । अक्रन्दी, अक्रन्दिष्ठांम्, अक्रन्दिष्ठां । अक्रन्दिषम्, अक्रन्दिष्व, अक्रन्दिष्म । लुट्—क्रन्दिता । लृट्—क्रन्दिष्यति । आशी०—क्रन्द्यात् । लृङ्—अक्रन्दिष्यत् ।

क्रीड् (प०)—खेलना । लट्—क्रीडति । लोट्—क्रीडतु । विधि—क्रीडेत् । लङ्—अक्रीडत्, अक्रीडताम्, अक्रीडन् । लिट्—चिक्रीड, चिक्रीडतु, चिक्रीडु, चिक्रीडिथ, चिक्रीडथु, चिक्रीड, चिक्रीडिव, चिक्रीडिम । लृङ्—अक्रीडीत्, अक्रीडिष्ठांम्, अक्रीडिषु । अक्रीडी, अक्रीडिष्ठांम्, अक्रीडिष्ठां । अक्रीडिषम्, अक्रीडिष्व, अक्रीडिष्म । लुट्—क्रीडिता । लृट्—क्रीडिष्यति । आशी०—क्रीडयात् । लृङ्—अक्रीडिष्यत् ।

कृश् (प०)—चिल्लाना, रोना । लट्—कृशति । लाट्—कृशतु । विधि—कृशेत् । लङ्—अकृशत् । लिट्—चुकृश, चुकृशतु, चुकृशु, चुकृशिथ, चुकृशथु, चुकृश । चुकृश, चुकृशिव, चुकृशिम । लृङ्—अकृशत, अकृशताम्, अकृशन् । अकृश, अकृशतम्, अकृशत

अक्रुशन्, अक्रुशाव, अक्रुशाम । लृट्—क्रोष्टा । लृट्—क्रोक्ष्यति ।  
आशी०—क्रुश्यात् । लृङ्—अक्रोक्ष्यत् ।

क्लम्<sup>१</sup> (प०)—थकना । लट्—क्लामति । लिट्—चक्लाम, चक्लमतु,  
चक्लमु । चक्लमिथ, चक्लमथु, चक्लम । चक्लाम-चक्लम,  
चक्लामिव, चक्लामिम । लुङ्—अक्लम, अक्लमताम्,  
अक्लमन् । लृट्—क्लमिता । लृट्—क्लमिष्यति । आशी०—  
क्लम्यात् ।

क्षम्<sup>१</sup> (आ०)—क्षमा करना । लट्—क्षमते, क्षमते, क्षमन्ते ।

लिट्—चक्षमे	चक्षमाते	चक्षमिरे
{ चक्षमिषे	चक्षमाथे	{ चक्षमिध्वे
{ चक्षसे		{ चक्षन्ध्वे
चक्षमे	{ चक्षमिवहे	{ चक्षमिमहे
	{ चक्षम्वहे	{ चक्षममहे

कम्प (आ०)—कंपना । लट्—कम्पते, कम्पेते, कम्पन्ते । लोट्—  
कम्पताम्, कम्पेताम्, कम्पन्ताम् । विधि—कम्पेत, कम्पेयाताम्,  
कम्पेरन् । लुङ्—अकम्पत, अकम्पेताम्, अकम्पन्त । अकम्पथा,  
अकम्पेथाम्, अकम्पध्वम् । अकम्पे, अकम्पावहि, अकम्पामहि । लिट्—  
चकम्पे, चकम्पाते, चकम्पिरे, चकम्पिषे, चकम्पाथे, चकम्पिध्वे ।  
चकम्पे, चकम्पिवहे, चकम्पिमहे । लुङ्—अकम्पिष्ट, अकम्पिषाताम्,  
अकम्पिषत । अकम्पिष्ठा, अकम्पिषाथाम्, अकम्पिध्वम् । अकम्पिषि,  
अकम्पिष्वहि, अकम्पिष्महि । लुङ्—कम्पिता, कम्पितारौ,  
कम्पितार । कम्पितासे, कम्पितासाथे, कम्पिताध्वे । कम्पिताहे,  
कम्पितास्वहे, कम्पितास्महे । लृट्—कम्पिष्यते, कम्पिष्येते,  
कम्पिष्यन्ते । कम्पिष्यसे, कम्पिष्येथे, कम्पिष्यध्वे । कम्पिष्ये,

१ यह दिवादि गण मे भी है । वहाँ इसका रूप 'क्लाम्यति' इत्यादि है ।

२ यह भी विबादि मे होती है, और इसका रूप 'क्षाम्यति' इत्यादि होता



कम्पिष्यावहे, कम्पिष्यामहे । आशी०—कम्पिषीष्ट, कम्पिषीया-  
म्नाम, कम्पिषीरन् । लुङ्—अकम्पिष्यत्, अकम्पिष्येताम्,  
अकम्पिष्यन्त ।

काङ्क्ष (प०)—इच्छा करना । लट्—काङ्क्षति । लोट्—काङ्क्षतु । विधि०  
—काङ्क्षेत् । लङ्—अकाङ्क्षत् । लिट्—चकाङ्क्ष, चकाङ्क्षथु,  
चकाङ्क्षु । चकाङ्क्षिथ, चकाङ्क्षथु, चकाङ्क्ष । चकाङ्क्षे,  
चकाङ्क्षिव, चकाङ्क्षिम । लुङ्—अकाङ्क्षीत्, अकाङ्क्षिष्टाम्,  
अकाङ्क्षिषु । अकाङ्क्षी, अकाङ्क्षिष्टम्, अकाङ्क्षिष्ट ।  
अकाङ्क्षिषम्, अकाङ्क्षिष्व, अकाङ्क्षिष्म । लृट्—काङ्क्षिता ।  
नृट्—काङ्क्षिष्यति । आशी०—काङ्क्ष्यात् । लृङ्—अकाङ्क्षिष्यत् ।

काश् (आ०)—चमकना । लट्—काशते, काशेते, काशन्ति । लिट्—चकाशे,  
चकाशाते, चकाशिरे । चकाशिषे, चकाशाथे, चकाशिध्वे ।  
चकाशे, चकाशिवहे, चकाशिमहे । लुङ्—अकाशिष्ट, अकाशि-  
षाताम्, अकाशिषत । अकाशिष्ठा, अकाशिषाथाम्, अकाशि-  
ष्वम् । अकाशिषि, अकाशिष्विद्दि, अकाशिष्महि । लृट्—काशिता  
लृट्—काशिष्यते । आशी०—काशिषीष्ट । नृङ्—अकाशिष्यत् ।

खन् (उ०)—खनना । लट्—खनति, खनते । लिट्—चखान, चखन्तु,  
चखन् । चखनिथ, चखन्थे, चखन् । चखान, चखन, चखिनव, चखिनम ।  
चखने, चखनाते, चखिनरे । चखनिषे, चखनाथे, चखनिध्वे । चखने,  
चखिनवहे, चखिनमहे । लुङ्—अखनीत् अखनिष्टाम्, अखनिषु,  
अखानीत्, अखानिष्टाम्, अखानिषु । अखनिष्ट, अखनिषाताम्,  
अखनिषत । लृट्—खनिता । लृङ्—खनिष्यति, खनिष्यते ।  
आशी०—खन्यात्, खान्यात्, खनिषीष्ट ।

ग्लै (प०)—शीण होना । ग्लायति, ग्लायत, ग्लायन्ति । लिट्—जग्लौ,  
जग्लतु, जग्लु । जग्लिथ-जग्लाथ, जग्लथु, जग्ल । जग्लौ,  
जग्लिव, जग्लिम । लुङ्—अग्लासीत् । लृट्—ग्लायता । लृङ्—  
ग्लाम्यति । आशी०—ग्लाय्यात्, ग्लेयात् ।

चल् (प०)—चलना । लट्—चलति, चलत चलन्ति । लिट्—चचाल  
चेलतु चन् । चेलिथ, चेलथु, चेल । चचाल-चचल, चेलिव,

चेलिम । लुङ्—अचालीत् । लृट्—चलिता । लृट्—चलिष्यति ।  
आशी०—चल्यात् । लृङ्—अचलिष्यत् ।

ज्वल् (प०)—जलना । लट्—ज्वलति । लिट्—जज्वाल, जज्वलतु,  
जज्वलु । जज्वलिथ, जज्वलथु, जज्वल । जज्वाल-जज्वल,  
जज्वलिव, जज्वलिम । लुङ्—अज्वालीत्, अज्वालिष्टाम्,  
अज्वालिषु । लृट्—ज्वलिता । लृट्—ज्वलिष्यति । आशी०—  
ज्वल्यात् ।

डी' (आ०)—उडना । लट्—डयते, डयते, डयन्ते । लिट्—डिडचे,  
डिडघाते, डिड्यिरे । लुङ्—अडयिष्ये, अडयिषाताम्, अडयिषत ।  
लृट्—डयिता । लृट्—डयिष्यते । आशी०—डयिषीष्ट ।

यज् (प०)—छोडना । लट्—त्यजति, त्यजत, त्यजन्ति । लिट्—तत्याज,  
तत्यजतु, तत्यजु । तत्यजिथ-तत्यकथ, तत्यजथु, तत्यज । तत्याज-  
तत्यज, तत्यजिव, तत्यजिम । लुङ्—अत्याक्षीत्, अत्याष्टाम्,  
अत्याक्षु । अत्याक्षी, अत्याष्टम्, अत्याष्ट । अत्याक्षम्, अत्याक्ष्व,  
अत्याक्ष्म । लृट्—त्यक्ता, त्यक्तारौ, त्यक्तार लृट्—त्यक्ष्यति,  
त्यक्ष्यत, त्यक्ष्यन्ति । आशी०—त्यज्यात् ।

दह् (प०)—जलाना । लट्—दहति, दहत, दहन्ति । लिट्—ददाह,  
देहतु, देहु । देहिय-ददग्ध, देहथु, देह । ददाह-ददह, देहिव,  
देहिम्, लुङ्—अघाक्षीत्, अदाग्धाम्, अघाक्षु । अघाक्षी, अदा-  
ग्धम्, अदाग्ध । अघाक्षम्, अघाक्ष्व, अघाक्ष्म । लृट्—दग्धा,  
दग्धारौ, दग्धार । लृट्—घक्ष्यति, घक्ष्यत, घक्ष्यन्ति । आशी०  
—दह्यात् ।

ध्वै (प०)—ध्यान रखना । लट्—ध्यायति, ध्यायत, ध्यायन्ति । लिट्—  
दध्यौ, दध्युतु, दध्यु । दध्यिथ-दध्याथ, दध्यथु, दध्य । दध्यौ,  
दध्यिव, दध्यिम । लुङ्—अध्यासीत् अध्यासिष्टाम्, अध्यासिषु ।  
लृट्—ध्याता । लृट्—ध्यास्यति ।

१ यह दिवादिगणी भी है । वहाँ पर इसके रूप डीयते, डीयन्ते  
चलते हैं ।

पच् (उ०)—पकाना या पचाना । लट्—पचति, पचते ।

लिट्—परस्मैपद

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	पपाच	पेचतु	पेचु
म० पु०	पेचिथ, पपक्थ	पेचथु	पेच
उ० पु०	पपाच-पपच	पेचिव	पेचिम

लिट्—आत्मनेपद

प्र० पु०	पेचे	पेचाते	पेचिरे
म० पु०	पेचिषे	पेचाथे	पेचिध्वे
उ० पु०	पेच	पेचिवहे	पेचिमहे

लुङ्—आत्मनेपद

प्र० पु०	अपाक्षीत्	अपाक्षाम्	अपाक्षु
म० पु०	अपाक्षी	अपाक्षाम्	अपाक्षत
उ० पु०	अपाक्षम्	अपाक्ष्व	अपाक्षम

लुङ्—परस्मैपद

प्र० पु०	अपक्त	अपक्षाताम्	अपक्षत
म० पु०	अपक्था	अपक्षाथाम्	अपगध्वम्
उ० पु०	अपक्षि	अपक्ष्वहि	अपक्षमहि

लृट्—पक्ता, पक्तापि, पक्तार । लृट्—पश्यति, पश्यते । आशी०—पक्ष्यात् पक्षीष्ट । लृङ्—अपक्ष्यत्, अपक्ष्यत ।

पत् (प०)—गिरना । लट्—पतति । लिट्—पपात, पेततु, पेतु ।

लुङ्

प्र० पु०	अपप्तत्	अपप्तताम्	अपप्तन्
म० पु०	अपप्त	अपप्ततम्	अपप्तत
उ० पु०	अपप्तम	अपप्ताव	अपप्ताम

लुट्—पतिता । लृट्—पतिष्यति ।

फल् (प०)—फलना । लट्—फलति । लिट्—पफाल, फेलतु, फेलु । फेलिथ । लुङ्—अफालीत्, अफालिष्टाम्, अफालिषु । लृट्—फलिता । लृट्—फलिष्यति ।

फुल् (प०)—फूलना । लट्—फुलति । लिट्—पुफुल्ल, पुफुल्लेतु, पुफुल्लु । लुङ्—अफुल्लीत्, अफुल्लिष्टाम्, अफुल्लिषु । लृट्—फुल्लिता । लृट्—फुल्लिष्यति ।

बाष् (आ०)—पीडा देना । लट्—बाघते । लिट्—बबाघ, बबाघाते, बबाघिरे । लुङ्—अबाघिष्ट अबाघिषाताम् अबाघिषत । लृट्—बाघिता । लृट्—बाघिष्यते ।

बुध् (उ०)—जानना । लट्—बोधते, बोधते । लिट्—बुबोध, बुबुधे । लुङ्—अबुधत्, अबुधताम्, अबुधन् । अबोधोत्, अबोधिष्टाम्, अबोधिषु । अबोधिष्ट, अबोधिषाताम्, अबोधिषत । लृट्—बोधिता । लृट्—बोधिष्यति, बोधिष्यते । आशी०—बुध्यात्, बोधिषीष्ट ।

भज् (उ०)—सेवा करना । लट्—भजति, भजते । लिट्—बभाज, भेजतु, भेजु । भेजिथ-बभज्, भेजस्थु, भेज । बभाज-बभज, भेजिव, भेजिम । भजे, भेजाते, भेजिरे । भेजिषे, भेजाथे, भेजिध्वे । भेजे, भेजिवहे, भेजिमहे । लुङ्—अभाक्षीत्, अभाक्ताम्, अभाक्षु । अभाक्षी, अभाक्तम्, अभाक्त । अभाक्षम्, अभाक्ष्व, अभाक्ष्म । अभाक्त, अमक्षाताम्, अमक्षत । अमक्ष्या, अमक्षाथाम्, अमक्ष्वम् । अमक्षि, अमक्ष्वहि, अमक्ष्महि । लृट्—भक्ता । लृट्—भक्ष्यति, भक्ष्यते । आशी०—भज्यात्, भक्षीष्ट ।

भाष् (आ०)—बोलना । लट्—भाषते, भाषेते, भाषन्ते । लिट्—बभाषे, बभाषाते, बभाषिरे । बभाषिषे, बभाषाथे, बभाषिध्वे । बभाषे, बभाषिवहे, बभाषिमहे । लुङ्—अभाषिष्ट, अभाषिषाताम्,

१ यह दिवादिगणी भी है । वहाँ यह आत्मनेपद होती है और बुध्यते इत्यादि रूप चलता है ।

अभाषिषत । अभाषिष्ठा , अभाषिषाथाम्, अभाषिष्वम् । अभाषिषि,  
अभाषिष्वहि, अभाषिष्महि । लृट्—भाषिता । लृट्—भाषिष्यते ।  
आशी०—भाषिषीष्ट ।

भिष् (आ०)—भीख माँगना । लट्—मिक्षते । लिट्—बिमिक्षे, बिमि-  
क्षाते, बिमिक्षिरे । बिमिक्षिषे, बिमिक्षाथे, बिमिक्षिष्वे ।  
बिमिक्षे, बिमिक्षिवहे, बिमिक्षिमहे । लृट्—अभिमिक्षिष्ट, अभि-  
क्षिषाताम्, अभिमिक्षिषत । लृट्—मिक्षिता । लृट्—मिक्षिष्यते ।  
आशी०—मिक्षिषीष्ट ।

भूष्<sup>१</sup> (प०)—सजाना । लट्—भूषति । लिट्—बुभूष, बुभूषतु, बुभूषु ।  
लुङ्—अभूषीत्, अभूषिष्टाम्, अभूषिषु । लृट्—भूषिता । लृट्—  
भूषिष्यति । आशी०—भूष्यात्, भूष्यास्ताम्, भूष्यासु ।

भृष्<sup>१</sup> (उ०)—भरना या पालना-पोसना । लट्—भरति, भरते । लिट्—  
बभार, बभ्रतु, बभ्रु । बभरथ, बभ्रथु, बभ्र । बभार-बभर, बभूव,  
बभूम । बभ्रे, बभ्राते, बभ्रिरे । बभूव, बभ्राथे, बभूव्वे । बभ्रे, बभूवहे,  
बभूमहे । लुङ्—अभार्षीत्, अभार्षीत्, अभार्षु । अभार्षी,  
अभार्षीत्, अभार्षीत् । अभार्षीत्, अभार्षीत्, अभार्षीत् । अभार्षी,  
अभार्षीत्, अभार्षीत् । अभार्षीत्, अभार्षीत्, अभार्षीत् । अभार्षी,  
अभार्षीत्, अभार्षीत् । अभार्षीत्, अभार्षीत्, अभार्षीत् । अभार्षी,  
अभार्षीत्, अभार्षीत् । लृट्—भर्ता । लृट्—भरिष्यति, भरिष्यते ।  
आशी०—भ्रियात्, भूषीष्ट ।

भ्रष्<sup>१</sup> (आ०)—गिरना । लट्—भ्रशते । लिट्—बभ्रशे । लुङ्—  
अभ्रशत्, अभ्रशताम्, अभ्रशन् तथा अभ्रशिष्ट, अभ्रशिषाताम्,  
अभ्रशिषत । लृट्—भ्रशिता । लृट्—भ्रशिष्यते । आशी०—  
भ्रशिषीष्ट ।

१ यह धातु चुरादिगणी भी है । वहाँ यह उभयपदी है और भूषयति,  
भूषयते, इत्यादि रूप होते हैं ।

२ यह धातु जुहोत्यादिगणी भी है, वहाँ इसके रूप बिभ्रति, बिभ्रत , बिभ्रति  
इत्यादि रूप होते हैं ।

३ यह धातु दिवादिगणी भी है, वहाँ इसके अरयते इत्यादि रूप होते हैं ।

- (१) यह दिवादिगणी भी है। वहाँ यह परस्मैपदी होती है (भ्रश्यति)।  
 (२) भ्वादिगण मे लुङ् लकार मे इसके रूप परस्मैपद तथा आत्मनेपद दोनों मे चलते है।

भ्रम्<sup>१</sup> (प०)—भ्रमण करना। लट्—भ्रमति। लिट्—बभ्राम, भ्रेमतु, भ्रेमु। भ्रेमिथ, भ्रेमथु, भ्रेम। बभ्राम-बभ्रम, भ्रेमिव, भ्रेमिम तथा बभ्राम, बभ्रतु, बभ्रमु। बभ्रमिथ, बभ्रमथु, बभ्रम। बभ्राम-बभ्रम, बभ्रमिव, बभ्रमिम। लुङ्—भ्रमीत्। लुट्—भ्रमिता। लृट्—भ्रमिष्यति। आशी०—भ्रम्यात्।

मथ् (प०)—मथना। लट्—मथति। लिट्—ममाथ। लुङ्—अमथीत्। लुट्—मथिता। लृट्—मथिष्यति। आशी०—मथ्यात्।

मन्थ्<sup>१</sup> (प०)—मथना। लट्—मन्थति। लिट्—ममन्थ। लुङ्—अमन्थीत्। लुट्—मथिता। लृट्—मन्थिष्यति। आशी०—मथ्यात्।

मुद् (आ०)—प्रसन्न होना। लट्—मोदि। लिट्—मुमुदे। लुङ्—अमोदिष्ट। लुट्—मोदिता। लृट्—मोदिष्यते। आशी०—मोदिषीष्ट।

यज् (उ०)—यज्ञ करना, देवता की पूजा करना, सग करना या देना। लट्—यजति, यजते।

लिट्—परस्मैपद

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	इयाज	ईजतु	ईजु
म० पु०	{ इयजिथ इयजथु	ईजथु	ईज
उ० पु०	इयाज इयज	ईजिव	ईजिम

१ यह दिवादिगणी भी है। यहाँ पर लट्, लोट्, विधिलिङ् तथा लुङ् मे भेद पड जाता है।

२ यह ऋयादिगणी भी है। यहाँ मथ्नाति, मथ्नीत, मथ्न्ति इत्यादि रूप होते हैं।

लिट्—आत्मनेपद

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	ईजे	ईजाते	ईजिरे
म० पु०	ईजिषे	ईजाथे	ईजिध्वे
उ० पु०	ईजे	ईजिवहे	ईजिमहे

लुङ्—परस्मैपद

प्र० पु०	अयाक्षीत्	अयाष्टाम्	अयाक्ष
म० पु०	अयाक्षी	अयाष्टम्	अयाक्षे
उ० पु०	अयाक्षम्	अयाक्ष्व	अयाक्ष्म

लुङ्—आत्मनेपद

प्र० पु०	अयष्ट	अयक्षाताम्	अयक्षत
----------	-------	------------	--------

लुट्—यष्टा, यष्टारौ, यष्टार । लृट्—यक्ष्यति, यक्ष्यते । आशी०—  
इज्यात्, यक्षीष्ट ।

यत् (आ०)—प्रयत्न करना । लट्—यतते । लिट्—येते, येताते, येतिरे ।  
येतिषे, येताथे, येतिध्वे । येते, येतिवहे, येतिमहे । लुङ्—अयतिष्ट,  
अयतिषाताम्, अयतिषत । अयतिष्ठा, अयतिषाथाम्, अयतिध्वम् ।  
अयतिषि, अयतिष्वहि, अयतिष्महि । लुट्—यतिता । लृट्—यतिष्यते ।  
आशी०—यतिषीष्ट ।

याच् (उ०)—माँगना । लट्—याचति, याचते । लिट्—ययाच, यया-  
चतु, ययाचुः । ययाचिथ, ययाचथु, ययाच । ययाच, ययाचिथ  
ययाचिम । ययाचे, ययाचाते, ययाचिरे । ययाचिषे, ययाचाथे,  
ययाचिध्वे । ययाचे, ययाचिवहे, ययाचिमहे । लुङ्—अयाचीत्,  
अयाचिष्टाम्, अयाचिषु । अयाचिष्ट, अयाचिषाताम्, अयाचिषत ।  
लुट्—याचिता । लृट्—याचिष्यति, याचिष्यते ।

रम् (आ०)—शुरू करना, आलिङ्गन करना, अभिलाषा करना, जल्दबाजी  
मे काम करना । लट्—रमते । लिट्—रेमे, रेमाते, रेमिरे ।  
रेमिषे, रेमाथे, रेमिध्वे । रेमे, रेमिवहे, रेमिमहे । लुङ्—

अरब्ध, अरप्सताम्, अरप्सत । अरब्धा, अरप्साथाम्, अरब्धम् ।  
अरप्सि, अरप्स्वहि, अरप्स्महि । लुट्—रब्धा, रब्धारौ, रब्धार ।  
लृट्—रप्स्यते । आशी०—रप्सीष्ट । लृङ्—अरप्स्यत ।

रम् (आ०)—खेलना, हर्षित होना । लट्—रमते, रमेते, रमन्ते । लिट्—  
रेमे, रेमाते, रेमिरे । लुङ्—अरस्त, अरसाताम्, अरसत ।  
अरस्था, अरसाथाम्, अरध्वम् । अरसि, अरस्वहि, अरस्महि ।  
लुट्—रन्ता, रन्तारौ, रन्तार । लृट्—रस्यते । लृङ्—अरस्यत ।

रुह् (प०)—उगना, बढना, उठना । लट्—रोहति, रोहत, रोहन्ति ।  
लिट्—ररोह, ररुहतु, ररुहु । ररोहि, ररुह्यु, ररुह । ररोह,  
ररुहिव, ररुहिम । लुङ्—अरुक्षत्, अरुक्षताम्, अरुक्षन् । अरुक्ष,  
अरुक्षतम् । अरुक्षम्, अरुक्षाव, अरुक्षाम । लुट्—  
रोढा । लृट्—रोक्ष्यति ।

वद् (प०)—कहना । लट्—वदति ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	उवाद	ऊदतु	ऊदु
म० पु०	उवदथ	ऊदथु	ऊद
उ० पु०	उवाद, उवद	ऊदिव	ऊदिव

	लृङ्		
प्र० पु०	अवादीत्	अवादिष्टाम्	अवादिषु
म० पु०	अवादी	अवादिष्टम्	अवादिष्ट
उ० पु०	अवादिषम्	अवादिष्व	अवादिष्म

लुट्—वदिता । लृट्—वदिष्यति । आशी०—उच्चात् ।

वन्द् (आ०)—नमस्कार करना या स्तुति करना । लट्—वन्दते, वन्देते,  
वन्दन्ते । लिट्—ववन्दे, ववन्दाते, ववन्दिरे । लुङ्—अवन्दिष्ट,  
अवन्दिषाताम्, अवन्दिषत । लुट्—वन्दिता । लृट्—वन्दिष्यते ।  
आशी०—वन्दिषीष्ट ।



वप् (उ०) बोना, छितराना, कपडा बुनना, बाल बनाना । लट्—वपति, वपे ।

लिट्—परस्मैपद

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	उवाप	ऊपतु	ऊपु
म० पु०	उवपिथ-उवप्य	ऊपथु	ऊप
उ० पु०	उवाप-उवप	ऊपिव	ऊपिम

लिट्—आत्मनेपद

प्र० पु०	ऊपे	ऊपाते	ऊपिरे
म० पु०	ऊपिषे	ऊपिथे	ऊपिष्वे
उ० पु०	ऊपे	ऊपिवहे	ऊपिमहे

लुट्—परस्मैपद

प्र० पु०	अवाप्सीत्	अवाप्ताम्	अवाप्सु
म० पु०	अवाप्सी	अवाप्तम्	अवाप्त
उ० पु०	अवाप्सम्	अवाप्स्व	अवाप्सम्

लुङ्—आत्मनेपद

प्र० पु०	अवप्त	अवप्साताम्	अवप्सत
म० पु०	अवप्या	अवप्साथाम्	अवष्वम्
उ० पु०	अवप्सि	अवप्स्वहि	अवप्समहि

लुट्—वप्ता, वप्तारौ, वप्तारः । लृट्—वप्स्यति, वप्स्यते । आशी०—उप्यात्, उप्यास्ताम्, उप्यासु । वप्सीष्ट, वप्सीयास्ताम्, वप्सीरन् ।

वस् (प०)—रहना, होना, समय व्यतीत करना । लट्—वसति ।

लिट्

प्र० पु०	उवास	ऊषतु	ऊषु
म० पु०	उवसिथ-उवस्थ	ऊषथु	ऊष
उ० पु०	उवास-उवस	ऊषिव	ऊषिम

## लुङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अवात्सीत्	अवात्ताम्	अवात्सु
अ० पु०	अवात्सी	अवात्तम्	अवात्त
उ० पु०	अवात्सम्	अवात्स्व	अवात्सम्

## लृट्

प्र० पु०	वस्ता	वस्तारी	वस्तार
----------	-------	---------	--------

## लृट्

प्र० पु०	वत्स्यति	वत्स्यत	वत्स्यन्ति
म० पु०	वत्स्यसि	वत्स्यथ	वत्स्यथ
उ० पु०	वत्स्यामि	वत्स्याव	वत्स्याम

वाञ्छ् (प०)—इच्छा करना। लट्—वाञ्छी, वाञ्छत, वाञ्छन्ति।  
लिट्—ववाञ्छ, ववाञ्छतु, ववाञ्छ। ववाञ्छथ। लुङ्—  
अवाञ्छीत्। लृट्—वाञ्छिष्य। लृट्—वाञ्छिष्यति। आशी०—  
—वाञ्छ्यात्।

वृष् (आ०)—बढ़ना। लट्—वर्षति, वर्षते, वर्षन्ते। लिट्—ववृषे, ववृषाते,  
ववृषिरे। ववृषिषे, ववृषाथे, ववृषिष्वे। ववृषे, ववृषिवहे,  
ववृषिमहे। लुङ्—अवृषिष्ट, अवृषिषाताम्, अवृषिषत। अवृषत्,  
अवृषताम्, अवृषन्। लृट्—वृषिता। लृट्—वृषिष्यते अथवा  
वत्स्यति। लृङ्—अवृषिष्यत्, अवत्स्यत।

## आशी०

प्र० पु०	वृषिषीष्ट	वृषिषीयास्ताम्	वृषिषीरन्
म० पु०	वृषिषीष्ठा	वृषिषीयास्थाम्	वृषिषीष्वम्
उ० पु०	वृषिषीय	वृषिषीवहि	वृषिषीमहि

वृष् (प०)—बरसना। लट्—वर्षति, वर्षत, वर्षन्ति। लिट्—ववृष, ववृषतु,  
ववृषु। लुङ्—अवृषीत्। लृट्—वृषिता। लृट्—वृषिष्यति।  
आशी०—वृष्यात्।

१ यह लृट्, लुङ् तथा लृङ् मे परस्मैपदी भी हो जाती है।

व्रज् (प०)—चलना । लट्—व्रजति । लिट्—व्र्राज, व्र्राजतु, व्र्राजु ।  
लुङ्—व्र्राजोत्, व्र्राजिष्टाम्, व्र्राजिषु । लृट्—व्र्राजिता ।  
लृट्—व्र्राजिष्यति । आशी०—व्र्राज्यात् ।

शस् (प०)—स्तुति करना या चोट पहुँचाना । लट्—शसति । लिट्—शशस,  
शशसतु, शशसु । लुङ्—अशसीत् अशसिष्टाम्, अशसिषु ।  
लृट्—शसिता । लृट्—शसिष्यति । आशी०—शस्यात्, शस्यास्ताम्,  
शस्यासु ।

शङ्क् (आ०)—शङ्का करना । लट्—शङ्कते, शङ्कते, शङ्कन्ते । लिट्—  
शशङ्के, शशङ्कते, शशङ्किरे । लुङ्—अशङ्किष्ट, अशङ्किषाताम्,  
अशङ्किषत । लृट्—शङ्किता । लृट्—शङ्किष्यते । आशी०—  
शङ्किषीष्ट ।

शिक्ष् (आ०)—सीखना । लट्—शिक्षते । लिट्—शिक्षिषे । लुङ्—अशिक्षिष्ट,  
अशिक्षिषाताम्, अशिक्षिषत । लृट्—शिक्षिता । लृट्—शिक्षिष्यते ।  
आशी०—शिक्षिषीष्ट ।

शुच् (प०)—शोक करना, पछताना । लट्—शोचति, शोचत, शोचन्ति ।  
लिट्—शुशोच, शुशुचतु, शुशुचु । शुशोचिथ । लुङ्—अशोचीत्,  
अशोचिष्टाम्, अशोचिषु । लृट्—शोचिता । लृट्—शोचिष्यति ।  
आशी०—शुच्यात् ।

शुम् (आ०)—शोमित होना, प्रसन्न होना । लट्—शोभते, शोभेते, शोभन्ते ।  
लिट्—शुशुभे, शुशुभाते, शुशुभिरे । लुङ्—अशोभिष्ट, अशो-  
भिषाताम्, अशोभिषत । लृट्—शोभिता । लृट्—शोभिष्यते ।  
आशी०—शोभिषीष्ट ।

सह् (आ०)—सहना । लट्—सहते । लिट्—सेहे, सेहाते, सेहिरे ।

लुङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	असहिष्ट	असहिषाताम्	असहिषत
म० पु०	असहिष्ठा	असहिषायाम्	असहिष्वम्
उ० पु०	असहिषि	असहिष्वहि	असहिष्वहि

		लृट्	
	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	सोढा	सोढारौ	सोढार
म० पु०	सोढासे	सोढासाथे	सोढाध्वे
उ० पु०	सोढाहे	सोढास्वहे	सोढास्महे

## अथवा

प्र० पु०	सहिता	सहितारौ	सहितार
म० पु०	सहितासे	सहितासाथे	सहिताध्वे
उ० पु०	सहिताहे	सहितास्वहे	सहितास्महे

लृट्—सहिष्यते । आशी०—सहिष्याष्ट ।

सृ (प०)—चलना । लृट्—सरति, सरत, सरन्ति । लिट्—ससार, सस्रतु, सस्रु । ससर्थ, सस्रथु, सस्रु । ससार-ससर, ससृव, ससृम । लङ्—असरत्, असरताम्, असरन् तथा असार्शीत्, असार्ष्टाम्, असार्षु । लृट्—सर्त्ता । लृट्—सरिष्यति । आशी०—स्रियात् ।

मेव् (आ०)—सेवा करना । लृट्—सेवते, सेवेते, सेवन्ते । लिट्—सिषेव, सिषेवाते, सिषेविरे । सिषेविषे, सिषेवाथे, सिषेविध्वे । सिषेवे, सिषेविवहे, सिषेविमहे । लुङ्—असेविष्ट, असेविषाताम्, असेविषत । लृट्—सेविषिता । लृट्—सेविष्यते । आशी०—सेविष्याष्ट ।

स्मृ (प०)—स्मरण करना । लृट्—स्मरति, स्मरत, स्मरन्ति ।

## लिट्

प्र० पु०	सस्मार	सस्मारतु	सस्मरु
म० पु०	सस्मर्थ	सस्मरथु	सस्मर
उ० पु०	सस्मार, सस्मर	सस्मरिव	सस्मरिम

लुङ्—अस्मार्शीत्, अस्मार्ष्टाम्, अस्मार्षु । अस्मार्शी, अस्मार्ष्टम्, अस्मार्ष्ट । अस्मार्षम्, अस्मार्ष्व, अस्मार्ष्म । लृट्—स्मर्त्ता । लृट्—स्मरिष्यति । आशी०—स्म्रियात् ।

स्वद् (आ०)—स्वाद लेना, अच्छा लगना। लट्—स्वादते, स्वदते, स्वदन्ते।  
 लिट्—सस्वदे, सस्वदाते, सस्वदिरे। सस्वदिषे, सस्वदाथे, सस्वदिध्वे।  
 सस्वदे, सस्वदिवहे, सस्वदिमहे। लुङ्—अस्वदिष्ट, अस्वदिषाताम्,  
 अस्वदिषत। अस्वदिष्ठा, अस्वदिषाथाम्, अस्वदिध्वम्। अस्वदिषि,  
 अस्वदिष्वहि, अस्वदिष्महि। लृट्—स्वदिता। लृट्—स्वदिष्यते।  
 आशी०—स्वदिषीष्ट।

स्वाद् (आ०)—स्वाद लेना, अच्छा लगना। लट्—स्वादते, स्वादते, स्वादन्ते।  
 लिट्—सस्वादे, सस्वादाते, सस्वादारे। सस्वादारे, सस्वादाथे,  
 सस्वादध्वे। सस्वादे, सस्वादिवहे, सस्वादिमहे। लुङ्—अस्वादिष्ट,  
 अस्वादिषाताम्, अस्वादिषत। लृट्—स्वादिता। लृट्—स्वादिष्यते।  
 आशी०—स्वादिषीष्ट।

ह्लाद् (आ०)—खुश होना या शब्द करना। लट्—ह्लादते। लिट्—जह्लादे,  
 जह्लादाते, जह्लादिरे। लुङ्—अह्लादिष्ट। लृट्—ह्लादिता।  
 लृट्—ह्लादिष्यते। आशी०—ह्लादिषीष्ट।

### (३) अदादिगण

१४१—इस गण के आदि अद् (खाना) घातु है, इसलिए इसका नाम  
 अदादि है। घातुपाठ मे इस गण की ७२ घातुएँ पठित हैं। इस गण की घातुओं  
 के उपरान्त ही प्रत्यय जोड़ दिये जाते हैं, घातु और प्रत्यय के बीच मे भ्वादिगण  
 के शप् (अ) की तरह कुछ नहीं रहने पाता। उदाहरणार्थ अद्+मि=अधि,  
 अद्+ति=अत्ति, स्ना+ति,=स्नाति।

परस्मैपदी अकारान्त घातुओं के अनन्तर अनद्यतनभूत के प्रथम पुरुष  
 बहुवचन के 'अन्' प्रत्यय के स्थान पर विकल्प से 'उस्' आता है, जैसे—आदन्  
 अथवा आदु।

१ अदिप्रमृतिभ्य शप् ।२।४।७२। अर्थात् अदादिगण की घातुओं के बाद  
 शप् का लुक् (लोप) हो जाता है।

## परस्मैपदी

अद्—खाना

वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अत्ति	अत्त	अदन्ति
म० पु०	अत्ति	अत्थ	अत्थ
उ० पु०	अत्ति	अद्म	अद्म

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	अत्तु, अत्तात्	अत्ताम्	अदन्तु
म० पु०	अत्ति, अत्तात्	अत्तम्	अत्त
उ० पु०	अत्ति	अत्ताव	अत्ताम

विधिलिङ्

प्र० पु०	अद्यात्	अद्याताम्	अद्यु
म० पु०	अद्यात्	अद्यातम्	अद्यात्
उ० पु०	अद्याम्	अद्याव	अद्याम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	आदत्	आत्ताम्	आदन्, आदु
म० पु०	आद	आत्तम्	आत्त
उ० पु०	आदम्	आद्व	आद्य

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	जघास	जक्षतु	जक्षु
म० पु०	जघसिथ	जक्षथु	जक्ष
उ० पु०	जघास, जघस	जघसिब	जघसिम

अथवा

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	आद	आदतु	आदु
म० पु०	आदिथ	आदथु	आद
उ० पु०	आद	आदिव	आदिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अघसत्	अघसताम्	अघसन्
म० पु०	अघस	अघसतम्	अघसत
उ० पु०	अघसम्	अघसाव	अघसाम

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	अत्ता	अत्तारौ	अत्तार
म० पु०	अत्तासि	अत्तास्व	अत्तास्य
उ० पु०	अत्तास्मि	अत्तास्व	अत्तास्व.

सामान्यभविष्य—लुट्

प्र० पु०	अत्स्यति	अत्स्यत	अत्स्यन्ति
म० पु०	अत्स्यसि	अत्स्यथ	अत्स्यथ
उ० पु०	अत्स्यामि	अत्स्याव	अत्स्याम-

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	अद्यात्	अद्यास्ताम्	अद्यासु
म० पु०	अद्यात्	अद्यास्तम्	अद्यास्त
उ० पु०	अद्यासम्	अद्यास्व	अद्यास्व

क्रियातिपत्ति—लुङ्

प्र० पु०	आत्स्यत्	आत्स्यताम्	आत्स्यन्
म० पु०	आत्स्य	आत्स्यतम्	आत्स्यत
उ० पु०	आत्स्यम्	आत्स्याव	आत्स्याम

१४२—अदादिगण की अन्य धातुओं के रूप ।

## परस्मैपदी

अस्—होना

वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अस्ति	स्त	सन्ति
म० पु०	असि	स्थ	स्थ
उ० पु०	अस्मि	स्व	स्म

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	अस्तु, स्तात्	स्ताम्	सन्तु
म० पु०	एधि, स्ताम्	स्ताम्	स्त
उ० पु०	असानि	असाथे	असाम

निधिलिङ्

प्र० पु०	स्यात्	स्याताम्	स्यु
म० पु०	स्या	स्यातम्	स्यात
उ० पु०	स्याम्	स्याव	स्याम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	आसीत्	आस्ताम्	आसन्
म० पु०	आसी	आस्तम्	आस्त
उ० पु०	आसाम्	आस्व	आस्म

शेष लकारों में अस् घातु के रूप वे ही हैं जो भ्वादिगणी मू घातु के हैं ।

## आत्मनेपदी

आस्—बैठना

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	आस्ते	आसाते	आसते
म० पु०	आस्से	आसाथे	आध्वे
उ० पु०	आसे	आस्वहे	आस्महे



## आज्ञा—लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	आस्ताम्	आसाताम्	आसताम्
म० पु०	आस्त्र	आसाथाम्	आध्वम्
उ० पु०	आसै	आसावहै	आसामहै

## विधिलिङ्

प्र० पु०	आसीत्	आसीयाताम्	आसीरन्
म० पु०	आसीथा	आसीयाथाम्	आसीध्वम्
उ० पु०	आसीथ	आसीवहि	आसामहि

## अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	आस्त	आसाताम्	आसत्
म० पु०	आस्था	आसाथाम्	आध्वम्
उ० पु०	आसि	आस्वहि	आस्महि

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	आसाञ्चक्रे	आसाञ्चक्राते	आसाञ्चकिरे
म० पु०	आसाञ्चकृषे	आसाञ्चक्राथे	आसाञ्चकृद्वे
उ० पु०	आसाञ्चक्रे	आसाञ्चकृवहे	आसाञ्चकृमहे

आसाम्बभूव तथा आसामात् इत्यादि रूप भी होते हैं ।

## सामान्यभूत—लृङ्

प्र० पु०	आसिषट्	आसिषाताम्	आसिषत्
म० पु०	आसिषा	आसिषाथाम्	आसिष्वम्, ढ्वम्
उ० पु०	आसिषि	आसिष्वहि	आसिष्वमहि

## अनद्यतनभविष्य—लृट्

प्र० पु०	आसिता	आसितारौ	आसितार , इत्यादि ।
----------	-------	---------	-----------------------

## सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	आसिष्यते	आसिष्येते	आसिष्यन्ते, इत्यादि ।
----------	----------	-----------	--------------------------

## आशीर्लिङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	आसिषीष्ट	आसिषीयास्ताम्	आसिषीरन्
म० पु०	आसिषीष्ठा	आसिषीयास्थाम्	आसिषीष्वम्
उ० पु०	आसिषीथ	आसिषीवहि	आसिषीमहि

## क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	आसिष्यत	आसिष्येताम्	आसिष्यन्त इत्यादि ।
----------	---------	-------------	------------------------

## आत्मनेपदी (अधि') इङ्—अध्ययन करणा

## वर्तमान—लट्

प्र० पु०	अधीते	अधीयते	अधीयते
म० पु०	अधीषे	अधीम्ये	अधीष्वे
उ० पु०	अधीये	अधीवहे	अधीमहे

## आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	अधीताम्	अधीयाताम्	अधीयताम्
म० पु०	अधीष्व	अधीयाथाम्	अधीष्वम्
उ० पु०	अध्ययै	अध्ययावहे	अध्ययामहे

## विधिलिङ्

प्र० पु०	अधीयीत	अधीयीयाताम्	अधीयीरन्
म० पु०	अधीयीथा	अधीयीयाथाम्	अधीयीष्वम्
उ० पु०	अधीयीथ	अधीयीवहि	अधीयीमहि

## अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अध्यैत	अध्यैयाताम्	अध्यैयत
म० पु०	अध्यैथा	अध्यैयाथाम्	अध्यैष्वम्
उ० पु०	अध्यैथि	अध्यैवहि	अध्यैमहि

१ इङ्कावध्युपसर्गतो न व्यभिचरत ।

## परोक्षभूत—लिट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अधिजगे <sup>१</sup>	अधिजगते	अधिजगिरे
म० पु०	अधिजगिषे	अधिजगथे	अधिजगिध्वे
उ० पु०	अधिजगे	अधिजगिवहे	अधिजगिमहे

## सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अध्यगोष्ट <sup>२</sup>	अध्यगीषाताम्	अध्यगीषत
म० पु०	अध्यगीष्ठा	अध्यगीषाथाम्	अध्यगीष्वम्
उ० पु०	अध्यगीषि	अध्यगीष्वहि	अध्यगीष्महि

## अथवा

प्र० पु०	अध्यैष्ट	अध्यैषाताम्	अध्यैषत
म० पु०	अध्यैष्ठा	अध्यैषाथाम्	अध्यैष्वम्
उ० पु०	अध्यैषि	अध्यैष्वहि	अध्यैष्महि

## अनद्यतनभविष्य—लृट्

प्र० पु०	अध्येता	अध्येतारौ	अध्येतार
म० पु०	अध्येतासे	अध्येतासाथे	अध्येताध्वे
उ० पु०	अध्येताहे	अध्येतास्वहे	अध्येतास्महे

## सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	अध्येष्यते	अध्येष्येते	अध्येष्यन्ते
म० पु०	अध्येष्यसे	अध्येष्यथे	अध्येष्यध्वे
उ० पु०	अध्येष्य	अध्येष्यावहे	अध्येष्यामहे

१ गाङ् लिटि । २।४।९९। अर्थात् लिट् मे इङ् घातु के स्थान मे गाङ् हो जाता है ।

२ विभाषा लुङ्लृङ्गे । २।४।१०। अर्थात् लुङ् तथा लृङ् (क्रियातिपत्ति) मे विकल्प से गाङ् होता है । इसी से इन दोनो लकारो मे दो-दो प्रकार के रूप बनते हैं ।

## आशीर्लिङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अध्येषीष्ट	अध्यषीयास्ताम्	अध्येषीरन्
म० पु०	अध्येषीष्ठा	अध्येषीयास्थाम्	अध्येषीद्वम्
उ० पु०	अध्येषीय	अध्येषीवहि	अध्येषीमहि

## क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अध्यगीष्यत	अध्यगीष्येताम्	अध्यगीष्यन्त
म० पु०	अध्यगीष्यथा	अध्यगीष्येथाम्	अध्यगीष्यध्वम्
उ० पु०	अध्यगीष्ये	अध्यगीष्यावहि	अध्यगीष्यामहि

## अथवा

प्र० पु०	अध्यैष्यत	अध्यैष्येताम्	अध्यैष्यन्त
म० पु०	अध्यैष्यथा	अध्यैष्येथाम्	अध्यैष्यध्वम्
उ० पु०	अध्यैष्ये	अध्यैष्यावहि	अध्यैष्यामहि

## परस्मैपदा इण्—जाना

## वर्तमान—लट्

प्र० पु०	एति, इतात्	इत	यन्ति
म० पु०	एषि	इथ	इथ
उ० पु०	एति	इव	इम

## भ्राज्ञा—लोट्

प्र० पु०	एतु, इतात्	इताम्	यन्तु
म० पु०	एहि	इतम्	इत
उ० पु०	अयानि	अयाव	अयाम्

## विधिलिङ्

प्र० पु०	इयात्	इयाताम्	इयु
म० पु०	इवाः	इयातम्	इयात
उ० पु०	इयाम्	इयाव	इयाम्

## अनद्यतनभूत—लङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	ऐत्	ऐताम्	आयन्
म० पु०	ऐ	ऐतम्	ऐत
उ० पु०	आयम्	ऐव	ऐम

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	इयाय	ईयतु	ईयु
म० पु०	इययिथ, इयेथ	ईयथु	ईय
उ० पु०	इयाय, इयय	ईयिव	ईयिव

## सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अगत् <sup>१</sup>	अगाताम्	अगु
म० पु०	अगा	अगातम्	अगात
उ० पु०	अगाम्	अगाव	अगाम

## अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	एता	एतादी	एतार
म० पु०	एतासि	एतास्थ	एतास्थ
उ० पु०	एतास्मि	एतास्व	एतास्म-

## सामान्यभविष्य—लुट्

प्र० पु०	एष्यति	एष्यत	एष्यन्ति
म० पु०	एष्यसि	एष्यथ	एष्यथ
उ० पु०	एष्यामि	एष्याव	एष्याम

## आशीर्लिङ्

प्र० पु०	इयात्	इयास्ताम्	इयासु
म० पु०	इया	इयास्तम्	इयास्त
उ० पु०	इयासम्	इयास्व	इयास्म

१ इणो गा लुङि ।२।४।४५। अर्थात् लुङ् लकार मे इण् के स्थान मे गा हो जाता है ।

## क्रियातिपत्ति—लृङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	ऐष्यत्	ऐष्यताम्	ऐष्यन्
म० पु०	एष्य	ऐष्यतम्	ऐष्यत
उ० पु०	ऐष्यम्	ऐष्याव	ऐष्याम

## उभयपदी ब्रू—ब्रोलना

## परस्मैपद

## वर्तमान—सद्

प्र० पु०	ब्रवीति	ब्रूत	ब्रुवन्ति
	आह	आह्यु	आहु
म० पु०	ब्रवीषि	ब्रूथ	ब्रूथ
	आथ्य	आह्यु	
उ० पु०	ब्रवीमि	ब्रूव	ब्रूम

## आज्ञा—लोद्

प्र० पु०	ब्रवीतु, ब्रूतात्	ब्रूताम्	ब्रुवन्तु
म० पु०	ब्रूहि, ब्रूयात्	ब्रूतम्	ब्रूत
उ० पु०	ब्रूयाम	ब्रूवाव	ब्रूवाम

## विधिलिङ्

प्र० पु०	ब्रूयात्	ब्रूयाताम्	ब्रूयु
म० पु०	ब्रूया	ब्रूयातम्	ब्रूयात
उ० पु०	ब्रूयाम्	ब्रूयाव	ब्रूयाम

## अनद्यतनभूत—लृङ्

प्र० पु०	अब्रवीत	अब्रूताम्	अब्रूवन्
म० पु०	अब्रवी	अब्रूतम्	अब्रूत
उ० पु०	अब्रवम	अब्रूव	अब्रूम

## परोक्षभूत—लिट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	उवाच <sup>१</sup>	ऊचतु	ऊचु
म० पु०	उवचिथ, उवकथ	ऊचथु	ऊच
उ० पु०	उवच, उवाच	ऊचिव	ऊचिम

## सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अवोचत्	अवोचताम्	अवोचन्
म० पु०	अवोच	अवोचतम्	अवोचत
उ० पु०	अवोचम्	अवोचाव	अवोचाम

## अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	वक्ता	वक्तारौ	वक्तार
म० पु०	वक्तासि	वक्तास्थ	वक्तास्थ
उ० पु०	वक्तास्मि	वक्तास्व	वक्तास्म

## सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	वक्ष्यति	वक्ष्यत	वक्ष्यन्ति
म० पु०	वक्ष्यसि	वक्ष्यथ	वक्ष्यथ
उ० पु०	वक्ष्यामि	वक्ष्याव	वक्ष्याम

## आशीर्लङ्

प्र० पु०	उच्यात्	उच्यास्ताम्	उच्यासु
म० पु०	उच्या	उच्यास्तम्	उच्यास्त
उ० पु०	उच्यामम्	उच्यास्व	उच्यास्म

## क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अवक्ष्यत्	अवक्ष्यताम्	अवक्ष्यन्
म० पु०	अवक्ष्य	अवक्ष्यतम्	अवक्ष्यत
उ० पु०	अवक्ष्यम्	अवक्ष्याव	अवक्ष्याम

१ वृद्धो वचि । २।४।१३। अर्थात् लिट् इत्यादि आर्षघातुक प्रत्यय मे वृ  
के स्थान मे वच् हो जाता है।

## आत्मनेपद

## वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	ब्रूते	ब्रुवाते	ब्रुवते
म० पु०	ब्रूषे	ब्रूवाथे	ब्रूष्वे
उ० पु०	ब्रुवे	ब्रूवहे	ब्रूमहे

## आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	ब्रूताम्	ब्रूवाताम्	ब्रूवताम्
म० पु०	ब्रूव्व	ब्रूवाथाम्	ब्रूष्वम्
उ० पु०	ब्रूवै	ब्रूवावहे	ब्रूवामहे

## विधिलिङ्

प्र० पु०	ब्रुवीत	ब्रुवीयास्ताम्	ब्रुवीरन्
म० पु०	ब्रुवीथा	ब्रुवीयाथाम्	ब्रुवीष्वम्
उ० पु०	ब्रुवीय	ब्रुवीवहि	ब्रुवीमहि

## अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अब्रूत	अब्रूवाताम्	अब्रूवत
म० पु०	अब्रूथाम्	अब्रूवाथाम्	अब्रूष्वम्
उ० पु०	अब्रूवि	अब्रूवहि	अब्रूमहि

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	ऊचे	ऊचाते	ऊचिरे
म० पु०	ऊचिषे	ऊचाथे	ऊचिष्वे
उ० पु०	ऊचे	ऊचिवहे	ऊचिमहे

## सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अबोचत	अबोचेताम्	अबोचन्त
म० पु०	अबोचथाम्	अबोचेथाम्	अबोचष्वम्
उ० पु०	अबोचे	अबोचावहि	अबोचामहि



अनद्यतनभविष्य—लुट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	वक्ता	वक्तारौ	वक्तार
म० पु०	वक्तासे	वक्तासाथे	वक्ताध्वे
उ० पु०	वक्ताहे	वक्तास्वहे	वक्तास्महे

सामान्यभविष्य—लुट्

प्र० पु०	वक्ष्यते	वक्ष्येते	वक्ष्यन्ते
म० पु०	वक्ष्यसे	वक्ष्यथे	वक्ष्यध्वे
उ० पु०	वक्ष्ये	वक्ष्यावहे	वक्ष्यामहे

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	वक्षीष्ट	वक्षीयास्तमि	वक्षीरन्
म० पु०	वक्षीष्टा	वक्षीयथिथाम्	वक्षीध्वम्
उ० पु०	वक्षीय	वक्षीन्वाह	वक्षीमहि

क्रियातिपाठ—लृङ्

प्र० पु०	अवक्ष्यत	अवक्ष्येताम्	अवक्ष्यन्त
म० पु०	अवक्ष्यथा	अवक्ष्येथाम्	अवक्ष्यध्वम्
उ० पु०	अवक्ष्ये	अवक्ष्यावहि	अवक्ष्यामहि

परस्मैपदो या—जाना

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	याति	यात	यान्ति
म० पु०	यासि	याथ	याथ
उ० पु०	यामि	याव	याम

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	यातु, यातात्	याताम्	यान्तु
म० पु०	याहि, यातात्	यातम्	यात
उ० पु०	यानि	याव	याम

## विधिलिङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	यायात्	यायाताम्	यायु
म० पु०	याया	यायातम्	यायात
उ० पु०	यायाम्	यायाव	यायाम

## अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अयात्	अयाताम्	अयु
म० पु०	अया	अयातम्	अयात्
उ० पु०	अयाम्	अयाव	अयाम

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	ययौ	ययतु	ययु
म० पु०	ययिथ, ययाथ	ययथु	यय
उ० पु०	ययौ	ययिव	ययिम

## सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अयासीत्	अयासिष्टाम्	अयासिषु
म० पु०	अयासी	अयासिष्टम्	अयासिष्ट
उ० पु०	अयासिषम्	अयासिष्व	अयासिष्म

## अनद्यतनभविष्य—लृट्

प्र० पु०	याता	यातारौ	यातार
म० पु०	यातासि	यातास्थ	यातास्थ
उ० पु०	यातास्मि	यातास्व	यातास्म

## सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	यास्यति	यास्यत	यास्यन्ति
म० पु०	यास्यसि	यास्यथ	यास्यथ
उ० पु०	यास्यामि	यास्याव	यास्याम

## आशीलिङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	यातात्	यायास्ताम्	यायासु
म० पु०	याया	यायास्तम्	यायास्त
उ० पु०	यायासम्	यायास्व	यायास्म

## क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अयास्यत्	अयास्यताम्	अयास्यन्
म० पु०	अयास्य	अयास्यतम्	अयास्यत
उ० पु०	अयास्यम्	अयास्याव	अयास्याम

ख्या (कहना), या (पालना), मा (चमकना), मा (नापना), रा (देना), ला (लेना), वा (बहना) के रूप 'या' के समान होते हैं।

## परस्मैपदी रुद्—रोना

## वर्तमान—लट्

प्र० पु०	रोदिति	रुदित	रुदन्ति
म० पु०	रोदिषि	रुदिथ	रुदिथ
उ० पु०	रोदिमि	रुदिव	रुदिम

## आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	रोदितु, रुदितात्	रुदिताम्	रुदन्तु
म० पु०	रुदिहि	रुदिम	रुदित
उ० पु०	रोदानि	रोदान	रोदाम

## विधिलिङ्

प्र० पु०	रुद्यात्	रुद्याताम्	रुद्यु
म० पु०	रुद्या	रुद्यान्	रुद्यात
उ० पु०	रुद्याम्	रुद्याव	रुद्याम

## अनद्यतनभूत—लङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अरोदीत्, अरोदत्	अरुदिताम्	अरुदन्
म० पु०	अरोदी, अरोद	अरुदितम्	अरुदित
उ० पु०	अरोदम्	अरुदिव	अरुदिम

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	हरोद	रुरुदतु	रुरुदु
म० पु०	हरोदिथ	रुरुदथु	रुरुद
उ० पु०	हरोद	रुरुदिव	रुरुदिम

## सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	{ अरुदत् अरोदीत्	{ अरुदिताम् अरोदिष्टाम्	{ अरुदन् अरोदिषु
म० पु०	{ अरुद अरोदी	{ अरुदितम् अरोदिष्टम्	{ अरुदत अरोदिष्ट
उ० पु०	{ अरुदम् अरोदिषम्	{ अरुदाव अरोदिष्व	{ अरुदाम अरोदिषम

## अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	रोदिता	रोदितारौ	रोदितार
म० पु०	रोदितासि	रोदितास्थ	रोदितास्थ
उ० पु०	रोदितास्मि	रोदितास्व	रोदितास्म

## सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	रोदिष्यति	रोदिष्यत	रोदिष्यन्ति
म० पु०	रोदिष्यसि	रोदिष्यथ	रोदिष्यथ
उ० पु०	रोदिष्यामि	रोदिष्याव	रोदिष्याम

## आशीर्लिङ्

प्र० पु०	रुद्यात्	रुद्यास्ताम्	रुद्यासु
म० पु०	रुद्या	रुद्यास्तम्	रुद्यास्त
उ० पु०	रुद्यासम्	रुद्यास्व	रुद्यास्म

## क्रियातिपत्ति—लृङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अरोदिष्यत्	अरोदिष्यताम्	अरोदिष्यन्
म० पु०	अरोदिष्य	अरोदिष्यतम्	अरोदिष्यत
उ० पु०	अरोदिष्यम्	अरोदिष्याव	अरोदिष्याम

## परस्मैपदो शास्—शासन करना

## वर्तमान—लट्

प्र० पु०	शास्ति	शिष्ट	शासति
म० पु०	शास्ति	शिष्ट	शिष्ट
उ० पु०	शास्मि	शिष्व	शिष्म

## आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	शास्तु	शिष्टा	शासतु
म० पु०	शाधि	शिष्टम्	शिष्ट
उ० पु०	शासानि	शासाव	शासाम

## निधिलिङ्

प्र० पु०	शिष्यात्	शिष्याताम्	शिष्यु
म० पु०	शिष्या	शिष्यातम्	शिष्यात
उ० पु०	शिष्याम	शिष्याव	शिष्याम

## अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अशात्	अशिष्टाम्	अशासु
म० पु०	अशा, अशात्	अशिष्टम्	अशिष्ट
उ० पु०	अशासम्	अशिष्व	अशिष्म

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	शशास	शशासतु	शशासु
म० पु०	शशासिथ	शशासथु	शशास
उ० पु०	शशास	शशासिव	शशासिम

## सामान्यभूत—लुङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अशिषत्	अशिषताम्	अशिषन्
म० पु०	अशिष	अशिषतम्	अशिषत
उ० पु०	अशिषम्	अशिषाव	अशिषाम

## अनद्यतनभविष्य—लृट्

प्र० पु०	शासिता	शासितारौ	शासितार
म० पु०	शासितासि	शासितास्थ	शासितास्थ
उ० पु०	शासितास्मि	शासितास्व	शासितास्म

## सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	शासिष्यति	शासिष्यत	शासिष्यन्ति
म० पु०	शासिष्यसि	शासिष्यथ	शासिष्यथ
उ० पु०	शासिष्यामि	शासिष्याव	शासिष्याम

## आशीलिङ्

प्र० पु०	शिष्यात्	शिष्यास्ताम्	शिष्यासु
म० पु०	शिष्या	शिष्यास्तम्	शिष्यास्त
उ० पु०	शिष्यासम्	शिष्यास्व	शिष्यास्म

## क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अशासिष्यत्	अशासिष्यताम्	अशासिष्यन्
म० पु०	अशासिष्य	अशासिष्यतम्	अशासिष्यत
उ० पु०	अशासिष्यम्	अशासिष्याव	अशासिष्याम

## आत्मनेपदी शी—लेटना

## वर्तमान—लट्

प्र० पु०	शेते	शयाते	शरत
म० पु०	शेषे	शयाथे	शेध्वे
उ० पु०	शेये	शेवहे	शेमहे

## आज्ञा—लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	शेताम्	शयाताम्	शेरताम्
म० पु०	शेष्व	शयाथाम्	शेष्वम्
उ० पु०	शयै	शयावहै	शयामहै

## विधिलिङ्

प्र० पु०	शयीत	शयीथाताम्	शयीरन्
म० पु०	शयीथा	शयीयाथाम्	शयीष्वम्
उ० पु०	शयीय	शयीवहि	शयीमहि

## अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अशेत	अशयाताम्	अशेरत
म० पु०	अशेथा	अशयाथाम्	अशेष्वम्
उ० पु०	अशयि	अशेवहि	अशेमहि

## परोक्षभूत—लृट्

प्र० पु०	शिश्ये	शिश्यात	शिशियरे
म० पु०	शिशियेषे	शिश्याथे	शिशियध्वे-ध्वे
उ० पु०	शिश्ये	शिशियवहे	शिशियमहे

## सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अशयिष्ट	अशयिषाताम्	अशयिषत
म० पु०	अशयिष्ठा	अशयिषाथाम्	अशयिष्वम्-ध्वम्
उ० पु०	अशयिषि	अशयिष्वहि	अशयिषमहि

## अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	शयिता	शयितारौ	शयितार
म० पु०	शयितासे	शयितासाथे	शयिताध्वे
उ० पु०	शयिताहे	शयितास्वहे	शयितास्महे

## सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	शयिष्यते	शयिष्येते	शयिष्यन्ते
म० पु०	शयिष्यसे	शयिष्येथे	शयिष्यध्वे
उ० पु०	शयिष्ये	शयिष्यावहे	शयिष्यामहे

## आशीलिङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	शयिषीष्ट	शयिषीयास्ताम्	शयिषीरन्
म० पु०	शयिषीष्ठा	शयिषीयास्थां	शयिषीद्वम्-ध्वम्
उ० पु०	शयिषीय	शयिषीवहि	शयिषीमहि

## क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अशयिष्यत	अशयिष्येताम्	अशयिष्यन्त
म० पु०	अशयिष्यथा	अशयिष्येषाम्	अशयिष्यध्वम्
उ० पु०	अशयिष्ये	अशयिष्यावहि	अशयिष्यामहि

## परस्मैपदो स्ना—नहाना

## वर्तमान—लट्

प्र० पु०	स्नाति	स्नात	स्नान्ति
म० पु०	स्नासि	स्नाथ	स्नाथ
उ० पु०	स्नामि	स्नाव	स्नाम

## आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	स्नातु, स्नातात्	स्नाताम्	स्नान्तु
म० पु०	स्नाहि, स्नातात्	स्नातम्	स्नात
उ० पु०	स्नानि	स्नाव	स्नाम

## विधिलिङ्

प्र० पु०	स्नायात्	स्नायाताम्	स्नायु
म० पु०	स्नाया	स्नायातम्	स्नायात
उ० पु०	स्नायाम्	स्नायाव	स्नायाम

## अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अस्नात्	अस्नाताम्	अस्तु, अस्नान्
म० पु०	अस्ना	अस्नातम्	अस्नात
उ० पु०	अस्नाम्	अस्नाव	अस्नाम



## परोक्षभूत—लिट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	सस्नौ	सस्नतु	सस्नु
म० पु०	सस्निथ, सस्नाथ	सस्नथु	सस्न
उ० पु०	सस्नौ	सस्निव	सस्निम

## सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अस्नासीत्	अस्नासिष्टाम्	अस्नासिषु
म० पु०	अस्नासी	अस्नासिष्टम्	अस्नासिष्ट
उ० पु०	अस्नासिषम्	अस्नासिष्व	अस्नासिष्म

## अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	स्नाता	स्नातारौ	स्नातार
म० पु०	स्नातासि	स्नातास्थ	स्नातास्थ
उ० पु०	स्नातास्मि	स्नातास्व	स्नातास्म

## सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	स्नास्यति	स्नास्यत	स्नास्यन्ति
म० पु०	स्नास्यसि	स्नास्यथ	स्नास्यथ
उ० पु०	स्नास्यामि	स्नास्याव	स्नास्याम

## आशीर्लिङ्

प्र० पु०	स्नायात्	स्नायास्ताम्	स्नायासु
म० पु०	स्नाया	स्नायास्तम्	स्नायास्त
उ० पु०	स्नायासम्	स्नायास्व	स्नायास्म

## अथवा

प्र० पु०	स्नेयात्	स्नेयास्ताम्	स्नेयासु
म० पु०	स्नेया	स्नेयास्तम्	स्नेयास्त
उ० पु०	स्नेयासम्	स्नेयास्व	स्नेयास्म

## क्रियातिपत्ति—लुङ्

प्र० पु०	अस्नास्यत्	अस्नास्यताम्	अस्नास्यन्
म० पु०	अस्नास्य	अस्नास्यतम्	अस्नास्यत
उ० पु०	अस्नास्यम्	अस्नास्याव	अस्नास्याम

## परस्मैपदो स्वप्—सोना

## वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	स्वपिति	स्वपित	स्वपन्ति
म० पु०	स्वपिषि	स्वपिथ	स्वपिथ
उ० पु०	स्वपिमि	स्वपिव	स्वपिम

## आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	स्वपितु, स्वपितात्	स्वपिताम्	स्वपन्तु
म० पु०	स्वपिहि, स्वपितात्	स्वपितम्	स्वपित
उ० पु०	स्वपानि	स्वपाम	स्वपाम

## विधिलिङ्

प्र० पु०	स्वप्यात्	स्वप्याताम्	स्वप्यु
म० पु०	स्वप्या	स्वप्यातम्	स्वप्यात
उ० पु०	स्वप्याम्	स्वप्याव	स्वप्याम

## अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	{ अस्वपीत् अस्वपत्	अस्वपिताम्	अस्वपन्
म० पु०	{ अस्वपी अस्वपि	अस्वपितम्	अस्वपित
उ० पु०	अस्वपम्	अस्वपिव	अस्वपिम

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	सुष्वाप	सुषुपतु	सुषुपु
म० पु०	सुष्वपिथ, सुष्वप्य	सुषुपथु	सुषुप
उ० पु०	सुष्वाप, सुष्वप	सुषुपिव	सुषुपिम

## सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अस्वाप्सीत्	अस्वाप्ताम्	अस्वाप्सु
म० पु०	अस्वाप्सी	अस्वाप्तम्	अस्वाप्त
उ० पु०	अस्वाप्सम्	अस्वाप्त्र	अस्वाप्सम

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
लुट्	प्र० पु०	एकवचन	स्वप्ता
लृट्	"	"	स्वप्स्यति
आशीलिङ्	"	"	सुप्यात्
लृङ्	"	"	अस्वप्स्यत्

**परस्मैपदी श्वस्—सांस लेना**

	प्र० पु०	एकवचन	श्वसिति
लट्	"	"	श्वसितु
लोट्	"	"	श्वस्यात्
विधि०	"	"	अश्वसीत्, अश्वसत्
लङ्	"	"	शश्वास
लिट्	"	"	अश्वसीत्
लुङ्	"	"	श्वसिता
लुट्	"	"	श्वसिष्यति
लृट्	"	"	श्वस्यात्
आशीलिङ्	"	"	अश्वसिष्यत्
लृङ्	"	"	

श्वस् के रूप स्वप् के समान होते हैं।

**परस्मैपदी हन्—मार डालना**

वर्तमान—लट्

	हन्ति	हत	घ्नन्ति
प्र० पु०	हसि	हथ	हथ
म० पु०	हन्मि	हन्व	हन्म

भ्राज्ञा—लोट्

	हन्तु, हतात्	हताम्	घ्नन्तु
प्र० पु०	जहि, हतात्	हतम्	हत
म० पु०	हनाति	हनाव	हनाम

## विधिलिङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	हन्थात्	हन्थाताम्	हन्थु
म० पु०	हन्था	हन्थातम्	हन्थात
उ० पु०	हन्थाम्	हन्थाव	हन्थाम
<b>अनद्यतनभूत—लृङ्</b>			
प्र० पु०	अहन्	अहताम्	अध्नन्
म० पु०	अहन्	अहतम्	अहत
उ० पु०	अहनम्	अहन्व	अहन्म
<b>परोक्षभूत—लिट्</b>			
प्र० पु०	जघान	जघन्तु	जघ्नु
म० पु०	जघनिथ, जघन्थ	जघन्थ	जघ्न
उ० पु०	जघान, जघन	जघिन्व	जघिनम
<b>सामान्यभूत—लुङ्</b>			
प्र० पु०	अवधीत्	अवधिष्टाम्	अवधिषु
म० पु०	अवधी	अवधिष्टाम्	अवधिष्ट
उ० पु०	अवधिषम्	अवधिष्व	अवधिष्म
<b>अनद्यतनभविष्य—लृट्</b>			
प्र० पु०	हन्ता	हन्तारौ	हन्तार
म० पु०	हन्तासि	हन्तास्थ	हन्तास्थ
उ० पु०	हन्तामि	हन्तास्व	हन्तास्म
<b>सामान्यभविष्य—लृट्</b>			
प्र० पु०	हनिष्यति	हनिष्यत	हनिष्यन्ति
म० पु०	हनिष्यसि	हनिष्यथ	हनिष्यथ
उ० पु०	हनिष्यामि	हनिष्याव	हनिष्याम
<b>आशीलिङ्</b>			
प्र० पु०	वध्यात्	वध्यास्ताम्	वध्यासु
म० पु०	वध्या	वध्यास्तम्	वध्यास्त
उ० पु०	वध्यासम्	वध्यास्व	वध्यास्म

## क्रियातिपत्ति—लृङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अहनिष्यत्	अहनिष्यताम्	अहनिष्यन्
म० पु०	अहनिष्य	अहनिष्यतम्	अहनिष्यत
उ० पु०	अहनिष्यम्	अहनिष्याव	अहनिष्याम

## (३) जुहोत्यादिगण'

१४३—इस गण की प्रथम घातु हु (हवन करना) है और उसके रूप जुहोति, जुहुत, जुह्वति आदि होते हैं, इसलिए इस गण का नाम जुहोत्यादिगण पडा। इस गण में २४ घातुएँ हैं। इनके उपरान्त प्रत्यय जोड़ते समय घातु और प्रत्यय के बीच में कुछ नहीं लाया जाता, केवल घातु का भ्रम्यास किया जाता है। भ्रम्यास करने के नियम ऊपर नियम १३६ के अन्तर्गत नोट न० १, पृ० ३१० प्हर दिए गए हैं।

इस गण में वर्तमान प्रथम पुरुष के बहुवचन में 'अन्ति' के स्थान पर 'अति' तथा अनद्यतन भूत के प्रथम पुरुष के बहुवचन में 'अन्' के स्थान पर 'उस्' होता है। इस 'उस्' प्रत्यय के पूर्व घातु का अन्तिम 'आ' लोप कर दिया जाता है और अन्तिम इ, उ, ऋ को गुण (७) प्राप्त होता है।

नीचे इस गण की मुख्य-मुख्य घातुओं के रूप दिए जाते हैं—

## उभयपदी दा—देना

	परस्मैपद	वर्तमान—सद्	
प्र० पु०	ददाति	दत्त	ददति
म० पु०	ददासि	दत्थ	दत्थ
उ० पु०	ददामि	दद्व	दद्व

१ जुहोत्यादिभ्य ङ्लु ।२।४।७५। जुहोत्यादिगण की घातुओं के बाद षप् का 'ङ्लु' हो जाता है। ङ्लु दूसरे शब्दों के लुक् या लुप् का ही पर्याय है, केवल "ङ्लौ" ।६।१।१०। इस सूत्र के अनुसार 'ङ्लु' के कारण घातु का द्वित्व हो जाता है।

## आशा—लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	ददातु, दत्तात्	दत्ताम्	ददतु
म० पु०	देहि, दत्तात्	दत्तम्	दत्त
उ० पु०	ददानि	ददाव	ददाम

## विधिलिङ्

प्र० पु०	दद्यात्	दद्याताम्	दद्यु
म० पु०	दद्या	दद्यातम्	दद्यात
उ० पु०	दद्याम्	दद्याव	दद्याम

## अनद्यतनभूत—लृट्

प्र० पु०	अददात्	अदत्ताम्	अददु
म० पु०	अददा	अदत्तम्	अदत्त
उ० पु०	अददाम्	अददाव	अददम

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	ददौ	ददतु	ददु
म० पु०	ददित्थ, ददाथ	ददथु	दद
उ० पु०	ददौ	ददिव	ददिम

## सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अदात्	अदाताम्	अदु
म० पु०	अदा	अदातम्	अदात
उ० पु०	अदाम्	अदाव	अदाम

## अनद्यतनभविष्य—लृट्

प्र० पु०	दाता	दातारौ	दातार
म० पु०	दातासि	दातास्थ	दातास्थ
उ० पु०	दातास्मि	दातास्व	दातास्म

## सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	दास्यति	दास्यत	दास्यन्ति
म० पु०	दास्यसि	दास्यथ	दास्यथ
उ० पु०	दास्यामि	दास्याव	दास्याम

आशीलिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	देयात्	देयास्ताम्	देयासु
म० पु०	देया	देयास्तम्	देयास्त
उ० पु०	देयासम्	देयास्व	देयास्म

क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अदास्यत्	अदास्यताम्	अदास्यन्
म० पु०	अदास्य	अदास्यतम्	अदास्यत
उ० पु०	अदास्यम्	अदास्याव	अदास्याम

आत्मनेपद

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	दत्ते	ददाते	ददते
म० पु०	दत्से	ददाथे	ददध्वे
उ० पु०	ददे	ददहे	ददधहे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	दत्ताम्	ददाम्	ददताम्
म० पु०	दत्स्व	ददाथाम्	ददध्वम्
उ० पु०	ददै	ददावहे	ददामहे

विधिलिङ्ग

प्र० पु०	ददीत	ददीयाताम्	ददीरन्
म० पु०	ददीथा	ददीयाथाम्	ददीध्वम्
उ० पु०	ददीथि	ददीवहि	ददीमहि

अनद्यतनभूत—लृङ्

प्र० पु०	अदत्त	अददाताम्	अददत
म० पु०	अदत्था	अददाथाम्	अददध्वम्
उ० पु०	अददि	अदद्वहि	अददधहि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	ददे	ददाते	ददिरे
म० पु०	ददिषे	ददाथे	ददिध्वे
उ० पु०	ददे	ददिवहे	ददिमहे

## सामान्यभूत—लृङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अदित	अदिषाताम्	अदिषत
म० पु०	अदिथा	अदिषाथाम्	अदिष्वम्, द्वम्
उ० पु०	अदिषि	अदिष्वहि	अदिष्वहि

## अनद्यतनभविष्य—लृट्

प्र० पु०	दाता	दातारौ	दातार
म० पु०	दातासे	दातासाथे	दाताध्वे
उ० पु०	दाताहे	दातास्वहे	दातास्महे

## सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	दास्यते	दास्येते	दास्यन्ते
म० पु०	दास्यसे	दास्यथे	दास्यध्वे
उ० पु०	दास्ये	दास्यावहे	दास्यामहे

## आशीर्लङ्

प्र० पु०	दासीष्ट	दासीयास्ताम्	दासीरन्
म० पु०	दासीष्ठा	दासीयास्थाम्	दासीध्वम्
उ० पु०	दासीय	दासीवहि	दासीमहि

## क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अदास्येत	अदास्येताम्	अदास्यन्त
म० पु०	अदास्यथा	अदास्येथाम्	अदास्यध्वम्
उ० पु०	अदास्ये	अदास्यावहि	अदास्यामहि

## उभयपदी धा—धारण करना

## परस्मैपद

## वर्तमान—लट्

प्र० पु०	दधाति	धत्त	दधति
म० पु०	दधासि	धत्थ	दधथ
उ० पु०	दधामि	दध्व	दधम



आशा—लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	दघातु, घत्तात्	घत्ताम्	दघतु
म० पु०	घेहि	घत्तम्	घत्त
उ० पु०	दघानि	दघाव	दघाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	दध्यात्	दध्याताम्	दध्यु
म० पु०	दध्या	दध्यातम्	दध्यात
उ० पु०	दध्याम्	दध्याव	दध्याम

अनद्यतनभूत—लृङ्

प्र० पु०	अदघात्	अदघत्ताम्	अदघु
म० पु०	अदघा	अदघत्तम्	अदघत्त
उ० पु०	अदघाम्	अदघव	अदघम

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	दघौ	दघतु	दघु
म० पु०	दघिथ, दघाथ	दघथु	दघ
उ० पु०	दघौ	दघिव	दघिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अघात्	अघाताम्	अघु
म० पु०	अघा	अघातम्	अघात
उ० पु०	अघाम्	अघाव	अघाम

अनद्यतनभविष्य—लृट्

प्र० पु०	घाता	घातारौ	घातार
म० पु०	घातासि	घातास्थ	घातास्थ
उ० पु०	घातास्मि	घातास्व	घातास्म

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	घास्या	घास्यत	घास्यन्ति
म० पु०	घास्यसि	घास्यथ	घास्यथ
उ० पु०	घास्यामि	घास्याव	घास्यामः

## आशीलिङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	धेयात्	धेयास्ताम्	धेयासु
म० पु०	धेया	धेयास्तम्	धेयास्त
उ० पु०	धेयासम्	धेयास्व	धेयास्म

## क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अघास्यत	अघास्यताम्	अघास्यन्
म० पु०	अघास्य	अघास्यतम्	अघास्यत
उ० पु०	अघास्यम्	अघास्यथि	अघास्याम

## आत्मनेपिद

## वर्तमान—लट्

प्र० पु०	दधते	दधाते	दधते
म० पु०	दधसे	दधाथे	दध्वे
उ० पु०	दधे	दध्वहे	दध्महे

## आज्ञा—लोट

प्र० पु०	दधातुम्	दधाताम्	दधाताम्
म० पु०	दधातु	दधाथाम्	दध्वाम्
उ० पु०	दधातु	दधावहै	दधामहै

## विधिलिङ्

प्र० पु०	दधीत	दधीयाताम्	दधीरन्
म० पु०	दधीथा	दधीयाथाम्	दधीध्वम्
उ० पु०	दधीय	दधीवहि	दधीमहि

## अनद्यतनभूत—लृङ्

प्र० पु०	अदधत्	अदधाताम्	अदधत
म० पु०	अदधत्या	अदधाथाम्	अदध्वम्
उ० पु०	अदधि	अदध्वहि	अदध्महि

परोक्षभूत—स्विट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	दधे	दधाते	दधिरे
म० पु०	दधिषे	दधाथे	दधिष्वे
उ० पु०	जदधे	दधिवहे	दधिमहे

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अघित	अघिषाताम्	अघिषत
म० पु०	अघिष्या	अघिषायाम्	अघिष्वम्, द्त्वम्
उ० पु०	अघिषि	अघिष्वहि	अघिषमहि

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	घाता	घातारो	घातार
म० पु०	घातासे	घातासथे	घाताष्वे
उ० पु०	घाताहे	घातास्वहे	घातास्महे

सामान्यभविष्य—लुट्

प्र० पु०	घास्यते	घास्येते	घास्यन्ते
म० पु०	घास्यसे	घास्यथे	घास्यष्वे
उ० पु०	घास्ये	घास्यावहे	घास्यामहे

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	घासीष्य	घासीयास्ताम्	घासीरन्
म० पु०	घासीष्या	घासीयास्थाम्	घासीष्वम्
उ० पु०	घासीय	घासीवहि	घासीमहि

क्रियातिपत्ति—लुङ्

प्र० पु०	अघास्यत	अघास्येताम्	अघास्यन्त
म० पु०	अघास्यथा	अघास्येथाम्	अघास्यष्वम्
उ० पु०	अघास्ये	अघास्यावहि	अघास्यामहि

## परस्मैपदो भी—डरना

## वर्तमान—लट्

प्र० पु०	एकवचन बिभेति	द्विवचन बिभित , बिभीत	बहुवचन बिभ्यति
म० पु०	बिभेषि	बिभिथ , बिभीथ	बिभिथ, बिभीथ
उ० पु०	बिभेमि	बिभिव , बिभीव	बिभिम , बिभीम

## आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	{ बिभेत् { बिभितात्, बिभीतात्	{ बिभिताम् { बिभीताम्	बिभ्यतु
म० पु०	{ बिभिहि, बिभीहि { बिभितात्, बिभीतात्	{ बिभितम् { बिभीतम्	{ बिभित { बिभीत
उ० पु०	बिभयानि	बिभयाव	बिभयाम

## विधिलङ्

प्र० पु०	{ बिभियात् { बिभीयात्	{ बिभियाताम् { बिभीयाताम्	{ बिभियु { बिभीयु
म० पु०	{ बिभिया { बिभीया	{ बिभियातम् { बिभीयातम्	{ बिभियात { बिभीयात
उ० पु०	{ बिभियाव { बिभीयाव	{ बिभियाव { बिभीयाव	{ बिभियाम { बिभीयाम

## अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अबिभेत्	{ अबिभिताम् { अबिभीताम्	अबिभ्यु
म० पु०	अबिभे	{ अबिभितम् { अबिभीतम्	{ अबिभित { अबिभीत
उ० पु०	अबिभयम्	{ अबिभिव { अबिभीव	{ अबिभिम { अबिभीम

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	बिभयाञ्चकार	बिभयाञ्चक्रुः	बिभयाञ्चक्रु
म० पु०	बिभयाञ्चकथं	बिभयाञ्चक्रथु	बिभयाञ्चक्र
उ० पु०	{ बिभयाञ्चकार { बिभयाञ्चकर	बिभयाञ्चक्रव	बिभयाञ्चक्रुम

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	बिभयाम्बभूव	बिभयाम्बभूवतु	बिभयाम्बभूवुः
म० पु०	बिभयाम्बभूविथ	बिभयाम्बभूवथु	बिभयाम्बभूव
उ० पु०	बिभयाम्बभूव	बिभयाम्बभूविव	बिभयाम्बभूविवम
प्र० पु०	बिभयामास	बिभयामासतु	बिभयामासु.
म० पु०	बिभयामासिथ	बिभयामासथु	बिभयामास
उ० पु०	बिभयामास	बिभयामासिव	बिभयामासिवम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अभैषीत्	अभैष्टाम्	अभैषु
म० पु०	अभैषी	अभैष्टम्	अभैष्ट
उ० पु०	अभैषम्	अभैष्व	अभैष्य

अनञ्जतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	भेता	भेतारौ	भेताद्:
म० पु०	भेतासि	भेतास्व	भेतास्व
उ० पु०	भेतास्मि	भेतास्व	भेतास्मः

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	भेष्यति	भेष्यत	भेष्यन्ति
म० पु०	भेष्यसि	भेष्यथ	भेष्यथ
उ० पु०	भेष्यामि	भेष्याव	भेष्यामः

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	भीयाद्	भीयास्ताम्	भीयासु
म० पु०	भीया	भीयास्तम्	भीयास्त
उ० पु०	भीयासम्	भीयास्व	भीयास्म

क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अभेष्यत्	अभेष्यताम्	अभेष्यन्
म० पु०	अभेष्य	अभेष्यतम्	अभेष्यत
उ० पु०	अभेष्यम्	अभेष्याव	अभेष्याथ

## परस्मैपदी

हा—छोडना

वर्तमान—सद्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	जहाति	{ जहित जहीत	जहति
म० पु०	जहासि	{ जहित्. जहीय	{ जहित् जहीय
उ० पु०	जहामि	{ जहित् जहीय	{ जहित् जहीमः

आज्ञा—सोद्

प्र० पु०	{ जहातु जहितात् जहीतात्	{ जहिताम् जहीताम्	{ जहतु
म० पु०	{ जहाहि जहिहि, जहीहि जहितात्, जहीतात्	{ जहितम् जहीतम्	{ जहित जहीत
उ० पु०	जहानि	जहाव	जहाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	जह्यात्	जह्याताम्	जह्यु
म० पु०	जह्या	जह्यातम्	जह्यात
उ० पु०	जह्याम्	जह्याव	जह्याम

अनद्यतनभूत—सङ्

प्र० पु०	अजहात्	{ अजहिताम् अजहीताम्	अजहु
म० पु०	अजह	{ अजहितम् अजहीतम्	{ अजहित अजहीत
उ० पु०	अजहाम्	{ अजहित् अजहीव	{ अजहित् अजहीम

परोक्षभूत—लिट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	जहौ	जहतु	जहु
म० पु०	जहिथ, जहाथ	जहथु	जह
उ० पु०	जही	जहिव	जहिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अहासीत्	अहासिष्ठांम्	अहासिष्व
म० पु०	अहासी	अहासिष्ठांम्	अहासिष्व
उ० पु०	अहासिषम्	अहासिष्व	अहासिष्व

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	हाता	हातारी	हातार
म० पु०	हातासि	हातास्थ	हातास्थ
उ० पु०	हातास्मि	हातास्व	हातास्म-

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	हास्यति	हास्यत	हास्यन्ति
म० पु०	हास्यसि	हास्यथ	हास्यथ
उ० पु०	हास्यामि	हास्याव	हास्याम

आश्लिष्य

प्र० पु०	हेयात्	हेयास्ताम्	हेयासु
म० पु०	हेया	हेयास्तम्	हेयास्त
उ० पु०	हेयासम्	हेयास्व	हेयास्म

क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अहास्यत्	अहास्यताम्	अहास्यन्
म० पु०	अहास्य	अहास्यतम्	अहास्यत
उ० पु०	अहास्यम्	अहास्याव	अहास्याम

(४) दिवादिगण

१४४—इस गण की प्रथम धातु दिव् (जुवा खेलना आदि) है, इस कारण इसका नाम दिवादिगण है। इसमें १४० धातुएँ हैं। इस गण की धातुओं और प्रत्ययों के बीच में श्यन्<sup>१</sup> (य) जोड़ा जाता है, जैसे—मन् धातु से मन्+य+ते=मन्यते, कुप्+य=ति+कुप्यति।

१ दिवादिभ्य श्यन् ।३।१।६६।

नीचे इस गण की मुख्य-मुख्य घातुओं के रूप दिखाए जाते हैं—

**परस्मैपदी दिव्—जुआ खेलना, चमकना आदि**

**वर्तमान—लट्**

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	दीव्यति	दीव्यत	दीव्यन्ति
म० पु०	दीव्यसि	दीव्यथ	दीव्यथ
उ० पु०	दीव्यामि	दीव्याव	दीव्याम

**आज्ञा—लोट्**

प्र० पु०	दीव्यतु, दीव्यतात्	दीव्यताम्	दीव्यन्तु
म० पु०	दीव्य, दीव्यतात्	दीव्यतम्	दीव्यत
उ० पु०	दीव्यानि	दीव्याव	दीव्याम

**द्विप्रलिङ्**

प्र० पु०	दीव्येत्	दीव्येताम्	दीव्येयु
म० पु०	दीव्ये	दीव्येतम्	दीव्येत
उ० पु०	दीव्येयम्	दीव्येव	दीव्येम

**अनद्यतनभूत—लङ्**

प्र० पु०	अदीव्यत्	अदीव्यताम्	अदीव्यन्
म० पु०	अदीव्य	अदीव्यतम्	अदीव्यत
उ० पु०	अदीव्यम्	अदीव्याव	अदीव्याम

**परोक्षभूत—लिट्**

प्र० पु०	दिदिव	दिदिवतु	दिदिवु
म० पु०	दिदिविथ	दिदिवथु	दिदिव
उ० पु०	दिदिव	दिदिविव	दिदिविम

**साम्प्रत्यभूत—लुङ्**

प्र० पु०	अदेवीत्	अदेविष्टाम्	अदेविषु
म० पु०	अदेवी	अदेविष्टम्	अदेविष्ट
उ० पु०	अदेविषम्	अदेविष्व	अदेविष्म
लुट्	देविता	देवितारी	देवितार
लृट्	देविष्यति	देविष्यत	देविष्यन्ति



	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
आशी०	दीव्यात्	दीव्यास्ताम्	दीव्यासु
लृङ्	अदेविष्यत्	अदेविष्यताम्	अदेविष्यन्

### आत्मनेपदी जन्—पैदा होना

#### वर्तमान—लट्

प्र० पु०	जायते	जायेते	जायन्ते
म० पु०	जायसे	जायेथे	जायध्वे
उ० पु०	जाये	जायावहे	जायामहे

#### आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	जायताम्	जायेताम्	जायन्ताम्
म० पु०	जायस्व	जायेथाम्	जायध्वम्
उ० पु०	जायै	जायावहै	जायामहै

#### विधिलिङ्

प्र० पु०	जायेत	जायेयाताम्	जायेरन्
म० पु०	जायेथा	जायेयाथाम्	जायेध्वम्
उ० पु०	जायेय	जायेवहि	जायेमहि

#### अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अजायत	अजायेताम्	अजायन्त
म० पु०	अजायथा	अजायेथाम्	अजायध्वम्
उ० पु०	अजाय	अजायावहि	अजायामहि

#### परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	जज्ञे	जज्ञाते	जज्ञिरे
म० पु०	जज्ञिषे	जज्ञाथे	जज्ञिध्वे-ध्वे
उ० पु०	जज्ञे	जज्ञिवहे	जज्ञिमहे

#### सामान्यभूत—लृङ्

प्र० पु०	अजनि, अजनिष्ट	अजनिषाताम्	अजनिषत
म० पु०	अजनिष्ठा	अजनिषाथाम्	अजनिध्वम्-ध्वम्
उ० पु०	अजनिषि	अजनिष्वहि	अजनिष्महि

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
लृट्	जनिता	जनितारौ	जनितार
लृट्	जनिष्यते	जनिष्येते	जनिष्यन्ते
आशी०	जनिषीष्ट	जनिषीयास्ताम्	जनिषीरन्
लृङ्	अजनिष्यत	अजनिष्येताम्	अजनिष्यन्त

### परस्मैपदी कुप्—कोप करना

#### वर्तमान—लट्

प्र० पु०	कुप्यति	कुप्यत	कुप्यन्ति
म० पु०	कुप्यसि	कुप्यथ	कुप्यथ
उ० पु०	कुप्यामि	कुप्याव	कुप्याम

#### आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	कुप्यतु	कुप्यताम्	कुप्यन्तु
म० पु०	कुप्य	कुप्यतम्	कुप्यत
उ० पु०	कुप्यानि	कुप्याव	कुप्याम

#### विधिलिङ्

प्र० पु०	कुप्येत्	कुप्येताम्	कुप्येयु
म० पु०	कुप्ये	कुप्येतम्	कुप्येत
उ० पु०	कुप्येवम्	कुप्येव	कुप्येम

#### अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अकुप्यत्	अकुप्यताम्	अकुप्यन्
म० पु०	अकुप्य	अकुप्यतम्	अकुप्यत
उ० पु०	अकुप्यम्	अकुप्याव	अकुप्याम

#### परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चुकोप	चुकुपतु	चुकुपु
म० पु०	चुकोपिथ	चुकुपथु	चुकुप
उ० पु०	चुकोप	चुकुपिव	चुकुपिम

## सामान्यभूत—लुङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अकुपत्	अकुपताम्	अकुपन्
म० पु०	अकुप	अकुपताम्	अकुपत
उ० पु०	अकुपम्	अकुपाव	अकुपासु
लुट्	कोपिता	कोपितारौ	कोपितार
लट्	कोपिष्यति	कोपिष्यत	कोपिष्यन्ति
आशी०	कुप्यात्	कुप्यास्ताम्	कुप्यासु
लङ्	अकोपिष्यत्	अकोपिष्यताम्	अकोपिष्यन्

## आत्मनेपदी विद्—होवा

## वर्तमान—लट्

प्र० पु०	विद्यते	विद्येते	विद्यन्ते
म० पु०	विद्यसे	विद्यथे	विद्यध्वे
उ० पु०	विद्ये	विद्यावहे	विद्यामहे

## भूत—लोट्

प्र० पु०	विद्यताम्	विद्येताम्	विद्यन्ताम्
म० पु०	विद्यस्व	विद्येथाम्	विद्यध्वम्
उ० पु०	विद्यै	विद्यावहै	विद्यामहै

## विधिलिङ्

प्र० पु०	विद्येत	विद्येयाताम्	विद्येरन्
म० पु०	विद्येथा	विद्येयाथाम्	विद्येध्वम्
उ० पु०	विद्येय	विद्येवहि	विद्येमहि

## अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अविद्यत	अविद्येताम्	अविद्यन्त
म० पु०	अविद्यथा	अविद्येथाम्	अविद्यध्वम्
उ० पु०	अविद्ये	अविद्यावहि	अविद्यामहि

## परोक्षभूत—लिट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	विविदे	विविदाने	विविदिरे
म० पु०	विविदिषे	विविदाथे	विविदिध्वे
उ० पु०	विविदे	विविदिवहे	विविदिमहे

## सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अवित्त	अवित्साताम्	अवित्सत
म० पु०	अवित्था	अवित्साथाम्	अविद्ध्वम्, द्वम्
उ० पु०	अवित्ति	अवित्स्वहि	अवित्स्महि
लुट्	वेत्ता	वेत्तारौ	वेत्तार
लृट्	वेत्स्यते	वेत्स्येते	वेत्स्यन्ते
आशी०	वित्सीष्ट	वित्सीयास्ताम्	वित्सीरन्
लृट्	अवेत्स्यत	अवेत्स्येताम्	अवेत्स्यन्त

१४५—नीचे कुछ मुख्य-मुख्य धातुओं की सूची दी जाती है।

कम् (प०)—जाना। लट्—काम्यति। लङ्—अकाम्यत्। लुट्—कमिता।  
लृट्—कमिष्यते। विधि०—काम्येत। आशी०—कम्यात्।  
लृङ्—अकामिष्यत्।

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चक्रम	चक्रमतु	चक्रमु
म० पु०	चक्रमिथ	चक्रमथु	चक्रम
उ० पु०	चक्राम, चक्रम	चक्रमिव	चक्रमिम

१ इस धातु से सार्वधातुको में विकल्प से श्यन् प्रत्यय जुड़ता है। अतः वह इन्हीं में विकल्प से दिवादिगणी होती है, अन्यथा यह भ्वादिगणी है और इसके रूप क्रामति, क्रामतु, क्रामेत्, अक्रामत् इत्यादि होते हैं। यह धातु आत्मनेपदी भी है और आत्मनेपदी होने पर यह सेट् नहीं होती। तब इसके रूप क्रमते, क्रमताम्, क्रमेत, क्रीष्यते, अक्रमत, चक्रमे, अकस्त, क्रन्ता, कस्यते, अकस्यत इत्यादि होने हैं।

## सामान्यभूत—लुङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अक्रमीत्	अक्रमिष्टाम्	प्रक्रमिषु
म० पु०	अक्रमी	अक्रमिष्टम्	अक्रमिष्ट
उ० पु०	अक्रमिषम्	अक्रमिष्व	अक्रमिष्व

क्रुध् (प०)—गुस्सा करना। लट्—क्रुध्यति। लिट्—चुक्रोध। लृङ्—  
अक्रुधत्। लुट्—क्रोद्धा। लृट्—क्रोत्स्यति। आशी०—क्रुध्यात्।  
लृङ्—अक्रोत्स्यत्।

क्लिश् (आत्म०)—दु खी होना, क्लेश पाना। लट्—क्लिश्यते। लृङ्—  
अक्लिष्ट। लुट्—क्लेशिता। लृट्—क्लेशिष्यते। आशी०—  
क्लेशिषीष्ट। लृङ्—अक्लेशिष्यत्।

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चिक्लिशे	चिक्लिशाते	चिक्लिशिरे
म० पु०	चिक्लिशिषे	चिक्लिशिषाथे	चिक्लिशिष्वे
उ० पु०	चिक्लिशे	चिक्लिशिवहे	चिक्लिशिमहे

क्षम्<sup>१</sup> (प०)—क्षमा करना। लट्—क्षाम्यति। विधि—क्षाम्येत्। लुट्—  
क्षमिता अथवा क्षन्ता।

## सामान्यभविष्य--लृट्

प्र० पु०	क्षमिष्याति	क्षमिष्यत	क्षमिष्यन्ति
म० पु०	क्षमिष्यसि	क्षमिष्यथ	क्षमिष्यथ
उ० पु०	क्षमिष्यामि	क्षमिष्याव	क्षमिष्याम

## अथवा

प्र० पु०	क्षस्यति	क्षस्यत	क्षस्यन्ति
म० पु०	क्षस्यसि	क्षस्यथ	क्षस्यथ
उ० पु०	क्षस्यामि	क्षस्याव	क्षस्याम
आशी०	क्षम्यात्	लृङ्—अक्षमिष्यत्, अक्षस्यत्।	

१ यह धातु वेद है, अत क्षमिता तथा क्षन्ता, क्षमिष्यति तथा क्षस्यति  
इत्यादि द्विविध रूप होते हैं।

## परोक्षभूत—लिट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	चक्षाम	चक्षमतु	चक्षमु
म० पु०	{ चक्षमिथ चक्षन्थ	चक्षमथु	चक्षम
उ० पु०	{ चक्षाम चक्षम	{ चक्षमिव चक्षण्व	{ चक्षमिम चक्षण्म

लङ्—अक्षाम्यत् । लुङ्—अक्षमत्, अक्षमताम्, अक्षमन् ।

क्षुष् (प०)—भूखा होना । लट्—क्षुष्यति । लिट्—चुक्षोष । लुङ्—अक्षुषत् । लृट्—क्षोढा । लृट्—क्षीत्स्यति । आशी०—क्षुष्यात् । लृट्—क्षीत्स्यति । आशी०—क्षुष्यात् । लृङ्—अक्षेत्स्यत् ।

खिद् (आत्म०)—दुःखी होना । लट्—खिद्यते । लिट्—चिखिदे । लुङ्—अखैत्सीत् । लृट्—खेत्ता । लृट्—खेत्स्यते । आशी०—खित्सीष्ट । लृङ्—अखैत्स्यत् ।

तुष् (प०)—प्रसन्न होना । लट्—तुष्यति । लिट्—तुतोष । लुङ्—अतुषत् । लृट्—तोष्टा । लृट्—तोक्ष्यति । आशी०—तुष्यात् । लृङ्—अतोक्ष्यत् ।

दम् (प०)—दमन करना, दबाना । लट्—दाम्यति । लिट्—दाम । लृङ्—अदमत् । लृट्—दमिता । लृट्—दमिष्यति । आशी०—दम्यात् । लृङ्—अदमिष्यत् ।

दुष् (प०)—अशुद्ध होना । लट्—दुष्यति । लिट्—दुदोष । लुङ्—अदुषत् । लृट्—दोष्टा । लृट्—दोक्ष्यति । आशी०—दुष्यात् । लृङ्—अदोक्ष्यत् ।

द्रुह् (प०)—डाह करना । लट्—द्रुह्यति । लृट्—द्रोहिता, द्रोष्वा, द्रोढा । लृट्—द्रोहिष्यति, द्रोक्ष्यति । आशी०—द्रुह्यात् । लृङ्—अद्रोहिष्यत्, अद्रोक्ष्यत् । लृङ्—अद्रुहत् ।

परोक्षभूत—लिट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	दुद्रोह	दुद्रुहतु	दुद्रुह
म० पु०	{ दुद्रोहिथ दुद्रोढ दुद्रोग्घ	दुद्रुहथु	दुद्रुह
उ० पु०	दुद्रोह	{ दुद्रुहिव दुद्रुह्व	{ दुद्रुहिन् दुद्रुह्व

नश् (प०)—नाश हो जाना, न दिखाई पडना। लट्—नश्यति। लृट्—  
नशिता, नष्टा। लृट्—नशिष्यति, नक्ष्यति। आशी०—नक्ष्यात्।  
लृट्—अनशिष्यत्, अनक्ष्यत्। लुङ्—अनशात्

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	ननाश	नेशतु	नेशु
म० पु०	{ नेशिय ननष्ट	नेशथु	नेश
उ० पु०	{ ननाश ननश	{ नेशिद् नेश्व	{ नेशिम नेशम

नृत् (प०)—नाचना। लट्—नृत्यति। लृट्—नृतिता। लृट्—नृतिष्यति,  
नत्स्यति। आशी०—नृत्यात्।

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	ननत	ननृतु	ननृत्
म० पु०	ननतिथ	ननृतथु	ननृत
उ० पु०	ननति	ननृतिव	ननृतिम
लुङ्	ननतीत्	अनृतिष्टाम्	अनृतिषु

अम् (प०)—आन्त होना। लट्—आम्यति। लृट्—अमिता। लृट्—  
अमिष्यति। आशी०—अम्यात्।

१ 'अनवस्थान' अर्थात् आन्ति अर्थ मे यह धातु दिवादिगणी होती है परन्तु विकल्प से शप् भी होता है। शबन्त होने पर इसके भ्रमति, भ्रमत, भ्रमन्ति इत्यादि रूप होते हैं।

भ्रमण करना या घूमना अर्थ होने पर यह धातु स्वादिगणी होती है और इसके रूप पूर्वोक्त भ्रमति इत्यादि ही होते हैं। वहाँ यह विकल्प से दिवादि भी होती है और तब स्यन् जुडने पर भ्राम्यति इत्यादि रूप होते हैं।

## परोक्षभूत—लिट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	बभ्राम	{ बभ्रमतु भ्रेमतु	{ बभ्रमु भ्रेमु
म० पु०	{ बभ्रमिथ भ्रेमिथ	{ बभ्रमथु भ्रेमथु	{ बभ्रम भ्रेम
उ० पु०	{ बभ्राम बभ्रम	{ बभ्रमिव भ्रेमिव	{ बभ्रमिम भ्रेमिम
लुङ्	अभ्रमत्	अभ्रमताम्	अभ्रमन्

मन् (आत्म०)—समझना । लट्—मन्यते । लृट्—मन्ता । लृट्—  
मस्यते । आशी०—मसीष्ट । लिट्—मेने, मेनाते, मेनिरे ।  
लुङ्—अमस्त, अमसाताम्, अमसत । अमस्था, अमसाथाम्,  
अमन्व्वम् । अमसि, अमस्वाहि, अमस्महि ।

युष् (आ०)—सग्राम करना । लट्—युष्यते । लृट्—योद्धा । लृट्—योत्स्यते ।  
आशी०—युत्सीष्ट । लृङ्—अयोत्स्यत । लिट्—युयुधे । लुङ्—  
अयुद्ध, अयुत्साताम्, अयुत्सत ।

व्यष् (प०)—बेधना । लट्—विध्यति । लृट्—व्यद्धा । लृट्—व्यत्स्यति  
आशी०—विध्यत् ।

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	विव्याध	विविधतु	विविधु
म० पु०	विव्यधिथ, विव्यद्ध	विविधथु	विविध
उ० पु०	विव्याध, विव्यध	विविधिव	विविधिम

## सामान्यभूत—लृङ्

प्र० पु०	अव्यात्सीत्	अव्याद्धाम्	अव्यात्सु
म० पु०	अव्यात्सी	अव्याद्धम्	अव्याद्ध
उ० पु०	अव्यात्सम्	अव्यात्स्व	अव्यात्सम्

शुष् (प०)—सूखना । लट्—शुष्यति । लृट्—शोष्टा । लृट्—शोक्ष्यति ।  
आशी०—शुष्यात् । लिट्—शुशोष । लुङ्—अशुषत् ।



सिध् (प०)—सिद्ध होना, कामयाब होना। लट्—सिध्यति। लुट्—सेद्धा।  
आशी०—सिध्यात्। लिट्—सिषेध। लुङ्—असिधत्।

सिब् (प०)—सीना। लट्—सीव्यति। लुट्—सेविता। आशी०—सीव्यात्।  
लिट्—सिषेव। लुङ्—असेवीत्।

हृष् (प०)—हर्षित होना। लट्—हृष्यति। लुट्—हर्षिता। लृट्—हर्षिष्यति।  
आशी०—हृष्यात्। लिट्—जहर्ष। लुङ्—अहृषत्।

### (५) स्वादिगण

१४६—इस गण की प्रथम घातु सु (रस निकालना) है, इस कारण इसका नाम स्वादि पडा। इसमें ३५ घातुएँ हैं। घातु' और प्रत्यय के बीच में इस गण में स्नु ( नु ) जोडा जाता है। उदाहरणार्थ—सु+नु+ते=सुनुते आदि।

नोट—प्रत्यय के व, म से पूर्व विकल्प से नु का उ, लुप्त हो जाता है, (जैसे—  
सु+नु+व =सुनुव, सुन्व, इसी प्रकार, सुन्म, सुन्म। किन्तु यदि नु के पूर्व कोई व्यञ्जन हो तो उ नहीं हटाया जाता, (जैसे—साध्+नु+म =साध्नुम)।

नीचे इस गण की मुख्य-मुख्य घातुओं के रूप दिये जाते हैं।

परस्मैपदा आप्—पाना

कर्मणान—लट

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	आप्नोति	आप्नुत	आप्नुवन्ति
म० पु०	आप्नोषि	आप्नुथ	आप्नुथ
उ० पु०	आप्नोमि	आप्नुव	आप्नुम

आज्ञा—लोट

प्र० पु०	आप्नोतु	आप्नुताम्	आप्नुवन्तु
म० पु०	आप्नुहि	आप्नुतम्	आप्नुत
उ० पु०	आप्नवानि	आप्नुवाव	आप्नुवाश्

१ स्वादिभ्य स्नु ।३।१।७३।

## विधिलिङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	आप्नुयात्	आप्नुयाताम्	आप्नुयु
म० पु०	आप्नुया	आप्नुयातम्	आप्नुयात
उ० पु०	आप्नुयाम्	आप्नुयाव	आप्नुयाम

## अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	आप्नोत्	आप्नुताम्	आप्नुवन्
म० पु०	आप्नो	आप्नुतम्	आप्नुत
उ० पु०	आप्नवम्	आप्नुव	आप्नुम

## परोक्षभूत—चिट्

प्र० पु०	आप	आपतु	आपु
म० पु०	आपिथ	आपतु	आप
उ० पु०	आप	आपिव	आपिम

## आपान्यभूत—लृङ्

प्र० पु०	आपत्	आपताम्	आपन्
म० पु०	आप	आपतम्	आपत
उ० पु०	आपम्	आपाव	आपाम
लृट्	आप्ता	आप्तारौ	आप्तार
लृट्	आप्स्यति	आप्स्यत	आप्स्यन्ति
आशी०	आप्यात्	आप्यास्ताम्	आप्यासु
लृङ्	आप्स्यत्	आप्स्यताम्	आप्स्यन्

## उभयपदी चि—इकट्ठा करना

## परस्मैपदी

## वर्तमान—लट्

प्र० पु०	चिनोति	चिनुत	चिन्वन्ति
म० पु०	चिनोषि	चिनुथ	चिनुथ
उ० पु०	चिनोमि	चिनुव , चिन्व	चिनुम , चिन्म

## आज्ञा—लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	चिनोतु, चिनुतात्	चिनुताम्	चिन्वन्तु
म० पु०	चिनु, चिनुतात्	चिनुतम्	चिनुत
उ० पु०	चिनवानि	चिनवाव	चिनवाम्

## विधिलिङ्

प्र० पु०	चिनुयात्	चिनुयाताम्	चिनुयु
म० पु०	चिनुया	चिनुयातम्	चिनुयात
उ० पु०	चिनुयाम्	चिनुयाव	चिनुयाम

## अनद्यतनभूत—सङ्

प्र० पु०	अचिनोत्	अचिनुताम्	अचिन्वन्
म० पु०	अचिनो	अचिनुतम्	अचिनुत
उ० पु०	अचिनवम्	अचिनव, अचिन्व	अचिनुम, अचिन्म

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चिकाय	चिक्यतु	चिक्यु
म० पु०	चिकयिथ, चिकेथ	चिक्यथु	चिक्य
उ० पु०	चिकाय, चिकय	चिकियव	चिकियम

## अथवा

प्र० पु०	चिचाय	चिच्च्यतु	चिच्च्यु
म० पु०	चिचयिथ, चिचेथ	चिच्च्यथु	चिच्च्य
उ० पु०	चिचाय, चिचय	चिच्चियव	चिच्चियम

## सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अचैषीत्	अचैष्टाम्	अचैषु
म० पु०	अचैषी	अचैष्टम्	अचैष्ट
उ० पु०	अचैषम्	अचैष्व	अचैष्व
लुङ्	चेता	चेतारौ	चेतार
लृट्	चेष्यति	चेष्यत	चेष्यन्ति

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
आशी०	चीयात्	चीयास्ताम्	चीयासु
लृङ्	अचेष्यत्	अचेष्यताम्	अचेष्यन्

## आत्मनेपद

## वर्तमान—लट्

प्र० पु०	चिनुते	चिन्वाते	चिन्वते
म० पु०	चिनुषे	चिन्वाथे	चिनुध्वे
उ० पु०	चिन्वे	चिनुवहे, चिन्वहे	चिनुमहे, चिन्महे

## आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	चिनुताम्	चिन्वाताम्	चिन्वताम्
म० पु०	चिनुष्व	चिन्वाथाम्	चिनुध्वम्
उ० पु०	चिनवै	चिन्वावहै	चिन्वामहै

## किञ्चिलिङ्

प्र० पु०	चिन्वीत	चिन्वीयाताम्	चिन्वीरन्
म० पु०	चिन्वीथा	चिन्वीयाथाम्	चिन्वीध्वम्
उ० पु०	चिन्वीय	चिन्वीवहि	चिन्वीमहि

## अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अचिनुत	अचिन्वाताम्	अचिन्वत
म० पु०	अचिनुथा	अचिन्वाथाम्	अचिनुध्वम्
उ० पु०	अचिन्वि	{ अचिनुवहि, अचिन्वहि	{ अचिनुमहि, अचिन्महि

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चिक्ये	चिक्याते	चिक्यरे
म० पु०	चिक्यिषे	चिक्याथे	चिक्यिध्वे, द्वे
उ० पु०	चिक्ये	चिक्यिवहे	चिक्यिमहे

## अथवा

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	चिच्च्ये	चिच्याते	चिच्च्यरे
म० पु०	चिच्च्यिषे	चिच्याथे	चिच्च्यिष्वे, द्वे
उ० पु०	चिच्च्ये	चिच्च्यवहे	चिच्च्यमहे

## सामान्यभूत—लङ्

प्र० पु०	अचेष्ट	अचेषाताम्	अचेषत
म० पु०	अचेष्ठा	अचेषाथाम्	अचेद्वम्
उ० पु०	अचेषि	अचेष्वहि	अचेष्महि
लुट्	चेता	चेतारौ	चेतार
लुट्	चेष्यते	चेष्येते	चेष्यन्ते
आशी०	चेषीष्ट	चेषीयास्ताम्	चेषीरन्
लृङ्	अचेष्यत	अचेष्येताम्	अचेष्यन्त

उभयपदी वृ<sup>१</sup>—चुनना, वरण करना

परस्परपद

## वर्तमान—लट्

प्र० पु०	वृणोति	वृणुत	वृण्वन्ति
म० पु०	वृणोषि	वृणुथ	वृणुथ
उ० पु०	वृणोमि	वृणुव, वृण्व	वृणुम, वृण्व

## आज्ञा—लोट

प्र० पु०	वृणोतु	वृणुताम्	वृण्वन्तु
म० पु०	वृणु	वृणुतम्	वृणुत
उ० पु०	वृणुयानि	वृणुवाव	वृणुवाम

## विधिलिङ्

प्र० पु०	वृणुयात्	वृणुयाताम्	वृणुयु
म० पु०	वृणुया	वृणुयातम्	वृणुयात
उ० पु०	वृणुयाम्	वृणुयाथ	वृणुयाम

१ यह घातु इसी अर्थ मे क्र्यादिगण मे भी है। वहाँ इसके रूप वृणाति, वृणीते इत्यादि होते हैं।

## अनद्यतनभूत—लङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अवृणोत्	अवृणुताम्	अवृण्वन्
म० पु०	अवृणो	अवृणुतम्	अवृणुत
उ० पु०	अवृणवम्	अवृणुव, अवृण्व	अवृणुम, अवृण्म

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	ववार	वव्रतु	वव्रु
म० पु०	ववरिथ	वव्रथु	वव्र
उ० पु०	ववार, ववर	ववृव	ववृम

## सामान्यभूत—लृट्

प्र० पु०	अवारीत्	अवारिष्टाम्	अवारिषु
म० पु०	अवारी	अवारिष्टम्	अवारिष्ट
उ० पु०	अवारिषम्	अवारिष्व	अवारिष्म
लृट्	{ वरिता वरीता	{ वरितारौ वरीतारौ	{ वरितार वरीतार
लृट्	{ वरिष्यति वरीष्यति	{ वरिष्यत वरीष्यत	{ वरिष्यन्ति वरीष्यन्ति
आशी०	त्रियात्	त्रियास्ताम्	त्रियामु
लृङ्	{ अवरिष्यत् अवरीष्यत्	{ अवरिष्यताम् अवरीष्यताम्	{ अवरिष्यन् अवरीष्यन्

## आत्मनेपद

## वर्तमान—लट्

प्र० पु०	वृणुते	वृण्वान्ते	वृण्वते
म० पु०	वृणुषे	वृण्वाम्हे	वृणुध्वे
उ० पु०	वृण्वे	वृणुवहे, वृण्वहे	वृणुमहे, वृण्महे

## आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	वृणुताम्	वृण्वताम्	वृण्वताम्
म० पु०	वृणुष्व	वृण्वाम्	वृणुध्वम्
उ० पु०	वृण्वै	वृण्वामहे	वृण्वामहे

## विधिलिङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	वृण्वीत	वृण्वीयाताम्	वृण्वीरन्
म० पु०	वृण्वीथा	वृण्वीयाथाम्	वृण्वीध्वम्
उ० पु०	वृण्वीय	वृण्वीवहि	वृण्वीमहि

## अनञ्जतनभूत—सङ्

प्र० पु०	अवृणुत	अवृण्वाताम्	अवृण्वत
म० पु०	अवृणुथा	अवृण्वाथाम्	अवृण्वध्वम्
उ० पु०	अवृण्वि	अवृण्वहि	अवृण्वमहि

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	वव्रे	वव्राते	वव्रिरे
म० पु०	वव्रेषे	वव्राथे	वव्रुध्वे
उ० पु०	वव्रे	वव्रुवहे	वव्रुमहे

## सामान्यभूत—लृट्

प्र० पु०	अवरिषट्	अवरिषाताम्	अवरिषत
म० पु०	अवरिषठा	अवरिषाथाम्	अवरिषध्वम्, ढ्वम्
उ० पु०	अवरिषि	अवरिष्वहि	अवरिष्वमहि

या

प्र० पु०	अवरीषट्	अवरीषाताम्	अवरीषत
म० पु०	अवरीषठा	अवरीषाथाम्	अवरीषध्वम्, ढ्वम्
उ० पु०	अवरीषि	अवरीष्वहि	अवरीष्वमहि

## अथवा

प्र० पु०	अवृण	अवृषाताम्	अवृषत
म० पु०	अवृथा	अवृषाथाम्	अवृषध्वम्
उ० पु०	अवृषि	अवृष्वहि	अवृष्वमहि

लट्	{ वरिता वरीता	{ वरितारौ वरीतारौ	{ वरितार वरीतार
-----	------------------	----------------------	--------------------

लृट्	{ वरिष्यते वरीष्यते	{ वरिष्येते वरीष्येते	{ वरिष्यन्ते वरीष्यन्ते
------	------------------------	--------------------------	----------------------------

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
आशी०	{ वरिषीष्ट वृषीष्ट	{ वरिषीयास्ताम् वृषीयास्ताम्	{ वरिषीरन् वृषीरन्
लृङ्	{ अवरिष्यत अवरीष्यत	{ अवरिष्येताम् अवरीष्येताम्	{ अवरिष्यन्त अवरीष्यन्त

परस्मैपदी शक्—सकना

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	शक्नोति	शक्नुत	शक्नुवन्ति
म० पु०	शक्नोषि	शक्नुथ	शक्नुथ
उ० पु०	शक्नोमि	शक्नुव	शक्नुम

भ्राज्जा—लोट्

प्र० पु०	शक्नोतु	शक्नुताम्	शक्नुवन्तु
म० पु०	शक्नुहि	शक्नुतम्	शक्नुत
उ० पु०	शक्नवानि	शक्नवाव	शक्नवाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	शक्नुयात्	शक्नुयाताम्	शक्नुयु
म० पु०	शक्नुया	शक्नुयातम्	शक्नुयात
उ० पु०	शक्नुयाम्	शक्नुयाव	शक्नुयाम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अशक्नोत्	अशक्नुताम्	अशक्नुवन्
म० पु०	अशक्नो	अशक्नुतम्	अशक्नुत
उ० पु०	अशक्नवम्	अशक्नुव	अशक्नुम

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	शशाक	शेकतु	शेकु
म० पु०	शेकिथ, शशकथ	शेकथु	शेक
उ० पु०	शशाक, शशक	शेकिव	शेकिम



## सामान्यभूत—लृङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अशकत्	अशकताम्	अशकन्
म० पु०	अशक	अशकतम्	अशकत
उ० पु०	अशकम्	अशकाव	अशकामे
लट्	शक्ता	शक्तारौ	शक्तार
लृट्	शक्यति	शक्यत	शक्यन्ति
आशी०	शक्यात्	शक्यास्ताम्	शक्यासु
लृङ्	अशक्यत्	अशक्यताम्	अशक्यन्

## (६) तुदादिगण

१४७—इस गण की प्रथम धातु तुद् (पीडा पहुँचाना) है, इसी से इसका नाम तुदादिगण है। इसमें १५७ धातुएँ हैं। धातु और प्रत्यय के बीच में इसमें 'श' (अ) जोड़ा जाता है। भ्वादिगण में भी अ जोड़ा जाता है किन्तु वहाँ धातु की उपधा को अथवा अन्त के स्वर का गुण प्राप्त होता है, यहाँ तुदादिगण में ऐसा नहीं होता। यहाँ अन्तिम 'द' को इय्, उ, ऊ को उव्, ऋ को रिय् और ऋ को इर् हो जाता है, जैसे—रि+अ+ति=रियति। घु+अ+ति=घुवति। मू+अ+ते=म्रियते। गृ+अ+ति=गिरति। कृष् धातु भ्वादिगण तथा तुदादिगण दोनों में हैं, भ्रादि में कर्षति आदि और तुदादि में कृषति आदि रूप होते हैं।

नीचे मुख्य-मुख्य धातुओं के रूप दिये जाते हैं।

उभयपदी तुद्—पीडा पहुँचाना

परस्मैपद

वर्तमान—लट्

प्र० पु	तुदति	तुदत	तुदन्ति
म० पु०	तुदसि	तुदथ	तुदथ
उ० पु०	तुदामि	तुदाव	तुदाम

## आज्ञा—लोट

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	तुदतु, तुदतात्	तुदताम्	तुदन्तु
म० पु०	तुद्, तुदतात्	तुदतम्	तुदत
उ० पु०	तुदानि	तुदाव	तुदाम

## विधिलिङ्

प्र० पु०	तुदेत्	तुदेताम्	तुदेयु
म० पु०	तुदे	तुदेतम्	तुदेत
उ० पु०	तुदेयम्	तुदेव	तुदेम

## अनद्यतनभूत—लृङ्

प्र० पु०	अतुदत्	अतुदताम्	अतुदन्
म० पु०	अतुद	अतुदतम्	अतुदत
उ० पु०	अतुदम्	अतुदाव	अतुदाम

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	तुतोद	तुतुदतु	तुतुदु
म० पु०	तुतोदिय	तुतुदथु	तुतुद
उ० पु०	तुतोद	तुतुदिव	तुतुदिम

## सामान्यभूत—लृङ्

प्र० पु०	अतोत्सीत्	अतोत्ताम्	अतोत्सु
म० पु०	अतोत्सी	अतोत्तम्	अतोत्त
उ० पु०	अतोत्सम्	अतोत्स्व	अतोत्स्म

लृट्—तोत्ता । लृट्—तोत्स्यति । आशी०—तुधात् । लृङ्—अतोत्स्यत् ।

## आत्मनेपद

## वर्तमान—लट्

प्र० पु०	तुदते	तुदेते	तुदन्ते
म० पु०	तुदसे	तुदेथे	तुदध्वे
उ० पु०	तुदे	तुदावहे	तुदामहे

भाषा—लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	तुदताम्	तुदेताम्	तुदन्ताम्
म० पु०	तुदस्व	तुदेथाम्	तुदध्वम्
उ० पु०	तुदै	तुदावहै	तुदामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	तुदेत	तुदेयाताम्	तुदेन्
म० पु०	तुदेथा	तुदेयाथाम्	तुदेध्वम्
उ० पु०	तुदेय	तुदेवहि	तुदेमहि

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अतुदत	अतुदेताम्	अतुदन्त
म० पु०	अतुदथा	अतुदेथाम्	अतुदध्वम्
उ० पु०	अतुदे	अतुदेवहि	अतुदामहि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	तुतुदे	तुतुदाते	तुतुदिरे
म० पु०	तुतुदिषे	तुतुदाथे	तुतुदिध्वे
उ० पु०	तुतुदे	तुतुदिवहे	तुतुदिमहे

सामान्यभूत—लृङ्

प्र० पु०	अतुत्त	अतुत्साताम्	अतुत्सत
म० पु०	अतुत्थ	अतुत्साथाम्	अतुत्ध्वम्
उ० पु०	अतुत्सि	अतुत्स्वहि	अतुत्समहि

लट्—तोता, तोतारौ, तोतार । तोतासे । लृट्—तोत्स्यते । आशी०—तोत्सीष्ट । लृङ्—अतोत्स्यत ।

परस्मैपदी इष्—इच्छा करना

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	इच्छति	इच्छत	इच्छन्ति
म० पु०	इच्छसि	इच्छथ	इच्छथ
उ० पु०	इच्छामि	इच्छाव	इच्छाम

## आज्ञा—लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	इच्छतु	इच्छताम्	इच्छन्तु
म० पु०	इच्छे	इच्छतम्	इच्छत
उ० पु०	इच्छानि	इच्छाव	इच्छाम

## विधिलिङ्

प्र० पु०	इच्छेत्	इच्छेताम्	इच्छेयु
म० पु०	इच्छे	इच्छेते	इच्छेत
उ० पु०	इच्छेयम्	इच्छेय	इच्छेम

## अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	ऐच्छत्	ऐच्छताम्	ऐच्छन्
म० पु०	ऐच्छ	ऐच्छतम्	ऐच्छत
उ० पु०	ऐच्छम	ऐच्छाव	ऐच्छाम

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	इयेष	ईषतु	ईषु
म० पु०	इयेषिथ	ईषथु	ईष
उ० पु०	इयेष	ईषिव	ईषिम

## सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	ऐषीन्	ऐषिष्टाम्	ऐषिषु
म० पु०	ऐषी	ऐषिष्टम्	ऐषिष्ट
उ० पु०	ऐषिषम्	ऐषिष्व	ऐषिष्म

## अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	{ ण्षिता एष्टा	{ एपिनारौ एष्टारौ	{ एषितार एष्टार
म० पु०	{ एषितासि एष्टासि	{ एपितास्थ एष्टास्थ	{ एषितास्थ एष्टास्थ
उ० पु०	{ एषितास्मि एष्टास्मि	{ एषितास्व एष्टास्व	{ एषितास्म एष्टास्म

## सामान्यभविष्य—लृट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	एषिष्यति	एषिष्यत	एषिष्यन्ति
म० पु०	एषिष्यसि	एषिष्यथ	एषिष्यथ
उ० पु०	एषिष्यामि	एषिष्याव	एषिष्याम
आशी०	इष्यात् ।	लृङ्	ऐषिष्यते ।

१४८—तुदादिगण की अन्य मृग्य धातुओं की सूची ।

कृत् (प०)—काटना । लट्—कृन्तति । लृट्—कर्तिता । लृट्—कर्तिष्यति, कत्स्यति । आशी०—कृत्यात् । लङ्—अकर्तव्यत्, अकत्स्यत् ।

लिट्—चकत चकृतु चकृतु । लृङ्—भकर्तात् ।

कृष् (उ०)—जोतना । लट्—कृषति, कृषत । लृट्—कृषती, कृषता । लृट्—कक्षयति, कक्षयति, कक्षयते, कक्षयते । आशी०—कृष्यात्, कृषीष्ट । लङ्—अकक्षयत्, अकक्षयत्, अकक्षयत्, अकक्षयत् । लिट्—चकप, चकषे । लङ्—अकाक्षीन्, अकाक्षीन्, अकृषट, अकृषत ।

कृ (प०)—तितर बितर करना । लट्—किरति । लृट्—किरति, करीता । लृट्—करिष्यति करिष्यति । आशी०—कीर्यात् । लृङ्—अकरिष्यत्, अकरीष्यत् । लिट्—चकार, चकरतु चकर । चकरिथ । लङ्—अकारीत्, अकारिष्ठा, अकारिषु ।

गृ (प०)—निगलना । लट्—गिरति, गिरत, गिरन्ति तथा गिलति, गिलत गिलन्ति । लृट्—गरिता, गरीता । गलिता, गलीता । लृट्—गरिष्यति, गरीष्यति । गलिष्यति, गलीष्यति । आशी०—गीयात् लिट्—जगार, जगरतु, जगर । जगाल, जगलतु, जगल् । जगन्थि जगलिथ । लृङ्—अगारीत्, अगालीत् ।

वृट् (प०)—टूट जाना । लट्—वृटति । लृट्—वृटिना । लृट्—वृटिष्यति । आशी०—वृट्यात् । लिट्—तुवोट, तुवुटतु, तुवुट ।

१ इस धातु में विकल्प श्यन् होने के कारण वृट्चति इत्यादि भी रूप हाते हैं ।

तुत्रुटिथ, तुत्रुटथु, तुत्रुट। तुत्रोट, तुत्रुटिव, तुत्रुटिम। लृङ्—  
अत्रुटीत्, अत्रुटिष्टाम्, अत्रुटिषु।

प्रच्छ (प०)—पृच्छना। लृट्—पृच्छति, पृच्छत, पृच्छन्ति। लृट्—प्रष्टा,  
प्रष्टारौ, प्रष्टार। लृट्—प्रक्ष्यति। आशी०—पृच्छ्यात्।  
लृङ्—अप्रक्ष्यत्।

## परोक्षभूत—लिट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	पप्रच्छ	पप्रच्छतु	पप्रच्छु
म० पु०	पप्रच्छिथ, पप्रष्ठ	पप्रच्छथु	पप्रच्छ
उ० पु०	पप्रच्छ	पप्रच्छिव	पप्रच्छिम

## सामान्यभूत—लृङ्

प्र० पु०	अप्राक्षीत्	अप्रष्टाम्	अप्राक्षु
म० पु०	अप्राक्षी	अप्रष्टम्	अप्रष्ट
उ० पु०	अप्राक्षम्	अप्राक्ष्व	अप्राक्ष्व

मिल् (उ०)—मिलना। लृट्—मिलति, मिलते। लिट्—मिमेल, मिमितु,  
मिमिलु। मिमेलिथ, मिमितथु मिमिल। मिमेल, मिमिलिव,  
मिमिलिम। मिमिले, मिमिलाते, मिमिलिरे। लृङ्—अमेलीत्,  
अमेलिष्टाम्, अमेलिषु। अमेलिष्ट, अमेलिषाताम्, अमेलिषत।  
लृट्—मेलिता। लृट्—मेलिष्यति, मेलिष्यते। आशी०—मिल्यात्,  
मेल्यात्, मेलिषीष्ट। लृङ्—अमेलिष्यत्, अमेलिष्यत।

मुच् (उ०)—ओडना। लृट्—मुञ्चति<sup>१</sup>, मुञ्चत, मुञ्चन्ति। मुञ्चते, मुञ्चेते,  
मुञ्चन्ते। लृट्—मोक्ता। लृट्—मोक्ष्यति, मोक्ष्यते। आशी०—  
मुच्यात्, मुक्षीष्ट। लृङ्—अमोक्ष्यत्, अमोक्ष्यत।

१ शो मुचादीनाम् ।७।१।५६। मुच् इत्यादि धातुओ मे नुम् का आगम हो  
जाता है। वे धातुएँ निम्नलिखित हैं—मुच्, लुप् (लुम्पति), षिच् (सिञ्चति),  
ऊत् (ऊन्तति), खिद् (खिन्दति) और पिश् (पिषति)।

## परोक्षभूत—लिट्

## परस्मैपद

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	मुमोच	मुमुचतु	मुमुचु
म० पु०	मुमोचिथ, मुमोकथ	मुमुचथु	मुमुच
उ० पु०	मुमोच	मुमुचिव	मुमुचिम

## परोक्षभूत—लिट्

## आत्मनेपद

प्र० पु०	मुमुचे	मुमुचाते	मुमुचिरे
म० पु०	मुमुचिषे	मुमुचाथे	मुमुचिष्वे
उ० पु०	मुमुचे	मुमुचिवहे	मुमुचिमहे

## सामान्यभूत—लृङ्

## परस्मैपद

प्र० पु०	अमुचत्	अमुचताम्	अमुचन्
म० पु०	अमुच	अमुचतम्	अमुचत
उ० पु०	अमुचम्	अमुचाव	अमुचाम

## सामान्यभूत—लृङ्

## आत्मनेपद

प्र० पु०	अमुक्त	अमुक्षाताम्	अमुक्षत
म० पु०	अमुक्था	अमुक्षाथाम्	अमुग्ध्वम्
उ० पु०	अमुक्षि	अमुक्वहि	अमुक्षमहि

लिल् (प०)—लिखना । लट्—लिखति । लुट्—लेखिता । लृट्—लेखि-  
ष्यति । आशी०—लिख्यात् । लृङ्—अलेखिष्यत् । लिट्—लिलेख,  
लिलिखतु; लिलिखु । लिलेखिथ, लिलिखथु, लिलिखि । लिलेख,  
लिलिखिव, लिलिखिम । लृङ्—अलेखीत् ।

लिप् (उ०)—लीपना । लट्—लिम्पति, लिम्पत, लिम्पन्ति । लिम्पते, लिम्पेते,  
लिम्पन्ते । लृट्—लेप्ता । लृट्—लेप्स्यति, लेप्स्यते । आशी०—

लिप्यात् । लिप्सीष्ट, लिप्सीयास्ताम्, लिप्सीरन् । लिट्—लिलेप  
लिलिपतु, लिलिपु । लिलिपे, लिलिपाते, लिलिपिरे । लुङ्—  
अलिपत्, अलिपताम्, अलिपन् । अलिपत, अलिपेताम्, अलिपन्त ।  
अलिपत्, अलिप्साताम्, अलिप्सत ।

विश (प०)—घुसना । लट्—विशति । लुट्—वेष्टा । लृट्—वेक्ष्यति ।  
आशी०—विश्यात् । लृङ्—अवेक्ष्यत् । लिट्—विवेश । लुङ्—  
अविक्षत् ।

सद् (प०)—दुखी होना, सहारा लेना, जाना । लट्—सीदति । लुट्—  
सता । लृट्—मत्स्यति । आशी०—सद्यात् । लृङ्—असत्स्यत ।  
लिट्—ससाद, सेदतु, सेदु । सेदित्—ससात्, सेदथु, सेद । ससाद-  
ससद्, सेदिव, सेदिम । लुङ्—असदत्, असदताम्, असदन् ।

सिच् (उ०)—छिडकना, सीचना । लट्—सिञ्चति, सिञ्चते । लुट्—  
सेक्ता । लट्—सेक्ष्यति, सेक्ष्यते । आशी०—सिच्यात्, सिक्षीष्ट ।  
लिट्—सिषेच, सिषिचतु, सिषिचु । सिषेचिय । सिषिचे सिषिचाते,  
सिषिचिरे । लुङ्—असिचत् । असिचत । असिक्त ।

सृज् (प०)—बनाना । लट्—सृजति । लुट्—स्रष्टा । लृट्—स्रक्ष्यति,  
आशी०—सृज्यात् । लृङ्—अस्रक्ष्यत् । लिट्—ममज, मसृजतु,  
मसृजु । लट्—अस्राक्षीत्, अस्राष्टाम्, अस्राक्षु ।

स्पृश् (प०)—झूना । लट्—स्पृशति । लुट्—स्पृष्टा, स्पृष्टां । लृट्—स्पृक्ष्यति  
स्पृक्ष्यति । आशी०—स्पृश्यात् । लिट्—पस्पश, पस्पृशतु, पस्पृशु ।  
पस्पृशथ, पस्पृशथु, पस्पृश । पस्पृशं, पस्पृशिव, पस्पृशिम ।  
लुङ्—अस्प्राक्षीत्, अस्प्राष्टाम्, अस्प्राक्षु । अस्प्राक्षी, अस्प्राष्टम्,  
अस्प्राष्ट । अस्प्राक्षम्, अस्प्राक्षव, अस्प्राक्षम, तथा—अस्प्राक्षीत्  
अस्प्राष्टाम्, अस्प्राक्षुं आर अस्पृक्षत्, अस्पृक्षनाम्, अस्पृक्षन् ।

(प०)—खुलना, खिलना या फट जाना । लट्—स्फुट् । लुट्—  
स्फुटिता । लृट्—स्फुटिष्यति । आशी०—स्फुट्यात् । लिट्—पुस्फोट



पुस्फुटतु, पुस्फुटु । पुस्फुटिथ, पुस्फुटथु, पुस्फुट । पुस्फोट,  
पुस्फुटिव, पुस्फुटिम । लुङ्—अस्फुटीत्, अस्फुटिष्टाम्, अस्फु-  
टिषु । अस्फुटी, अस्फुटिष्टम्, अस्फुटिष्ट । अस्फुटिषम्, अस्फु-  
टिष्व, अस्फुटिष्म ।

स्फुर् (प०)—कांपना, फडकना, लपलपाना, चमकना । लट्—स्फुरति । लुङ्—  
स्फुरिता । लृट्—स्फुरिष्यति । आशी०—स्फुर्यात् । लिट्—पुस्फोर,  
पुस्फुरतु, पुस्फुर । पुस्फुरिथ । लुङ्—अस्फुरीत्, अस्फुरिष्टाम्,  
अस्फुरिषु ।

### (७) रुधादिगण

१४६—इस गण की प्रथम घातु रुध् (रोकना, नेरना) है, इस कारण  
इसका नाम रुधादि है । इसमें २५ घातुएँ हैं । घातु के प्रथम स्वर के उपरान्त  
इस गण में इन्म् (न अथवा न्) जोड़ा जाता है, जैसे—क्षुद्+ति=क्षु+  
न+द्+ति=क्षुण+द्+ति=क्षुणत्ति । क्षुद्+यात्=क्षु+न्+द्+यात्=क्षुन्धात् ।  
नीचे मुख्य-मुख्य घातुओं के रूप दिखाए जाते हैं ।

उभयपदी रुध्—रोकना

परस्मैपद

बर्तमान—सट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	रुणद्धि	रुन्ध	रुन्धन्ति
म० पु०	रुणत्सि	रुन्ध	रुन्ध
उ० पु०	रुणध्मि	रुन्धव	रुन्धम

भ्राज्या—सोद्

प्र० पु०	रुणद्धु	रुन्धाम्	रुन्धन्तु
म० पु०	रुन्धि	रुन्धम्	रुन्ध
उ० पु०	रुणघानि	रुणघाव	रुणघाम

१ रुधादिभ्य इन्म् ।३।१।७८।

२ इन्सोरल्लोप ।६।४।१११। से कित् तथा डित् सार्वधातुक में न का  
अकार लुप्त हो जाता है, केवल न् ही जुड़ता है ।

## विधिलिङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	रुन्ध्यात्	रुन्ध्याताम्	रुन्ध्यु
म० पु०	रुन्ध्या	रुन्ध्यातम्	रुन्ध्यात
उ० पु०	रुन्ध्याम्	रुन्ध्याव	रुन्ध्याम

## अनञ्जतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अरुणत्, अरुणद्	अरुन्धाम्	अरुन्धन्
म० पु०	अरुण, अरुणत्-द्	अरुन्धम्	अरुन्ध
उ० पु०	अरुणधम्	अरुन्धव	अरुन्धम

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	हरोष	हरुषतु	हरुषु
म० पु०	हरोषिथ	हरुषथ	हरुष
उ० पु०	हरोष	हरुषव	हरुषिम

## षामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अरुषत्	अरुषताम्	अरुषन्
	अरौत्सीत्	अरौढाम्	अरौत्सु
म० पु०	अरुष	अरुषतम्	अरुषत
	अरौत्सी	अरौढम्	अरौढ
उ० पु०	अरुषम	अरुषाव	अरुषाम
	अरौत्सिम्	अरौत्सव	अरौत्सम
लृट्	रौढा	रौढारौ	रौढार
लृट्	रौत्स्यति	रौत्स्यत	रौत्स्यन्ति
भाषी०	रुन्ध्यात्	रुन्ध्यास्ताम्	रुन्ध्यासु
लृङ्	अरौत्स्यत्	अरौत्स्यताम्	अरौत्स्यन्

## आत्मनेपद

## वर्तमान—लट्

प्र० पु०	रुन्धे	रुन्धाते	रुन्धते
म० पु०	रुन्धसे	रुन्धाथे	रुन्धमे
उ० पु०	रुन्धे	रुन्धाहे	रुन्धमहे

## श्रान्ता—लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	रन्धाम्	रन्धाताम्	रन्धताम्
म० पु०	रन्धस्व	रन्धाथाम्	रन्ध्वम्
उ० पु०	रन्धै	रन्धावहै	रन्धाभहै

## विधिलिङ्

प्र० पु०	रन्धीत	रन्धीयाताम्	रन्धीरन्
म० पु०	रन्धीथा	रन्धीयाथाम्	रन्धीध्वम्
उ० पु०	रन्धीय	रन्धीवहि	रन्धीमहि

## अनञ्जतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अरन्ध	अरन्धाताम्	अरन्धत
म० पु०	अरन्धा.	अरन्धाथाम्	अरन्ध्वम्
उ० पु०	अरन्धि	अरन्धाह	अरन्धमहि

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	ररुधे	ररुधाते	ररुधिरे
म० पु०	ररुधिषे	ररुधाथे	ररुधिध्वे
उ० पु०	ररुधे	ररुधिवहे	ररुधिमहे

## सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अरुद्ध	अरुत्साताम्	अरुत्सत
म० पु०	अरुद्धा	अरुत्साथाम्	अरुद्ध्वम्
उ० पु०	अरुत्सि	अरुत्स्वहि	अरुत्समहि

## अनञ्जतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	रोद्धा	रोद्धारौ	रोद्धार
म० पु०	रोद्धासे	रोद्धासाथे	रोद्धाध्वे
उ० पु०	रोद्धाहे	रोद्धास्वहे	रोद्धास्महे

## सामान्यभविष्य—लृट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	रोत्स्यते	रोत्स्येते	रोत्स्यन्ते
म० पु०	रोत्स्यसे	रोत्स्यथे	रोत्स्यध्वे
उ० पु०	रोत्स्ये	रोत्स्यावहे	रोत्स्यामहे
आशी०	रुत्सीष्ट	रुत्सीयास्ताम्	रुत्सीरन्
लृङ्	अरोत्स्यत	अरोत्स्येताम्	अरोत्स्यन्त

## उभयपदी छिद्—काटना

## परस्मैपद

## वर्तमान—सट्

प्र० पु०	छिनत्ति	छिन्त	छिन्दन्ति
म० पु०	छिनत्सि	छिन्तथ	छिन्तथ
उ० पु०	छिनधि	छिन्तध्व	छिन्तध्व

## आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	छिनतु	छिन्ताम्	छिन्दन्तु
म० पु०	छिन्वि	छिन्तम्	छिन्त
उ० पु०	छिनदानि	छिनदाव	छिनदाम

## विधिलिङ्

प्र० पु०	छिन्धात्	छिन्धाताम्	छिन्धु.
म० पु०	छिन्धा	छिन्धातम्	छिन्धात
उ० पु०	छिन्धाम	छिन्धाव	छिन्धाम

## अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अच्छिनत्	अच्छिन्ताम्	अच्छिन्दन्
म० पु०	अच्छिन , अच्छिनत्	अच्छिन्तम्	अच्छिन्त
उ० पु०	अच्छिनदम्	अच्छिन्द्र	अच्छिन्ध

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चिच्छेद	चिच्छिदतु	चिच्छिदु.
म० पु०	चिच्छेदथ	चिच्छिदथु	चिच्छिद
उ० पु०	चिच्छेद	चिच्छिदिव	चिच्छिदिव

## सामान्यभूत—लृङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अच्छिदत्	अच्छिदताम्	अच्छिदन्
म० पु०	अच्छिद	अच्छिदतम्	अच्छिदत
उ० पु०	अच्छिदम्	अच्छिदाव	अच्छिदाम्

## अथवा

प्र० पु०	अच्छैत्सीत्	अच्छैत्ताम्	अच्छैत्सु
म० पु०	अच्छैत्सी	अच्छैत्तम्	अच्छैत्त
उ० पु०	अच्छैत्सम्	अच्छैत्स्व	अच्छैत्सम्
लृट्	छेत्ता	छेत्तारौ	छेत्तार
लृट्	छेत्स्यति	छेत्स्यत	छेत्स्यन्ति
आशी०	छिद्यात्	छिद्यास्ताम्	छिद्यासु
लृङ्	अच्छेत्स्यत्	अच्छेत्स्याताम्	अच्छेत्स्यन्

## आत्मनेपद

## वर्तमान—लट्

प्र० पु०	छिन्ते	छिन्दाते	छिन्दते
म० पु०	छिन्तसे	छिन्दाथे	छिन्दध्वे
उ० पु०	छिन्दे	छिन्दहे	छिन्दहे

## आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	छिन्ताम्	छिन्दाताम्	छिन्दताम्
म० पु०	छिन्तस्व	छिन्दाथाम्	छिन्दध्वम्
उ० पु०	छिनद्वै	छिनदावहै	छिनवावहै

## विधिलिङ्

प्र० पु०	छिन्दीत	छिन्दीयाताम्	छिन्दीरन्
म० पु०	छिन्दीथा	छिन्दीयाथाम्	छिन्दीध्वम्
उ० पु०	छिन्दीय	छिन्दीवहि	छिन्दीमहि

## अनद्यतनभूत—लङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अच्छिन्त	अच्छिन्दाताम्	अच्छिन्दत
म० पु०	अच्छिन्तथा	अच्छिन्दाथाम्	अच्छिन्दध्वम्
उ० पु०	अच्छिन्दि	अच्छिन्द्वहि	अच्छिन्पहि

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चिच्छिदे	चिच्छिदाते	चिच्छिदिरे
म० पु०	चिच्छिदिषे	चिच्छिदाथे	चिच्छिदिध्वे
उ० पु०	चिच्छिदे	चिच्छिदिवहे	चिच्छिदिमहे

## सामान्यभूत—लृट्

प्र० पु०	अच्छित	अच्छित्साताम्	अच्छित्सत
म० पु०	अच्छित्था	अच्छित्साथाम्	अच्छित्ध्वम्
उ० पु०	अच्छित्सि	अच्छित्स्वहि	अच्छित्स्महि
लट्	छेत्ता	छेतारौ	छेतार
लृट्	छेत्स्यते	छेत्स्येते	छेत्स्यन्ते
आशी०	छित्सीष्ट	छित्सीयास्ताम्	छित्सीरन्
लृट्	अच्छेत्स्यत	अच्छेत्स्येताम्	अच्छेत्स्यन्त

## परस्मैपद भञ्ज्—तोङ्ना

## कर्त्तमान—लट्

प्र० पु०	भनक्ति	भनक्त	भञ्जन्ति
म० पु०	भनक्ति	भनक्तथ	भनक्तथ
उ० पु०	भनक्ति	भनक्तव	भञ्जम्

## आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	भनक्तु, भनक्तात्	भनक्ताम्	भञ्जन्तु
म० पु०	भनक्ति, भनक्तात्	भनक्तम्	भनक्त
उ० पु०	भनजानि	भनजाव	भनजाम

## बिधिलिङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	भञ्ज्यात्	भञ्ज्याताम्	भञ्ज्यु
म० पु०	भञ्ज्या	भञ्ज्यातम्	भञ्ज्यात
उ० पु०	भञ्ज्याम्	भञ्ज्याव	भञ्ज्येभ्यः
अनञ्जनभूत—लङ्			
प्र० पु०	अमनक्	अमञ्जताम्	अमञ्जन्
म० पु०	अमनक्	अमञ्जतम्	अमञ्जत
उ० पु०	अमनजम्	अमञ्जव	अमञ्जम्
परोक्षभूत—लिट्			
प्र० पु०	बमञ्ज	बमञ्जतु	बमञ्जु
म० पु०	{ बमञ्जिय बमञ्जकथ	बमञ्जथु	बमञ्ज
उ० पु०	बमञ्ज	बमञ्जिव	बमञ्जिभ
सामान्यभूत—लुङ्			
प्र० पु०	अमाङ्क्षीत्	अमाङ्क्षताम्	अमाङ्क्षु
म० पु०	अमाङ्क्षी	अमाङ्क्षतम्	अमाङ्क्षत
उ० पु०	अमाङ्क्षाम्	अमाङ्क्षव	अमाङ्क्षम्
लृट्	मङ्क्षता	मङ्क्षतारौ	मङ्क्षतार
लृट्	मङ्क्षयति	मङ्क्षयत	मङ्क्षयन्ति
आशी०	मञ्ज्यात्	मञ्ज्यास्ताम्	मञ्ज्यासु
लृङ्	अमङ्क्षयत्	अमङ्क्षयताम्	अमङ्क्षयन्

उभयपदी भुज्—रक्षा करना, जाना

## परस्मैपद

## वर्तमान—सट्

प्र० पु०	भुनक्ति	भुङ्कत	भुञ्जान्त
म० पु०	भुनक्ति	भुङ्कथ	भुङ्कथ
उ० पु०	भुनज्मि	भुञ्जव	भुञ्जम्

१ रक्षा करने के अर्थ में भुज् घातु परस्मैपदी होती है।

## आज्ञा—लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	भुनक्तु	भुङ्क्ताम्	भुञ्जन्तु
म० पु०	भुङ्गिध	भुङ्क्तम्	भुङ्क्त
उ० पु०	भुनजानि	भुनजाव	भुञ्ज्याम

## विधिलिङ्

प्र० पु०	भुञ्ज्यात्	भुञ्ज्याताम्	भुञ्ज्यु
म० पु०	भुञ्ज्या	भुञ्ज्याताम्	भुञ्ज्यात
उ० पु०	भुञ्ज्याम्	भुञ्ज्याव	भुञ्ज्याम

## अनद्यतनभूत—रुङ्

प्र० पु०	अभुनक्	अभुङ्क्ताम्	अभुञ्जन्
म० पु०	अभुनक्	अभुङ्क्तम्	अभुङ्क्त
उ० पु०	अभुनजम्	अभुञ्ज्व	अभुञ्ज्म

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	बुभोज	बुभुजतु	बुभुजु
म० पु०	बुभोजिध	बुभुजथु	बुभुज
उ० पु०	बुभुज	बुभुजिव	बुभुजिम

## सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अभौक्षीत्	अभोक्ताम्	अभोक्षु
म० पु०	अभौक्षी	अभोक्ताम्	अभोक्त
उ० पु०	अभौक्षम्	अभोक्व	अभोक्ष्म
लृट्	भोक्ता	भोक्तारो	भोक्तार
लृट्	भोक्ष्यति	भोक्ष्यत	भोक्ष्यन्ति
आशी०	भुञ्ज्यात्	भुञ्ज्यास्ताम्	भुञ्ज्यासु
लृङ्	अभोक्ष्यत्	अभोक्ष्यताम्	अभोक्ष्यन्



## आत्मनेपद

## वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	मुञ्क्ते <sup>१</sup>	मुञ्जाते	मुञ्जते
म० पु०	मुञ्क्षे	मुञ्जाथे	मुञ्जध्वे
उ० पु०	मुञ्जे	मुञ्ज्वहे	मुञ्जमहे

## आशा—लोट्

प्र० पु०	मुञ्क्ताम्	मुञ्जाताम्	मुञ्जताम्
म० पु०	मुञ्क्ष्व	मुञ्जाथाम्	मुञ्जध्वम्
उ० पु०	मुनजै	मुनजावहै	मुनजामहै

## विधिलिङ्

प्र० पु०	मुञ्जीत	मुञ्जीयताम्	मुञ्जीरन्
म० पु०	मुञ्जीथा	मुञ्जीयाथाम्	मुञ्जीध्वन्
उ० पु०	मुञ्जीय	मुञ्जीवहि	मुञ्जीमहि

## अव्ययतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अमुञ्क्त	अमुञ्जाताम्	अमुञ्जत
म० पु०	अमुञ्क्षया	अमुञ्जाथाम्	अमुञ्जध्वम्
उ० पु०	अमुञ्जि	अमुञ्जवहि	अमुञ्जमहि

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	बुमुञ्जे	बुमुजाते	बुमुञ्जिरे
म० पु०	बुमुञ्जिषे	बुमुजाथे	बुमुञ्जिध्वे
उ० पु०	बुमुञ्जे	बुमुजिवहे	बुमुञ्जिमहे

१ मुजोऽनवने ।१।३।६६। के अनुसार रक्षा से भिन्न (खाना, उपभोग करना) अर्थ होने पर मुञ्ज् वातु आत्मनेपद से होती है। रक्षा करने के अर्थ से भुनक्ति इत्यादि रूप होंगे, जैसे—'मही भुनक्ति महीपाल ।

## सामान्यभूत—लृङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अमुक्त	अमुक्षाताम्	अमुक्षत
म० पु०	अमुक्था	अमुक्षाथाम्	अमुग्ध्वम्
उ० पु०	अमुक्षि	अमुक्वहि	अमुक्षमहि
लट्	भोक्ता	भोक्तारौ	भोक्तार
लृट्	भोक्ष्यते	भोक्ष्येते	भोक्ष्यन्ते
आशी०	मुक्षीष्ट	मुक्षीयास्ताम्	मुक्षीरन्
लृङ्	अभोक्ष्यत	अभोक्ष्येताम्	अभोक्ष्यन्त

## (८) तनादिगण

१५०—इस गण की प्रथम घातु तन् (फैलाना) है, इसलिए इसका नाम तनादि है। इसमें दस घातुएँ हैं। घातु<sup>१</sup> और प्रत्यय के बीच में, इस गण में उ जोड़ा जाता है, जैसे—तन्+उ+त=तनुते।

[नोट—नियम १४६ में उदाहरित नोट यहाँ भी लागू होता है।]

नीचे तन् और कृ घातुओं के रूप दिए जाते हैं।

उभयपदी तन्—फैलाना

परस्मैपद

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	तनोति	तनुत	तन्वन्ति
म० पु०	तनोथि	तनुथ	तनुथ
उ० पु०	तनोमि	तनुव	तनुम
		तन्व	तन्म

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	तनोतु, तनुतात्	तनुताम्	तन्वन्तु
म० पु०	तनु, तनुतात्	तनुतम्	तनुत
उ० पु०	तनवानि	तनवाव	तनवाम

## विधिलिङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	तनुयात्	तनुयाताम्	तनुयु
म० पु०	तनुया	तनुयातम्	तनुयात
उ० पु०	तनुयाम्	तनुयाव	तनुयाम्

## अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अतनोत्	अतनुताम्	अतन्वन्
म० पु०	अतनो	अतनुतम्	अतनुत
उ० पु०	अतनवम्	अतनुव	अतनुम
		अतन्व	अतन्म

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	ततान	तेनतु	तेनु
म० पु०	तेनिथ	तेनथु	तेन
उ० पु०	ततान, ततन	तेनिथ	तेनिम

## सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अतनीत्	अतनिष्टाम्	अतनिषु
म० पु०	अतनी	अतनिष्टम्	अतनिष्ट
उ० पु०	अतनिषम्	अतनिष्व	अतनिष्म

## अथवा

प्र० पु०	अतानीत्	अतानिष्टाम्	अतानिषु
म० पु०	अतानी	अतानिष्टम्	अतानिष्ट
उ० पु०	अतानिषम्	अतानिष्व	अतानिष्म
लृट्	तनिता	तनितारौ	तनितार
लृट्	तनिष्यति	तनिष्यत	तनिष्यन्ति
आशी०	तन्यात्	तन्यास्ताम्	तन्यासु
लृङ्	अतनिष्यत	अतनिष्यताम्	अतनिष्यन्

## आत्मनेपद

## वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	तनुते	तन्वाते	तन्वते
म० पु०	तनुषे	तन्वाथे	तेनुध्वे
उ० पु०	तन्वे	तनुवहे, तन्वहे	तनुमहे, तन्महे

## आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	तनुताम्	तन्वाताम्	तन्वताम्
म० पु०	तनुष्व	तन्वाथाम्	तनुध्वम्
उ० पु०	तनवै	तनवावहे	तनवामहे

## विधिलिङ्

प्र० पु०	तन्वीत	तन्वीयाताम्	तन्वीरन्
म० पु०	तन्वीथा	तन्वीयाथाम्	तन्वीध्वम्
उ० पु०	तन्वीय	तन्वीवहि	तन्वीमहि

## अतन्भूत—लङ्

प्र० पु०	अतनुत	अतन्वाताम्	अतन्वत
म० पु०	अतनुथा	अतन्वाथाम्	अतनुध्वम्
उ० पु०	अतन्वि	{ अतनुवहि अतन्वहि	{ अतनुमहि अतन्महि

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	तेने	तेनाते	तेनिरे
म० पु०	तेनिषे	तेनाथे	तेनिध्वे
उ० पु०	तेने	तेनिवहे	तेनिमहे

## सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अतत, अतनिष्ट <sup>१</sup>	अतनिषाताम्	अतनिषत
म० पु०	अतथा, अतनिष्ठा	अतनिषाथाम्	अतनिध्वम्
उ० पु०	अतनिषि	अतनिष्वहि	अतनिष्महि

१ अतानिष्ट इत्यादि भी रूप होंगे ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
लृट्	तनिता	तनितारौ	तनितार
लृट्	तनिष्यते	तनिष्येते	तनिष्यन्ते
आशी०	तनिषीष्ट	तनिषीयास्ताम्	तनिषीरन्
लृङ्	अतनिष्यत	अतनिष्येताम्	अतनिष्यन्त

उभयपदी कृ—करना

परस्मैपद

वर्तमान—लृट्

प्र० पु०	करोति	कुरुत	कुर्वन्ति
म० पु०	करोषि	कुरुथ	कुरुथ
उ० पु०	करोमि	कुर्वं	कुर्मं

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	करोतु, कुरुतात्	कुरुताम्	कुर्वन्तु
म० पु०	कुरु, कुरुतात्	कुरुतम्	कुरुत
उ० पु०	करवाणि	करवाव	करवाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	कुर्यात्	कुर्याताम्	कुर्युं
म० पु०	कुर्या	कुर्यातम्	कुर्यात
उ० पु०	कुर्याम्	कुर्याव	कुर्याम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अकरोत्	अकुरुताम्	अकुर्वन्
म० पु०	अकरो	अकुरुतम्	अकुरुत
उ० पु०	अकरवम्	अकुर्वं	अकुर्मं

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चकार	चक्रतु	चक्रु
म० पु०	चकथं	चक्रथु	चक्र
उ० पु०	चकार, चकर	चक्रव	चक्रम

## सामान्यभूत—लृङ्

प्र० पु०	अकार्षीत्	अकार्षाम्	अकार्षु
म० पु०	अकार्षी	अकार्षम्	अकार्षट्
उ० पु०	अकार्षम्	अकार्ष्वं	अकार्ष्म
लृट्	कर्ता	कर्तारौ	कर्तार
लृट्	करिष्यति	करिष्यत	करिष्यन्ति
आशी०	क्रियात्	क्रियास्ताम्	क्रियासु
लृङ्	अकरिष्यत्	अकरिष्यताम्	अकरिष्यन्

## आत्मनेपद

## वर्तमान—लट्

प्र० पु०	कुरुते	कुर्वन्ति	कुर्वन्ते
म० पु०	कुरुषे	कुर्वन्मि	कुरुध्वे
उ० पु०	कुर्वे	कुर्वहे	कुमहे

## अभा—लोट्

प्र० पु०	कुरुताम्	कुर्वताम्	कुर्वताम्
म० पु०	कुरुध्व	कुर्वथाम्	कुरुध्वम्
उ० पु०	करव	करवावहे	करत्वामहे

## विधिलिङ्

प्र० पु०	कुर्वीत	कुर्वीयाताम्	कुर्वीरन्
म० पु०	कुर्वीथा	कुर्वीयाथाम्	कुर्वीध्वम्
उ० पु०	कुर्वीय	कुर्वीवहि	कुर्वीमहि

## अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अकुरुत	अकुर्वाताम्	अकुर्वन्त
म० पु०	अकुरुथा	अकुर्वाथाम्	अकुरुध्वम्
उ० पु०	अकुर्वि	अकुर्वहि	अकुर्महि

परोक्षभूत—लिट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	चक्रे	चक्राते	चक्रिरे
म० पु०	चक्रुषे	चक्राथे	चक्रुद्वे
उ० पु०	चक्रे	चक्रुवहे	चक्रमहे

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अकृत	अकृषाताम्	अकृषन्
म० पु०	अकृथा	अकृषाथाम्	अकृषन्म्
उ० पु०	अकृषि	अकृष्वहि	अकृषमहि
लृट्	कर्त्ता	कर्त्तारौ	कर्त्तार
लृट्	करिष्यते	करिष्येते	करिष्यन्ते
आशी०	कृषीष्ट	कृषीयास्ताम्	कृषीरन्
लृङ्	अकरिष्यत्	अकरिष्येताम्	अकरिष्यन्त

(६) ऋयादिगण

१५१—इस गण की प्रथम धातु क्री (खोल लेना) है, इस कारण इसका नाम ऋयादिगण पडा। इसमे ६१ धातुएँ हैं। धातु और प्रत्यय के बीच इस गण मे श्ना (ना) जोडा जाता है। किन्ही प्रत्ययो के पूर्व यह 'ना' 'न' हो जाता है, और किन्ही के पूर्व 'नी'। धातु की उभया मे यदि वर्गों का पञ्चम अक्षर अथवा अनुस्वार हो तो उसका लोप हो जाता है।

व्यञ्जनान्त धातुओ के अरान्त आज्ञा के म० पु० एकवचन मे 'हि' प्रत्यय के स्थान मे 'आन' होता है, जैसे—मुष्+हि=मुष्+आन=मुषाण।

नीचे मुख्य धातुओ के रूप दिए जाते हैं।

उभयपदी क्री—खरीदना

परस्मैपद

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	क्रीणाति	क्रीणीत	क्रीणन्ति
म० पु०	क्रीणासि	क्रीणीथ	क्रीणीथ
उ० पु०	क्रीणामि	क्रीणीव	क्रीणीम

१ ऋयादिभ्यश्ना।३।१।५१।

## भ्राज्ञा—सोद्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	क्रीणातु, क्रीणीतात्	क्रीणीताम्	क्रीणन्तु
म० पु०	क्रीणीहि	क्रीणीतम्	क्रीणीत
उ० पु०	क्रीणानि	क्रीणीव	क्रीणीम

## विधिलिङ्

प्र० पु०	क्रीणीयात्	क्रीणीयाताम्	क्रीणीयु
म० पु०	क्रीणीया	क्रीणीयातम्	क्रीणीयात
उ० पु०	क्रीणीयाम्	क्रीणीयाव	क्रीणीयाम

## अनद्यतनभूत—लृट्

प्र० पु०	अक्रीणात्	अक्रीणीताम्	अक्रीणन्
म० पु०	अक्रीणा	अक्रीणीतम्	अक्रीणीत
उ० पु०	अक्रीणाम्	अक्रीणीव	अक्रीणीम

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चिक्राय	चिक्रियतु	चिक्रियु
म० पु०	चिक्रियथ, चिक्रेथ	चिक्रियथु	चिक्रिय
उ० पु०	चिक्राय, चिक्रय	चिक्रियिव	चिक्रियिम

## सामान्यभूत—लृङ्

प्र० पु०	अक्रेषीत्	अक्रेष्टाम्	अक्रेषु-
म० पु०	अक्रेषी	अक्रेष्टम्	अक्रेष्ट
उ० पु०	अक्रेष्वम्	अक्रेष्व	अक्रेष्वम
लृट्	क्रेता	क्रेतारौ	क्रेतार
लृङ्	क्रेष्यति	क्रेष्यत	क्रेष्यन्ति
आशी०	क्रीयात्	क्रीयास्ताम्	क्रीयासु
लृङ्	अक्रेष्यत्	अक्रेष्यताम्	अक्रेष्यन्



आत्मनेपद

वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	क्रीणीते	क्रीणाते	क्रीणते
म० पु०	क्रीणीषे	क्रीणाथे	क्रीणीध्वे
उ० पु०	क्रीणे	क्रीणीवहे	क्रीणीमहे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	क्रीणीताम्	क्रीणाताम्	क्रीणताम्
म० पु०	क्रीणीष्व	क्रीणाथाम्	क्रीणीध्वम्
उ० पु०	क्रीणै	क्रीणावहे	क्रीणामहे

विधिलिङ्

प्र० पु०	क्रीणीत	क्रीणीयाताम्	क्रीणीरन्
म० पु०	क्रीणीथा	क्रीणीयाथाम्	क्रीणीध्वम्
उ० पु०	क्रीणीय	क्रीणीवहि	क्रीणीमहि

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अक्रीणीत	अक्रीणाताम्	अक्रीणत
म० पु०	अक्रीणीथा	अक्रीणाथाम्	अक्रीणीध्वम्
उ० पु०	अक्रीणि	अक्रीणीवहि	अक्रीणीमहि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चिक्रिये	चिक्रियाते	चिक्रियिरे
म० पु०	चिक्रियिषे	चिक्रियाथे	चिक्रिध्वे-द्वे
उ० पु०	चिक्रिये	चिक्रियिवहे	चिक्रियिमहे

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अक्रेषट्	अक्रेषाताम्	अक्रेषत
म० पु०	अक्रेष्ठा	अक्रेषाथाम्	अक्रेष्वम्
उ० पु०	अक्रेषि	अक्रेष्वहि	अक्रेषमहि

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
लुट्	क्रेता	क्रेतारौ	क्रेतार
लृट्	क्रेष्यते	क्रेष्येते	क्रेष्यन्ते
आशी०	क्रेषीष्ट	क्रेषीयास्ताम्	क्रेषीरन्
लृङ्	अक्रेष्यत	अक्रेष्येताम्	अक्रेष्यन्त

उभयपदी ग्रह्—लेना  
परस्मैपद

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	गृह्णाति	गृह्णीत	गृह्णन्ति
म० पु०	गृह्णासि	गृह्णीथ	गृह्णीथ
उ० पु०	गृह्णामि	गृह्णीम	गृह्णीम

भाम्ना—लोट्

प्र० पु०	गृह्णातु	गृह्णीताम्	गृह्णन्तु
म० पु०	गृहाण	गृह्णीतम्	गृह्णीत्
उ० पु०	गृह्णानि	गृह्णाव	गृह्णाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	गृह्णीयात्	गृह्णीयताम्	गृह्णीयु
म० पु०	गृह्णीथ	गृह्णीयातम्	गृह्णीयात्
उ० पु०	गृह्णीयाम्	गृह्णीयाव	गृह्णीयाम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अगृह्णात्	अगृह्णीताम्	अगृह्णन्
म० पु०	अगृह्णा	अगृह्णीतम्	अगृह्णीत्
उ० पु०	अगृह्णाम्	अगृह्णीव	अगृह्णीम

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	जग्राह	जगृहतु	जगृह
म० पु०	जग्रहिथ	जगृहथु	जगृह
उ० पु०	जग्राह, जग्रह	जगृहिव	जगृहिम

सामान्यभूत—लुङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अग्रहीत्	अग्रहीष्टाम्	अग्रहीषु
म० पु०	अग्रही	अग्रहीष्टम्	अग्रहीष्ट
उ० पु०	अग्रहीषम्	अग्रहीष्व	अग्रहीष्म
लुट्	ग्रहीता	ग्रहीतारौ	ग्रहीतारः
लृट्	ग्रहीष्यति	ग्रहीष्यत	ग्रहीष्यन्ति
आशी०	गृह्यात्	गृह्यास्ताम्	गृह्यासु
लृङ्	अग्रहीष्यत्	अग्रहीष्यताम्	अग्रहीष्यन्

आत्मनेपद

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	गृह्णीते	गृह्णीते	गृह्णीते
म० पु०	गृह्णीषे	गृह्णीथे	गृह्णीध्वे
उ० पु०	गृह्णे	गृह्णीवहे	गृह्णीमहे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	गृह्णीताम्	गृह्णीताम्	गृह्णीताम्
म० पु०	गृह्णीष्व	गृह्णीथाम्	गृह्णीध्वम्
उ० पु०	गृह्णे	गृह्णीवहै	गृह्णीमहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	गृह्णीत	गृह्णीयाताम्	गृह्णीरन्
म० पु०	गृह्णीथा	गृह्णीयाथाम्	गृह्णीध्वम्
उ० पु०	गृह्णीय	गृह्णीवहि	गृह्णीमहि

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अगृह्णीत	अगृह्णीताम्	अगृह्णीत
म० पु०	अगृह्णीथा	अगृह्णीथाम्	अगृह्णीध्वम्
उ० पु०	अगृह्णी	अगृह्णीवहि	अगृह्णीमहि

## परोक्षभूत—लिट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	जगृहे	जगृहाते	जगृहिरे
म० पु०	जगृहिषे	जगृहाथे	जगृहिध्वे, द्वे
लृ० पु०	जगृहे	जगृहिवहे	जगृहिमहे

## सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अग्रहीष्ट	अग्रहीषाताम्	अग्रहीषत
म० पु०	अग्रहीष्ठा	अग्रहीषाथाम्	अग्रहीध्वम्, द्वम्
उ० पु०	अग्रहीषि	अग्रहीष्वहि	अग्रहीष्महि
लुट्	प्र० पु०	एकवचन	ग्रहीता
लृट्	प्र० पु०	एकवचन	ग्रहीष्यते
आशी०	प्र० पु०	एकवचन	ग्रहीषीष्ट
लृङ्	प्र० पु०	एकवचन	अग्रहीष्यत

## उभयपदी—ज्ञा—जानना

## परस्मैपद

## वर्तमान—लट्

प्र० पु०	जानाति	जानीत	जानन्ति
म० पु०	जानाति	जानीथ	जानीथ
उ० पु०	जानामि	जानीव	जानीम

## आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	जानातु, जानीतात्	जानीताम्	जानन्तु
म० पु०	जानीहि, जानीतात्	जानीतम्	जानीत
उ० पु०	जानानि	जानाव	जानाम

## विधिलिङ्

प्र० पु०	जानीयात्	जानीयाताम्	जानीयु
म० पु०	जानीया	जानीयातम्	जानीयात
उ० पु०	जानीयाम्	जानीयांव	जानीयाम

अनछतनभूत—लृङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अजानात्	अजानीताम्	अजमन्न्
म० पु०	अजाना	अजानीतम्	अजानीत
उ० पु०	अजानाम्	अजानीव	अजानीम

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	जज्ञौ	जज्ञतु	जज्ञुः
म० पु०	जज्ञिथ, जज्ञाय	जज्ञथु	जज्ञ
उ० पु०	जज्ञौ	जज्ञिव	जज्ञिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अज्ञासीत्	अज्ञासिष्टाम्	अज्ञासिषु
म० पु०	अज्ञासी	अज्ञासिष्टम्	अज्ञासिष्ट
उ० पु०	अज्ञासिषम्	अज्ञासिष्व	अज्ञासिष्म
लृट्	प्र० पु०	एकवचन	ज्ञाता
लृट्	" "	" "	ज्ञास्यति
आशी०	" "	" "	ज्ञेयात्, ज्ञायात्
लृङ्	" "	" "	अज्ञास्यत्

आत्मनेपदी

बर्तमान—सट्

प्र० पु०	जानीते	जानाते	जानते
म० पु०	जानीषे	जानाथे	जानीष्वे
उ० पु०	जाने	जानीवहे	जानीमहे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	जानीताम्	जानाताम्	जाननाम्
म० पु०	जानीष्व	जानाथाम्	जानीष्वम्
उ० पु०	जानै	जानावहै	जानामहै

## विधिलिङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु	जानीत	जानीयाताम्	जानीरन्
म० पु०	जानीथा	जानीयाथाम्	जानीध्वम्
उ० पु०	जानीथ	जानीवहि	जानीमहि

## अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अजानीत	अजानाताम्	अजानत
म० पु०	अजानीथा	अजानाथाम्	अजानीध्वम्
उ० पु०	अजानि	अजानीवहि	अजानीमहि

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	जज्ञे	जज्ञत	जज्ञिरे
म० पु०	जज्ञिषे	जज्ञिथे	जज्ञिध्वे
उ० पु०	जज्ञे	जज्ञिवहे	जज्ञिमहे

## साध्याद्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अज्ञास्त	अज्ञासाताम्	अज्ञासत
म० पु०	अज्ञास्था	अज्ञासाथाम्	अज्ञाध्वम्
उ० पु०	अज्ञासि	अज्ञास्वहि	अज्ञास्महि
लुट्	प्र० पु०	एकवचन	ज्ञाता
लृट्	" "	" "	ज्ञायस्ते
आशी०	" "	" "	ज्ञासीष्ट
लृङ्	" "	" "	अज्ञास्यत

## परस्मैपदी—बन्ध्—बाँधना

## वर्तमान—लट्

प्र० पु०	बध्नाति	बध्नीत	बध्नन्ति
म० पु०	बध्नासि	बध्नीथ	बध्नीथ
उ० पु०	बध्नामि	बध्नीव	बध्नीम

आज्ञा—लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	बध्नातु, बध्नीतात्	बध्नीताम्	बध्नन्तु
म० पु०	बधान, "	बध्नीतम्	बध्नीत
उ० पु०	बध्नानि	बध्नाव	बध्नाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	बध्नीयान्	बध्नीयाताम्	बध्नीयु
म० पु०	बध्नीया	बध्नीयातम्	बध्नीयात
उ० पु०	बध्नीयाम्	बध्नीयाव	बध्नीयाम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अबध्नात्	अबध्नीताम्	अबध्नन्
म० पु०	अबध्ना	अबध्नीतम्	अबध्नीत
उ० पु०	अबध्नाम्	अबध्नीव	अबध्नीम

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	बबन्ध	बबन्धतु	बबन्धु
म० पु०	बबन्धिथ, बबन्ध	बबन्धथु	बबन्ध
उ० पु०	बबन्ध	बबन्धिथ	बबन्धिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अभान्त्सीत्	अवान्धाम्	अभान्तु
म० पु०	अभान्त्सी	अवान्धम्	अवान्ध
उ० पु०	अभान्त्सम्	अभान्त्सव	अभान्त्सम
लृट्	प्र० पु०	एकवचन	बन्धा
लृट्	" "	" "	भन्त्स्यति
आशी०	" "	" "	बन्ध्यात्
लृङ्	" "	" "	अभन्त्स्यत्

## (१०) चुरादिगण

१५२—इस गण की प्रथम धातु चूर् (चुराना) है, इस कारण इसका नाम चुरादिगण पडा। धातुपाठ मे इस गण की ४११ धातुएँ पठित हैं। इसमे धातु और प्रत्यय के बीच मे अय जोड दिया जाता है,<sup>१</sup> तथा उपधा के ह्रस्व स्वर (अ के अतिरिक्त) का गुण हो जाता है और यदि उपधा मे एत्सा अ हो जिसके अनन्तर सयुक्ताक्षर न हो तो उसकी और अन्तिम स्वर की वृद्धि हो जाती है। उदाहरणार्थ—चूर्+अय+ति=चोरयति। तड्+अय+ति=ताड्+अय+ति=ताडयति।

नीचे चूर् धातु के रूप दिये जाते है।

उभयपदी चूर्—चुराता

परस्मैपद

वर्तमान—लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	चोरयति	चोरयत	चोरयन्ति
म० पु०	चोरयसि	चोरयथ	चोरयथ
उ० पु०	चोरयामि	चोरयाव	चोरयाम

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	चोरयतु	चोरयतात्	चोरयताम्	चोरयन्तु
म० पु०	चोरये	चोरयतात्	चोरयतम्	चोरयत
उ० पु०	चोरयामि		चोरयाव	चोरयाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	चोरयेत्	चोरयेताम्	चोरयेयु
म० पु०	चोरये	चोरयेतम्	चोरयेत
उ० पु०	चोरयेयम्	चोरयेव	चोरयेम

१ सत्यापपाशरूपवीणातूलश्लोकसेनालोमत्वचवर्मवर्णचूर्णचुरादिभ्यो णिच् ।३।१।२५। अर्थात् सत्य इत्यादि प्रातिपदिको के आगे धातु के अर्थ मे तथा चुरादिगण की धातुओ के आगे स्वार्थ (अपने ही अर्थ) मे णिच् प्रत्यय (अय्) जुडता है।



## अनद्यतनभूत—लङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अचोरयत्	अचोरयताम्	अचोरयन्
म० पु०	अचोरय	अचोरयतम्	अचोरयत्
उ० पु०	अचोरयम्	अचोरयाव	अचोरयाम्

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चोरयामास	चोरयामामतु	चोरयामासु
म० पु०	चोरयामासिथ	चोरयामासथ	चोरयामास
उ० पु०	चोरयामास	चोरयामासिव	चोरयामासिम

## अथवा

प्र० पु०	चोरयाम्बभूव	चोरयाम्बभूवतु	चोरयाम्बभूवु
म० पु०	चोरयाम्बभूविथ	चोरयाम्बभूवथु	चोरयाम्बभूव
उ० पु०	चोरयाम्बभूव	चोरयाम्बभूविथ	चोरयाम्बभूविम

## अथवा

प्र० पु०	चोरयाञ्चकार	चोरयाञ्चक्रतु	चोरयाञ्चक्रु
म० पु०	चोरयाञ्चकथ	चोरयाञ्चकथु	चोरयाञ्चक्र
उ० पु०	{ चोरयाञ्चकार चोरयाञ्चकर	चोरयाञ्चक्रुव	चोरयाञ्चक्रम

## सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अचूचुरत्	अचूचुरताम्	अचूचुरन्
म० पु०	अचूचुर	अचूचुरतम्	अचूचुरत
उ० पु०	अचूचुरम्	अचूचुराव	अचूचुराम
लृट्	प्र० पु०	एकवचन	चोरियिता
लृट्	" "	" "	चोरियिष्यति
आशी०	" "	" "	चोर्यति
लृङ्	" "	" "	अचोरियिष्यत्

## आत्मनेपद

## वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	चोरयते	चोरयेते	चोरयन्ते
म० पु०	चोरयसे	चोरयेथे	चोरयध्वे
उ० पु०	चोरये	चोरयावहे	चोरयामहे

## आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	चोरयताम्	चोरयेताम्	चोरयन्ताम्
म० पु०	चोरयस्व	चोरयेथाम्	चोरयध्वम्
उ० पु०	चोरयै	चोरयावहे	चोरयामहे

## विधिलिङ्

प्र० पु०	चोरयेत	चोरयेयाताम्	चोरयेरन्
म० पु०	चोरयेथा	चोरयेयाथाम्	चोरयेध्वम्
उ० पु०	चोरयेय	चोरयेवहि	चोरयेमहि

## अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अचोरयत	अचोरयेताम्	अचोरयन्त
म० पु०	अचोरयथा	अचोरयेथाम्	अचोरयध्वम्
उ० पु०	अचोरये	अचोरयावहि	अचोरयामहि

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चोरयाञ्चक्रे	चोरयाञ्चक्राते	चोरयाञ्चक्रिरे
म० पु०	चोरयाञ्चकृध्वे	चोरयाञ्चक्राथे	चोरयाञ्चकृध्वे
उ० पु०	चोरयाञ्चक्रे	चोरयाञ्चकृवहे	चोरयाञ्चकृमहे
	चोरयामास	इत्यादि	
	चोरयाम्बभूव	इत्यादि	

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अचूचुरत	अचूचुरेताम्	अचूचुरन्त
म० पु०	अचूचुरथा	अचूचुरेथाम्	अचूचुरध्वम्
उ० पु०	अचूचुरे	अचूचुरावहि	अचूचुरामहि
लृट्—	प्र० पु०	एकवचन	चोरयिता
लृट्—	" "	" "	चोरयिष्यते
आशी०—	" "	" "	चोरयिषीष्ट
लृङ्—	" "	" "	चोरयिष्यत

१५३—चुरादिगण की मुख्य-मुख्य धातुओं की कृत् ।

उभयपदी अर्चं—पूजा करना ।

लृट्—अर्चयति, अर्चयते । लोट्—अर्चयतु, अर्चयताम् । विधि—अर्चयेत्, अर्चयेत । लङ्—आर्चयत्, आर्चयत । चिट्—अर्चयामास, अर्चयाम्बभूव, अर्चयाञ्चकार, अर्चयाञ्चक्रे ।

लृङ्—परस्मैपद

प्र० पु०	आर्चिचत्	आर्चिचेताम्	आर्चिचन्
म० पु०	आर्चिच	आर्चिचतम्	आर्चिचत
उ० पु०	आर्चिचाम्	आर्चिचाव	आर्चिचाम

आत्मनेपद

प्र० पु०	आर्चिचत	आर्चिचेताम्	आर्चिचन्त
म० पु०	आर्चिचथा	आर्चिचेथाम्	आर्चिचध्वम्
उ० पु०	आर्चिचे	आर्चिचावहि	आर्चिचामहि

लृट्—अर्चयिता । लृट्—अर्चयिष्यति, अर्चयिष्यते । आशी०—अर्च्यात्, अर्चयिषीष्ट । लृङ्—आर्चयिष्यत्, आर्चयिष्यत ।

१ यह धातु भ्रादिगणी भी है । वहाँ पर यह परस्मैपदी होती है और इसके रूप अर्चति इत्यादि होते हैं ।

अर्ज (उभयपदी—कमाना, पैदा करना) के रूप अर्च के समान चलते है।

अर्थ (आत्मनेपदी—प्राथना करना) के रूप अर्च के समान होते है। केवल सामान्यभूत (लुङ्) में भेद होता है, जो कि नीचे दिखाया जाता है।

लट्—अर्थयते। लोट्—अर्थयताम्। विधि—अर्थयेत। लङ्—आर्थयत।  
लिट्—अर्थयामास, अर्थयाम्बभूव, अर्थयाञ्चक्रे। लुट्—अर्थयिता। लृट्—  
अर्थयिष्यते। आशी०—अर्थयिषीट। लृङ्—आर्थयिष्यत।

## लुङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	आर्तथत	आर्तथताम्	आर्तथन्त
म० पु०	आर्तथथा	आर्तथथाम्	आर्तथथाम्
उ० पु०	आर्तथे	आर्तथावहि	आर्तथामहि

## उभयपदी कथ् (कहना)

लट्—कथयति, कथयते। लोट्—कथयतु, कथयताम्। विधि—कथयेत्,  
कथयेत। लङ्—अकथयत, अकथयत। लिट्—कथयामास, कथयाम्बभूव,  
कथायाञ्चकार, कथयाञ्चक्रे। लुट्—कथयिता। लृट्—कथयिष्यति, कथयिष्यते।  
आशी०—कथ्यात्, कथयिषीष्ट। लृङ्—अकथयिष्यत्, अकथयिष्यत।

## लुङ्—परस्मैपद

प्र० पु०	अचकथत्	अचकथताम्	अचकथन्
म० पु०	अचकथथ	अचकथथाम्	अचकथथम्
उ० पु०	अचकथम्	अचकथथाव	अचकथथाम

## आत्मनेपद

प्र० पु०	अचकथत	अचकथेताम्	अचकथन्त
म० पु०	अचकथथा	अचकथेथाम्	अचकथथाम्
उ० पु०	अचकथे	अचकथथावहि	अचकथथामहि

## उभयपदी क्षल् (घोना, साफ करना)

लट्—क्षालयति, क्षालयते। लिट्—क्षालयामास, क्षालयाम्बभूव, क्षालयाञ्चकार, क्षालयाञ्चक्रे। लृट्—क्षालयिता। लृट्—क्षालयिष्यति, क्षालयिष्यते। आशी०—क्षाल्यात्, क्षालयिषीष्ट। लृङ्—अक्षालयिष्यत्, अक्षालयिष्यत। लुङ्—अचिक्षलत्, अचिक्षलताम्, अचिक्षलन्। अचिक्षल, अचिक्षलन्, अचिक्षलत। अचिक्षलम्, अचिक्षलाव, अचिक्षलाम। आत्मनेपद मे—अचिक्षलत, अचिक्षलेताम्, अचिक्षवन्त इत्यादि।

## उभयपदी गण् (गिनना)

लट्—गणयति, गणयते। लिट्—गणयामास, गणयाम्बभूव, गणयाञ्चकार, गणयाञ्चक्रे। लुङ्—अजीगणत्, अजीगणताम्, अजीगणन् तथा अजगणत् अजगणताम्, अजगणन्। अजीगणत, अजीगणताम्, अजीगणन्त तथा अजगणत, अजगणताम्, अजगणन्त। लुट्—गणयिता। लृट्—गणयिष्यति, गणयिष्यते। आशी०—गण्यात्, गणयिषीष्ट। लृङ्—गणयिष्यत्, अगणयिष्यत।

## उभयपदी चित् (विचारना)

लट्—चिन्तयति, चिन्तयते। लिट्—चिन्तयामास, चिन्तयाम्बभूव, चिन्तयाञ्चकार, चिन्तयाञ्चक्रे। लुङ्—अचिचिन्तत्, अचिचिन्तताम्, अचिचिन्तन्। अचिचिन्तत, अचिचिन्तेताम्, अचिचिन्तन्त। लुट्—चिन्तयिता। लृट्—चिन्तयिष्यति, चिन्तयिष्यते। आशी०—चिन्त्यात्, चिन्तयिषीष्ट। लृट्—अचिन्तयिष्यत्, अचिन्तयिष्यत।

## उभयपदी तड् (मारना)

लट्—ताडयति, ताडयते। लिट्—ताडयामास, ताडयाम्बभूव, ताडयाञ्चकार, ताडयाञ्चक्रे। लुङ्—अतीतडत्, अतीतडताम्, अतीतडन्। अतीतडत, अतीतडताम्, अतीतडन्त। लुट्—ताडयिता। लृट्—ताडयिष्यति, ताडयिष्यते। आशी०—ताड्यात्, ताडयिषीष्ट।

१ चिन्त के स्थान मे इकारान्त चिति पाठ नुमागम के अतिरिक्त यह चित करने के लिए किया गया है कि यह घातु विकल्प से गिजन्त होती है। गिच न लगने पर इसके रूप चिन्तति, चिन्तत इत्यादि होते हैं। 'चिन्त' इति पठितव्ये इदित्करण गिच पाक्षिकत्वे लिङ्गम्—सि० कौ०।

## उमयपदी तप् (गरम करना)

तप् के रूप सर्वथा तड् के समान होते हैं। तापयति-तापयते इत्यादि।

## उमयपदी तुल् (तौलना)

लट्—तोलयति, तोलयते इत्यादि। लिट्—तोलयाञ्चकार, तोलयाञ्चक्रे।  
लुङ्—अतुलत्, अतुलताम्, अतुलन्। अतुलत, अतुलेताम्, अतुलन्त।  
लट्—तोलयिता। लृट्—तोलयिष्यति, तोलयिष्यते। आशी०—तोल्यात्,  
तोलयिषीष्ट।

## उमयपदी दण्ड् (दण्ड देना)

लट्—दण्डयति, दण्डयते। लिट्—दण्डयाञ्चकार, दण्डयाञ्चक्रे, दण्ड-  
यामास, दण्डयाम्बभूव। लुङ्—अददण्डत्, अददण्डताम्, अददण्डन्। अददण्डत,  
अददण्डेताम् अददण्डन्त। लृट्—दण्डयिता। लृट्—दण्डयिष्यति, दण्डयिष्यत।  
आशी०—दण्ड्यात्, दण्डयिषीष्ट।

उ० पा—(पालना, रक्षा करना) लुङ्—अपीपलत्, अपीपलत।

उ० पीड्—(डु ख देना) ,, —अपिपीडत्, अपिपीडत,  
अपीपिडत्, अपीपिडत।

उ० पूज्—(पूजा करना) ,, —अपूपुजत्, अपूपुजत।

## उमयपदी प्री (खुश करना)

लट्—प्रीणयति, प्रीणयते इत्यादि। लुङ्—अपिप्रीणत्, अपिप्रीणत।

## अत्मनेपदी भर्त्सं (घमकाना, डाटना)

लट्—भर्त्सयति, भर्त्सयते। लिट्—भर्त्सयाञ्चक्रे। लुङ्—अबभर्त्सत, अबभर्त्से-  
ताम्, अबभर्त्सन्त। अबभर्त्सथा, अबभर्त्सथाम्, अबभर्त्सध्वम्। अबभर्त्से,  
अबभर्त्सावहि, अबभर्त्सामहि। लृट्—भर्त्सयिता। लृट्—भर्त्सयिष्यते। आशी०—  
भर्त्सयिषीष्ट।

## उमयपदी भक्ष् (खाना)

लट्—भक्षयति, भक्षयते। लिट्—भक्षयामास, भक्षयाम्बभूव, भक्षयाञ्च-  
कार, भक्षयाञ्चक्रे। लुङ्—अबभक्षत्, अबभक्षत। लृट्—भक्षयिता। लृट्—  
भक्षयिष्यति, भक्षयिष्यते। आशी०—भक्षयिषीष्ट।

उभयपदी भूष् (सजाना)

लट्—भूषयति, भूषयते । लिट्—भूषयामास, भूषयाम्बभूव, भूषयाञ्चकार, भूषयाञ्चक्रे । लुङ्—अबुभूषत्, अबुभूषत । लृट्—भूषयिता । लृट्—भूषयिष्यति, भूषयिष्यते । आशी०—भूष्यात्, भूषयिषीष्ट ।

आ० भत्रि<sup>१</sup> (सलाह करना या देना)

लट्—मन्त्रयते । लिट्—मन्त्रयाञ्चक्रे । लुङ्—अममन्त्रत, अममन्त्रेताम्, अममन्त्रन्त । अममन्त्रथा, अममन्त्रेथाम्, अममन्त्रध्वम् । अममन्त्रे, अममन्त्रावहि, अममन्त्रामहि । लृट्—मन्त्रयिता । लृट्—मन्त्रयिष्यति । आशी०—मन्त्रयिषीष्ट ।

उभयपदी मार्गं (खोजना)

लट्—मार्गयति, मार्गयते । लिट्—मार्गयामास, मार्गयाम्बभूव, मार्गयाञ्चकार, मार्गयाञ्चक्रे । लुङ्—अममार्गत्, अममार्गंत । लृट्—मार्गयिता । लृट्—मार्गयिष्यति, मार्गयिष्यते । आशी०—मार्ग्यात्, मार्गयिषीष्ट ।

मार्जं<sup>२</sup> (शुद्ध करना, पोछना)

लट्—मार्जयति, मार्जयते । लिट्—मार्जयामास, मार्जयाम्बभूव, मार्जयाञ्चकार, मार्जयाञ्चक्रे । लुङ्—अममार्जत्, अममार्जंत । लृट्—मार्जयिता । लृट्—मार्जयिष्यति, मार्जयिष्यते । आशी०—मार्ज्यात्, मार्जयिषीष्ट ।

परमनेपदी मानं<sup>३</sup> (आदर करना)

लट्—मानयति । लिट्—मानयाञ्चकार । लुङ्—अमीमनत्, अमीमनताम्, अमीमनन् ।

१ इकारान्त पाठ होने से यह भी 'चिति' की भाँति अणिजन्त होती है और तब मन्त्रति इत्यादि रूप होते हैं ।

२ मार्जं और मृजू दोनों ही धातुएँ चुरादिगण की हैं । मार्जं 'शब्द करने' क अर्थ में होती है और मृजू शुद्ध करना, अलकृत करना इत्यादि अर्थ में होती है, जैसा कि भट्टोजि दीक्षित ने सिद्धान्त कौमुदी में लिखा है—'मृजू', शौचालङ्कारयो । मृजू अणिजन्त में होती है, तब इसके रूप मार्जति इत्यादि होते हैं ।

३ यह अणिजन्त भी होती है । तब इसके रूप मानति इत्यादि होने हैं । 'अममन्त' अर्थ में यह आत्मनेपदी भी होती है और मान्यते इत्यादि इसके रूप होते हैं ।

## उभयपदी रच् (बनाना)

लट्—रचयति, रचयते । लुङ्—अररचत्, अररचत । लृट्—रचयिता ।  
लृट्—रचयिष्यति, रचयिष्यते । आशी०—रच्यात्, रचयिषीष्ट ।

## उभयपदी वर्ण् (वर्णन करना या रँगना)

लट्—वर्णयति, वर्णयते । लुङ्—अववर्णत्, अववर्णत । लृट्—वर्णयिता ।  
लृट्—वर्णयिष्यति, वर्णयिष्यते । आशी०—वर्ण्यात्, अववर्णयिषीष्ट ।

## आत्मनेपदी वञ्च् (घोखा देना)

लट्—वञ्चयते । लिट्—वञ्चयामास, वञ्चयाम्बभूव, वञ्चयाञ्चके ।  
लुङ्—अववञ्चत, अववञ्चेताम्, अववञ्चन्त । लृट्—वञ्चयिता । लृट्—  
वञ्चयिष्यते । आशी०—वञ्चयिषीष्ट ।

## उभयपदी वृज् (छोडना, निकालना)

लट्—वर्जयति, वर्जयते । लुङ्—अवीवृजत्, अवीवृजताम्, अवीवृजन् ।  
अववर्जत्, अववर्जताम्, अववर्जन् । अवीवृजत, अवीवृजेताम्, अवीवृजन्त ।  
अववर्जत, अववर्जेताम्, अववर्जन्त ।

## उभयपदी स्पृह् (चाहना)

लट्—स्पृहयति, स्पृहयते । लिट्—स्पृहयामास, स्पृहयाम्बभूव, स्पृह-  
याञ्चकार, स्पृहयाञ्चके । लुङ्—अपस्पृहत्, अपस्पृहेताम्, अपस्पृहन् । अपस्पृहत,  
अपस्पृहेताम्, अपस्पृहन्त । लृट्—स्पृहयिता । लृट्—स्पृहयिष्यति, स्पृहयिष्यते,  
आशी०—स्पृहयिषीष्ट ।



## दशम सोपान

### क्रिया-विचार (उत्तरार्ध)

१५४—ऊपर (सेक्सन १३५ में) कह चुके हैं कि सस्कृत में तीन वाच्य होते हैं—कर्तृवाच्य, कमवाच्य और भाववाच्य। धातुओं के कर्तृवाच्य के रूप दसों गणों के सभी लकारों में पिछले सोपान में दिखाये जा चुके हैं। यह भी बताया जा चुका है कि कर्मवाच्य केवल सक्रमक धातुओं में और भाववाच्य केवल अक्रमक धातुओं में हो सकता है। इन दोनों वाच्यों के रूप केवल आत्मनेपद में होते हैं, धातु चाहे जिस पद की हो। आत्मनेपद के जो प्रत्यय दसों लकारों के हैं, वे ही प्रत्यय जोड़े जाते हैं। कमवाच्य तथा भाववाच्य के रूप बनाते समय नीचे लिखे नियमों का पालन किया जाता है—

(१) धातु और प्रत्ययों के बीच में सार्वधातुक लकारों में यक् (य) जोड़ा जाता है, जैसे—भिद् और ते के बीच में य जोड़ कर भिद्यते रूप बनता है।

(२) धातु में यक् के पूर्व कोई विकार नहीं होता, जैसे गम्+य+ते=गम्यते। कर्तृवाच्य में सार्वधातुक लकारों में धातुओं के स्थान में धात्वादेश (जैसे गम् का गच्छ) नहीं होता। इस प्रकार गुण और वृद्धि भी नहीं होती।

(३) दा, दे, दो, धा, के, मा, गै, पा, सो और हा धातुओं का अन्तिम स्वर ई में बदल जाता है, जैसे—दीयते, धीयते, मीयते, गीयते, सीयते, हीयते। और धातुओं का त्रैलोक्य ही रहता है, जैसे—ज्ञायते, स्नायते, भूयते, ध्यायते। बहुत-सी धातुओं के बीच का अनुस्वार कमवाच्य के रूपों में निकाल दिया जाता है, जैसे—बन्ध् से बध्यते, शस् में शस्यते इन्ध् से इध्यते।

(४) अन्य छ लकारों में कमवाच्य तथा भाववाच्य में कर्तृवाच्य (आत्मनेपद) के रूप होते हैं, जैसे—परोक्षभूत म—नित्ये, वभूवे, जज्ञे आदि,

१ भावकर्मणो ११३।१३।

अथवा कृ धातु के रूप जोड़ कर, जैसे—ईक्षाञ्चक्रे, अथवा अस् धातु के रूप लगाकर, कथयामासे आदि ।

(५) स्वरान्त धातुओं के तथा हन्, ग्रह्, वृश् धातुओं के दोनों भविष्य, क्रियातिपत्ति तथा आशीलिङ्ग में वैकल्पिक रूप धातु के स्वर की वृद्धि करके तथा प्रत्ययों के पूर्व इ जोड़कर बनते हैं, जैसे—दा से दायिना अथवा दाता । दायिष्यते अथवा दास्यते । अदायिष्यत अथवा अदास्यत । दायिषीष्ट अथवा दासीष्ट ।

(क) नीचे कर्मवाच्य तथा भाववाच्य के रूप दिये जाते हैं । जैसा ऊपर नवे सोपान में बता चुके हैं, कर्मवाच्य की क्रिया के रूप पुरुष और वचन में कर्म के अनुसार होते हैं । भाववाच्य का अर्थ है—केवल किसी क्रिया का होना दिखाना । यह सदा प्रथम पुरुष एकवचन में होता है, कर्ता के अनुसार इसके रूप नहीं बदलते, जैसे—तेन भूयते, ताभ्याम् भूयते, तौ भूयते, त्वया भूयते, युवाभ्या भूयते, युष्माभि भूयते, मया भूयते, आवाभ्या भूयते, अस्माभि भूयते । इसी प्रकार भूयताम्, भूयात, अमूयत ।

१५५—मुख्य धातुओं के कर्मवाच्य तथा भाववाच्य के रूप ।

पठ्—लट्—पठ्यते, पठ्येते, पठ्यन्ते । लोट्—पठ्यताम्, पठ्येताम्, पठ्यन्ताम् । विधि०—पठ्येत्, पठ्येयाताम्, पठ्येरन् । लङ्—अपठ्यत, अपठ्येताम्, अपठ्यन्त । लिट्—पेठे, पेठाते, पेठिरे । लुङ्—अपाठि, अपाठिषाताम्, अपाठ्यन्त । लुट्—पठिता, पठितारी, पठितार । पठितासे । लृट्—पठिष्यते । आशी०—पठिषीष्ट ।

मुच्—लट्—मुच्यते, मुच्येते, मुच्यन्ते । लोट्—मुच्यताम्, मुच्येताम्, मुच्यन्ताम् । विधि—मुच्येत्, मुच्येयाताम्, मुच्येरन् । लङ्—अमुच्यत, अमुच्येताम्, अमुच्यन्त ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
लिट्	मुमुचे	मुमुचाते	मुमुचिरे
	मुमुचिषे	मुमुचाथे	मुमुचिध्वे
	मुमुचे	मुमुचिवहे	मुमुचिमहे

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
लृङ्	अमोचि	अमुक्षाताम्	अमुक्षत
	अमुक्था	अमुक्षाथाम्	अमुग्ध्वम्
	अमुक्षि	अमुक्ष्वहि	अमुक्षमहि
लृट्	मोक्त्वा	मोक्तारौ	मोक्तार
लृट्	मोक्ष्यते	मोक्ष्येते	मोक्ष्यन्ते
आशी०	मुक्षीष्ट	मुक्षीयास्ताम्	मुक्षीयन्त
लृङ्	अमोक्ष्यत	अमोक्ष्येताम्	अमोक्ष्यन्त

सकर्मक दा—कर्मवाच्य

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	दीयते	दीयेते	दीयन्ते
म० पु०	दीयसे	दीयेथे	दीयध्वे
उ० पु०	दीये	दीयावहे	दीयामहे

भ्राजा—लोट्

प्र० पु०	दीयताम्	दीयेताम्	दीयन्ताम्
म० पु०	दीयस्व	दीयेथाम्	दीयध्वम्
उ० पु०	दीयै	दीयावहै	दीयामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	दीयेत	दीयेयाताम्	दीयेरन्
म० पु०	दीयेथा	दीयेयाथाम्	दीयेध्वम्
उ० पु०	दीयेय	दीयेवहि	दीयेमहि

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अदीयत	अदीयेताम्	अदीयन्त
म० पु०	अदीयथा	अदीयेथाम्	अदीयध्वम्
उ० पु०	अदीये	अदीयावहि	अदीयामहि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	ददे	ददाते	ददिरे
म० पु०	ददिषे	ददाथ	ददिध्वे
उ० पु०	ददे	ददिवहे	ददिमहे

## सामान्यभूत—लुङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अदायि	{ अदायिषाताम् अदिषाताम्	{ अदायिषत अदिषत
म० पु०	{ अदायिष्ठा आदिथा	{ अदायिषाथाम् अदिषाथाम्	{ अदायिष्वम् अदिष्वम्
उ० पु०	{ अदायिषि अदिषि	{ अदायिष्वहि अदिष्वहि	{ अदायिष्महि अदिष्महि

## अनद्यतनभविष्य—लृट्

प्र० पु०	दाता	दातारौ	दातार
म० पु०	दातासे	दातासाथे	दाताध्वे
उ० पु०	दाताहे	दातास्वहे	दातास्महे

## अथवा

प्र० पु०	दायिता	दायितारौ	दायितार
म० पु०	दायितासे	दायितासाथे	दायिताध्वे
उ० पु०	दायिताहे	दायितास्वहे	दायितास्महे

## सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	दास्यते	दास्येते	दास्यन्ते
म० पु०	दास्यसे	दास्येथे	दास्यध्वे
उ० पु०	दास्यहे	दास्यावहे	दास्यामहे

## अथवा

प्र० पु०	दायिष्यते	दायिष्येते	दायिष्यन्ते
म० पु०	दायिष्यसे	दायिष्येथे	दायिष्यध्वे
उ० पु०	दायिष्ये	दायिष्यावहे	दायिष्यामहे

## आशीर्लिङ्

प्र० पु०	दासीष्ट	दासीयास्ताम्	दासीरन्
म० पु०	दासीष्ठा	दासीयास्थाम्	दासीध्वम्
उ० पु०	दासीथ	दासीवहि	दासीमहि

अथवा

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	दायिषीष्ट	दायिषीयास्ताम्	दायिषीरन्
म० पु०	दायिषीष्ठा	दायिषीयास्थाम्	दायिषीष्वम्, द्वम्
उ० पु०	दायिषीय	दायिषीवहि	दायिषीमहि

क्रियातिपत्ति—लुङ्

प्र० पु०	अदास्यत	अदास्येताम्	अदास्यन्त
म० पु०	अदास्यथा	अदास्येथाम्	अदास्येष्वम्
उ० पु०	अदास्ये	अदास्यावहि	अदास्यामहि

अथवा

प्र० पु०	अदायिष्यत	अदायिष्येताम्	अदायिष्यन्त
म० पु०	अदायिष्यथा	अदायिष्येथाम्	अदायिष्येष्वम्
उ० पु०	अदायिष्ये	अदायिष्यावहि	अदायिष्यामहि

पा—लट्—पीयते, पीयेते, पीयन्ते । पीयसे, पीयेथे, पीयध्वे । पीये, पीयावहे, पीयामहे । लोट्—पीयताम्, पीयेताम्, पीयन्ताम् । पीयस्व, पीयेथाम्, पीयध्वम् । पीयै, पीयावहै, पीयामहै । विधि—पीयेत, पीयेयाताम्, पीयेरन्, पीयेथा, पीयेयाथाम् पीयेध्वम् । पीयेय, पीयेवहि, पीयेमहि । लृङ्—अपीयत, अपीयेताम्, अपीयन्त । अपीयथा, अपीयेथाम्, अपीयध्वम् । अपीये, अपीयावहि, अपीयामहि । लिट्—पपे, पपाते, पपिरे । पपिषे, पपाथे, पपिध्वे । पपे, पपिवहे, पपिमहे । लुङ्—अपायि, अपायिषाताम्, अपायिषत । अपायिष्ठा, अपायिषाम्, अपायिध्वम् । अपायिषि, अपायिष्वहि, अपायिष्महि । लुट्—पाता, पातारौ, पातार । लृट्—पास्यते, पास्येते, पास्यन्ते । आशी०—पासीष्ट । लृङ्—अपास्यत ।

अकर्मक स्था—भाववाच्य

स्थीयते, स्थीयेते, स्थीयन्ते, इत्यादि । लोट्—स्थीयताम् । विधि—स्थीयेन् । लृङ्—अस्थीयत, अस्थीयेताम्, अस्थीयन्त । लिट्—तस्थे, तस्थाते, तस्थिरे । तस्थिषे, तस्थाथे तस्थिध्वे । तस्थे, तस्थिवहे, तस्थिमहे । लुङ्—

अस्थायि, अस्थायिषाताम्, अस्थायिषत । अस्थायिष्ठा, अस्थायिषायाम्,  
अस्थायिष्वम् । अस्थायिषि, अस्थायिष्वहि, अस्थायिष्महि । लृट्—स्थाता ।  
लृट्—स्थास्यते । आशी०—स्थासीष्ट ।

हा—हीयते इत्यादि । लिट्—जहे, जहाते, जहिरे । लुङ्—अहायि,  
अहायिषाताम्, अहायिषत इत्यादि ।

सकर्मक ज्ञा—कर्मवाच्य

वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	ज्ञायते	ज्ञायेते	ज्ञायन्ते
म० पु०	ज्ञायसे	ज्ञायथे	ज्ञायध्वे
उ० पु०	ज्ञाये	ज्ञायामहे	ज्ञायामहे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	ज्ञायताम्	ज्ञायैताम्	ज्ञायन्ताम्
म० पु०	ज्ञायस्व	ज्ञायथाम्	ज्ञायध्वम्
उ० पु०	ज्ञायै	ज्ञायामहे	ज्ञायामहे

विधिलिङ्

प्र० पु०	ज्ञायेत	ज्ञायेयाताम्	ज्ञायेरन्
म० पु०	ज्ञायेष्य	ज्ञायेयाथाम्	ज्ञायेध्वम्
उ० पु०	ज्ञायेय	ज्ञायेवहि	ज्ञायेमहि

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अज्ञायत	अज्ञायताम्	अज्ञायन्त
म० पु०	अज्ञायथा	अज्ञायथाम्	अज्ञायध्वम्
उ० पु०	अज्ञाये	अज्ञायामहे	अज्ञायामहे

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	जज्ञे	जज्ञाते	जज्ञिरे
म० पु०	जज्ञिषे	जज्ञाथे	जज्ञिध्वे
उ० पु०	जज्ञे	जज्ञामहे	जज्ञिमहे

सामान्यभूत—लुङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अज्ञायि	{ अज्ञायिषाताम् अज्ञासाताम्	{ अज्ञायिषत अज्ञासत
म० पु०	{ अज्ञायिष्ठा अज्ञास्था	{ अज्ञायिषाथाम् अज्ञासाथाम्	{ अज्ञायिष्वम् अज्ञाश्वम्
उ० पु०	{ अज्ञायिषि अज्ञासि	{ अज्ञायिष्वहि अज्ञास्वहि	{ अज्ञायिष्वहि अज्ञास्वहि

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	{ ज्ञाता ज्ञायिता	{ ज्ञातारौ ज्ञायितारौ	{ ज्ञातार ज्ञायितार
म० पु०	{ ज्ञातासे ज्ञायितासे	{ ज्ञातासाथे ज्ञायितासाथे	{ ज्ञाताध्वे ज्ञायिताध्वे
उ० पु०	{ ज्ञाताहे ज्ञायिताहे	{ ज्ञातास्वहे ज्ञायितास्वहे	{ ज्ञातास्महे ज्ञायितास्महे

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	{ ज्ञास्यते ज्ञायिष्यते	{ ज्ञास्येते ज्ञायिष्येते	{ ज्ञास्यन्ते ज्ञायिष्यन्ते
म० पु०	{ ज्ञास्यसे ज्ञायिष्यसे	{ ज्ञास्यथे ज्ञायिष्यथे	{ ज्ञास्यध्वे ज्ञायिष्यध्वे
उ० पु०	{ ज्ञास्ये ज्ञायिष्ये	{ ज्ञास्यावहे ज्ञायिष्यावहे	{ ज्ञास्यामहे ज्ञायिष्यामहे

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	ज्ञासीष्ट ज्ञायिषीष्ट	ज्ञासीयास्ताम् ज्ञायिषीयास्ताम्	ज्ञासीरन् ज्ञायिषीरन्
म० पु०	ज्ञासीष्ठा ज्ञायिषीष्ठा	ज्ञासीयास्थाम् ज्ञायिषीयास्थाम्	ज्ञासीध्वम् ज्ञायिषीध्वम्, इष्वम्
उ० पु०	ज्ञासीय ज्ञायिषीय	ज्ञासीवहि ज्ञायिषीवहि	ज्ञासीमहि ज्ञायिषीमहि

## क्रियातिपत्ति—लृङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अज्ञास्यत अज्ञायिष्यत	अज्ञास्येताम् अज्ञायिष्येताम्	अज्ञास्यन्त अज्ञायिष्यन्त
म० पु०	अज्ञास्यथा अज्ञायिष्यथा	अज्ञास्येथाम् अज्ञायिष्येथाम्	अज्ञास्यध्वम् अज्ञायिष्यध्वम्
उ० पु०	अज्ञास्ये अज्ञायिष्ये	अज्ञास्यावहि अज्ञायिष्यावहि	अज्ञास्यामहि अज्ञायिष्यामहि

घ्यै—लट्—ध्यायते, ध्यायेते, ध्यायन्ते । लोट्—ध्यायताम्, ध्यायेताम्, ध्यायन्ताम् । विधि०—ध्यायेत, ध्यायेताम्, ध्यायेरन् । लङ्—अध्यायत, अध्यायेताम्, अध्यायन्त । लिट्—दध्ये, दध्याते, दध्यिरे । लुङ्—अध्यायि, अध्यायिषातम्, अध्यासाताम्, अध्यायिषत-अध्यासत । लृट्—ध्याता । लृट्—ध्यासते ।

सकर्मक चि—कमवाच्य

## वर्तमान—लट्

प्र० पु०	चीयते	चीयेते	चीयन्ते
म० पु०	चीयसे	चीयेथे	चीयध्वे
उ० पु०	चीये	चीयावहे	चीयामहे

## आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	चीयताम्	चीयेताम्	चीयन्ताम्
म० पु०	चीयस्व	चीयेथाम्	चीयध्वम्
उ० पु०	चीयै	चीयावहै	चीयामहै

## विधिलिङ्

प्र० पु०	चीयेत	चीयेयाताम्	चीयेरन्
म० पु०	चीयेथा	चीयेयाथाम्	चीयेध्वम्
उ० पु०	चीयेय	चीयेवहि	चीयेमहि



अनद्यतनभूत—लङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अचीयत	अचीयेताम्	अचीयन्त
म० पु०	अचीयथा	अचीयेथाम्	अचीयध्वम्
उ० पु०	अचीये	अचीयावहि	अचीयामहि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चिक्वे	चिक्याते	चिक्वियरे
म० पु०	चिक्विषे	चिक्याथे	चिक्विष्वे, द्वे
उ० पु०	चिक्वे	चिक्वियहे	चिक्वियमहे

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अचायि	अचायिषाताम्	अचायिषत
म० पु०	अचायिष्ठा	अचेषाताम्	अचेषत
उ० पु०	अचायिषि	अचायिष्याथाम्	अचायिध्वम्, द्वम्
	अचेषि	अचेष्याथाम्	अचेध्वम्, द्वम्
		अचायिष्वहि	अचायिष्महि
		अचेष्वहि	अचेष्महि

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	चेता	चेतारौ	चेतार
म० पु०	चायिता	चायितारौ	चायितार
	चेतासे	चेतासाथे	चेताध्वे
उ० पु०	चायितासे	चायितासाथे	चायिताध्वे
	चेतास्व	चेतास्वहे	चेतास्महे
	चायितास्वहि	चायितास्वहे	चायितास्महे

सामान्यभविष्य—लुट्

प्र० पु०	चेष्यते	चेष्येते	चेष्यन्ते
म० पु०	चायिष्यते	चायिष्येते	चायिष्यन्ते
	चेष्यसे	चेष्यैथे	चेष्यध्वे
उ० पु०	चायिष्यसे	चायिष्येथे	चायिष्यध्वे
	चेष्ये	चेष्यावहे	चेष्यामहे
	चायिष्ये	चायिष्यावहे	चायिष्यामहे

## आशीलिङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	चेषीष्ट	चेषीयास्ताम्	चेषीरन्
	चायिषीष्ट	चायिषीयास्ताम्	चायिषीरन्
म० पु०	चेषीष्ठा	चेषीयास्थाम्	चेषीद्वम्
	चायिषीष्ठा	चायिषीयास्थाम्	चायिषीध्वम्, द्वम्
५०	चेषीय	चेषीवहि	चेषीमहि
	चायिषीय	चायिषीवहि	चायिषीमहि

## लुङ्

प्र० पु०	अचेष्यत	अचेष्याताम्	अचेष्यन्त
	अचायिष्यत	अचायिष्येताम्	अचायिष्यन्त
म० पु०	अचेष्यथा	अचेष्येथाम्	अचेष्यध्वम्
	अचायिष्यथा	अचायिष्येथाम्	अचायिष्यध्वम्
उ० पु०	अचेष्ये	अचेष्यावहि	अचेष्यामहि
	अचायिष्ये	अचायिष्यावहि	अचायिष्यामहि

जि—लट्—जीयते, जीयेते, जीयन्ते । लोट्—जीयताम्, जीयेताम्, जीयन्ताम् ।  
 विधि०—जीयेत, जीयेयाताम्, जीयेरन् । लङ्—अजीयत, अजीयेताम्,  
 अजीयन्त । लिट्—जिग्ये, जिग्याते, जिग्यिरे । जिग्यिषे, जिग्याथे,  
 जिग्यिध्वे । जिग्ये, जिग्यिवहे, जिग्यिमहे । लुङ्—अजायि, अजायिषाताम्-  
 अजेषाताम्, अजायिषत-अजेषत । अजायिष्ठा-अजेष्ठा अजायिषाथाम्-  
 अजेषाथाम्, अजायिध्वम्-अजेध्वम् । अजायिषि-अजेषि, अजायिष्वहि  
 अजेष्वहि, अजायिष्महि-अजेष्महि । लुट्—जेता-जयिता । लृट्—जेष्यते-  
 जायिष्यते । आशी०—जेषीष्ट-जायिषीष्ट । लृङ्—अजेष्यत-अजायिष्यत ।

श्रि—लट्—श्रीयते, श्रीयेते, श्रीयन्ते । लोट्—श्रीयताम्, श्रीयेताम्, श्रीयन्ताम् ।  
 विधि०—श्रीयेत । लङ्—अश्रीयत, अश्रीयेताम्, अश्रीयन्त । लिट्—  
 शिश्रिये, शिश्रियाते, शिश्रियिरे । शिश्रियिषे, शिश्रियाथे, शिश्रियिध्वे-  
 ढ्वे । शिश्रिये, शिश्रियिवहे, शिश्रियिमहे । लुङ्—अश्रायि,

अश्रायिषाताम्-अश्रायिषाताम्, अश्रायिषत-अश्रायिषत । अश्रायिष्ठा -  
अश्रायिष्ठा, अश्रायिषाथाम्-अश्रायिषाथाम्, अश्रायिष्वम्, द्वम्, अश्रायि-  
ष्वम्-अश्रायिष्वम् । अश्रायिषि-अश्रायिषि, अश्रायिष्वहि-अश्रायिष्वहि,  
अश्रायिष्महि-अश्रायिष्महि । लृट्—श्रयिता, श्रायिता । लृट्—श्रयिष्यते-  
श्रायिष्यते । आशी०—श्रयिषीष्ट-श्रायिषीष्ट । लृङ्—अश्रयिष्यत-  
अश्रायिष्यत ।

सकर्मक नी—कर्मवाच्य

वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	नीयते	नीयेते	नीयन्ते
म० पु०	नीयसे	नीयेथे	नीयध्वे
उ० पु०	नीये	नीयावहे	नीयामहे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	नीयताम्	नीयेताम्	नीयन्ताम्
म० पु०	नीयस्व	नीयेथाम्	नीयध्वम्
उ० पु०	नीयै	नीयावहे	नीयामहे

द्विषिलिङ्

प्र० पु०	नीयेत	नीयेयाताम्	नीयेरन्
म० पु०	नीयेथा	नीयेयाथाम्	नीयेध्वम्
उ० पु०	नीयेय	नीयेवहि	नीयेमहि

अनन्तनभूत—लङ्

प्र० पु०	अनीयत	अनीयेताम्	अनीयन्त
म० पु०	अनीयथा	अनीयेथाम्	अनीयध्वम्
उ० पु०	अनीये	अनीयावहि	अनीयामहि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	निन्ये	निन्याते	निन्यरे
म० पु०	निन्यिषे	निन्याथे	निन्यिध्वे, द्वे
उ० पु०	निन्ये	निन्यिवहे	निन्यिमहे

## सामान्यभूत—लुङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अनायि	अनायिषाताम् अनेषाताम्	अनायिषत अनेषत
म० पु०	अनायिष्ठा	अनायिषाथाम् अनेषाथाम्	अनायिष्वम्, द्व्वम् अनेष्वम्
उ० पु०	अनायिषि अनेषि	अनायिष्वहि अनेष्वहि	अनायिष्महि अनेष्महि

## अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	नेता	नेतारौ	नेतार
म० पु०	नेतासे	नेतासाथे	नेताष्वे
उ० पु०	नेताहे	नेतास्महे	नेताम्महे

## तथा

प्र० पु०	नायिता	नायितारौ	नायितार
म० पु०	नायितासे	नायितासाथे	नायिताष्वे
उ० पु०	नायिताहे	नायितास्वहे	नायितास्महे

## सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	नेष्यते	नेष्येते	नेष्यन्ते
म० पु०	नेष्यसे	नेष्येथे	नेष्यन्थे
उ० पु०	नेष्ये	नेष्यावहे	नेष्यामहे

## तथा

प्र० पु०	नायिष्यते	नायिष्येते	नायिष्यन्ते
म० पु०	नायिष्यसे	नायिष्येथे	नायिष्यन्थे
उ० पु०	नायिष्ये	नायिष्यावहे	नायिष्यामहे

## भाशीलिङ्

प्र० पु०	नेषीष्ट	नेषीयास्ताम्	नेषीरन्
म० पु०	नेषीष्ठा	नेषीयास्थाम्	नेषीद्व्वम्
पु०	नेषीय	नेषीवहि	नेषीर्मां

तथा

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	नायिषीष्ट	नायिषीयास्ताम्	नायिषीरन्
म० पु०	नायिषीष्ठा	नायिषीयास्थाम्	नायिषीष्वम्, द्वम्
उ० पु०	नायिषीय	नायिषीवहि	नायिषीमहि

क्रियातिपत्ति—लुङ्

प्र० पु०	अनेष्यत	अनेष्येताम्	अनेष्यन्त
म० पु०	अनेष्यथा	अनेष्येथाम्	अनेष्यष्वम्
उ० पु०	अनेष्ये	अनेष्यावहि	अनेष्यामहि

तथा

प्र० पु०	अनायिष्यत	अनायिष्येताम्	अनायिष्यन्त
म० पु०	अनायिष्यथा	अनायिष्येथाम्	अनायिष्यष्वम्
उ० पु०	अनायिष्ये	अनायिष्यावहि	अनायिष्यामहि

सकर्मक कृ-कर्मवाच्य

बर्तमान—सट्

प्र० पु०	क्रियते	क्रियेते	क्रियन्ते
म० पु०	क्रियसे	क्रियेथे	क्रियष्वे
उ० पु०	क्रियो	क्रियावहे	क्रियामहे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	क्रियताम्	क्रियेताम्	क्रियन्ताम्
म० पु०	क्रियस्व	क्रियेथाम्	क्रियष्वम्
उ० पु०	क्रियै	क्रियावहै	क्रियामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	क्रियेत	क्रियेयाताम्	क्रियेरन्
म० पु०	क्रियेथा	क्रियेयाथाम्	क्रियेष्वम्
उ० पु०	क्रियोय	क्रियेवहि	क्रियेमहि

## अनद्यतनभूत—लङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अक्रियत	अक्रियेताम्	अक्रियन्त
म० पु०	अक्रियथा	अक्रियेथाम्	अक्रियध्वम्
उ० पु०	अक्रिये	अक्रियावहि	अक्रियामहि

## परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चक्रे	चक्राते	चक्रिरे
म० पु०	चकृषे	चक्राथे	चकृद्ध्वे
उ० पु०	चक्रे	चकृवहे	चकृमहे

## सामान्यभूत—लृङ्

प्र० पु०	अकारि	अकारिषाताम्	अकारिषत
		अकृषाताम्	अकृषत
म० पु०	अकारिष्ठा	अकारिषाथाम्	अकारिध्वम्, ढ्वम्
	अकृथा	अकृषाथाम्	अकृद्ध्वम्
उ० पु०	अकारिषि	अकारिष्वहि	अकारिष्महि
	अकृषि	अकृष्वहि	अकृष्महि

## अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	कर्त्तारि	कर्त्तारौ	कर्त्तार
	कारिर्ता	कारितारौ	कारितार
म० पु०	कर्त्तसि	कर्त्तासाथे	कर्त्ताध्वे
	कारितासे	कारितासाथे	कारिताध्वे
उ० पु०	कर्त्तहि	कर्त्तास्वहे	कर्त्तास्महे
	कारिताहे	कारितास्वहे	कारितास्महे

## सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	करिष्यते	करिष्येते	करिष्यन्ते
म० पु०	करिष्यसे	करिष्येथे	करिष्यध्वे
उ० पु०	करिष्ये	करिष्यावहे	करिष्यामहे

तथा

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	कारिष्यते	कारिष्येते	कारिष्यन्ते
म० पु०	कारिष्यसे	कारिष्येथे	कारिष्यध्वे
उ० पु०	कारिष्ये	कारिष्यावहे	कारिष्यामहे

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	कृषीष्ट	कृषीयास्ताम्	कृषीरन्
	कारिषीष्ट	कारिषीयास्ताम्	कारिषीरन्
म० पु०	कृषीष्ठा	कृषीयास्थाम्	कृषीद्वम्
	कारिषीष्ठा	कारिषीयास्थाम्	कारिषीध्वम्, द्वम्
उ० पु०	कृषीय	कृषीवहि	कृषीमहि
	कारिषीय	कारिषीवहि	कारिषीमहि

क्रियातिपत्ति-लृङ्

प्र० पु०	अकारिष्यत	अकारिष्यताम्	अकारिष्यन्त
	अकारिष्यत	अकारिष्येताम्	अकारिष्यन्त
म० पु०	अकारिष्यथा	अकारिष्यथाम्	अकारिष्यध्वम्
	अकारिष्यथा	अकारिष्येथाम्	अकारिष्यध्वम्
उ० पु०	अकारिष्ये	अकारिष्यावहि	अकारिष्यामहि
	अकारिष्ये	अकारिष्यावहि	अकारिष्यामहि

वृ—लट्—ध्रियते, ध्रियेते, ध्रियन्ते । लोट्—ध्रियताम्, ध्रियेताम्, ध्रियन्ताम् ।  
 विधि—ध्रियेत, ध्रियेयाताम्, ध्रियेरन् । लृङ्—अध्रियत, अध्रियेताम्,  
 अध्रियन्त । लिट्—दध्रे, दध्राते, दधिरे । लुङ्—धारि, अधारि-  
 षाताम्-अधृषाताम्, अधारिषत-अधृषत । लुट्—धर्ता, धरिता । लृट्—  
 धरिष्यते-धारिष्यते । आशी०—धृषीष्ट, धारिषीष्ट । लृङ्—अधरिष्यत-  
 अधारिष्यत ।

भृ—भ्रियते इत्यादि । लिट्—बभ्रते, बभ्राते, बभ्रिरे । बभ्रूषे, बभ्राथे, बभ्रूध्वे ।  
 बभ्र्रे, बभ्रूवहे बभ्रूमहे । लुङ्—अभारि, अभारिषाताम्-अभृषाताम्  
 अभारिषत-अभृषत ।

वृ—व्रियते इत्यादि ।	
हृ—ह्रियते इत्यादि	
वच्—उच्यते ।	लङ्—अौच्यत ।
वद्—उद्यते ।	लङ्—अौद्यत ।
वप्—उप्यते ।	लङ्—अौप्यत ।
वस्—उष्यते ।	लङ्—अौष्यत ।
वह्—उह्यते ।	लङ्—अौह्यत ।

चुरादिगण की धातुओं का गुण तथा वृद्धि जो कि लट्, लोट्, विधि और लङ् में साधारणत होता है, कर्मवाच्य में भी बना रहता है ।

इस गण का 'अय्' लट्, लोट्, विधि और लङ् में तथा लुङ् के प्रथम पुरुष के एकवचन में निकाल दिया जाता है लिट् में बना रहता है और शेष लकारों में विकल्प रूप से निकाल दिया जाता है । जैसे चुर का—चोर्यते, चोर्येते, चोर्यन्ते ।

लिट्—चोरयाञ्चक्रे । चोरयाम्बभूवे । चोरयामासे । लुङ्—अचोरि, अचोरिषाताम्-अचोरयिषाताम्, अचोरिषत-अचोरयिषत । अचोरिष्ठा-अचोरयिष्ठा, अचोरिषाथाम-अचोरयिषाथाम्, अचोरिष्वम्-अचोरयिष्वम् । अचोरिषि-अचोरयिषि, अचोरिष्वहि-अचोरयिष्वहि, अचोरिष्महि-अचोरयिष्महि ।

लुट्—चोरिता । लृट्—अचोरिष्यते-चोरयिष्यते ।

आशी०—चोरिषीष्ट-चोरयिषीष्ट । लृङ्—अचोरिष्यत-अचोरयिष्यत ।

### प्रत्ययान्त धातुएँ

१५६—धातुओं में विशेष प्रत्यय जोड़ कर धातु के अर्थ के साथ-साथ और अर्थ का भी बोध हो जाता है । जैसे हिन्दी में 'मैं जाता हूँ' के साथ यदि चाहने का अर्थ लगाना हो तो 'मैं जाना चाहता हूँ' इस वाक्य का प्रयोग करेंगे । इसमें दो धातुओं ('जाना' और 'चाहना') का प्रयोग हुआ, किन्तु सस्कृत में गम् धातु के अनन्तर सन् प्रत्यय जोड़ कर चाहने का अर्थ निकाल लिया जाता है, जैसे गम्—जाना, जिगमिष्—जाने की इच्छा करना (अह गच्छामि—अह जिग-



मिषामि)। 'जिगमिष्' को सन्-प्रत्ययान्त धातु कहेंगे। 'सन्' आदि प्रत्यय धातु और लिङ् प्रत्ययो के बीच में जोड़े जाते हैं, तब क्रिया की सिद्धि होती है।

प्रत्ययान्त धातुएँ चार प्रकार की होती हैं—

- (१) णिजन्त—णिच् प्रत्यय में अन्त होने वाली।
- (२) सन्नन्त—सन् प्रत्यय में अन्त होने वाली।
- (३) यङ्न्त—यङ् प्रत्यय में अन्त होने वाली (यङ्लुङ्न्त धातुएँ भी एक प्रकार से यङ्न्त ही कही जायँगी) तथा
- (४) नामधातु—किसी प्रातिपदिक को धातु रूप देकर बनाई हुई धातु।

## णिजन्त धातु

१५७—किसी धातु में जब प्रेरणा का अर्थ लाना हो तो णिच् प्रत्यय जोड़ देते हैं। करना से कराना, पढ़ना से पढ़ाना, पकाना से पकवाना, बनाना से बनवाना आदि प्रेरणा के अर्थ हैं। सादी धातु में जो कर्ता रहता है, वह प्रेरणार्थक धातु में स्वयं कार्य न करके किसी दूसरे से कार्य करता है, जैसे 'राम पकाता है' इस वाक्य में राम स्वयं पकाने का कार्य करता है, किन्तु 'राम पकवाता है' इस वाक्य में राम स्वयं नहीं पकाता, पकाने का काम किसी और से कराता है। णिच् प्रत्यय लगकर अकर्मक धातु कभी-कभी सकर्मक भी हो जाती है, और कभी-कभी उसके अर्थ में परिवर्तन भी हो जाता है और णिजन्त धातु से परस्मैपद तथा आत्मनेपद दोनों प्रकार के लिङ् प्रत्यय जुटते ही हैं।

(क) णिजन्त धातु के रूप चुरादिगण की धातुओं के समान चलते हैं, धातु और लिङ् प्रत्ययो के बीच में अय् जोड़ दिया जाता है।

तथा नियम १५४ में उल्लिखित स्वर का परिवर्तन होता है, जैसे—

(१) बुध्	(बोधति)	से	प्रेरणार्थक	बोधयति
(२) अद्	(अत्ति)	से	„	आदयति
(३) हु	(जुहोति)	से	„	हावयति
(४) दिव्	(दीव्यति)	से	„	देवयति
(५) सु	(सुनोति)	से	„	सावयति

(६) तुद्	(तुदति)	से	प्रेरणार्थक तोदयति
(७) रुब्	(रुणद्धि)	से	” रोधयति
(८) तन्	(तनोति)	से	” तानयति
(९) अश्	(अश्नाति)	से	” आशयति
(१०) चुर्	(चोरयति)	से	” चोरयति

चुरादिगण की धातुओं के रूप प्रेरणार्थक में भी वैसे ही होते हैं, जैसे सादे में ।

(ख) कुछ धातुओं के साथ ऊपर लिखे हुए सभी परिवर्तन नहीं होते । मुख्य-मुख्य धातुओं के भेद ये हैं—

अम् में अन्त होने वाली धातुओं में (अम्, कम्, चम्, शम् और यम् को जोड़कर) उपधा के अकार को वृद्धि नहीं होती, जैसे—गम् से गमयति, किन्तु कम् से कामयते होता है ।

बहुधा आकारान्त (और ऐसी ए, ऐ, ओ में अन्त होने वाली धातुएँ जो आकारान्त हो जाती हैं) धातुओं के अन्तर अय के पूर्व प् जोड़ दिया जाता है, जैसे—दा से दापयति, स्ना में स्नापयति, गै से गापयति । मि, मी, दी, जि, की में भी प् जोड़ दिया जाता है और इकार का अकार हो जाता है, जैसे मापयति, दापयति, जापयति, क्रापयति ।

(ग) नीचे लिखी धातुओं के प्रेरणार्थक रूप इस प्रकार चलते हैं—

इण् (जाना) से गमयति । परन्तु प्रति के साथ प्रत्याययति । अधि+ इङ् से अध्यापयति ।

चि	(इकट्ठा करना)	से	चाययति-ते, चापयति-ते ।
जाग्	(जागना)	से	जागरयति ।
दुष्	(दोषी होना)	से	दूषयति-ते, दोषयति-ते ।
प्री	(प्रसन्न होना)	से	प्रीणयति ।
रूह्	(उगना)	से	रोहयति-ते, रोपयति-ते ।
वा	(डोलना)	से	वापयति, वाजयति ।
हन्	(मारना)	से	घातयति ।

१ णी गमिखोद्यने । २।४।४६।—इण् धातु में णिच् जुड़ने पर इण् के स्थान में गम् हो जाता है और गमयति रूप बनता है, परन्तु जहाँ बोध कराने या समझाने का अर्थ होता है, वहाँ इण् के स्थान में गम् नहीं होगा, जैसे—प्रत्याययति ।

(घ) प्रेरणार्थक घातुओ के रूप चुरादिगणी घातुओ के समान दसो लकारो, तीनो वाच्यो और दोनो पदो मे चलते हैं। उदाहरणार्थ, बुध् घातु के रूप प्रथम पुरुष एक वचन मे दिखाये जाते हैं। कर्तृवाच्य मे—लट्—बोधयति, बोधयते। लोट्—बोधयतु, बोधयताम्। विधि०—बोधयेत्, बोधयेत। लङ्—अबोधयत्, अबोधयत। लिट्—बोधयाञ्चकार, बोधयाम्बभूव, बोधयामास बोधयाञ्चक्रे, बोधयाम्बभूवे, बोधयामासे। लुङ्—अबूबुधत्, अबूबुधत। लुट्—बोधयिता। लट्—बोधयिष्यति, बोधयिष्यते। आशी०—बोध्यात्, बोधयिषीष्ट। लुङ्—अबोधयिष्यत्, अबोधयिष्यत।

कर्मवाच्य मे—लट्—बोध्यते। लोट्—बोध्यताम्। विधि०—बोध्येत। लङ्—अबोध्यत। लिट्—बोधयाञ्चक्रे, बोधयाम्बभूवे, बोधयामासे। लुङ्—अबोधि। लुट्—बोधिता। लृट्—बोधिष्यते। आशी०—बोधिषीष्ट। लुङ्—अबोधिष्यत।

### सन्नत घातु

१५८—'किसी कार्य के करने की इच्छा का अर्थ बतलाने के लिए उस कार्य का अर्थ बतलाने वाली घातु के अनन्तर सन् प्रत्यय लगाया जाता है, जैसे—'मै जाना चाहता हूँ'। यहाँ मै जाने की इच्छा करता हूँ, इसलिए 'जाने' का बोध कराने वाली घातु के अनन्तर सम्भ्रुते मे सन् प्रत्यय जोडकर 'जाना चाहता हूँ' यह अर्थ निकल आयेगा' (गम, तजिगमिष्)। जो कर्ता जाने की क्रिया का होगा, वही इच्छा करने वाला होना चाहिए। यदि दूसरा कर्ता होगा तो सन् प्रत्यय नहीं लग सकता, जैसे—'मै इच्छा करता हूँ कि वह जावे' इस वाक्य मे इच्छा करने वाला 'मै' ही और जाने वाला 'वह', यहाँ सन् लगाना असम्भव होगा। किन्तु मै उसे पढ़ाना चाहता हूँ, इस वाक्य मे सन् लग सकता है, क्योंकि यहाँ 'पढ़ाना' तथा 'चाहना' दोनो क्रियाओ का कर्ता एक ही है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि प्रेरणार्थक घातु के अनन्तर भी सन् लग सकता है किन्तु तभी जब प्रेरणा करने वाला और इच्छा करने वाला एक ही व्यक्ति हो।

सन् प्रत्यय लगाना न लगाना अपनी इच्छा पर है। यदि न लगाना चाहें तो यही अर्थ इष्, अभिलष् आदि चाहने का अर्थ बतलाने वाली क्रियाओ के प्रयोग

ने भी लाया जा सकता है, जैसे—‘मै जाना चाहता हूँ’ का अनुवाद चाहे ‘अह जिगमिषामि’ करे चाहे ‘अह गन्तुमिच्छामि’ या ‘अह गन्तुमभिलषामि’ आदि करे, दोनों ढग ठीक होंगे ।

इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि जिस कार्य की इच्छा की जाती है, वह इच्छा करने की क्रिया का कर्मस्वरूप होना चाहिए, और कोई कारक नहीं । ऊपर ‘मै जाना चाहता हूँ’ इस वाक्य में ‘चाहता हूँ’ क्रिया का ‘जाना’ कर्म है, तभी सन् प्रत्यय लगाया जा सका है । यदि ‘मै चाहता हूँ’ कि मेरे खाने से बल बढे’ इस प्रकार का वाक्य हो जहाँ ‘खाने से’ कारण कारक है, तो ऐसी दशा में ‘खाने’ की धातु के अनन्तर सन् लगा कर इच्छा का बोध नहीं कराया जा सकता ।

(क) सन् प्रत्यय का स् धातु में जोड़ा जाता है, यह स् सन्धि के (२४वे) नियम के अनुसार कही-कही ष् हो जाता है । स् जोड़ने के पूर्व धातु को पृष्ठ ३१० में उल्लेख किये हुए नियमों के अनुसार अभ्यस्त कर देना आवश्यक है । अभ्यास में यदि अकार हो तो उसका इकार हो जाता है, जैसे—पठ्+सन्=पठ्+पठ्+सन्=प+पठ्+स्=पिपठ्+इ+ष् । धातु यदि सेट् हो तो स् के पूर्व बहुधा इकार आ जाता है परन्तु कभी-कभी किसी-किसी धातु में नहीं भी आता, यदि वेट् हो तो बहुधा इच्छानुसार इकार आता है, और यदि अनिट् हो तो बहुधा नहीं आता, जैसे—सेट् पठ् धातु का सन्नन्त रूप पिपठ्+इ+ष्=पिपठिष् हुआ, किन्तु सेट् भू धातु का बुभुष् हुआ ।

(ख) इस प्रकार बनी हुई सन्नन्त धातु के रूप धातु के पद के अनुसार दसो लकारों में चलते हैं । परोक्षभूत में आम् जोड़ कर कृ, भू और अस् धातुओं के रूप जोड़ दिये जाते हैं ।

उदाहरणार्थ बुध् धातु के प्रथम पुरुष एकवचन के रूप दिये जाते हैं—

	कर्तृवाच्य		कर्मवाच्य
सट्	बुबोधिषति	बुबोधिषते	बुबोधिष्यते
सोट्	बुबोधिषतु	बुबोधिषताम्	बुबोधिष्यताम्
विधि०	बुबोधिषेत्	बुबोधिषेत	बुबोधिष्येत
नङ्	अबुबोधिषत्	अबुबोधिषत	अबुबोधिष्यत

लिट्	बुबोधिषाञ्चकार	बुबोधिषाञ्चक्रे	बुबोधिषाञ्चक्रे
	बुबोधिषाम्बभूव	बुबोधिषाम्बभूवे	बुबोधिषाम्बभूवे
	बबोधिषामास	बुबोधिषामासे	बुबोधिषामासे
लुङ्	अबुबोधिषीत्	अबुबोधिषिष्ट	अबुबोधिषि
लुट्	बुबोधिषिता	बुबोधिषिता	बुबोधिषिता
लृट्	बुबोधिषिष्यति	बुबोधिषिष्यते	बुबोधिषिष्यते
आशी०	बुबोधिष्यात्	बुबोधिषिषीष्ट	बुबोधिषिषीष्ट
लृङ्	अबुबोधिषिष्यत्	अबुबोधिषिष्यत	अबुबोधिषिष्यत

(ग) नीचे कुछ धातुओं के सन्नन्त रूप दिये जाते हैं।

पठ्	+ सन् =	पिपठिष्	(पिपठिषति)
ग्रह्	+ सन् =	जिघृक्ष्	(जिघृक्षति)
प्रच्छ्	+ सन् =	पिपृच्छिष्	(पिपृच्छिषति)
कृ	+ सन् =	चिकरिषु	(चिकरिषति)
गृ	+ सन् =	जिगरिष्, जिगलिष्	(जिगरिषति, जिगलिषति)
बृङ्	+ सन् =	दिघरिष्	(दिघरिषते)
हन्	+ सन् =	जिघास्	(जिघासिषति)
गम्	+ सन् =	जिगमिष्	(जिगमिषति)
इण्	+ सन् =	जिगमिष्	( " )

नोट—सन् लगने पर बोध से भिन्न अर्थ होने पर इण् का गम् आदेश होता है। बोध अर्थ में प्रतिषिषति रूप होता है।

ज्ञा	+ सन् =	जिज्ञास्	(जिज्ञासते)
श्रु	+ सन् =	शुश्रूष्	(शुश्रूषते)
दृश्	+ सन् =	दिदृक्ष्	(दिदृक्षते)
पा	+ सन् =	पिपास्	(पिपासते)
मू	+ सन् =	बुभूष्	(बुभूषते)
आप्	+ सन् =	ईप्स्	(ईप्सति)

नोट—सन्<sup>१</sup> लगने पर आप् के आ के स्थान में ई हो जाता है और अम्यास का लोप हो जाता है।

अद् + सन् = जिघत्स्

(जिघत्सति)

### यङन्त धातु

१५६—व्यञ्जन<sup>१</sup> से आरम्भ होने वाली किसी भी एकाच् धातु के अनन्तर क्रिया को बार-बार करने अथवा क्रिया को खूब करने को बोध कराने के लिए यङ् प्रत्यय लगाया जाता है। यह प्रत्यय दसवें गण की (सूच्, सूत्र, मूत्र इत्यादि कुछ धातुओं को छोड़कर) किसी धातु के अनन्तर नहीं लगता, केवल प्रथम नौ गणों की धातुओं के उपरान्त लग सकता है, जैसे, नेनीयते—बार-बार ले जाता है, देदीयते—खूब देता है।

यङ् प्रत्यय धातु में दो प्रकार से जोड़ा जाता है। एक को जोड़ने से परस्मैपद में रूप चलते हैं और दूसरे को जोड़ने से आत्मनेपद में। परस्मैपद वाले रूप वैदिक सस्कृत में ही प्रायः मिलते हैं, इसलिए उसका उल्लेख यहाँ अनावश्यक है। आत्मनेपद के यङन्त रूपों का दिग्दर्शन कराया जाता है।

(क) धातु में पहले यङ् का य् जोड़ा जाता है, जैसे—नी+यङ्=नीय, इसी प्रकार म्य, नन्ध इत्यादि। नियम १५४ (३) में उल्लिखित किसी-किसी धातु का विकृत रूप यहाँ भी हो जाता है, जैसे—दा+यङ्=दीय, बन्ध+यङ्=बध्य।

इस प्रकार से प्राप्त हुए यङन्त रूप का अभ्यास पृष्ठ ३१० पर लिखे हुए नियमों के अनुसार किया जाता है, केवल अभ्यास अक्षर के अ का, आ, इ अथवा ई का ए तथा उ अथवा ऊ का ओ जाता है, जैसे—व्रज्+यङ्=व्रज्य=व्राज्य, दीय=देदीय, नेनीय, वोमूय। इसके अतिरिक्त<sup>१</sup> जिन धातुओं की उपधा में ऋ हो, उनके अभ्यास में री का आगम हो जाता है, जैसे नरीनृत्यते, वरीवृत्यते इत्यादि।

१ आप्शप्युधामीत् ॥७॥५५॥ एषामच ईत्स्यात्सनि।

२ धातोरेकाचो हलादे क्रियासमभिहारे यङ् ॥३॥१२३॥ पौन पुन्य मृशार्थश्च क्रिया-समभिहार । तस्मिन्द्योत्ये यङ् स्यात् । सि० कौ०

३ रीगृदुपघस्य च ॥७॥५६०॥

(ख) इस प्रकार बनी हुई घातु के आत्मनेपद में दसो लकारो में रूप चलते हैं। उदाहरणार्थ बुध् घातु के यङन्त रूप प्रथम पुरुष एकवचन में दिए जाते हैं—

लकार	कर्तृवाच्य	कर्मवाच्य
लट्	बोबुध्यते	बोबुध्यते
लोट्	बोबुध्यताम्	बोबुध्यताम्
विधि०	बोबुध्येत	बोबुध्येत
लङ्	अबोबुध्यत	अबोबुध्यत
लिट्	बोवाञ्चक्रे	बोधाञ्चक्रे
लुङ्	अबोबुधिष्यत	अबोबुधिष्यत
लुट्	बोबुधिता	बोबुधिता
लृट्	बोबुधिष्यते	बोबुधिष्यते
आशी०	बोबुधिषीष्ट	बोबुधिषीष्ट
लृङ्	अबोबुधिष्यत	अबोबुधिष्यत

(ग)—नियम १५९ क्रियासमसिद्धार में ही यङ् का विधान करता है। परन्तु कही-कही इससे भिन्न अर्थ में भी लगता है। नीचे ऐसे कुछ स्थल दिखाए जाते हैं—

गत्यर्थकं घातुओ में कौटिल्य के अर्थ में यङ् प्रत्यय जुडता है, बार-बार या अधिक अर्थ में नहीं, जैसे—कुटिल व्रजति इति वाव्रज्यते।

लुप्, सद्, चर्, चप, जम्, दह्, दश्, गृ घातुओ के आगे गहित अर्थ में यङ् प्रत्यय लगता है, जैसे—गहित लुम्पति इति लोलुप्यते।

जप्, जग्, देह, दश्, भञ्ज, पश घातुओ में लङ् जुडने पर अम्यास में न का आगम हो जाता है, जैसे—गहित जपति इति जञ्ज्यते। इसी प्रकार जञ्जम्यते, दन्दह्यते, दन्दश्यते, पम्पश्यते।

१ नित्य कौटिल्ये गतौ ।३।१।२३।

२ लुपसदचरजपजमदशगृम्यो भावगर्हायाम् ।३।१।२४।

३ अपजमदहमञ्जपशा च ।७।४।६६।

नोट—माघवीयधातुवृत्ति मे पशि के स्थान मे 'पसि' पाठ है। परन्तु काशिका मे 'पशि' पाठ भी मिलता है।

गृ' धातु मे यङ् जुडने पर रेफ के स्थान मे लकार हो जाता है; जैसे—  
गर्हित गिरति इति जेगित्यते।

### नाम-धातु

१६०—जब किसी सुबन्त (सज्ञा आदि) के अनन्तर कोई प्रत्यय जोड़ कर उसे धातु बना लेते हैं, तो उसे नामधातु कहते हैं। नाम सज्ञा को ही कहते हैं, इसीलिए यह नाम पडा। नाम धातुओं के विशेष-विशेष अर्थ होते हैं, जैसे—  
पुत्रीयति (पुत्र+क्यच्)—पुत्र की इच्छा करता है। कृष्णति (कृष्ण+क्विप्)—  
—कृष्ण के समान आचरण करता है, लोहितति (लोहित+क्यच्)—लाल हो जाता है। मुण्डयति (मुण्ड+णिच्)—मुंडता है इत्यादि।

नाम-धातुओं के रूप सभी लकारों में चल सकते हैं, परन्तु बहुधा इनका प्रयोग वर्तमान काल मे ही होता है।

नीचे नाम-धातुओं के केवल दो मुख्य प्रत्यय दिए जाते हैं।

१६१—क्यच् प्रत्यय

(क) जिस वस्तु की इच्छा करे, उस वस्तु के सूचक शब्द के अनन्तर क्यच् लगाया जाता है।

(ख) क्यच् (य) जुडने के पूव शब्द के अन्तिम स्वर मे परिवर्तन हो जाता है, अ तथा आ का इ, ई का ई, उ का ऊ, ऋ का री, ओ का अर्वा और औ का आव्। अन्तिम इ, उ, ऋ तथा न् का लोप कर दिया जाता है और पूर्ववर्ती स्वर का ऊपर लिखे नियम के अनुसार परिवर्तन हो जाता है। मकारान्त शब्द के अनन्तर तथा अव्यय के अनन्तर क्यच् जुडता ही नहीं।

उदाहरणार्थ—

पुत्रम् आत्मन इच्छति=पुत्रीयति (पुत्र+क्यच्)—अपने लिए पुत्र की इच्छा करता है। गङ्गाम् आत्मन इच्छति=गङ्गीयति (गङ्गा+क्यच्)—

१ ओ यङ् । ८। २। २०।

२ सुप आत्मन क्यच् । ३। १। ८।

३ मान्तप्रकृतिवसुबन्तादव्ययाच्च क्यच् न । वा० । इदमिच्छति, स्वरिच्छति  
सि० कौ० ।



अपने लिए गङ्गा की इच्छा करता है। इसी प्रकार कवीयति (कवि+क्यच्), नदीयति (नदी+क्यच्), विष्णूयति (विष्णु+क्यच्), वधूयति (वधू+क्यच्), कर्त्रीयति (कर्तृ+क्यच्), गव्यति (गो+क्यच्), नाव्यति (नौ+क्यच्), राजीयति (राजन्+क्यच्) इत्यादि।

(ग) क्यच् प्रत्यय<sup>१</sup> किसी चीज को किसी के समान समझकर या मानकर उसके सम्बन्ध में आचरण करने के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है। इस दशा में जो या जिसके समान समझा जाय अर्थात् जो उपमान हो उसके अनन्तर क्यच् प्रत्यय लगता है और वह उपमान कर्म होना चाहिए, जैसे वह वि र्णियों को पुत्र समझता है अर्थात् उसके साथ पुत्र का-सा व्यवहार करता है। यहाँ क के अनन्तर क्यच् प्रत्यय लगेगा—गुरु छात्र पुत्रीयति, एव विष्णूयति द्विजम्—राष्ट्र को विष्णु के समान समझता है। उपमान के अधिकरण होने पर भी उसमें क्यच् जुड़ता है, जैसे प्रासादीयति कुट्या भिक्षु—भिखारी कुटी को महल समझता है, कुटीयति प्रासादे राजा—राजा महल को कुटी समझता है।

(घ) क्यच् में अन्त होने वाली घातु के अन्त परस्मैपद में सब लकारों में चलते हैं, यदि प्रत्यय के पूर्व में व्यञ्जन हो तो लट्, लोट्, विधि और लङ् को छोड़कर शेष लकारों में यकार का लोप कर दिया जाता है, जैसे समिध्यति, समिष्विष्यति आदि।

### १६२—क्यङ्

(क) किसी<sup>२</sup> सुबन्त के अनन्तर 'जैसा वह करता है, वैसा ही यह करता है' इस अर्थ का बोध कराने के लिए क्यङ् (य) प्रत्यय लगाकर नामघातु बनाते हैं।

(ख) इसके रूप आत्मनेपद में चलते हैं। इस प्रत्यय के 'यु' के पूर्व सुबन्त का अ दीर्घ कर दिया जाता है, दीर्घ आ वैसा ही रहता है और शेष स्वर

१ उपमानादाचारे ।३।१।१०। अधिकरणोच्चेति वक्तव्यम्।

२ कर्तुं क्यङ् सलोपश्च ।३।१।११। ओजसोऽप्सद्सो नित्यमितरेषा विभाषया । वा० ।

जैसे क्यच् के पूर्व (१६१ ख) बदलते हैं, वैसे ही बदलते हैं। शब्द के अन्तिम स् का विकल्प से (किन्तु ओजस् और अप्सरस् का नित्य) लोप हो जाता है।  
उदाहरणार्थ—

कृष्ण इवाचरति=कृष्णायते—कृष्ण के समान आचरण करता है। इसी प्रकार, ओजायते—ओजस्वी के समान आचरण करता है। गर्दभी अप्सरायते—गर्दभी अप्सरा के समान आचरण करती है। यशायते अथवा यशस्यते—यशस्वी के समान आचरण करता है। विद्वायते अथवा विद्वस्यते—विद्वान् के समान आचरण करता है।

(ग) स्त्री-प्रत्ययान्त<sup>१</sup> शब्द का (यदि वह 'क' में अन्त न होता हो) स्त्री प्रत्यय गिरा दिया जाता है और शेष में क्यङ् जुड़ता है, जैसे, कुमारीव आचरति—कुमारायते, युवतीव आचरति—युवायते।

क<sup>२</sup> में अन्त होने पर स्त्री प्रत्यय का लोप नहीं होता, जैसे—पाचिकेव आचरति—पाचिकायते।

(घ) कर्ममूत<sup>३</sup> रोमन्थ और तपस् शब्दों के अनन्तर बर्तन और चरण अर्थ में क्यङ् प्रत्यय जुड़ता है, जैसे, रोमन्थ वर्तयति इति 'रोमन्थायते', तपश्चरतीति 'तपस्यति'।

(ङ) कर्ममूत<sup>४</sup> वाष्प और ऊष्मा शब्दों के अनन्तर उद्धमन अर्थ में क्यङ् जुड़ता है, जैसे, वाष्पमुद्धमतीति 'वाष्पायते'। इसी प्रकार ऊष्माणमुद्धमतीति 'ऊष्मायते'। फेन शब्द के बाद भी इसी अर्थ में क्यङ् जुड़ता है, जैसे, फेनमुद्धमतीति 'फेनायते'।

(च) शब्द<sup>५</sup>, वैर, कलह, अन्न, कण्व (पाप) और मेघ के अनन्तर क्यङ् जुड़ता है, यदि ये कर्ममूत हो और 'इन्हें करने' का अर्थ प्रकट करना हो, जैसे, शब्द कल्पति—शब्दायते। इसी प्रकार वैरायते, कलहायते इत्यादि।

१ क्यङ्मानिनोश्च ।६।३।३६।

२ न कोपघाया ।६।३।३७।

३ कर्मणो रोमन्थतपोभ्या वर्तिचरो ।३।१।१५।(तपस परस्मैपद च—वा०)।

४ बाष्पोष्मस्यामुद्धमने ।३।१।१६। फेनाच्चेति वाच्यम्—वा०—।

५ शब्दवैरकलहान्नकण्वमेघेभ्य करणे ।३।१।१७।

(छ) कर्ममत<sup>१</sup> सुख इत्यादि के अनन्तर भी वेदना या अनुभव अर्थ में क्यङ् जुडता है (यदि वेदना के कर्ता को ही सुख इत्यादि हो तो), जैसे, सुख वेदयते=सुखायते। 'परस्य सुख वेदयते'—यहाँ क्यङ् नहीं जुडेगा।

### पदव्यवस्था

१६३—ऊपर नियम १३४ (घ) में बता चुके हैं कि सस्कृत भाषा में घातुएँ दो पदों में रक्खी जाती हैं—परस्मैपद और आत्मनेपद। कुछ एक पद की ही होती हैं, कुछ दूसरे की ही और कोई-कोई दोनों पदों की। किन्तु भाषाओं में घातु एक पद को छोड़कर दूसरे की हो जाती हैं, यह यहाँ दिखाने का यत्न किया जायगा।

भाववाच्य तथा कर्मवाच्य में घातु केवल आत्मनेपद में रहती है, कर्तृवाच्य में चाहे वह परस्मैपद में हो चाहे आत्मनेपद में।

दो चार मोटे-मोटे नियम यहाँ दिए जाते हैं—

(क) यदि<sup>२</sup> बुध्, युध्, नश्, जन्, (अधिवृत्तक) इङ्, प्रु, हु तथा लृ घातुओं का णिजन्त प्रयोग हो तो ये परस्मैपदी होती हैं, जैसे—छात्र अधीते, गुरु छात्र-मध्यापयति। इसी प्रकार प्रावयति, स्नायति, नाशयति, जनयति, द्रावयति, बोधयति, योधयति इत्यादि।

(ख) कृ<sup>३</sup> घातु उभयपदी है; परन्तु यदि 'अनु' अथवा 'परा' उपसर्ग लगा हो तो केवल परस्मैपदी होती है (अनुकरोति, पराकरोति)। नीचे लिखी दशाओं में वह केवल आत्मनेपद में होती है—

'अधि' उपसर्ग लगाकर क्षमा करने या अधिकार कर लेने के अर्थ में, जैसे, शत्रुमधिकुरुते—द्वैती को क्षमा कर देता है अथवा उस पर कब्जा कर लेता है, विपूर्वक होने पर उसका कर्म जब कोई शब्द हो तब, जैसे, स्वरान् विकुरुते

१ सुखादिभ्य कर्तुर्वेदनायाम् ।३।१।१८।

२ बध् यव् नश् जनेङ् प्रदुस्त्रुभ्यो णे ।१।३।८६।

३ अनुपराभ्या कृञ् ।१।३।७६। अधे प्रसहने। वे शब्दकर्मणः।

अकर्मकाञ्च ।१।३।३३—३५। गन्धनावक्षेपणसेवनसाहसिक्यप्रतियत्नप्रकथनोपयोगेषु कृञ् ।१।३।३२।

(उच्चारयतीत्यर्थं) शब्द से भिन्न कर्म होने पर परस्मैपदी ही होगी, जैसे—  
चित्त विकरोति काम । अकर्मक होने पर भी आत्मनेपदी होगी, जैसे छात्रा  
विकुर्वते—विकार लभन्ते । जब गन्धन (हिंसा, हानि पहुँचाना), अवक्षेपण  
(निन्दा, भर्त्सना), सेवन, साहसिक कर्म, प्रतियत्न (किसी गुण का स्थापन),  
प्रकथन अथवा धर्मार्थ में लग जाने के बाद कोई उपसर्ग जोड़ कर कराया जाय,  
तब भी कृ आत्मनेपदी होगी, जैसे—

उत्कुरुते (सूचना देता है—सूचना देकर हानि पहुँचाना है) । श्येनो  
वार्तिकामुदाकुरुते (बाज बटेर को डराता है) । हरिमपकुरुते (विष्णु की सेवा  
करता है) । परदारान् प्रकुर्वते (वे पराई स्त्रियों पर साहस से अत्याचार  
करते हैं) । एध उदकस्य उपस्कुरुते (ईधन पानी का शीतलता ले लेता है) ।  
गाथा प्रकुरुते (गाथाएँ कहता है) । शत प्रकुरुते (सौ रूपएँ धर्मार्थ लगाता  
है) ।

(ग) क्रम<sup>१</sup> धातु उभयपदी है, किन्तु अप्रतिहत गति, उत्साह तथा स्फीतता  
(स्पष्टता) के अर्थों में आत्मनेपदी होती है और इन्हीं अर्थों में उप और परा के  
साथ भी आत्मनेपदी होती है । जैसे—ऋचि क्रमते बुद्धि (न प्रतिहन्यते),  
अध्ययनाय क्रमते (उत्सहते), क्रमन्तेऽस्मिन् शास्त्राणि (स्फीतानि भवन्ति) ।  
इसी प्रकार उपक्रमते और पराक्रमते प्रयोग भी होंगे । आङ् के साथ सूर्य आदि  
के निकलने के अर्थ में ('सूर्य आक्रमते' उदयते इत्यर्थं) प्र और उप के साथ आरम्भ  
करने के अर्थ में भी आत्मनेपद (वक्तु प्रक्रमते-उपक्रमते) में ही होती है ।

(घ) क्री<sup>२</sup> के पूर्व यदि अव, परि अथवा वि हो तो वह आत्मनेपदी हो  
जाती है, जैसे—अवक्रीणीते, परिक्रीणीते, विक्रीणीते ।

(ङ) क्रीड<sup>३</sup> धातु के पूर्व यदि अनु, आ, परि अथवा सम् में से कोई उपसर्ग  
हो तो वह आत्मनेपदी हो जाती है, जैसे—अन-परि-आ-स-क्रीडते ।

१ वृत्तिसर्गतायनेषु क्रम । उपराम्याम् आङ् उद्गमने (ज्योतिरुद्गमन इति  
वाच्यम्) । १।३।३८।—४० । प्रोपाम्या समर्थाम्याम् । १।३।४२।

२ परिव्यवेभ्य क्रिय । १।३।१८।

३ क्रीडोऽनुसम्परिम्यश्च । १।३।२१।

(च) क्षिप्<sup>१</sup> के पूर्व यदि अग्नि, प्रति, अति मे से कोई उपसर्ग हो तो वह परस्मैपदी होती है, जैसे—अग्नि-अति-प्रति-क्षिपति ।

(छ) गम्<sup>२</sup> के पूर्व यदि 'सम्' उपसर्ग हो और वह अकर्मक हो तथा मिलने या उपयुक्त होने का अर्थ दिखाता हो तो आत्मनेपदी हो जाती है, जैसे सखीभि सङ्गच्छते—सखियो से मिलती है। इय वार्ता सगच्छते—यह बात ठीक है। सकर्मक होने पर परस्मैपदी ही होगी, जैसे—ग्राम सगच्छति। इसी प्रकार सम् पूर्वक ऋच् भी आत्मनेपदी होती है, जैसे—समृच्छिषति ।

(ज) चर्<sup>३</sup> के पूर्व यदि उद् उपसर्ग हो और घातु सकर्मक हो प्राय अथवा सम्-पूर्वक हो और तृतीयान्त शब्द के साथ हो तो वह आत्मनेपदी हो जाती है, जैसे, धर्ममुच्चरते—धर्म के विपरीत करता है, किन्तु, वाष्पमुच्चरति—आँसू निकालता है, रथेन सञ्चरते—रथ पर चलता है।

(झ) जि<sup>४</sup> के पूर्व यदि 'वि' अथवा 'परा' हो तो वह आत्मनेपदी हो जाती है, जैसे शत्रून् विजयते, पराजयते वा, अध्ययनात् पराजयते—पढ़ने से हार जाता है।

(ञ) ज्ञा<sup>५</sup>, श्रु, स्मृ तथा दृश् घातुएँ सन्नत होने पर आत्मनेपदी हो जाती हैं, जैसे—धर्म—त्रिज्ञासते, शुश्रूषते, सुस्पृषते, विष्णु दिदृक्षते। नीचे लिखी दशाश्रो मे भी ज्ञा घातु आत्मनेपदी होता है—

यदि 'अप' पूर्वक हो तो अपहृव (इनकारी) का अर्थ बताती हो (शत-मपजानीते—सौ रूपयो से इनकार करता है), यदि सकर्मक हो (सर्पिषो जानीते), यदि 'प्रति'-पूर्वक हो तथा प्रतिज्ञा का अर्थ बताती हो (शत प्रतिजानीते—सौ रूपये की प्रतिज्ञा करता है), यदि 'सम्'-पूर्वक हो तथा आशा करने के अर्थ मे प्रयुक्त हुई हो (शत सम्जानीते—सौ रूपये की आशा करता है) ।

१ अग्निप्रत्ययिभ्यः क्षिप ११३।८०।

२ समो गम्यृच्छिभ्याम् ११३।२९।

३ उदश्चर सकर्मकात् । समस्तृतीयायुक्तात् ११३।५३,५४।

४ विपराभ्या जे ११३।१९।

५ ज्ञाश्रुस्मृदृशा सन ११३।५७। अपहृवे ज्ञ । अकर्मकाच्च । सम्प्रति-

भ्यमनाध्याने ११३।४४—४६।

(ट) दा' के पूर्व यदि आङ्ग उपसर्ग हो तो वह आत्मनेपदी होती है, किन्तु मुंह खोलने के अर्थ में नहीं, जैसे—नादत्ते प्रियमण्डनाऽपि भवता स्नेहेन या पल्लवम्, किन्तु, सुख व्याददाति ।

(ठ) 'सम्' पूर्वक ऋ, श्रु तथा दृश् घातुएँ यदि अकर्मक हो तो आत्मनेपदी होती हैं, जैसे, सम्पश्यते—मली प्रकार सोचता है, सशृणुते—अच्छी प्रकार सुनता है, मा समरत ।

(ड) नी' घातु से जब सम्मान करने, उठाने, उपनयन करने, ज्ञात करने, वेतन देकर काम में लगाने, कर (टैक्स) आदि अदा करने (चुकाने) अथवा भले कार्य में खर्च करने का अर्थ निकलता हो तो वह आत्मनेपदी होती है, जैसे—(क्रम से) शास्त्रे शिष्य नयते (शिष्य को शास्त्र पढ़ाता है—इससे उसका सम्मान होगा), दण्डमुन्नयते (डंडा ऊपर उठाता है), माणवकमुपनयते (लडके का उपनयन करता है), तत्त्व नयते (तत्त्व का निश्चय करता है अर्थात् ज्ञान प्राप्त करता है), कर्मकरानुपनयते (मजदूर लगाता है), कर विनयते (टैक्स चुकाता है), तथा शत विनयते (सौ रुपये अच्छी तरह खर्च करता है) ।

(ढ) प्रच्छ्' घातु के पूर्व 'आ' लगाकर जब अनुमति लेने का अर्थ निकालना हो तो वह आत्मनेपदी हो जाती है, जैसे—(आपृच्छस्व प्रियसखममुम्) (इस प्रिय मित्र से जाने की अनुमति ले लो) । 'सम्' लगा कर जब यह घातु अकर्मक होनी है, तब भी आत्मनेपदी हो जाती है (सम्पृच्छते) । आपूर्वक नु घातु भी आत्मनेपदी होती है, जैसे—आनुते ।

(ण) भुज' धनु रक्षा करने के अर्थ में परस्मैपदी होती है, अन्य सब अर्थों में आत्मनेपदी, जैसे—मही भुनक्ति (पृथ्वी की रक्षा करता है) मही भुमुजे (पृथ्वी का भाग किया) ।

१ आङो दोऽनास्यविहरणे ।१।३।२०।

२ अर्तिश्रुदृशिम्यश्चेति वक्तव्यम् । वा० ।

३ सम्माननोत्सञ्जनाचार्यकरज्ञानमृतिविगणनव्ययेषु नियम् ।१।३।३६।

४ आङ्गि नुप्रच्छयो । वा० ।

५ भुजोऽनवने ।१।३।६६।

(त) रम्<sup>१</sup> आत्मनेपदी धातु है किन्तु वि, आङ्, परि और उप उपसर्गों के अनन्तर परस्मैपदी हो जाती है, जैसे—वत्सैतस्माद्विरम, आरमति, परिमति यज्ञदत्तम् उपरमति (रमयति)। किन्तु जब उपपूर्वक रम् धातु प्रकर्मक होती है तो विकल्प से आत्मनेपदी भी होती है, जैसे—स उपरमति, उपरमते वा (निवर्तते)।

(थ) वद्<sup>१</sup> नीचे लिखे अर्थों में आत्मनेपदी होती है—

भासन (चमकना)—शास्त्रे वदते (शास्त्र में चमकता है, अर्थात् इतना विद्वान् है कि चमकता है), उपसम्भाषा (मेल मिलाप करना, बात करना) भूत्यानुपवदते (नौकरो को समझा कर शान्त करता है), ज्ञान—शास्त्रे वदते (शास्त्र जानता है), यत्न—क्षेत्रे वदते (खेत में उद्योग करता है), विमति—परस्पर विवदन्ते स्मृतय (स्मृतियाँ परस्पर झगडा करती हैं), उपमन्त्रण—वातारम् उपवदते (वाता की प्रशंसा करता है), अपपूर्वक निन्दा करने के अर्थ में—अपवदते (निन्दा करता है)।

(द) विश्<sup>१</sup> धातु के पूर्व यदि 'नि' अथवा 'अभिनि' उपसर्ग हो तो वह आत्मनेपदी हो जाती है, जैसे—निविशते, अभिनिविशते।

(ध) 'आ' अथवा 'प्रति' के अनन्तर श्रु परस्मैपदी ही रहती है (आशु-श्रूषति, प्रतिशुश्रूषति)।

(न) स्था<sup>१</sup> धातु के पूर्व यदि रस्, अस्, प्र और वि में से कोई उपसर्ग हो तो वह आत्मनेपदी हो जाती है, जैसे—सतिष्ठते, अस्तिष्ठते, प्रतिष्ठते और वितिष्ठते। प्रतिज्ञा करने के अर्थ में 'आङ्' पूर्वक स्था धातु आत्मनेपदी होती है,

१ व्याङ्परिम्यो रस् उपाच्च । विभाषाऽक्रमकात् । १।३।८३—८५।

२ भासनोपसम्भाषाज्ञानयत्नविमत्युपमन्त्रणेषु वद । १।३।४७।

अपाद्दत् । १।३।७३।

३ नेविश । १।३।१७।

४ प्रत्याङ्म्या श्रुव । १।३।५६।

५ समवप्रबिभ्य स्थ । १।३।२२। आङ् प्रतिज्ञायामुपसंख्यानम् । वा० ।

उदोऽनुष्वैकर्मणि । १।३।२४। उपाद्देवपूजासङ्गतिकरणमित्रकरणपथिष्विति वाच्यम् ।

वा० । वा लिप्सायाम् । वा० ।

जैसे—शब्द नित्यम् आतिष्ठते (शब्द नित्य है यह प्रतिज्ञा करता है) 'उद्-पूर्वक स्था धातु का यदि 'ऊपर उठना' अर्थ न ही तथा उप-पूर्वक उसका देवपूजा, मिलना, मित्र बनाना, सड़क का जाना अर्थ हो तो नित्य रूप से तथा लिप्सा अर्थ हो तो विकल्प से आत्मनेपदी होती है।

मुक्तावृत्तिष्ठते, (किन्तु पीठाद्वृत्तिष्ठति), आदित्यमुपतिष्ठते (सूर्य को पूजता है), गङ्गा यमुनामतिष्ठते (गङ्गा यमुना से मिलती है), रथिकानुपतिष्ठते (रथ वालो से मित्रता करता है), पन्था कश्शामुपतिष्ठते (रास्ता काशी को जाता है), भिक्षुक प्रभुमुपतिष्ठते, उपतिष्ठति वा (भिखारी 'लालच से' मालिक के पास जाता है)।

DR. RUPNATHJI (DR. RUPAK NATH)



# एकादश सोपान

## कृदन्त-विचार

१६४—घातु<sup>१</sup> में जिस प्रत्यय को जोड़ कर सज्ञा, विशेषण अथवा अव्यय बनता है, उसको कृत् प्रत्यय कहते हैं और इसके द्वारा जो शब्द सिद्ध होता है, उसको कृदन्त (जिसके अन्त में कृत् हो) कहते हैं, जैसे—कृ घातु से तृच् प्रत्यय जोड़कर 'कर्तु' शब्द बना। यहाँ तृच् कृत् प्रत्यय है और 'कर्तु' कृदन्त है। यह सज्ञा है और इसके रूप अन्य सज्ञाओं की तरह विभक्तियों में चलेंगे।

कृत् और तिङ् प्रत्ययों में यह अन्तर है कि कृदन्त सज्ञा विशेषण अथवा अव्यय होते हैं, क्रिया नहीं, किन्तु तिङ्न्त सदा क्रिया ही होते हैं। कृत् और तद्धित में यह अन्तर है कि तद्धित सदा किसी सिद्ध सज्ञा, विशेषण, अव्यय अथवा क्रिया के अनन्तर जोड़कर अन्य सज्ञा, विशेषण, अव्यय, क्रिया आदि बनाने के लिए होता है, किन्तु 'कृत्' घातु में ही जोड़ा जाता है।

जो कृदन्त सज्ञा अथवा विशेषण होते हैं, उनके रूप चलते हैं और जो अव्यय होते हैं, वे एकरूप रहते हैं, जैसे—गण घातु से तृच् लगाकर गन्तु बना, इसके रूप चलेगे, किन्तु क्त्वा लगाकर गत्वा बनने पर यह सर्वदा एकरूप रहेगा।

कोई-कोई कृदन्त भी कभी-कभी क्रिया का काम देते हैं, जैसे—स गत (बह गया) में 'गत' शब्द अस्तुत यह विशेषण है और इस वाक्य में क्रिया छिपी हुई है—स गत (अस्ति)।

इसमें प्रमाण यह है कि विशेषण के लिङ्ग, वचन और कारक वही होते हैं, जो उसके विशेषण के, और यहाँ पर 'गत' पद (पुल्लिङ्ग का प्रथमा एकवचन का रूप) 'स' के कारण ही सम्भव हो सकता है।

कृत् प्रत्ययों के मुख्य तीन भेद हैं—कृत्य, कृत् और उणादि।

१ घातो १३।१।६१।

२ कृदतिङ् १३।१।६३।

### कृत्य प्रत्यय

१६५—कृत्य<sup>१</sup> प्रत्यय सात हैं—तव्यत्, तव्य, अनीयर्, केलिमर्, यत्, क्यप्, प्यत् । ये<sup>२</sup> प्रत्यय सदा भाववाच्य और कमवाच्य मे ही प्रयुक्त होते हैं, कर्तृवाच्य मे नही । ये विभिन्न<sup>३</sup> अर्थो मे भी प्रयुक्त होते है । अँगरेजी मे जो काम पोर्टेशल् पार्टिसिप्ल ( Potential Participle ) से लिया जाता है, वही काम सस्कृत-प्रत्ययान्त शब्द करते हैं । इनको सज्ञाओ के विशेषण स्वरूप भी प्रयोग मे लाते हैं, जैसे पक्तव्या माषा—उडद जो पकाने जाने चाहिए, कर्तव्य कर्म—वह काम जिसे करना चाहिए, प्राप्तव्या सन्तान—वह सम्पत्ति जिसे प्राप्त करना चाहिए, गन्तव्या नगरी—वह नगरी जहाँ जाना चाहिए, स्नानीय चूर्णम्—वह चूर्ण जिससे स्नान किया जाय, देनीयो विप्र—दान देने योग्य ब्राह्मण इत्यादि । इन उदाहरणो से यह स्पष्ट है कि हिन्दी मे जो अर्थ 'चाहिए' 'योग्य' इत्यादि द्वारा प्रकट किया जाता है, प्राय वही सस्कृत मे कृत्य-प्रत्ययान्त शब्द द्वारा होता है । 'चाहिए' वाला भाव कर्तृवाच्य मे बहुधा विधिलिङ्ग से भी सूचित होता है, जैसे राम सीता पुन गृह्णीयात्—राम को चाहिए कि सीता को फिर ग्रहण करे अथवा राम को योग्य है कि सीता को फिर ग्रहण करें, भृत्य स्वामिन सेवेत—नौकर मालिक को सेवा करे, नौकर को मालिक की सेवा करनी चाहिए अथवा करनी योग्य है, इत्यादि । यदि इस प्रकार की विधिलिङ्ग की क्रिया को कर्तृवाच्य से कर्मवाच्य मे चलटना हो तो कृत्यान्त शब्द प्रयोग मे लाना चाहिए, जैसे, रामेण सीता पुन ग्रहीतव्या, भृत्येन स्वामी सेवनीय आदि । ऊपर कह आये है कि कृदन्त क्रिया सदा होते, इन प्रयोगो मे भी 'ग्रहीतव्या' और 'सेवनीय' क्रिया नही है, किन्तु विशेषण है । अँगरेजी मे इनको प्रेडिकेटिव् ऐड्जेक्टिव् ( Predicative adjective ) कहते है । कृत्यान्त शब्दो के रूप सज्ञाओ की तरह तीनो लिङ्गो मे चलते है—पुल्लिङ्ग और नपुसक मे अकारान्त और स्त्रीलिङ्ग मे आकारान्त ।

१ कृत्या ।३।१।६५।

२ तयोरेव कृत्यक्तखलर्था ।३।४।७०।

३ कृत्यल्युटोबहुलम् ।३।३।११३।

१६६—तव्यत्<sup>१</sup> (तव्य), तव्य, अनीयर् (अनीय) और केलिम् (एलिम्) —ये प्रायः सब धातुओं में लगाये जा सकते हैं। तव्यत् और तव्य में कोई विशेष अन्तर नहीं है, तव्यत् के त् से केवल इतना सूचित होता है कि इस प्रत्यय में अन्त होने वाले शब्द 'स्वरित' होते हैं, इसी प्रकार 'अनीयर्' के र् से सूचित होता है कि अनीयर् में अन्त होने वाले शब्द मध्योदात्त होते हैं। किन्तु स्वर की बारीकियाँ केवल वैदिक सस्कृत में काम आती हैं, भाषा की सस्कृत में नहीं। इसलिए तव्यत् और तव्य को बराबर ही समझना चाहिए और 'अनीयर्' को 'अनीय'। केलिम् के क् और र् का लोप हो जाता है और केवल 'एलिम्' धातुओं में जोड़ा जाता है। यह प्रत्यय प्रायः कुछ सकर्मक धातुओं में ही जुड़ा हुआ प्रयोग में मिलता है।

इन प्रत्ययों के पूर्व धातु के अन्तिम स्वर का अणु यदि अन्तिम स्वर न हो तो उपधा वाले ह्रस्व का गुण हो जाता है और साधारण सन्धि के नियम लगते हैं। जो धातुएँ सेट् होती हैं, उनमें प्रत्यय और धातु के बीच में इ आ जाती है, जो अनिट् होती हैं उनमें नहीं, और जो वेठ होती हैं, उनमें विकल्प से आती है। उदाहरणार्थ कुछ रूप दिए जाते हैं—

धातु	तव्य	अनीय	एलिम्
पठ्	पठितव्य	पठनीय	
भू	भवितव्य	भवनीय	
गम्	गन्तव्य	गमनीय	
नी	नेतव्य	नयनीय	
चि	चेतव्य	चयनीय	
चर्	चरितव्य	चरणीय	
दा	दातव्य	दानीय	
भुञ्	भोक्तव्य	भोजनीय	
अद्	अत्तव्य	अदनीय	
भक्ष्	भक्षितव्य	भक्षणीय	
शस्	शसितव्य	शसनीय	

१ तव्यत्तव्यानीयर् ।३।१।६२। केलिम् उपसंख्यानम् । वा० ।

घातु	तव्य	अनीय	एलिम
सृजू	स्रष्टव्य	सर्जनीय	
छिद्	छेतव्य	छेदनीय	छिदेलिम
भिद्	भेत्तव्य	भेदनीय	भिदेलिम
पच्	पक्तव्य	पचनीय	पचेलिम
कथ्	कथितव्य	कथनीय	
चुर्	चोरितव्य	चोरणीय	
पूज्	पूजितव्य	पूजनीय	
जिगमिष्	जिगमिषितव्य	जिगमिषणीय	
बुबोधिष्	बुबोधिषितव्य	बुबोधिषणीय, इत्यादि ।	

१६७—कृत्य<sup>१</sup> प्रत्यय यत् (य) केवल यही घातुओं में जोड़ा जाता है जिनके अन्त में कोई स्वर हो अथवा जिनके अन्त में पवर्ग का कोई वर्ण हो और उपधा में अकार हो ।

यत् के पूर्व स्वर को गुण होता है । यदि<sup>२</sup> आ हो तो उसके स्थान पर पहले ई हो जाती है और फिर गुण (ए) होता है । यत् के पूर्व यदि घातु का अन्तिम स्वर ए, ऐ, ओ अथवा औ हो तो, वह ई हो जाता है और फिर गुण होता है, जैसे—

दा+यत्=द्+ई+य	=द्+ए+य	= देय
घा+यत्=धी+य	= घे+य	= घेय
गौ+यत्=गी+य	= गे+य	= गेय
छो+यत्=छी+य	= छे+य	= छेय
चि+यत्=चे+य		= चेय
नी+यत्=ने+य		= नेय
शप्+यत्=शप्+य		= शप्य
जप्+यत्=जप्+य		= जप्य
लप्+यत्=लप्+य		= लप्य
लम्+यत्=लम्+य		= लम्य

१ अचो यत् ।३।१।६७। पोरदुपधात् ।३।१।६८।

२ ईद्यति ।६।४।६५।

आ+लम्+यत्

=अलम्य

उप+लम्+यत्

=उपलम्य

यदि<sup>१</sup> लम् घातु के पूव आ उपसर्ग हो अथवा प्रशसा-वाचक उप उपसर्ग हो और आगे यकारादि प्रत्यय हो तो बीच में नुम् (न=म) आ जाता है, जैसे, 'उपलम्य साधु' अर्थात् साधु प्रशसनीय होता है। प्रशसा या स्तुति का अर्थ न होने पर 'उपलम्य' ही रूप बनेगा। इसका अर्थ 'उलाहना योग्य' होगा।

इसके अतिरिक्त यत् प्रत्यय कुछ और व्यञ्जनान्त घातुओं में लगता है, जिनमें मुख्य ये हैं—

तक् (हँसने)—तक्य। शस् (हिसायां)—शस्य। जते (याचने)—चत्य। यत्—सत्य। जन्—जन्य।

हन्—वध्य (यत् के पूर्व हन् का रूप वध् हो जाता है)। इसमें विकल्प से प्यत् लगकर 'घात्य' भी बनता है। शक्—शक्य, सह—सह्य, गद्—गद्य, मद्—मद्य, चर्—चय, यम्—यम्य।

वह+यत्=वह्य शकटम् (वहन्ति अनेनेति) अर्थात् ढोने की गाडी।

ऋ+यत्=अर्य अर्थात् स्वामी या वरिष्ठ। इन्हीं अर्थों में 'ऋ' में 'यत्' लगेगा। ब्राह्मण के लिए प्रयोग होने पर 'आर्य' (प्राप्तव्य इत्यथ) होगा।

न+जृ+यत्=अजर्य—यह तभी बनेगा जब जृ के पूर्व नव् हो और सिद्ध शब्द सगत का विशेषण हो, जैसे 'अजर्य' (स्थायि, अविनाशि वा) सङ्गतम्।

इन्—क्यप् (य) कुछ ही घातुओं में लगता है। इसके पूर्व यदि घातु का अन्तिम स्वर ह्रस्व हो तो उसके उपरान्त अर्थात् घातु और प्रत्यय के बीच

१ आडो यि । उपप्रशसायांम् । ७।१।६५—६६।

२ तकिशसिञ्जतिथितिजनिम्यो यद्वाच्य । वा० ।

३ हनो ना भद्वधश्च वक्तव्य । वा० ।

४ शकिसहाश्च । ३।१।६६।

५ गदमदचरयमश्चानुपसर्गे । ३।१।१००।

६ वह्य करणम् । ३।१।१०२।

७ अर्य स्वामिवैश्ययो । ३।१।१०३।

८ अजर्य सगतम् । ३।१।१०५।

मे त आ जाता है, जैसे—स्तु+क्यप्=स्तु+त्+य=स्तुत्य । इसके साथ गुण नहीं होता ।

जिन 'धातुओं' में क्यप् लगता है, उनमें ये मुख्य हैं—

इ (जाना)	+	क्यप्	=	इत्य (जाने योग्य)
स्तु		"	=	स्तुत्य
शास्		"	=	शिष्य
वृ		"	=	वृत्य (वरणीय)
दृ		"	=	(अस्- +) दृत्य (आदरणीय)
जुष्		"	=	जुष्य (सेव्य)
मृज्		"	=	मृज्य (पवित्र करने योग्य)
मृ		"	=	मृत्य (नौकर)
कृ		"	=	कृत्य
वृष्		"	=	वृष्य (सीचने योग्य)

नोट—मृज्, मृ, कृ तथा वृष् में विकल्प से ही क्यप् लगता है । क्यप् न लगने पर ष्यत् लगेगा और क्रमशः मार्ग्य, भार्या, कार्य तथा वर्ष्य शब्द बनेगे ।

१६६—ऐसी<sup>३</sup> धातुएँ जिनका अन्तिम वर्ण ऋकार अथवा व्यञ्जन हो, उनके उपरान्त कृत्य प्रत्यय ष्यत् (य) लगता है । इसके पूर्व धातु के स्वर की वृद्धि हो जाती है । यदि उपधा में अकार हो, तो उसकी (आ) वृद्धि हो जाती है और यदि कोई स्वर हो, तो वह बहुधा गुण को प्राप्त होता है ।

ष्यत्<sup>३</sup> तथा षित् (जिसमें घ इत् हो) प्रत्यय लगने पर पूर्व के च् और ज् के स्थान में क् और ग् यथाक्रम हो जाते हैं, किन्तु<sup>४</sup> यदि धातु कवर्ग से आरम्भ होती हो (जैसे गच्छे), तो यह परिवर्तन न हीगा ।

१ एतिस्तुशाष्वदृजुष क्यप् ।३।१।१०६। मृजेविभाषा ।३।१।११३।  
मृभोजसज्ञायाम् ।३।१।११२। विभाषा कृवृषो ।३।२।१२०।

२ ऋहलोर्ष्यत् ।३।१।१२४।

३ चजो कुधिष्यतो ।७।३।५२।

४ न क्वादे ।७।३।५६।

‘यत्’ का विचार करते समय कह आए हैं कि ‘स्वरान्त धातुओं के अनन्तर यत् लमता है’, किन्तु यहाँ ‘ऋकारान्त धातुओं के उपरान्त ण्यत् लगता है’—ऐसा नियम रक्खा गया है। इससे सिद्ध हुआ कि ऋकारान्त धातुओं को छोड़ कर अन्य स्वरान्त धातुओं में यत् लगता है, ऋकारान्त में ण्यत्। इसी प्रकार उन व्यञ्जनान्त धातुओं को छोड़ कर जिनमें यत् और क्यप् लगता है, शेष में ण्यत् लगता है। उदाहरणार्थ—

कृ+ण्यत्=कृ+आर् (वृद्धि)+य=कार्य ।

पठ्+ण्यत्=पृ+आ+ठ्+य=पाठय (उपधा के अ को वृद्धि) ।

वृष्+ण्यत्=वृ+अर्+ष्+य=वर्ष्य (उपधा के ऋ को गण) ।

पच्=ण्यत्+प+आ+क्+य=पाक्य- पकाने योग्य (उपधा के अ की वृद्धि और च् को क्) ।

मृज्+ण्यत्=मृ+आर्+ग+य=मार्ग्य—पवित्र करने योग्य (उपधा के ऋ की वृद्धि और ज् को ग्) ।

च’ और ज का क् और ग् हो जाने वाला नियम यज्, याच्, रुच्, प्रवच्, ऋच्, त्यज् धातुओं में नहीं लगता—याज्य (गर्जन में देने योग्य, पूज्य), याच्य (मार्गने योग्य), रोच्य (प्रकाश करने योग्य), प्रवाच्य (ग्रन्थविशेष—सि० कौ०), अर्च्य (पूज्य), त्याज्य ।

मुज् के दोनो रूप बनते हैं—भोग्य (भोग करने योग्य) और भोज्य (खाने योग्य), वच् के भी वाच्य (बुझने योग्य) और वाक्य (पद-समूह)—ये दो रूप होते हैं ।

उपरान्त अथवा उपरान्त धातुओं के अनन्तर भी ण्यत् प्रत्यय लगता है (यदि आवश्यकता का बोध कराना हो, तो), जैसे—

श्रू+ण्यत्=श्राव्य (अवश्य सुनने योग्य)

पू+ण्यत्=पूव्य (अवश्य पवित्र करने योग्य)

१ यजयाचरुचप्रवचर्चश्च ।७।३।६६। त्यजेश्च । वा० ।

२ भोज्य भक्ष्ये ।७।३।६६। भोग्यमन्यत् ।

३ वचोऽशब्दसंज्ञायाम् ।७।३।६७।

४ ओरावश्यके ।३।१।१२५।

यु+ष्यत्=याव्य (अवश्य मिलाने योग्य)

लू+ष्यत्=लाव्य (अवश्य काटने योग्य)

१७०—ऊपर<sup>१</sup> कह आए हैं कि कृत्यप्रत्ययान्त शब्द भाववाच्य और कर्मवाच्य में ही प्रयोग में आते हैं, किन्तु थोड़े से ऐसे शब्द हैं, जो कृत्यान्त होते हुए भी कर्तुवाच्य में भी प्रयुक्त होते हैं। वे ये हैं—

वस्+तव्य=वास्तव्य (बसने वाला)—इस अर्थ में णिच् भी हो जाता है, जिसके कारण वृद्धि रूप 'वास्' हो गया।

भू+यत्=भव्य (होने वाला)

गै+यत्=गेय (गाने वाला)

प्रवच्+अनीयर्=प्रवचनीय (व्याख्यान करने वाला)

उपस्था+अनीयर्=उपस्थानीय (निकट होने वाला)

जन्+यत्=जन्य (पैदा करने वाला)

आप्लु+ष्यत्=आप्लाव्य (तैरने वाला)

आपत्+ष्यत्=आपात्य (गिरने वाला)

भव्य से लेकर आपात्य तक के शब्द विकल्प से कर्तुवाच्य में प्रयुक्त होते हैं। कृत्यान्त होने के कारण कर्म और भाववाच्य में तो प्रयुक्त होते ही हैं, जैसे, गेय साम्नामयम्=यह साम का गाने वाला है (कर्तुवाच्य), गेय सामानेन (कर्मवाच्य)। इसी प्रकार भव्योऽय भव्यमनेन वा। अन्य के विषय में भी इसी प्रकार जान लेना चाहिए।

### कृत् प्रत्यय

१७१—यद्यपि कृत् से कृत्य, कृत् और उणादि तीनों प्रकार के प्रत्ययों का बोध होता है, तथापि कृत्य और उणादि के अलग होने के कारण, शेष कृत् प्रत्ययों को ही भेद प्रकट करने के लिए कमी-कमी कृत् कहते हैं। इन कृत् प्रत्ययों में कुछ ऐसे हैं, जिनके रूप चलते हैं, कुछ के नहीं। जिनके रूप नहीं चलते, उनके

१ वसेस्तव्यत्कर्तरि णिच्च। वा०। भव्यगेयप्रवचनीयोपस्थानीयजन्याप्लाव्यापात्या वा।३।४।६८।



विषय में ऐसा स्पष्ट उल्लेख कर दिया जायगा। शेष के रूप चलते हैं, ऐसा समझना चाहिए।

### भूतकाल के कृत् प्रत्यय

१७२—भूतकाल के कृत् प्रत्ययों को अंग्रेजी में पास्ट् पार्टिसिप्ल् (Past Participle) कहते हैं। इस अर्थ में प्रधानत दो प्रत्यय हैं—क्त (त) और क्तवतु (तवत्), इन दोनों प्रत्ययों को “निष्ठा” कहते हैं। निष्ठा शब्द का यौगिक अर्थ है—‘समाप्ति’। क्त और क्तवतु किसी कार्य की समाप्ति का बोध कराते हैं, इसीलिए इनको निष्ठा (समाप्ति) कहते हैं, जैसे, ‘तेन भुक्तम्’—यहाँ भुज् धातु में क्त प्रत्यय लगाने से यह तात्पर्य निकला कि भोजन का कार्य समाप्त हो गया, सोऽपराध कृतवान्—यहाँ क्तवतु प्रत्यय से यह निश्चय हुआ कि उसने अपराध कर डाला—करने का कार्य समाप्त हो गया। सारांश यह कि क्त और क्तवतु समाप्तिबोधक प्रत्यय हैं। ये दोनों प्रत्यय प्रायः सभी धातुओं के अनन्तर भूतकाल अथवा समाप्ति का अर्थ बताने के लिए लगाए जाते हैं। इनके क् और उ का लोप हो जाता है और ‘त’ तथा ‘तवत्’ शेष रह जाते हैं। इनके रूप तीनों लिङ्गों में और सातों विभक्तियों में विशेष्य के अनुसार होते हैं। यदि विशेष्य पुल्लिङ्ग हुआ तो पुल्लिङ्ग, स्त्री० और नपुंसक० तो स्त्री० नपुंसक०। क्त-प्रत्ययान्त शब्द पुल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग में अकारान्त और स्त्रीलिङ्ग में आकारान्त होते हैं। क्तवतु में अन्त होने वाले शब्द पुल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग में तकारान्त (श्रीमत् के समान) और स्त्रीलिङ्ग में ईकारान्त (नदी के समान) होते हैं। उदाहरणार्थ नीचे कुछ धातुओं के क्तान्त और क्तवन्त रूप तीनों लिङ्गों में प्रथमा के एकवचन में दिए जाते हैं—

#### क्त-प्रत्ययान्त

पु०	न०	स्त्री०
पठ्—पठित	पठितम्	पठिता
स्ना—स्नात	स्नातम्	स्नाता
पा—पात	पातम्	पाता

१ नूते ।३।२।८४। क्तक्तवत् निष्ठा ।१।१।२६।

भू—भूत	भूतम्	भूता
कृ—कृत	कृतम्	कृता
त्यज्—त्यक्त	त्यक्तम्	त्यक्ता
तृप्—तृप्त	तृप्तम्	तृप्ता
शक्—शक्त	शक्तम्	शक्ता
सिच्—सिक्त	सिक्तम्	सिक्ता

### क्तवतु—प्रत्ययान्त

पठितवान्	पठितवत्	पठितवती
स्नातवान्	स्नातवत्	स्नातवती
पातवान्	पातवत्	पातवती
भूतवान्	भूतवत्	भूतवती
कृतवान्	कृतवत्	कृतवती
त्यक्तवान्	त्यक्तवत्	त्यक्तवती
तृप्तवान्	तृप्तवत्	तृप्तवती
शक्तवान्	शक्तवत्	शक्तवती
सिक्तवान्	सिक्तवत्	सिक्तवती

(१) निष्ठा<sup>१</sup> प्रत्ययो के पूर्व जिन धातुओं में सप्रसारण होता है, उनमें निष्ठा प्रत्यय जुड़ने पर भी सप्रसारण हो जाता है, अर्थात् यदि प्रथम वर्ण य, र, ल, व हो, तो उसके स्थान में क्रम से इ, ऋ, लृ, उ हो जाते हैं, जैसे ब्रू+क्त=वच्+त=उक्त, ब्रू+क्तवतु=वच्+तवत्=उक्तवत्, वस्+क्त=उषित, वस्+क्तवतु=उषितवत् ।

(२) यदि<sup>२</sup> निष्ठा प्रत्यय ऐसी धातु के उपरान्त आवे जिसके अन्त में इ अथवा द् हो (और निष्ठा तथा धातु के बीच में सेट् अथवा वेट् की “इ” न आवे, जैसे—चर्+क्त=चर्+इ+त=चरित्) तो निष्ठा के त् के स्थान में न् हो जाता है और उसके पूर्व के द् को भी न् हो जाता है, जैसे—घृ से क्षीर्ण,

१ इग्यण सम्प्रसारणम् ।१।१।४५।

२ रदाम्या निष्ठातो न पूर्वस्य च द ।८।२।४२।

शीर्णवत्, जृ से जीर्णं, जीर्णवत्, छिद् से छिन्न, छिन्नवत्, भिद् से भिन्न, भिन्नवत् ।

सयुक्ताक्षर<sup>१</sup> से आरम्भ होने वाली और आकार में अन्त होने वाली तथा कही न कही य्, र्, ल्, व् में से कोई अक्षर रखने वाली धातु की निष्ठा के त को भी न हो जाता है, जैसे—म्लान, ग्लान, स्त्यान, गान, ध्यान । किन्तु कुछ में नहीं भी होता—स्थ्यात, ध्यात आदि ।

१७३—क्तवत्<sup>२</sup> प्रत्यय में अन्त होने वाले शब्द सदा कर्तृवाच्य में प्रयोग में आते हैं, अर्थात् कर्ता (Agent) के विशेषण होते हैं, जैसे—भुक्तवान्, भुक्तवत्सु तेषु, इत्यादि । खल्<sup>३</sup> तथा कृत्य प्रत्ययो की ही भाँति क्त प्रत्यय भी कर्मवाच्य और भाववाच्य में प्रयुक्त होता है, अर्थात् कर्म (Object) का विशेषण होता है, जैसे—तेन भुक्तम्, रामेण सीता त्यक्ता, तेन गतम्, दत्त धनम् (दिया हुआ धन) । परन्तु<sup>४</sup> गत्वथक धातुओं में तथा अकर्मक धातुओं में का 'क्त' कर्तृवाच्य के अर्थ में भी प्रयोग में आता है, जैसे—स गत, चलित, ग्लान । इसी प्रकार शिल्ष<sup>५</sup>, शी, स्था, आस्, वस्, जन, ह्, तथा जृ धातुओं के क्तान्त शब्द भी कर्तृवाच्य का बोध कराते हैं—लक्ष्मीशिल्षो हरि = हरि ने लक्ष्मी का आलिङ्गन किया, हरि शेषमघिशयति, हरि शेष (नाग) पर सोये, हरि वैकुण्ठमघिष्ठत, शिवमुपासित द्वार —हरि ने शिव को पूजा, बालक रामनवमीमुपोषित —लडके ने रामनवमी को उपवास किया । राममनुजात, गरुडमारूढ, विश्वमनुजीर्ण इत्यादि प्रयोग भी इसी प्रकार होंगे ।

नपुसकलिङ्ग<sup>६</sup> में क्तान्त शब्द कभी-कभी उस क्रिया से बताए हुए कार्य की भी सूचना देता है, अर्थात् वरबल् नाउन (Verbal noun) की तरह प्रयोग में आता है, जैसे—तस्य गत वरम् (उसका चला जाना अच्छा है) ।

१ सयोगादेरातीघातोर्यण्वत । ८।२।४३।

२ कर्तरि कृत् । ३।४।६७।

३ तयोरेव कृत्यक्तखलर्था । ३।४।७०।

४ अगत्यर्थाकर्मकशिल्षशील्लस्थासवसजनरुहजीर्यतिभ्यश्च । ३।४।७२।

५ नपुसके भावे क्त । ३।३।११४।

यहाँ 'गत' 'गमन' के अर्थ में आया है। इसी प्रकार पठितम्=पठनम्, सुप्तम् स्वाप, इत्यादि।

लिट् (परोक्षभूत) के अर्थ का बोध कराने के लिए दो कृत प्रत्यय क्वसु (वस्) और कानच् (आन) हैं। क्वसु परस्मैपद है, अतः परस्मैपदी धातु के अनन्तर जोड़ा जाता है और कानच् आत्मनेपद है, अतः आत्मनेपदी धातु के अनन्तर। इन प्रत्ययों में अन्त होने वाले शब्द प्रायः वैदिक सस्कृत में ही मिलते हैं, किन्तु कभी-कभी भाषा-सस्कृत में भी प्रयोग में आते दिखाई पड़ते हैं।

लिट् के अन्य पुरुष के बहुवचन में प्रत्यय लगाने के पूर्व धातु का जो रूप होता है (जैसे गम् का लिट् के अन्य पुरुष के बहुवचन में रूप हुआ जग्मु, इसमें 'जग्म्' धातु का रूप हुआ, इसी प्रकार दद् (सिद्धि) दद् इत्यादि) इसमें ये प्रत्यय जोड़े जाते हैं। यदि ऐसा धातु का रूप एकक्षर हो अथवा अन्त में आ हो तो धातु और प्रत्यय के बीच में इ हो जाती है, उदाहरणार्थ—

धातु—	क्वसु	कानच्
गम्—	जग्मिवस्	
नी—	निनीवस्	निन्यान्
दा—	ददिवस्	ददान
वच्	ऊचिवस्	ऊचान
कृ—	चकृवस्	चक्राण
दृश्—	ददृश्वस् (या ददृशिवस्)	

इनके रूप दोनों लिङ्गों में अलग-अलग सज्ञाओं के समान चलते हैं, जैसे, स जग्मिवान्—वह गया, त तस्थिवास नगरोपकण्ठे—नगर के निकट खड़े हुए उसको, श्रेयासि सर्वाण्यघिजग्मिवास्त्वम्—तुमने सब अच्छी बातें प्राप्त की थी।

### वर्तमान काल के कृत् प्रत्यय

१७४—इनको अंग्रेजी में प्रेजेंट पार्टिसिप्ल (present participle) कहते हैं। इस अर्थ का बोध कराने के लिए शतृ (अत्) और शानच् (आन)

१ लिट कानज्वा। क्वसुश्च। ३।२।१०६—७।

२ लट शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे। ३।२।१२४। तौ सत। ३।२।१२७।

मुख्य है। इन दोनों को संस्कृत वैयाकरण 'सत्' कहते हैं। 'सत्' का अर्थ है— 'विद्यमान', 'वर्तमान'। ये दोनों प्रत्यय किसी घातु में जुड़कर उस घातु द्वारा सूचित वर्तमान काल की क्रिया का बोध विशेषणरूप से कराते हैं, जैसे, स गच्छन्—वह जात हुआ (है) अर्थात् वह जाता रहा है, स पठन् (अस्ति)— वह पठ रहा है। इन प्रयोगों से सूचित होता है कि क्रिया अभी जारी है। क्रिया के जारी रहने का अर्थ सत् प्रत्ययों से सूचित किया जाता है।

१७५—शतृ परस्मैपदी घातुओं के अनन्तर तथा शानच् आत्मनेपदी घातुओं के अनन्तर जोड़ा जाता है। घातुओं का वर्तमान काल के अन्यपुरुष के बहुवचन में प्रत्यय लगने के पूर्व जो रूप होता है (जैसे, गच्छन्ति—गच्छ, ददति—दद् आदि), उसी में सत् प्रत्यय जोड़े जाते हैं। यदि घातु के रूप के अन्त में अ ही तो शतृ (अत्) के पूर्व उसका लोप ही जाता है। यदि शानच् के पूर्व अकारान्त घातुरूप आवे तो शानच् (आन) के स्थान पर 'मान' जुड़ता है, अन्यथा 'आन'। नीचे कुछ रूप उदाहरणार्थ दिये जाते हैं—

	परस्मै०	आत्मने०	कमवाच्य
पठ्	पठत्		पठ्यमान
कृ	कुर्वत्	कुर्वान	क्रियामाण
गम्	गच्छत्		गम्यमान
नी	नयत्	नयमान	नीयमान
दा	ददत्	ददान	दीयमान
चुर्	चोरयत्	चोरयमाण	चोर्यमाण
पिपठिष्	पिपठिषत्	पिपठिमाण	पिपठिष्यमाण

आस्<sup>१</sup> घातु के बाद शानच् आने से शानच् के 'आन' को 'ईन' हो जाता है—  
आस्+शानच्=आसीन।

विद्<sup>१</sup> घातु के बाद शतृ प्रत्यय जुड़ता है और शतृ के ही अर्थ में विकल्प

१ आने मुक् १७।२।८२।

२ ईदास १७।२।८३।

३ विदे शतुर्वसु १७।१।३६।

से 'वसु' आदेश हो जाता है। इस प्रकार विद्+शतृ=विदन्, विद् वसु=विद्वस्, जिसके रूप विद्वान् इत्यादि होंगे। स्त्रीलिङ्ग में विदुषी बनेगा।

सत् में अन्त होने वाले शब्दों के रूप तीनों लिङ्गों में अलग-अलग चलते हैं।

(क) वर्तमान<sup>१</sup> का ही अर्थ प्रकट करने के लिए पु (पवित्र करना) तथा यज् धातुओं के बाद शानन् प्रत्यय जोड़ते हैं, जैसे—पु+शानन्=पवमान। यज्+शानन्=यजमान।

(ख) चानश्<sup>२</sup> (आन) प्रत्यय परस्मैपदी तथा आत्मनेपदी दोनों प्रकार की धातुओं में किसी की आदत, उम्र अथवा सामर्थ्य का बोध कराने के लिए जोड़ा जाता है, जैसे, भोग भुञ्जान —भोग भोगने की आदत वाला। कवच विभ्राण —कवच धारण करने की अवस्था वाला (अर्थात् तरुण) शत्रु मिथ्यान —शत्रु को मारने वाला (अर्थात् मारने की शक्ति रखने वाला)।

### भविष्यकाल के कृत् प्रत्यय

१७६—भविष्यकाल<sup>३</sup> के प्रत्यय जिनको अंग्रेजी में फ्यूचर् पार्टिसिप्ल (Future Participle) कहते हैं, संस्कृत में दो हैं—वही सत् प्रत्यय जो वर्तमान के हैं। अन्तर केवल इतना है कि ये भविष्य (लृट्) के अन्त्यपुरुष के बहुवचन में जो धातु-रूप होता है, उसके अनन्तर जोड़े जाते हैं, जैसे भविष्यन्ति के 'भविष्य' में अत् और भान जोड़ने पर 'भविष्यत्' और 'भविष्यमाण' रूप बनते हैं। इसी कारण भविष्यकाल के इन प्रत्ययों को कभी-कभी 'ष्यत्' और 'ष्यमाण' भी कहते हैं। उदाहरणार्थ कुछ रूप दिये जाते हैं—

	परस्मै०	आत्मने०	कर्मवाच्य
पठ्	पठिष्यत्		पठिष्यमाण
कृ	करिष्यत्	करिष्यमाण	करिष्यमाण
गम	गमिष्यत्		गमिष्यमाण
नी	नेष्यत्	नेष्यमाण	नेष्यमाण
दा	दास्यत्	दास्यमाण	दास्यमाण

१ पूज्यजो शानन् ।३।२।१२८।

२ ताच्छील्यवयोवचनशक्तिषु चानश् ।३।२।१२९।

३ लृट् सद्वा ।३।३।१४।

चुर्	चोरयिष्यत्	चोरयिष्यमाण	चोरयिष्यमाण
पिपठिष्	पिपठिष्यत्	पिपठिष्यमाण	पिपठिष्यमाण

इन प्रत्ययो मे अन्त होने वाले शब्दो के रूप भी तीनों लिङ्गो मे अलग-अलग सज्ञाओ के समान चलते हैं।

### तुमुन् प्रत्यय

१७७—जब कोई दूसरी क्रिया करने के लिए कोई क्रिया करता है, तब जिस क्रिया के लिए क्रिया की जाती है, उसकी धातु मे तुमुन् (तुम्) प्रत्यय लगता है, जैसे कृष्ण द्रष्टु याति—कृष्ण को देखने के लिए जाता है। इस वाक्य मे दो क्रियाएँ हैं—देखना और जाना। जाने की क्रिया देखने की क्रिया के निमित्त होती है। 'जाने' का प्रयोजन देखना है, इसलिए दृश् मे तुमुन् (तुम्) जोड़कर "द्रष्टुम्" बनाया गया। तुमुनन्त क्रिया जिस क्रिया के साथ आती है, उसकी अपेक्षा सदा बाद को होती है, ऊपर के उदाहरण मे देखने की क्रिया जाने की क्रिया के बाद ही सम्भव है। इसी प्रकार 'कृष्ण द्रष्टुमगमत्' इस वाक्य मे जाने की क्रिया की समाप्ति के उपरान्त ही देखने की क्रिया हो सकती है, इसीलिए तुमुनन्त क्रिया दूसरी क्रिया की अपेक्षा भविष्य मे होती है।

तुमुनन्त क्रिया के अर्थ का प्रयोग अंग्रेजी मे जेरिण्डियल् इन्फिनिटिव् (Gerundial Infinitive) से होता है, जैसे—He goes to see Krishna वाक्य मे to see का अर्थ है 'देखने के लिये'। किन्तु अंग्रेजी मे इन्फिनिटिव् सज्ञा की तरह ही प्रयोग मे आता है और तब उसको नाउन् इन्फिनिटिव् या सिम्पल इन्फिनिटिव् कहते हैं। संस्कृत की तुमुनन्त क्रिया नाउन इन्फिनिटिव् की तरह कभी भी प्रयोग मे नहीं आती, इतना ध्यान रखना आवश्यक है, जैसे To go to see Krishna is good—कृष्ण को देखने के लिये जाना अच्छा है।

१ तुमुन्ष्वुलो क्रियाया क्रियार्थायाम्।३।३।१०। जिस क्रिया के लिए कोई क्रिया की जाती है, उसकी धातु मे भविष्यत् अर्थ प्रकट करने के लिए तुमुन् और जैष्वल् (अक) होते हैं। जैसे 'कृष्ण द्रष्टु दर्शको वा याति।'

इस वाक्य में दो क्रियाएँ हैं—देखना और जाना। इनमें से दो के लिए अंग्रेजी में इन्फिनिटिव् प्रयोग में आया है, एक का अर्थ है 'जाना', दूसरे का 'देखने के लिए'। इनमें से 'देखने के लिए'—इस अर्थ के लिए सस्कृत में तुमुनन्त क्रिया आवेगी, 'जाना' के लिए कोई सज्ञा। सस्कृत अनुवाद यह होगा—कृष्ण द्रष्टु गमन वरमस्ति। इस वाक्य में 'द्रष्टु' तुमुनन्त क्रिया है और 'गमन' सज्ञा। इस प्रकार, नाउन् इन्फिनिटिव् की तरह, सस्कृत के शब्द को प्रयोग में नहीं ला सकते, ला सकते हैं तो केवल जेरण्डियल् इन्फिनिटिव् की तरह।

(क) जिस क्रिया के साथ तुमुनन्त शब्द आता है, उस क्रिया का तथा तुमुनन्त क्रिया का कर्ता एक ही होना चाहिए, भिन्न कर्ता होने से तुमुनन्त शब्द प्रयोग में नहीं लाया जा सकता, जैसे, राम पठितु विद्यालय गच्छति—इस वाक्य में 'पठितु' और 'गच्छति' दोनों का कर्ता राम ही है। यदि दोनों का कर्ता अलग-अलग होता तो तुमुनन्त शब्द प्रयोग में न आता।

(ख) कालवाची शब्दों (काल, समय, बेला) के साथ एक कर्ता न होने पर भी तुमुनन्त शब्द प्रयोग में आता है, जैसे गन्तुम् कालोज्यमस्ति—यह समय जाने के लिए है। यहाँ दो शब्द क्रियावाचक हैं—'है' और 'जाने के लिए'। 'है' का कर्ता है 'काल' और 'जाने के लिए' का कर्ता कोई और किन्तु, यहाँ तब भी तुमुनन्त शब्द का प्रयोग हुआ है। इसी प्रकार, भोक्तु बेला, अध्येतु समय, द्रष्टु काल इत्यादि प्रयोग होते हैं।

तुमुनन्त शब्द अव्यय होता है, इसके रूप नहीं चलते।

## पूर्वकालिक क्रिया

१७८—जब किसी क्रिया के हो जाने पर दूसरी क्रिया आरम्भ होती है, तब ही गई हुई क्रिया को पूर्वकालिक क्रिया कहते हैं। हिन्दी में इसका बोध 'कर'

१ समानकर्तृकेषु तुमुन् ।३।३।१५८।

२ कालसमयवेलासु तुमुन् ।३।३।१६७।

३ मान्तत्वादव्ययत्वम् । सि० कौ० ।



अथवा 'करके' लगा कर होता है, जैसे, राम ने रावण को मारकर विभीषण को राज्य दिया—इस वाक्य में राज्य देने की क्रिया रावण के मारे जाने पर होती है, इसलिए 'मारा जाना' पूर्वकालिक क्रिया होगी। पूर्वकालिक क्रिया और उसके साथ वाली क्रिया का कर्ता एक होना चाहिए। ऊपर के वाक्य में 'मारकर' और 'दिया' दोनों का कर्ता 'राम' है। भिन्न कर्ता होने से पूर्वकालिक क्रिया का प्रयोग नहीं हो सकता, जैसे, 'लक्ष्मण ने मेघनाद को मार कर, राम ने विभीषण को राज्य दिया'—यह वाक्य अशुद्ध है क्योंकि मारने की क्रिया का कर्ता लक्ष्मण देने की क्रिया के कर्ता राम से भिन्न है।

'पूर्वकालिक क्रिया का बोध कराने के लिए संस्कृत में धातु के आगे क्त्वा (त्वा) प्रत्यय जोड़ा जाता है। ऊपर के हिन्दी वाक्य का अनुवाद संस्कृत में इस प्रकार होगा—राम रावण हत्वा विभीषणाय राज्यं ददौ। परन्तु<sup>१</sup> यदि धातु के पूर्व में कोई उपसर्ग हो अथवा उपसर्गस्थानीय कोई पद हो तो क्त्वा के स्थान में ल्यप् (य) आदेश हो जाता है, परन्तु क्तन् के पूर्व होने पर नहीं।

उदाहरणार्थ—

गम्	+	क्त्वा	=	गत्वा,
किन्तु अवगम्	+	ल्यप्	=	अवगत्य <sup>२</sup> , अवगत्वा नहीं।
पठ्	+	क्त्वा	=	पठित्वा,
किन्तु प्रपठ्	+	ल्यप्	=	प्रपठ्य, प्रपठित्वा नहीं।

परन्तु नम् पूर्व पद रहने पर अगत्वा ही होगा अगत्य नहीं।

पूर्वकालिक क्रिया के रूप नहीं चलते। यह अव्यय है।

(क) क्त्वा का 'त्वा' प्रायः धातु में जैसा का तैसा जोड़ा जाता है जैसे स्ना—स्नात्वा, ज्ञा—ज्ञात्वा, नी—नीत्वा, भू—भूत्वा, कृ—कृत्वा, घृ—घृत्वा, ऐसी नकारान्त धातुएँ जिनमें सेट् या वेट् की इ नहीं जुड़ती, न् का

१ समानकर्तृकयो पूर्वकाले ।३।४।२१।

२ समासेऽनञ्पूर्वे ल्यप् ।७।१।३७।

लोप करके जोड़ी जाती हैं, जैसे हन्—हत्वा, मन्—मत्वा, किन्तु जन्—जनित्वा, खन्—खनित्वा। धातु का प्रथम अक्षर यदि य, र, ल, व हो तो बहुधा क्रम से इ, ऋ, ल, उ हो जाता है, जैसे, यञ्+क्त्वा=इष्ट्वा, प्रच्छ्—पृष्ट्वा, वप्—उप्त्वा। यदि धातु और प्रत्यय के बीच में इ आ जावे तो पूर्व का स्वर गुण-रूप धारण करता है, जैसे—शी+क्त्वा=श्+ए+इ+त्वा=शै+इ+त्वा=शयित्वा, इसी प्रकार जागरित्वा आदि।

'जान्त धातुओं और नश् धातु के बाद क्त्वा जुड़ने पर विकल्प से 'न' का लोप होता है, जैसे—मुञ्ज्+क्त्वा=मुक्त्वा, मुञ्ज्+क्त्वा=रक्त्वा, रञ्ज्+क्त्वा=रञ्ज्+क्त्वा, नश्+क्त्वा=नष्ट्वा, नष्ट्वा। इसका नशित्वा भी रूप होगा।

ल्यप् के पूर्व यदि स्वर् ह्रस्व हो तो 'य' न जुड़कर 'त्य' जुड़ता है, अर्थात् धातु और ल्यप् के 'य' के बीच में त् जुड़ जाता है, जैसे, निश्चित्य, अवकृत्य, विजित्य, किन्तु आ+दा+ल्यप्=आदाय, इसी प्रकार विनीय, अनुमूय इत्यादि, क्योंकि दा, नी तथा भू धातुएँ दीर्घस्व से अन्त होती हैं। बहुधा नकारान्त धातुओं के न् का लोप करके त्य जोड़ा जाता है, जैसे अवमत्य, प्रहृत्य, वितत्य, किन्तु प्रखन्य। गम्, नम्, यम्, रम् के म् रहने पर अवगम्य आदि और लोप होने पर अवगत्य आदि दो-दो रूप होते हैं।

'णिजन्त' और चुराणिमण की धातुओं की उपवा में यदि ह्रस्व स्वर हो तो उनमें ल्यप् के पूर्व अय जोड़ा जाता है, अन्यथा नहीं, यथा—प्रणम् (णिजन्त) +अय्+ल्यप् (च) =प्रणमय्य, किन्तु प्रचोर+य=प्रचोय (प्रचोरय्य नहीं होता)।

आप् धातु के बाद जुड़ने पर विकल्प से अय्-आदेश होता है, जैसे प्र+आप्+ल्यप्=प्रापय्य, प्राप्य।

१ जान्तनशा विभाषा १३।४।३२।

२ ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् १६।१।७१।

३ ल्यपि लघुपूर्वात् १६।४।५६।

४ विभाषाप १६।१।५७।

(ख) पूर्वकालिक<sup>१</sup> क्रिया (क्त्वान्त तथा ल्यवन्त) जब अलम् शब्द और खलु शब्द के साथ आती है, तब पूर्वकाल का बोध न कराकर प्रतिषेध (मना करने) का भाव सूचित करती है, जैसे, अल कृत्वा—बस, मत करो, पीत्वा खलु—मत पियो, विजित्य खलु—बस, न जीतो, अत्रमत्यालम्—बस, अपमान न करो।

### णमुल् प्रत्यय

१७६—जब<sup>१</sup> किसी क्रिया को बार-बार करने का भाव सूचित करना हो तो क्त्वा प्रत्ययान्त शब्द अथवा णमुल्-प्रत्ययान्त शब्द का प्रयोग होता है और यह शब्द दो बार<sup>२</sup> रक्वा जाता है, जैसे, वह बार-बार याद करने शिव को प्रणाम करता है—यहाँ याद करने की क्रिया बार-बार होती है। इसलिए संस्कृत में कहेंगे—“स स्मार स्मार प्रणमति शिवम्”, अथवा “स स्मृत्वा प्रणमति शिवम्”। याद करने की क्रिया प्रणाम करने की क्रिया से पूर्व होती है। स्मृत्वा इसी प्रकार—

पी पी कर अर्थात् बार-बार पीकर—पाय पाय अथवा पीत्वा पीत्वा—पा	
खा खाकर ,, ,, खाकर—भोज भोज ,, भुक्त्वा भुक्त्वा—भुज्	
जा जाकर ,, ,, जाकर—गाम गाम ,, गत्वा गत्वा—गम्	
जग जगकर ,, ,, जगकर—जागर जागर ,, जागरित्वा जागरित्वा —जागृ	
पा पाकर ,, ,, पाकर—लाम लाम ,, लब्ध्वा लब्ध्वा—लम्	
सुन सुनकर ,, ,, सुनकर—श्राव श्राव ,, श्रुत्वा श्रुत्वा—श्रु	

णमुल् का 'अम्' भातु में जोड़ा जाता है। यदि धातु आकारान्त हुई तो णमुल् के अम् और इस अ के बीच 'य' आ जाता है अर्थात् अम् के स्थान में यम् जुड़ता है।

१ अलखल्वो प्रतिषेधयो प्राच्या क्त्वा ।३।४।१८।

२ आभीक्ष्ये णमुल् च ।६।४।२२।

३ नित्यवीप्सयो ।८।१।४।

जैसे—दा+अम्=दाय दाय, इसी प्रकार पाय पाय, स्नाय स्नाय, प्रत्यय मे ण होने के कारण पूर्व स्वर की वृद्धि भी होती है, जैसे स्मृ+अम्=स्मारम्, श्रु+अम्=श्रौ+अम्=श्रावम् इत्यादि। णमुलन्त शब्द के रूप नहीं चलते। यह अव्यय होता है।

यदि दृश् और विद् धातुएँ ऐसे उपपदो के साथ आवें जो उनके कर्म हो तो इनके आगे णमुल् प्रत्यय जुड़ेगा और समस्त प्रत्ययान्त शब्द साकल्य (All) अर्थ का बोधक होगा और प्रयोग एक ही बार होगा, दो बार नहीं, जैसे, कन्यादर्शं वरयति—जिस-जिस कन्या को देखता है, उसी से ब्याह कर लेता है। यहाँ 'सभी कन्याओं से ब्याह कर लेता है'—यह अर्थ है।

अन्यथा, एव, कथ, इत्थ शब्द कृ धातु के पूर्व आवें और कृ धातु का अर्थ वाक्य मे इष्ट न हो और केवल अव्ययो का अर्थ प्रकट करना ही अभीष्ट हो तो णमुल् का प्रयोग होता है, जैसे, अन्यथाकार ब्रूते—वह दूसरी ही तरह बोलता है, यहाँ कृ का कुछ अर्थ न निकला सके बेकार है। इसी प्रकार एवङ्कार—इस तरह, कथङ्कार—किसी तरह, इत्थङ्कार—इस तरह।

स्वादु के अर्थ मे कृ धातु मे णमुल् प्रत्यय लगता है, जैसे—स्वादुङ्कार भुङ्क्ते (अस्वादु कृत्वा भुङ्क्ते इत्यर्थ)। इसी प्रकार सम्पन्नङ्कार, लवणङ्कारम्। सम्पन्न और लवण शब्द स्वादु के पर्याय हैं।

यावत् के साथ विन्द् और जीव् धातुओं मे भी णमुल् जुड़ता है, जैसे यावत्+विन्द्+णमुल्=यावद्वेदम्। स यावद्वेद भुङ्क्ते—वह जब तक पाता है, तब तक खाता पीता है। इसी प्रकार 'यावज्जीवमवीते' अर्थात् सारे जीवन भर अव्ययन करता जायगा।

जब निमूल और समूल कष् के कर्म हो तो कष् मे णमुल् जुड़ता है, जैसे

१ कर्मणि दृशिविदो साकल्ये ।३।४।२६।

२ अन्यथैवङ्कथमित्थसु सिद्धाप्रयोगश्चेत् ।३।४।२७।

३ स्यादुमि णमुल् ।३।४।२६।

४ प्रावति विन्जजीवो ।३।४।३०।

५ निमूलसमूलयो कष् ।३।४।३४।

निमूलकाष कषति, समूलकाष कषति (निमूल समूल कषति इत्यर्थ) —समूल अर्थात् जड से गिरा देता है।

‘जब समूल, अकृत और जीव शब्द हन्, कृ और ग्रह्, घातुओं के कर्म हो तो इनके आगे णमुल् जुडता है, जैसे—समूलघात हन्ति अर्थात् जडसहित उखाड रहा है, जीवग्राह गृह्णाति अर्थात् जीवित ही (जीवन्तमेव) पकडता है, इसी प्रकार अकृतकार करोति।

‘यदि घातु के पूर्व आने वाले उपपद तृतीया या सप्तमी विभक्ति का अर्थ प्रकट करते हो तो घातु के बाद णमुल् प्रत्यय लगता है और समस्त पूर्व सामीप्य अर्थ को ध्वनित करता है, जैसे—केशग्राह युध्यन्ते (केशेषु गृहीत्वा इत्यर्थ) अर्थात् (वे) केशों को पकडकर युद्ध कर रहे हैं। ‘बहुत समीप लड रहे हैं’ यह ध्वनित होता है। इसी प्रकार, हस्तग्राह (हस्तेन गृहीत्वा) युध्यन्ते।

णमुलन्त शब्द प्रायः समास के अन्त में आने पर बार-बार के भाव का नहीं सूचित करता, जैसे, सा वन्दिग्राह गृहीत्वा—वह कैदी करके पकड ली गई, अर्थात् कैद कर ली गई, समूलघातमध्यतः परान्नोद्यन्ति मानिन—मानी पुरुष शत्रुओं को जड से उखाडे बिना उखाड नहीं करते।

### कर्तृवाचक कृत् प्रत्यय

१८०—(क) किसी भी घातु के अनन्तर ष्वल् (वु+अक) और तृच् (तृ) प्रत्यय उस घातु से सूचित कार्य के करने वाले (Agent) के अर्थ में लगाये जाते हैं, जैसे—कृ घातु से सूचित अर्थ हुआ ‘करना’। ‘करने वाला’ यह भाव प्रकट करने के लिए कृ+ष्वल्=कृ+अक=‘कारक’ शब्द हुआ और कृ+तृच्=कृ+तृ=कर्त् शब्द हुआ। कारक, कर्त् (करने वाला), इसी प्रकार पठ् से पाठक, पठित् से दा से दायक, दातृ, पच् से पाचक, पक्त्, ह् से हारक, कृत् इत्यादि। ष्वल् के पूर्व घातु में वृद्धि तथा तृच् के पूर्व घातु में गुण भाव होता है, यह ऊपर के उदाहरणों से स्पष्ट है।

१ समूलाकृतजीवेषु हन्कृञ्ग्रह ।३।४।३६

२ समासत्तौ ।३।४।५०।

३ ष्वल्लुचौ ।३।१।१३३।

नोट—<sup>१</sup>ण्वुल् प्रत्यय तुमुन् (१७७) की तरह क्रियार्थ भी प्रयोग में आता है, जैसे, कृष्ण दर्शको याति—कृष्ण को देखने के लिए जाता है।

(ख) नन्दि<sup>३</sup> आदि (नन्दि, वाशि, मदि, दूषि, साधि, वधि, शोमि, रोचि के णिजन्त रूप) घातुओ के अनन्तर ल्यु (अन), ग्रहि आदि (ग्राही, उत्साही, स्थायी, मन्त्री, अयाची, अवादी, विषयी, अपराधी इत्यादि इस गण के मुख्य शब्द, है) के अनन्तर णिनि (इन्) तथा पच् आदि (पच, मर, चल, पत, जर मर, क्षम, सेव, व्रण, सर्प आदि इस गण के मुख्य शब्द हैं) घातुओ के अनन्तर अच् (अ) लगाकर कर्तृबोधक शब्द बनाये जाते हैं, जैसे—नन्द+ल्यु=नन्दन (नन्दयतीति नन्दन) इसी प्रकार वाशन, मदन, दूषण, साधन, वर्धन, शोमन, रोचन। गृह्णातीति ग्राही (गृह्+इन्=ग्राहन्)। पच्+अच् (अ)=पच (पचतीति पच)।

(ग) जिन<sup>३</sup> घातुओ की उपधा में इ, उ, ऋ, लृ में से कोई स्वर हो, उनके अनन्तर तथा ज्ञा (जानना), प्री (प्रसन्न करना) और कृ (बिखेरना) के अनन्तर कर्तृवाचक<sup>४</sup> क (अ) प्रत्यय लगता है जैसे—

क्षिप्+क=क्षिप (क्षिपतीति क्षिप—फेकने वाला), इसी प्रकार लिख (लिखने वाला), बुध (बुझाने वाला), कृश (दुबला), ज्ञ (जानने वाला), प्रिय (प्रसन्न करने वाला), किर (बखेरने वाला)।

आकारान्त<sup>५</sup> घातु के (तथा ए, ऐ, ओ, औ में अन्त होने वाली जो घातु आकारान्त हो जाती है, उसके) पूर्व यदि उपसर्ग हो, तब भी 'क' प्रत्यय लगता है, जैसे—प्रजापानीति प्रज्ञ (प्रज्ञा+क), आह्वयतीति आह्व (आह्वे+क)।

(घ) यदि<sup>६</sup> कर्म के योग में घातु आवे तो कर्तृवाचक अ (अण्) प्रत्यय

१ तुमुण्वुलौ क्रियाया क्रियार्थायाम् ।३।२।१०।

२ नन्दिग्रहपचादिभ्यो ल्युणिन्यच ।३।१।१३४।

३ इगुपधज्ञाप्रीकिर क ।३।१।१३५।

४ आतश्चोपसर्गे ।३।१।१३६।

५ कर्मण्यण् ।३।२।१।

होता है, जैसे—कुम्भ करोतीति कुम्भकार (कुम्भ+कृ+अण्), भार हरतीति भारहार (भार+हृ+अण्)। अण् के पूर्व वृद्धि हो जाती है।

नोट—कर्म<sup>१</sup> के योग में अण् प्रत्यय क्रियार्थं तुमुन् की तरह प्रयोग में आता है। जैसे, कम्बलदायो याति—कम्बल देने के लिए जाता है।

परन्तु<sup>२</sup> यदि घातु आकारान्त हो और उसके पूर्व कोई उपसर्ग न हो तो कर्म के योग में घातु के अनन्तर क (अ) प्रत्यय लगेगा, अण् नहीं, जैसे—गा ददातीति गोद (गो+दा+क), किन्तु गा सन्वदातीति—गोसन्वदाय (गो+सम्+दा+अण्)।

इसके<sup>३</sup> अतिरिक्त मूलविभुज, नखमुच, काकग्रह, कुमुद, मर्दध, कुध्र, गिरिध्र आदि कुछ शब्दों के अनन्तर भी क प्रत्यय इसी अर्थ में लगता है।

कर्म<sup>४</sup> के योग में अर्हं घातु के अनन्तर अच् (अ) प्रत्यय लगता है, अण् नहीं, जैसे—पूजामर्हतीति पूजार्हं<sup>५</sup> ब्राह्मण (पूजा+अर्ह+अच्)।

(ङ)<sup>६</sup> चर् के पूर्व यदि अधिकरण का योग हो और घातु से कर्तृवाचक शब्द बनाना हो तो ट (अ) प्रत्यय लगाते हैं, जैसे कुरुषु चरतीति—कुरुचर (कुरु+चर्+ट)।

यदि<sup>७</sup> चर् के पूर्व भिक्षा, सेना, आदाय शब्दों में से किसी का योग हो, तब भी ट प्रत्यय लगेगा, जैसे—भिक्षा चरतीति भिक्षाचर (भिक्षा+चर्+ट) सेना चरति (प्रविशतीति) सेनाचर, आदाय (गृहीत्वा) चरति (गच्छतीति) आदायचर।

कृ<sup>८</sup> घातु के पूर्व यदि कर्म का योग हो और हेतु, आदत् (ताच्छील्य) अथवा आनुलोम्य (अनुकूलता) का बोध हो, तो अण् (कर्मण्यण्) प्रत्यय न लगकर

- १ अण् कर्मणि च १३।३।१३।
- २ आतोऽनुपसर्ग क १३।२।३।
- ३ अग्रकरणे मूलविभुजादिभ्य उपसख्यानम् । वा० ।
- ४ अर्हं १३।२।१२।
- ५ चरेष्ट १३।२।१६।
- ६ भिक्षासेनादायेषु च १३।२।१७।
- ७ कृजो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु १३।२।२०।

टप्रत्यय लगता है, जैसे, यश करोतीति यशस्करी विद्या—यश पैदा करने वाली विद्या, यहाँ विद्या यश की हेतु है, इसलिए ट प्रत्यय हुआ, श्राद्ध करोतीति श्राद्धकर (श्राद्ध करने की आदत वाला), वचन करोतीति वचनकर (वचनानुकूल कार्य करने वाला)।

यदि<sup>१</sup> कृ घातु के पूर्व दिवा, विमा, निशा, प्रभा, भास्, अन्त, अनन्त आदि, बहु, नान्दी, किं, लिपि, लिबि, बलि, भक्ति, कर्तुं, चित्र, क्षेत्र, सख्या (संख्यावाचक शब्द), जङ्घा, बाहु, अहर् (अहस्), यत्, तत्, घनूर् (घनुष्), अरुष् शब्द कर्म रूप में आवे तो ट प्रत्यय लगता है, अण् नहीं, जैसे, दिवाकर, विमाकर, निशाकर, बहुकर, एककर, घनुष्कर, अरुष्कर, यत्कर, तत्कर इत्यादि।

(च)<sup>२</sup> णिजन्त एज् घातु के पूर्व यदि कर्म या योग हो तो खश् (अ) प्रत्यय लगता है, जैसे—जनम् एज्यतीति जनमेजय (जन+एज्+खश्)।

<sup>१</sup>अरुष्, द्विषत् तथा अजन्त शब्दों (यदि वे अव्यय न हों) के अनन्तर यदि खित् (जिसका ख इत् हो) प्रत्यय में अस्त होने वाला शब्द आवे तो बीच में एक म् आ जाता है, जैसे—जन शब्द अनन्तर है, इसके अनन्तर एज्य शब्द आया जिसमें खश् प्रत्यय लगा है जो खित् है, अतः बीच में म् आवेगा—जन+म्+एज्य=जनमेजय।

<sup>२</sup>ध्मा और घेट् के पूर्व यदि नासिका और स्तन कर्मरूप में हो तो इनके आगे खश् प्रत्यय जुड़ता है, जैसे—नासिका ध्मायतीति नासिकन्धम, स्तनं घयतीति स्तनन्धय।

<sup>३</sup>नोट—खित्त शब्दों के आगे आने पर पूर्वपद का दीर्घस्वर ह्रस्व हो जाता है और तब सुमागम होता है। इसीलिए नासिका में 'का' का आकार अकार में परिणत हो गया।

१ दिवाविमानिशाप्रभाभास्करान्तानन्तादिबहुनान्दीकिलिपिलिबिबलि-  
भक्तिकर्तृचित्रक्षेत्रसख्याजङ्घाबाह्वहर्षत्तद्धनुस्रुष्णु ।३।२।२१।

२ एजे खश् ।३।२।२८।

३ अर्हद्विषदजन्तस्य मुम् ।६।३।६७।

४ नासिकास्तनयोध्मघेटो ।३।२।२६।

५ खित्यनव्ययस्य<sup>१</sup> ।६।३।६६।



‘उत्पूर्वक रुज् और वह्, घातुओं के पूर्व ‘कूल’ शब्द के कर्म-रूप में आने पर खश् प्रत्यय जुड़ता है, जैसे—कूज्+उत्+रुज्+खश्=कूलमुद्रुज, इसी प्रकार कूलमुद्रुह ।

‘लिह्’ के पूर्व वह (स्कन्व) और अभ्र के कर्मरूप में आने पर खश् प्रत्यय लगता है। जैसे—वह (स्कन्व) लेढीति वहलिहो गौ, इसी प्रकार अभ्रलिहो वायु ।

‘तुद्’ के पूर्व विद्यु और अरुष् के कर्मरूप में आने पर खश् लगता है, जैसे—विद्यु तुदतीति विद्युत्तुद, इसी प्रकार अरुत्तुद ।

‘दृश्’ के पूर्व असूय और तप् के पूर्व ललाट होने पर खश् जुड़ता है। असूर्य में नञ् का सम्बन्ध दृश् घातु के साथ होगा, जैसे—सूर्यं न पश्यतीति असूर्यपश्या (राजद्वारा), इसी प्रकार ललाटन्तप सूर्य ।

(छ) ‘वद्’ घातु के पूर्व यदि प्रिय और वश शब्द कर्म-रूप में आवें तो वद् घातु में खच् (अ) प्रत्यय जुड़ता है, जैसे—प्रिय वदतीति प्रियवद (प्रिय+म्+वद्+खच्), वशवद (वश+म्+वद्+खच्) ।

(ज) ‘मृ, तृ, वृ, जि, घृ, सद्, तप्, दम्’ घातुओं के योग में तथा गम् घातु के योग में यदि कर्मरूप कोई शब्द आवे और पूरा शब्द किसी का नाम हो तो खच् (अ) प्रत्यय लगता है, जैसे—विश्व विभर्तीति विश्वम्भरा (विश्व+म्+मृ+खच्+टाप्)—पृथ्वी का नाम, रथ तरतीति रथन्तरम् (रथ+म्+तृ+खच्)—साम का नाम, पति वरतीति पतिवरा—कन्या का नाम, शत्रुञ्जयतीति शत्रुञ्जय—एक जाति का नाम, युगान्तर—पर्वत का नाम, शत्रुसह—राजा का नाम, सजाप—सजा का नाम, अरिन्दम—राजा का नाम, सृतङ्गम ।

१ उदिकूले रुजिहो ३।२।३१।

२ वहाम्भ्रेलिह ३।२।३२।

३ विध्वरुषोस्तुद ३।२।३५।

४ असूर्यललाटयोर्दृशितपो ३।२।३६।

५ प्रियवशो वद खच् ३।२।३८।

६ सज्ञाया भर्तृवृजिघारिसहितपिदम ३।२।४६। गमश्च ३।२।४७।

‘यदि ताप् (तप् का णिजन्त रूप)के पूर्व द्विषत् और पर शब्द कम रूप में आवें तो ताप् घातु के आगे खच् प्रत्यय जुड़ेगा, जैसे, द्विषन्त पर वा तापयतीति द्विषन्तप, परन्तप ।

‘यदि व्रत का अर्थ प्रकट करना हो तो वाक् शब्द के उपपद होने पर यम् घातु के आगे खच् प्रत्यय जुड़ता है, जैसे, वाच यच्छतीति वाचयमी मौनव्रती इत्यर्थ । व्रत का अर्थ अभीष्ट न होने पर और निबलतादि के कारण वाक का नियन्त्रण करने पर वाच यच्छतीति ‘वाग्याम’—ऐसा शब्द बनेगा ।

‘क्षेम, प्रिय और मद्र शब्दों के उपपद होने पर घातु के आगे खच् प्रत्यय जुड़ता है और अण् मी—क्षेमङ्कर, क्षेमकार, प्रियङ्कर, प्रियकार, मद्रङ्कर मद्रकार । क्षेम करोति क्षेमङ्कर में ‘क्षेम’ ‘कृ’ का कर्म था । यही ‘क्षेम’ जब कर्म न होकर शेषत्वविवक्षा होने पर ‘शेषे षष्ठी’ के अनुसार षष्ठी विभक्ति में होगा, तब अच् प्रत्यय लगकर ‘क्षेमकर’ शब्द बनेगा । उसका विग्रह होगा—करोतीति कर (कृ+अच्), क्षेमम् कर इति क्षेमकर, जैसे, ‘अल्पारम्भा क्षेमकरा’ ।

(क्ष)<sup>५</sup> दृश् घातु के पूर्व यदि त्यद्, तद्, यद्, एतद्, इदम्, अदस्, एक, द्वि, युष्मद्, अस्मद्, भवत्, क्विम्, अन्य तथा समान शब्दों में से कोई रहे और दृश् घातु का अर्थ देखना न हो तो उसके अनन्तर कञ् (अ) प्रत्यय लगता है तथा विकल्प से क्विन् मी—जैसे—तद्+दृश्+कञ्=तादृश (वैसा), इसी प्रकार न्यादृश, यादृश, एतदृश, सदृश, अन्यादृश ।

इसी अर्थ में क्त भी लगता है । क्विन् का लोप हो जाता है, घातु में कुछ नहीं जुड़ता, क्त का स जुड़ता है, जैसे—तादृश् (तद्+दृश्+क्विन्), तादृक्ष (तद्+दृश्+क्त), अन्यादृश् (अन्य+दृश्+क्विन्), अन्यादृक्ष (अन्य+दृश्+क्त) इत्यादि ।

१ द्विषत्परयोस्तापे ।३।२।३६।

२ वाचि यमो व्रते ।३।२।४०।

३ क्षेमप्रियमद्रेऽण् च ।३।२।४४।

४ त्वदादिषु दृशोऽनालोचने कञ्च ।३।२।६०। समानान्ययोश्चेति वाच्यम् ।

वा. । कसोऽपि वाच्य । वा० ।

(ब) 'सद् (बैठना), सू (पैदा करना), द्विष् (वैर करना), द्रुह् (द्रोह करना), दुह् (दुहना), युज् (जोड़ना), विद् (जानना, होना), भिद् (भेदना, काटना), छिद् (काटना, टुकड़े करना), जि (जीतना), नी (ले जाना) और गज् (शोभित होना) धातुओं के पूर्व कोई उपसर्ग रहे या न रहे, इनके अनन्तर क्विप् प्रत्यय लगता है। धातु के पूर्व सु, कर्म, पाप, मन्त्र तथा पुण्य शब्दों के कम रूप में आने पर भी क्विप् प्रत्यय लगता है। क्विप् का कुछ भी नहीं रहता सब लोप हो जाता है, जैसे—

द्युसत् (स्वर्ग में बैठने वाला=देवता), प्रसू (माता) वेत् (शत्रु), मित्रघ्नृक् (मित्र से द्रोह करने वाला), गोघृक् (गाय दुहने वाला), अश्व-युक् (घोड़ा जोतने वाला), वेदवित् (वेद जानने वाला), गार्धामित् (पहाड़ों को तोड़ने वाला—इन्द्र), पक्षच्छित् (पक्ष काटने वाला—इन्द्र, इन्द्रजित् (मेघनाद), सेनानी (सेनापति), सम्राट् (महाराज), सुकृत्, कर्मकृत्, पापकृत्, मन्त्रकृत्। कुछ और धातुओं के अनन्तर भी क्विप् प्रत्यय लगता है, जैसे, चि—अग्निचित्, स्तु—देवस्तुत्, कृ—टीकाकृत्, दृश्—सर्वदृश्, स्पृश्—मर्मस्पृश्, सृज्—विश्वसृज् आदि।

ब्रह्म, भ्रूण तथा वृत्र शब्दों के कर्म रूप में हन् धातु के पूर्व होने पर क्विप् प्रत्यय जुड़ता है, —ब्रह्म+हन्+क्विप्=ब्रह्महा, इसी प्रकार भ्रूणहा, वृत्रहा इत्यादि।

(ट) 'जातिवाचक सज्ञा (आह्वयण, हस, गो आदि) को छोड़कर यदि कोई और सुबन्त (सज्ञा, सर्वतोम, विशेषण) किसी धातु के पूर्व आवे और ताच्छील्य (आदत्) का भाव सूचित करता हो तो उस धातु के अनन्तर णिनि (इन्) प्रत्यय लगता है—जैसे—उष्ण भोक्तु शीलमस्य उष्णभोजी (उष्ण भुज्+णिनि)—गरुडभयम खान की जिसकी आदत् हो, इसी प्रकार शीतभोजी

१ सन्सुद्विष्दुह्युज्विद्विच्छिद्विजिनीराजामुपसर्गे क्विप् ।३।२।६१।

सुकर्मपापमन्त्रपुण्येषु कृञ् ।३।२।८।

२ ब्रह्मभ्रूकवृत्रेषु क्विप् ।३। ७८।

३ सुप्तजाती णिनिस्ताच्छील्य ।३।२।७८। साधुकारिष्युपसख्यानम् । वा० ।

ब्रह्मणि वद । वा० ।

यदि ताच्छील्य (आदत्) न सूचित करना ही तो यह प्रत्यय नहीं लगेगा । किन्तु कृ तथा वद् के पूर्व क्रमशः साधु तथा ब्रह्मन् शब्द होने पर ताच्छील्य अर्थ के अभाव में भी णिनि लगता है, जैसे—साधुकारी, ब्रह्मवादी ।

हन्' धातु के पूर्व कुमार और शीर्ष उपपद होने पर णिनि प्रत्यय जुड़ता है, जैसे—कुमारघाती । शिरस् शब्द का 'शीर्ष' भाव ही जाता है इस प्रकार शीष-घाती शब्द बनेगा ।

'मन्' के पूर्व यदि कोई सुबन्त रहे तब भी णिनि लगेगा आदत् हो या न हो—पण्डितमात्मान मन्यते इति पण्डितमानी (पण्डित+मन्+णिनि), इसी प्रकार दशनीयमानी ।

'अपने आपको कुछ मानने के अर्थ में खद प्रत्यय भी होता है, जैसे—पण्डितम्मन्य (खिदन्त शब्द के पूर्व म् म् जाता है) ।

(ठ) अधिकरण पूर्व में रहने पर जन् धातु के अनन्तर प्रायः ड (अ) प्रत्यय लगता है, जैसे—प्रयागे जाते प्रयागज, मन्दुराया जाते मन्दुरज । जाति-वर्जित पञ्चम्यन्त उपपद होने पर भी ड लगता है, जैसे—सस्काराज्जात सस्कारज । पूर्व में होने पर भी जन् में 'ड' लगता है, यदि बना हुआ शब्द किसी का नाम-विशेष हो तो, जैसे—प्रजा (प्रजन्+ड+टाप्) । अनुपूर्वक जन् धातु के पूर्व कर्म उपपद होने पर भी ड प्रत्यय लगता है, जैसे—पुमासमनुरुध्य जाता पुमनुजा । अन्य उपपदों के पूर्व में होने पर भी जन् में ड लगता है, जैसे—अज, द्विज इत्यादि ।

'अन्त, अत्यन्त, अध्व, दूर, पार, सर्व, अनन्त, सर्वत्र, पत्र, उरस् और अधिकरण अर्थ में म् तथा दु ख के बाद गम् धातु में ड प्रत्यय जुड़ता है, जैसे—अन्तग,

१ कुमारशीर्षयोणिनि ।३।२।५१।

२ अन् ।३।२।८३।

३ आत्ममाने खश्च ।३।२।८३।

४ सप्तम्या जनेडं । पञ्चम्याजातौ । उपसर्गं च त्नायाम् । अनौ कर्मणि । अन्येष्वपि दृश्यते ।३।२।६७।१०१।

५ अन्तात्यन्ताध्वदूरपासर्वानन्तेषु ड ।३।२।४८। सर्वत्रपन्नयोरुपसंस्थानम् (वातिक) । उरसो लोपश्च । वा० । सुदूरोधिकरणे ॥ (वातिक)

अत्यन्तग, अश्वग, दूरग, पारग, सबग, अनन्तग, सर्वत्रग, पन्नग (रार्ष),  
उरग (सर्प), सुखेन गच्छत्यत्रेति सुग, दुःखेन गच्छत्यत्रेति दुर्ग (किला) ।

नोट—उरस् के स् का लोप हो जाता है ।

### शील-धर्म-साधुकारिता वाचक कृत

१८१—(क) 'किसी भी धातु के अनन्तर शील, धर्म तथा भली प्रकार  
सम्पादन—इन तीन में से कोई भी भाव लाने के लिये तृन् (तृ) प्रत्यय लगाया  
जाता है, जैसे, कृ+तृन्=कर्तुं—कर्ता कटम्, जो चटाई बनाया करता है,  
अथवा जिसका धर्म चटाई बनाना है, अथवा जो चटाई भली प्रकार बनाता है—  
ये तीनों अर्थ इससे सूचित हो सकते हैं ।

(ख) 'अलकार, निराकृ, प्रजन्, उत्पत्, उन्मद्, कृच्, अप्—त्रप्, वृत्,  
वृध्, सह्, चर्—इन धातुओं के अनन्तर इसी अर्थ में इष्णुन् (इष्णु) प्रत्यय  
लगता है, जैसे—अलङ्कुरिष्णु (अलङ्कृत करने वाला), निराकरिष्णु (अपमान  
करने वाला), प्रजनिष्णु (पैदा करने वाला), उत्पचिष्णु (पकाने वाला),  
उत्पतिष्णु (ऊपर उठाने वाला), उन्मदिष्णु (उन्मत्त होने वाला), रोचिष्णु  
(अच्छा लगने वाला), अपत्रपिष्णु (लपका करने वाला), वर्तिष्णु (विद्यमान  
रहने वाला), वर्धिष्णु (बढ़ने वाला), सहिष्णु (सहनशील), चरिष्णु-  
(भ्रमणशील) ।

(ग) 'शील्, धर्म तथा भली प्रकार सम्पादन का अर्थ सूचित करने  
के लिए निन्द्, हिस्, क्लिश्, खाद्, विनाश, परिक्षिप्, परिरट्, परिवाद, व्ये, भाष्,  
असूय—इन धातुओं के अनन्तर बुञ् (अक) प्रत्यय लगता है, जैसे—निन्दक,  
हिंसक, क्लेशक, खाद्यक, विनाशक, परिक्षेपक, परिरटक, परिवादक,  
व्यापक, भाषक, असूयक' ।

१ आश्वेस्तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु ।३।२।१३४। तृन् ।३।२।१३५।

२ अलङ्कृन्निराकृन्प्रजनोत्पचोत्पतोन्मदरुच्यपत्रवृत्तुवृधुसहचर इष्णुच्

।३।२।१३६।

३ निन्द्हिस्क्लिश्खादविनाशपरिक्षिप्परिरट्परिवादिव्याभाषासूयो बुञ्

।३।२।१४६।

(घ) 'चलना, शब्द करना अर्थ वाली धातुओं के अनन्तर तथा क्रोध करना, आमूषित करना अर्थों वाली धातुओं के अनन्तर शील आदि अर्थ में युच् (अन) प्रत्यय लगता है, जैसे—चलितु शीलमस्य स चलन (चल्+युच्), कम्पन, शब्द कर्त्तु शीलमस्य स शब्दन (खग) (पठिता विद्याम्—यहाँ सकर्मक धातु होने के कारण युच् न लगकर साधरण तृन् लया) क्रोधन, रोषण, मण्डन, भूषण—ये सब मनुष्यवाचक शब्द हैं।

(ङ) 'जल्प् भिक्ष्, कुट्ट् (अलग करना, कोटना), लुण्ट् (लूटना), और वृ (चाहना)—इनके अनन्तर शील, धर्म और साधुकारिता का द्योतक षाकन् (आक) प्रत्यय लगता है, जैसे—जल्पाक (बहुत बोलने वाला), भिक्षाक (मिखारी), कुट्टाक (काटने वाला), लुण्टाक (लूटने वाला), वराक (बेचारा)।

(च) 'स्पृह्, गृह्, पत्, दय्, शी धातुओं के अनन्तर तथा निद्रा, तन्द्रा श्रद्धा के अनन्तर आलुच् (आलु) जोड़ा जाता है—स्पृहयालु, गृहयालु, पतयालु, दयालु, निद्रालु, तन्द्रालु, श्रद्धालु।

(छ) 'सन्नन्त (इच्छावाची) धातुओं तथा आशस् और भिक्ष् के अनन्तर उ प्रत्यय लगता है, जैसे—कर्तुमिच्छति चिकीर्षु, आशसु, भिक्षु।

(ज) 'भ्राज्, भास्, घृर्, विद्युत्, ऊर्ज्, पू, जु, प्रावस्तु—इन धातुओं के अनन्तर तथा औरों के भी अनन्तर क्विप् प्रत्यय होता है, जैसे—विभ्राट्, भा, घृ, विद्युत्, ऊर्क्, पू, जु, प्रावस्तुत्, छित्, श्री, घी, प्रतिम् इत्यादि।

### भावार्थ कृत् प्रत्यय

१८२—(क) 'भाव का (धातु का अपना) अर्थ द्योतित करने

१ चलनशब्दार्थदिकर्मकाद्युच् । २।३।१४८। क्रुध्मण्डार्थेभ्यश्च । ३।२।१५१।

२ जल्पभिक्षकुट्टलुण्टवृङ् षाकन् । ३।२।१५५।

३ स्पृहिगृहिपतिदयिनिद्रातन्द्राश्रद्धाम्य आलुच् । ३।२।१५८। शीडोवाच्य  
४ वा० ।

४ सनाशसभिक्ष उ । ३।२।१६८।

५ भ्राजभासघुविद्युतोर्जिपृजुप्रावस्तुव क्विप् । ३।२।१७७। अन्येभ्योऽपि  
दृश्यते । ३।२।१७८।

६ भावे । ३।३।१८।

के लिए धातु के अनन्तर घञ् (अ) प्रत्यय जोडा जाता है। जब कोई धात्वथ सिद्ध हो जाय, पूरा हो जाय, तब मा हलाता है, जैसे, पाक—पक जाना (पच्+घञ्), लाभ, काम ।

'प' अकार की वृद्धि इस नियम से हुई है कि यदि कोई बित् अथवा गित् प्रत्यय लगता हो, तो धातु की उपधा के अ की वृद्धि हो जाती है। च् के स्थान मे क् इसलिए हुआ है कि 'घित् (घ जिसका इत् हो) तथा प्यत् प्रत्यय के पूर्व च् तथा ज् का क्रमशः क् तथा ग् हो जाता है।

(ख) 'इकारान्त धातुओं मे अच् (अ) जो जाता है, जैसे—जि+अच्=जय, नी+अच्=नय, मि+अच्=मयम् ।

(ग) 'ऋकारान्त और उकारान्त धातुओं मे अप् होता है, जैसे—वृ+अप्=कर—विखेरना। गृ+अप्=गर—विष। यु+अप्=यव—जोड़ना। लृ

(ञ्) + अप्=लव—काटना। स्तु+अप्=स्तव—प्रशंसा, स्तुति। पू (ञ्)+अप्=पव—पवित्र करना।

'ग्रह्, वृ, दृ, निश्चि, गम्, वश, रण्' से भी अप् लगता है, जैसे—ग्रह्, वर, दर, निश्चय, गम, वश, रण ।

(घ) यज्, -याच्, यत्, विच्छ् (चमकना), प्रच्छ्, रक्ष् मे भावायक नञ् (न) प्रत्यय लगता है, जैसे—यज्ञ, याच्ना, यत्न, विश्न, प्रश्न, रक्षण ।

(ङ्) उपसर्ग-सहित पुंसिज्ञक धातुओं [ (ङु) दा (वृ)—देना, दाण्—देना, दो—खड्ग करना, दे—प्रत्यर्पण करना, रक्षा करना, धा—

१ अत उपघाय १७।२।११६।

२ चजो कु भिष्यतो १७।३।५२।

३ एरच् १३।३।५६। भयदीनामुपसख्यानम् (वार्तिक) ।

४ ऋदोरप् १३।३।५७।

५ ग्रहवृद्निश्चिगमश्च १३।३।५८। वशिरण्योरुपसख्यानम् । वा० ।

६ यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नञ् १३।३।६०।

७ उपसर्गो धो कि । कर्मण्यधिकरणे च १३।३।६२-६३ ।

धारण करना, घे—पीना] के अनन्तर भावार्थ कि (इ) होता है जैसे—प्रधि  
=प्रधा+कि (आतो लोप इटि च ।६।४।६४। से आकार का लोप हुआ), अन्तधि ,  
अधिकरणवाचक शब्द बनाना हो तो भी घु घातुओं में कर्म के योग में 'कि' प्रत्यय  
लगता है, जैसे—जलधि (जलानि धीयन्ते अस्मिन्निति), नीरधि ।

(च) 'स्त्रीलिङ्ग भाववाचक शब्द घातुओं में क्तिन् (ति) जोड़कर  
बनाये जाते हैं, जैसे—कृति, धृति, मति, स्तुति, श्रुति ।

ऋकारान्त घातुओं तथा लू आदि घातुओं के अनन्तर ति जोड़ने पर वही  
विकार होता है जो निष्ठा प्रत्यय जोड़ने में होता है, जैसे—कृ+ति (क्तिन्)  
=कीर्णः, इसी प्रकार गीर्ण, लूनि, धूनि, इत्यादि ।

(छ) 'सम्पद्, विपद्, आपद्, प्रतिपद्, परिषद् में क्विप् और क्तिन् दोनों  
भावार्थ प्रत्यय लगाए जाते हैं, जैसे—सम्पत्, विपत्, आपत्, प्रतिपत्, परिषत्,  
सम्पत्ति, विपत्ति, आपत्ति, प्रविपत्ति, परिषत्ति ।

(ज) 'जिन' घातुओं में कोई प्रत्यय (जैसे सन्, यञ् आदि) पहले  
से ही लगा हो, उनमें स्त्रीलिङ्ग के भाववाचक शब्द बनाने के लिए 'अ' प्रत्यय  
जोड़ा जाता है, जैसे—कृ से मन् लगाकर चिकीर्ष घातु, उससे भाववाचक 'अ'  
प्रत्यय जोड़ा तो चिकीर्षा शब्द बना, फिर स्त्रीलिङ्ग का हुन् (आ) प्रत्यय  
लगाकर चिकीर्षा (करने की इच्छा) बना । इसी प्रकार, जिगमिषा, बुभुक्ष,  
पिपासा, पुत्रकाया आदि ।

यदि घातु इलन्त हो किन्तु उसमें कोई गुरु अक्षर (सयुक्त व्यञ्जन अथवा  
दीर्घ स्वर) हो, तब भी क्तिन् न लाकर 'अ' लगता है, जैसे—ईह् से ईहा.,  
ऊह् से ऊहा इत्यादि ।

१ स्त्रिया क्तिन् ।३।३।६४।

२ ऋल्वादिभ्य क्तिन्निष्ठावद्वाच्य । (वा०)

३ सम्पदादिभ्य क्विप् । वा० । क्तिन्निष्ठावद्वाच्ये । वा० ।

४ अ प्रत्ययात् ।३।३।१०३।

५ गुरोश्च हल ।३।३।१०३।



(झ) <sup>१</sup>चिन्त्, पूज्, कथ, कुम्ब, चर्च्, धातुओ मे तथा उपसर्गसहित आकारान्त धातुओ मे अद् प्रत्यय लगाकर स्त्रीलिङ्ग भाववाचक शब्द बनाते हैं, जैसे—चिन्ता, पूजा, कथा, कुम्बा, चर्चा, प्रदा, उपदा, श्रद्धा, अन्तर्धा ।

(ञ) <sup>१</sup>णिजन्त (प्रेरणार्थक) धातुओ मे तथा आस्, श्रन्थ्, घट्ट्, बन्द्, विद् मे भावार्थ स्त्रीलिङ्ग प्रत्यय युच् (अन) लगता है, जैसे—कारण (कृ+णिच्+युच्+टाप्), इसी प्रकार हारणा, दारणा । आस्+युच्+टाप्=आसो, श्रन्थना, घट्टना, बन्दना, वेदना ।

(ट) नपुसकलिङ्ग<sup>३</sup> भाववाचक शब्द बनाने के लिए कृत् प्रत्यय 'क्त' (निष्ठा) अथवा ल्युट् (अन) धातुओ मे लगाया जाता है, जैसे—हसितम्-हसनम्, गतम्, गमनम्, कृतम्, करणम्, हृतम्, हरणम् इत्यादि ।

(ठ) पुल्लिङ्ग<sup>४</sup> नाम शब्द बनाने के लिए प्रायः धातुओ मे 'घ' प्रत्यय लगाया जाता है, जैसे—आकृ+घ=आकर (खाकर), आखन (फावडा), आपण (बाजार), निकष (कसौटी), गोचर (चरागाह), सञ्चर (मार्ग), वह (स्कन्ध), व्रज (बाडा), व्यज (पखा), निगम (वेद) आदि ।

परन्तु<sup>५</sup> हलन्त धातुओ मे घञ् लगता है, घ नहीं, जैसे—रम् से राम, इसी प्रकार अपामार्ग (एक ओषधि का नाम) ।

### भावार्थ कृत् प्रत्यय

१८३—(क) कठिन<sup>६</sup> (असंलिये दुःखात्मक) और सरल (अतएव सुखात्मक) के भाव का बोध कराने के लिए धातुओ के अनन्तर खल् (अ) प्रत्यय लगाया

१ चिन्तिपूजिकथकुम्बिचर्चश्च ।३।३।१०५। आतश्चोपसर्गं ।३।३।१०६।

२ प्यासश्रन्थो युच् ।३।३।१०७। घट्टिवन्दिदिविद्विभ्यश्चेति वाच्यम् । वा० ।

३ नपुसके भावे क्त । ल्युट् च ।३।३।११४।—१५ ।

४ पुंसि सज्ञाया घ प्रायेण ।३।३।११८। गोचरसञ्चरवह्व्रजव्यजापणनिगमाश्च ।३।३।११९।

५ हलश्च ।३।३।२१।

६ ईषद्दु सुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल् ।३।३।१२६।

स० व्या० प्र०—३२

जाता है। वह भाव दिखाने के लिए सु और ईषत् शब्द (सुखार्थ) तथा दुर् (दुःखार्थ) धातु के पूर्व रहते हैं, जैसे, सुखेन कर्तुं योग्य, सुकर (सुकृ+खल्)—सुकर कटो भवता=चटाई आप से (आसानी से) बन सकती है, ईषत्कर कटो भवता=चटाई आप से जरा मे ही (अनयास ही) बन सकती है, दुखेन कर्तुं योग्य, दुष्कर (दुष्कृ+खल्)—दुष्कर कटो भवता=चटाई आप से मुश्किल से (दुःख से) बन सकती है।

(ख) आकारान्त<sup>१</sup> धातुओं के अनन्तर खल् के अर्थ में युच् प्रत्यय होता है, खल् नहीं, जैसे—सुखेन पातु योग्य सुपान, ईषत्पान, इसी प्रकार दुष्पान।

इसी<sup>२</sup> प्रकार दु शासन, दुर्योधन, दुर्वह, सुवह, ईषद्वह इत्यादि, तथा स्त्रीलिङ्ग दुष्करा, दुर्वहा आदि तथा नपुं० दुष्कर, दुर्वह आदि रूप होते हैं।

नोट—खल्<sup>३</sup> और खलर्थ प्रत्यय कर्म की सूचना देते हैं, र्ता की नहीं, इसलिए कर्म के विशेषण हो सकते हैं, कर्ता के नहीं।

### उणादि प्रत्यय

१८४—कृत् प्रत्ययों के दो भेदों (कृत्य और कृत्) का व्याख्यान ऊपर किया जा चुका है, बाकी उहे उणादि। उणादि का अर्थ है—उण् आदि प्रत्यय। अर्थात् उस वर्ग के प्रत्यय जिनका पहला प्रत्यय उण् है। ये प्रत्यय बड़े टेढ़े हैं और बड़ी जोड़-तोड़ से धातुओं में शब्द बनाने के लिए लगाए जाते हैं।

उणादि<sup>४</sup> का प्रयोग भी बहुल है—कभी किसी अर्थ में, कभी किसी अर्थ में। महर्षि पाणिनि ने इनके द्वारा संस्कृत के शेष ऐसे शब्दों की सिद्धि की जो और किसी वर्ग के प्रत्ययों से सिद्ध नहीं होते।

उदाहरणार्थ—करोतीति 'कारु' (कृ+उण्) शिल्पी कः कश्च, वातीति 'वायु', पिबत्यनेनेति 'पायु' गुदम्, जयति रोगान् इति 'जायु' औषधम्, मिनोति

१ आतो युच् ।३।३।१२८।

२ भाषाया शासियुधिदृशिवृषिमृषिम्यो युज्वाच्य (वा०)

३ तयोरेव कृत्यक्तखलर्था ।३।४।७०।

४ उणादयो बहुलम् ।३।३।१।

५ ऋवापाजिमिस्वदिसाध्यशूम्य उण् । उणादि, सूत्र १।

ब्रक्षिपति देहे ऊष्माणमिति 'मायु' पित्तम्, स्वदते रोचते इति 'स्वादु' साब्जोत्ति  
परकार्यमिति 'साधु', अश्नुते इति 'आशु' शीघ्रम् ।

परुषम्' (पृ+उषच्), नहुष (नह्+उषच्), कलुषम् (कल्+उषच्)  
इत्यादि ।

DR. RUPNATHJI ( DR. RUPAK NATH )

# द्वादश सोपान

## लिङ्ग-विचार

१८५—हिन्दी में दो लिङ्ग होते हैं—स्त्रीलिङ्ग और पुल्लिङ्ग और सारे पदार्थ वाचक शब्द चाहे चेतन हो अथवा अचेतन इन्हीं दो लिङ्गों में विभक्त होते हैं। जैसे—लडकी जाती है, गाड़ी आती है। आदमी आया, रथ चला आदि। सस्कृत में इन दो लिङ्गों के अतिरिक्त एक और होता है, जिसे नपुसक-लिङ्ग कहते हैं। सारी सज्ञाएँ इन्हीं तीन लिङ्गों में विभक्त हैं, कोई पुल्लिङ्ग कोई स्त्रीलिङ्ग और कोई नपुसकलिङ्ग। एक ही वस्तु का बोध कराने वाला कोई शब्द पुल्लिङ्ग में है, तो कोई स्त्रीलिङ्ग में अथवा नपुसकलिङ्ग में, जैसे—तनु (स्त्री०), देह (पु०) और शरीरम् (नपु०) सभी शरीरवाची हैं। 'दारा' शब्द पुल्लिङ्ग में होते हुए भी स्त्री का अर्थ बताता है, देवता शब्द स्त्रीलिङ्ग में होते हुए भी देव (पुरुष) का अर्थ बताता है। इस प्रकार यह विदित है कि सस्कृत भाषा में लिङ्ग प्रकृति के अनुसार नहीं है। यदि सारे अचेतन-पदार्थवाचक शब्द नपुसकलिङ्ग में होते, पुरुषवाची शब्द पुल्लिङ्ग में और स्त्रीवाची स्त्रीलिङ्ग में तो कहा जा सकता कि लिङ्ग प्रकृति के क्रम से हैं। परन्तु बात इससे उलटी है। इसी कारण सज्ञाओं की सज्ञाओं का लिङ्ग जानना बड़ा कठिन है। इनका ज्ञान कोषों से तथा काव्यग्रन्थों के अध्ययन से होता है।

व्याकरण के कुछ मोटे-मोटे नियम हैं। उनसे भी कुछ सहायता मिल सकती है।

## पुल्लिङ्ग शब्द

१८६—(क) भावार्थक घञ्, भावार्थक अप् तथा घ्, अच्, नञ् (घुसञ्जक घातुओं के उपरान्त) कि प्रत्यय—इन में अन्त होने वाले शब्द पुल्लिङ्ग के होते हैं, उदाहरणार्थ—

१ घवन्त । घाजन्तश्च । भयलिङ्गभगपदानि नपुसकं । नञन्त । याञ्छा स्त्रियाम् । क्यन्तो घु । इषुषि स्त्री च । लिङ्ग० ३६—४२ ।

घञन्त—पाक, त्याग ।

अघञन्त—कर., गर ।

घान्त—सञ्चर, गोचर ।

अजन्त—चय, जय [ भय, लिङ्ग, भग, पद—ये शब्द नपु० लि० मे होते हैं ]

नञन्त—यज्ञ, यत्न [ याञ्चा स्त्रीलिङ्ग में ]

क्यन्त—जलधि, निधि आधि [ इषुधि स्त्रीलिङ्ग मे भी होता है ]

(ख) नृ तथा उ मे अन्त होने वाले शब्द प्राय पुल्लिङ्ग के होते हैं, जैसे—राजन् (राजा), तक्षन् (तक्षा), प्रमु, इक्षु । कुछ अकारान्त शब्द चर्मन् आदि नपुसक होते हैं । वेनु, रज्जु, कुहु, सरयु, तनु, रेणु, प्रियङ्गु—ये उकारान्त स्त्रीलिङ्ग मे, और इमश्चु, जानु, वसु (वन कच्ची), स्वादु, अशु, जतु, त्रपु, मघु, सानु, तालु, दाह, कसेरु, वस्तु और अस्तु नपुसकलिङ्ग मे होते हैं ।

(ग) ऐसे शब्द जिनकी उपधा मे क्, ङ्, ण्, थ्, न्, प्, म्, न्, य्, र्, ष्, स् मे से कोई अक्षर हो और यदि वे अकारान्त हो तो प्राय पुल्लिङ्ग होते हैं, जैसे—स्तबक, कल्क, घट, पट, गुण, गण, पाषाण, उद्गीथ, रथ [किन्तु काष्ठ, सिक्थ, उक्थ नपुसक होते हैं], इन, फेन [जघन, अजिन, तुहिन, कानन, वन, वृजिन, विपिन, नेलिन, शासन, सोपान, मिथुन इमशान, रत्न, निम्न तथा चिह्न नपुसक होते हैं], यूप, दीप. [पाप, रूप, उडुप, तल्प, शिल्प, पुष्प, समीप, अतरीप नपुसक में], स्तम्म, कुम्म, सोम, भीम, समय, हय, [किसलय, हृदय, इन्द्रिय, उत्तरीय नपुसक मे], क्षुर, अक्षुर [द्वार आदि बहुत से शब्द नपुसकलिङ्ग होते हैं], वृष, वत्स, वक्ष, वायस, महानस ।

१ नान्त । लि० ४८। उकारान्त । लि० ५१।

२ कोपघ १६१। टोपघ । ६४। णोपघ । ६७। थोपघ । ७०। नोपघ । ७४। पोपघ । ७७। भोपघ । ८०। मीपघ । ८३। योपघ । ८६। रोपघ । ८९। षोपघ । ९३। सोपघ । ९६।

(घ) देव<sup>१</sup>, असुर, आत्म, स्वर्ग, गिरि, समुद्र, नख, केश, दन्त, स्तन, भुज, कण्ठ, खड्ग, पङ्क, ऋतु, पुरुष, कपोल, गुल्फ, मेघ, रश्मि, दिवस—ये शब्द तथा इनका अर्थ बताने वाले शब्द प्रायः पुल्लिङ्ग क होते हैं, उदाहरणार्थ, देव—सुर, असुर—दैत्य, आत्मा—क्षेत्रज्ञ, स्वर्ग—नाक (त्रिविष्टप नपुसकलिङ्ग में और द्यौः स्त्रीलिङ्ग में होते हैं), गिरि—पर्वत, समुद्र—अब्धि, नख—कररुह, केशा—शिरोरुहा, दन्त—दशन, स्तन—कुच, भुज—दो, कण्ठ—गल, खड्ग—असि, शर,—बाण, पङ्क—कर्म, ऋतु—अध्वर, पुरुष—नर, कपोल—गण्ड, गुल्फ—प्रपद, मेघ—नीरद (अभ्र नपुसकलिङ्ग में), रश्मि—मयूख (दीघिति स्त्रीलिङ्ग में), दिवस—घस्र (दिन और अह्न नपुसक में होते हैं)।

(ङ) दार<sup>२</sup>, अक्षत, लाज, अशु—शब्द पुल्लिङ्ग में तथा सदा बहुवचन में होते हैं—दारा, अक्षता, लाजा; असव ।

### स्त्रीलिङ्ग शब्द

१८७—(क) <sup>३</sup>अनि, ऊ, मि, नि, कित्न् (ति) और ई प्रत्ययो में अन्त होने वाले शब्द प्रायः स्त्रीलिङ्ग में होते हैं। क्रम से उदाहरण—अवनि, चमू, ग्लानि, कृति और लक्ष्मी । परन्तु वह्नि, वृष्णि, अग्नि पुल्लिङ्ग में होते हैं तथा अशनि, अरणि, श्रोणि, योनि और ऊर्मि स्त्रीलिङ्ग और पुल्लिङ्ग दोनों में होते हैं।

१. देवासुरात्मस्वर्गगिरिसमुद्रनखकेशदन्तस्तनभुजकण्ठखड्गशरपङ्कामिधानानि । ४६। ऋतुपुरुषकपोलगुल्फमेघामिनानि । ४६। रश्मिदिवसामिधानानि । १००।

२. दाराक्षतलाजाना बहुत्वञ्च । १०६।

३. अन्यूत्प्रत्ययान्तो घातु । अशनिमरष्यर य पुसि च । मिन्यन्त । वह्निवृष्ण्यग्नय पुसि श्रोणियोन्यूर्मय पुसि च । कित्तन्त । ईकारान्तश्च । लिङ्गानुशासनम् ४—१०

(ख) ऊङ् तथा टाप् प्रत्यय मे अन्त होने वाले सभी शब्द स्त्रीलिङ्ग के हैं, जैसे—कुरू, वामोरू, विद्या, अजा, कन्या आदि।

(ग) एकाक्षर<sup>३</sup> ईकारान्त और ऊकारान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग मे होते है, जैसे—श्री, भू आदि। एकाक्षर न होने से पुल्लिङ्ग भी हो सकते है जैसे—पृथुश्री, प्रतिभू आदि।

(घ)<sup>४</sup> तल् प्रत्यय मे अन्त होने वाले शब्द स्त्रीलिङ्ग के हैं, जैसे पवित्रता, ता आदि।

(ङ)<sup>५</sup> १९ (एकोनविंशति) से लेकर ९९ (नववति) तक के संख्यावाची सभी शब्द स्त्रीलिङ्ग के होते हैं।

(च)<sup>६</sup> भूमि, विद्युत्, सरित्, लता और वनिता—इन शब्दों का अर्थ रखने वाले शब्द स्त्रीलिङ्ग के होते हैं, जैसे—पृथिवी, तडित्, नदी, वल्ली, स्त्री आदि।

(छ) ऋकारान्त<sup>६</sup> शब्दों मे केवल मातृ, दुहित्, स्वसृ, पोतृ और ननान्द ही स्त्रीलिङ्ग के होते है।

### स्त्री प्रत्यय

१८८—कुछ सज्ञाएँ ऐसी होती है, जिनके जोड़े के शब्द होते हैं—एक पुरुष और एक स्त्री। इस प्रकार की पुल्लिङ्ग सज्ञाओं से स्त्रीलिङ्ग की जोड़ीदार सज्ञा बनाने के लिए जो प्रत्यय जोड़े जाते है, उन्हें स्त्री प्रत्यय कहते है, जैसे—‘अज’ से टाप् लगाकर ‘अजा’ स्त्रीलिङ्ग का शब्द बना। इस प्रकार के स्त्रीलिङ्ग शब्द बनाने के लिए बहुधा नीचे लिखे प्रत्यय लगाए जाते है।

१ ऊङ्गबन्तश्च । लिङ्गा० ११।

२ ध्वन्तमेवाक्षिस्म । लिङ्गा० १२।

३ तलन्त ॥ लि० १७।

४ विशत्यादिरानवते । लि० १३।

५ भूमिविद्युत्सरिल्लतावनिताभिधानानि । लि० १८।

६ ऋकारान्ता मातृदुहितृस्वसृपोतृननान्दर । लि० २१।

## टाप्

नोट—टाप् प्रत्यय के ट् और प् का लोप होकर केवल आ शेष रह जाता है, यह आ अजादि (अजा आदि) गण में पठित तथा ह्रस्व अकारान्त शब्द में जोड़ा जाता है।

१८६—(क) अजा<sup>१</sup> आदि [ अजा, एडका, कोकिला, चटका, अश्वा, मूषिका, बाला, होडा, पाका, वत्सा, मन्दा विलाता, ध्वजपिहाणा, अपरापहाणा, क्रुञ्चा, उष्णिहा, देवविशा, ज्येष्ठा, कनिष्ठा, मध्यमा, अज्ञान ] शब्दों में तथा अकारान्त शब्दों में स्त्रीबोधक टाप् प्रत्यय लगता है, जैसे—अज+आ=अजा, एडक+आ=एडका, अश्व+आ=अश्वा, बाल+आ=बाला, उष्णिह्+आ=उष्णिहा, देवविश्+आ=देवविशा। भुञ्जान+आ=भोजाना, गग+आ=गगा इत्यादि।

(ख) टाप्<sup>२</sup> के जोड़ने में 'क' अन्त में आवे और उसके पूर्व 'अ' हो तो 'अ' के स्थान में 'इ' हो जाता है। परन्तु यह नियम तभी लगेगा जब 'क' किसी प्रत्यय का हो और टाप् के पूर्व प्रत्ययों में से कोई न लगे हो, जैसे—मूषक+टाप् (आ)=मूषिक+आ=मूषिका, कारक+टाप् (आ)=कारिक+आ=कारिका, सर्वक+टाप्=सर्विक+आ=सर्विका, मामक+टाप्=मामिक+आ=मामिका, इसी प्रकार दक्षिणात्यिका, पाश्चात्यिका। यदि 'क' किसी प्रत्यय का न होगा तो नियम नहीं लगेगा, जैसे—शङ्क+आ=शङ्का। यहाँ 'क' धातु का है किसी प्रत्यय का नहीं।

## डीप्

१८७—(क) ऋकारान्त<sup>१</sup> और नकारान्त पुल्लिङ्ग शब्दों के अनन्तर डीप् (ई) लगाकर स्त्रीलिङ्ग शब्द बनाया जाता है, जैसे—ऋत्—ऋती,

१ अजाद्यतष्टाप् ।४।१।४।

२ प्रत्ययस्थात्कात्पूर्वस्यात् इदाप्यसुप ।७।३।४४। मामकनरकयोरुपसख्या-  
नम् । त्यक्त्यपोश्च । वा० ।

३ ऋत्तेभ्यो डीप् ।४।१।५।



दण्डिन्—दण्डिनी, राजन्—राज्ञी, स्वन्—शुनी। किन्तु<sup>१</sup> जिनके अन्त मे मन् हो अथवा जिस बहुव्रीहि के अन्त मे अन् हो उनसे स्त्रीलिङ्ग मे डीप् नहीं जुटता ।

१६१—जिन<sup>१</sup> प्रातिपदिको मे उक् प्रत्याहार (इ उ ऋ लृ) का कोई वर्ण इत् हुआ हो तो उनसे डीप् लगाकर स्त्रीलिङ्ग शब्द बनाते हैं। जैसे मृ-शतृ=भवत्+डीप्=भवन्ती ।

नोट—डीप् को ई जुडने के पूर्व प्रातिपदिक मे नीचे लिखे अनुयायि हरे-फेरे कर लिया जाता है—

व्यञ्जनान्त शब्द का वह रूप लेकर जो तृतीया के एकचयन मे होता है, उसका अन्तिम स्वर गिरा दिया जाता है और शतृ तथा स्पृत् प्रत्ययों से बने हुए शब्दो मे त् के पूर्व न् जोड दिया जाता है, जैसे—राजन् का तृ० ए० व० राज्ञा है, इसका आ गिराकर 'राज्ञ्' हुआ, इससे ई जोड कर राज्ञी बना, इसी प्रकार शुनी आदि, पचता से पचत्+ई=पचती। स्वरान्त शब्दो का अन्तिम स्वर गिरा दिया जाता है (सुमङ्गल=सुमङ्गल+ई=सुमङ्गली) ।

(ख) नीचे<sup>१</sup> लिखे शब्दो के अन्तमे डीप् लगाया जाता है—कर मे अन्त होने वाले, जैसे, भोगकर—भोगकरी ।

नद, देव, चोर, ग्राह, गर, प्लव—नदी, चोरी, देवी, ग्राही, गरी, प्लवी ।

ढक्, अण्, अञ्, द्वयञ्, मात्रच, दघ्नञ्, तयप्, ठञ्, कञ् और क्वरप् प्रत्ययो मे अन्त होने वाले शब्द जैसे, सुपर्णी—सौपर्ण्यी, इन्द्र—ऐन्द्री, उत्स—औत्सी, इसी प्रकार उरुद्वयी, उरुदघ्नी, उरुमात्री, पञ्चतयी, आक्षिकी, लावणिकी, यादुशी, इत्वरी ।

१ मन १४११११, अतो बहुव्रीहे १४१११२।

२ उगितश्च ।

३ टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचत्तयप्ठक्ठञ्क्वरप १४१११५।

(ग) प्रथम<sup>१</sup> वयस् (अन्तिम अवस्था को छोड़कर) का बोध कराने वाले शब्दों के अनन्तर डीप् लगता है, जैसे, कुमार —कुमारी, इसी प्रकार किशोरी, बधूटी इत्यादि, कन्तु, वृद्धा, स्थविरा ।

### डीष्

१६२—(क) षित्<sup>२</sup> शब्दों (नतक, खनक, पथिक, आदि) तथा गौरादि गण के शब्दों (गौर, मनुष्य, हरिण, आमलक, वदर, उष्य, भृङ्ग, अनडुह, नट, मङ्गल, मण्डल, बृहत्—ये इस गण के मुख्य शब्द हैं) के अनन्तर डीष् (ई) जोडा जाता है, जैसे—नर्तकी, पथिकी, गौरी आदि ।

(ख) पुल्लिङ्ग<sup>३</sup> शब्द जो नर का बोध कराने हो, उससे मादा बनाने के लिये डीष् जोडा जाता है, किन्तु पालक शब्द में अन्त होने वाले शब्दों के अनन्तर नहीं। जैसे, गोप —गोपी, शूद्र —शूद्री, किन्तु गोपालक से गोपालिका ।

ई जुड़ने के पूर्व शब्द में १६१ नोट में लिखे परिवर्तन हो जाते हैं ।

इन्द्र<sup>४</sup>, वरुण, भव, शर्व, रुद्र, मृड, आचार्य—इनके अनन्तर तथा (विस्तार बताने के लिए) हिम और अरण्या के अनन्तर, खराब यव के अर्थ में यव के अनन्तर यवनो की लिपि का बोध कराने के लिए यवन के अनन्तर तथा मातुल, उपाध्याय के अनन्तर डीष् लगने के पूर्व आनुक् (आन्) जोड दिया जाता है—इद्राणी, भवानी, शर्वाणी, रुद्राणी, मृडानी, आचार्याणी, हिमानी, अरण्यानी, यवानी (खराब जौ), यवनानी (यवनों की लिपि), मातुलानी, उपाध्यायी ।

(ग) अकारान्त<sup>५</sup> ऐसे जातिवाचक शब्द जिनकी उपधा में, 'य्' न हो, डीष् लगाकर स्त्रीलिङ्ग होते हैं, जैसे, ब्राह्मण —ब्राह्मणी, हरिणी, भृगी ।

१ वयसि प्रथमे ।४।१।२०। वयस्यचरम इति वाच्यम् ।

२ षिट्गौरादिभ्यश्च ।४।१।४१।

३ पयोगादाख्यायाम् ।४।१।४८। पालकान्तान्न । वा० ।

४ इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्रमृडहिमारण्ययवयवनमातुलाचार्याणामानुक् ।४।१।४९। हिमारण्ययोर्महत्त्वे । यवाद्दोषे । यवनाल्लिप्याम् । वा० ।

५ जातेरस्त्रीविषयादयोपघात् ।४।१।६३।

(घ) उकारान्त गुणवाची शब्दों के अनन्तर स्त्रीलिङ्ग बनाने के लिए विकल्प से डीष् लगाते हैं—जैसे—मृदु से मृदु अथवा मृद्वी। किन्तु यदि उपधा म सयुक्त वर्ण हो तो डीष् नहीं लगेगा, जैसे पाण्डु पु० तथा स्त्रीलिङ्ग दोनों म।

इ अथवा ई में अन्त होने वाले गुणवाची शब्दों का पुल्लिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग दोनों में समान रूप रहता है, जैसे—शुचि, मुधी।

(ङ) बहु आदि गण में पठित (तथा अन्य आकृति गणों) से विकल्प से डीष् लगाते हैं। जैसे बह्वी, बहु।

(च) क्तिन् प्रत्यय को छोड़कर सभी इकारान्त कृदन्त शब्दों के आगे स्त्रीलिङ्ग में डीष् प्रत्यय विकल्प से जुटता है जैसे—रात्रि, रात्री।

(छ) अङ्ग वाचक शब्द जिनकी उपधा सयुक्त न हो तथा जो उपसजन रूप में ही यदि प्रातिपदिक के अन्त में आये तो उनसे विकल्प से डीष् प्रत्यय जुटता है जैसे—चन्द्रमुखी, चन्द्रमुखा। किन्तु नख, मुख, शब्द यदि किसी के नाम के अन्त में आये तब नहीं होते, जैसे—अशूपीय्या, गोमुखा।

(ज) उस उकारान्त शब्द से जिसकी उपधा में य् न हो तथा जो मनुष्य जातिवादी हो, स्त्रीलिङ्ग में, ऊङ् (ऊ) प्रत्यय जुटता है—जैसे कुरू। करमोरू।

### डीन्

(क) जातिवाचक शाङ्करवादि शब्दों से तथा अन् प्रत्यय का अकार जिनके अन्त में है उनसे, एवम् नू और नर शब्दों से स्त्रीलिङ्ग में डीन् प्रत्यय जुटता है। 'नू और नर' को तो वृद्धि भी होती है। जैसे शाङ्करवा, बैदी, नारी।

१ वीतो गुणवचनम् ।४।१।४४।

२ बह्वादिभ्यश्च ।४।१।४५। (आकृतिगणोज्यम्)

३ कृदिकारादक्तिन् (ग०)

४ स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसयोगोपधात् ।४।१।५४।

५ नखमुखात् सज्ञायाम् ।४।१।५५।

६ ऊङुत् ।४।१।६६, ऊरुत्तरपदादौपम्ये ।४।१।६६।

७ शाङ्करवाद्यमोडीन् ।४।१।७३, नू ओवृद्धिश्च (निगणसूत्रम्)

### नपुंसकलिङ्ग शब्द

१९३—(क) भावार्थक ल्युट्, भावार्थक क्त तथा भावार्थ और कर्मार्थं ष्यञ्, यत्, य, ढक्, यक्, अञ्, अण्, वुञ्, छ, इन प्रत्ययो मे अन्त होने वाले शब्द, नपुसकलिङ्ग मे होते हैं। उदाहरणार्थ—

ल्युट्—हसनम् (यदि ल्युट् भावार्थ मे न होगा तो नपु० नहीं होगा, जैसे, पचन—पकाने वाला (अर्थात् अग्नि), क्त—गतम्, गालम्, त्व—शुक्लत्वम्, ष्यञ्—चातुर्यम्, ब्राह्मण्यम्, यत्—स्तेयम्, य—सक्यम्, ढक्—कापेयम्, यक्—आधिपत्यम्, अञ्—औष्ट्रम्, अण्—द्वैतयनम्, वुञ्—पैतापुत्रकम्, छ—अच्छावाकीयम्।

(ख) अव्ययीभावसमास तथा एकवचनान्त द्वन्द्व सर्वदा नपुसकलिङ्ग मे होते हैं, जैसे—अभिस्त्रि, पाणिपादम्। एकवचनान्त द्विगु समास तो प्रायः नपुसकलिङ्ग मे होते हैं, जैसे, त्रिमूचम्, चतुर्युगम्, परन्तु कुछ स्त्रीलिङ्ग मे भी होते हैं, जैसे—पञ्चवटी, च्चमूली।

(ग) इस्, उस् मे अन्त होने वाले शब्द नपुसकलिङ्ग मे होते हैं, जैसे—हवि, घनु।

(घ)—मन् मे अन्त होने वाला शब्द यदि दो स्वरो वाला हो और कर्तृवाचक न हो तो नपुसक होगा, जैसे—चर्म, शर्म, वर्म, किन्तु अणिमा पुल्लिङ्ग होता है, क्योंकि यह दो स्वरो वाला नहीं है, इसी प्रकार दामा (देने वाला) पु० होता है, क्योंकि यह कर्तृवाचक है।

(ङ) यम् मे अन्त होने वाले दो स्वरो वाले शब्द नपुसकलिङ्ग मे होते हैं, जैसे, मन, यश, तप आदि।

१ भावे ल्युडन्त ११६। निष्ठा च १२०। त्वप्यत्रौ तद्धितौ । १२१। कर्मणि च ब्राह्मणादिगुणवचनेभ्य १२२। यद्यद्व्यञ्जवृद्धाश्च भावकर्मणि । १२३।

२ अव्ययीभावश्च । २। ४। १८। द्वन्द्वैकत्वम् १२४। द्विगु स्त्रिया च । १२३।

३ इसुसन्त । १३४।

४ मन् द्व्यच्कोऽकर्तरि । १३६।

५ असन्ती इयच्क । १५२।

(च) 'त्र' मे अन्त होने वाले शब्द प्रायः नपुसक होते हैं, जैसे—छत्रम्, पत्रम् आदि, किन्तु यात्रा, मात्रा, मस्त्रा, दष्ट्रा, वरत्रा स्त्रीलिङ्ग के हैं तथा मृत्रः अमित्र, वृत्र, उष्ट्र, मत्र, पुत्र, छात्र इत्यादि पुलिङ्ग के हैं।

(छ) जिन शब्दों को उपधा मे ल हो, वे प्रायः नपुसक होते हैं, जैसे—कुलम्, स्थलम्, कूलम्।

(ज) 'शत' से आरम्भ करके ऊपर की सख्या नपुसक होती है, केवल शत, प्रयुत तथा अयुत पुल्लिङ्ग मे भी होते हैं, लक्षा और कोटि स्त्रीलिङ्ग मे तथा शकु पुल्लिङ्ग मे होते हैं। 'वा लक्षा नियुत च तत्'—अमरकाश की इस पक्ति के अनुसार लक्षम् (नपु०) भी होता है।

(झ) 'मुख, नयन, लोह, वन, मास, रुधिर, कार्मुक, विवर, जल, हल, घन, अन्न, बल, कुसुम, शुल्व, पत्तन, रण—ये शब्द तथा इनका अर्थ बताने वाले शब्द प्रायः नपुसक होते हैं, जैसे, मुखम्—आननम्, नयनम्—नेत्रम्, लोहम्—फालम्, वनम्—गहनम्, मासम्—आमिषम्, रुधिरम्—रक्तम्, कार्मुकम्—शरासनम्, विवरम्—विलम्, जलम्—वारि, हलम्—लाङ्गलम्, घनम्—द्विषम्, अन्नम्—अशनम्, बलम्—वीर्यम्, कुसुमम्—पुष्पम्, शुल्वम्—ताम्रम्, पत्तनम्—नगरम्, रणम्—युद्धम्। परन्तु आहव और सग्राम पुल्लिङ्ग तथा 'आजि' स्त्रीलिङ्ग मे होते हैं।

(ञ) फलों की जाति बताने वाले शब्द नपुसक होते हैं, जैसे—आम्रम् आमलकम्।

१ क्रान्त ११५४। यात्रामात्रामस्त्रादष्ट्रावरत्रा स्त्रियामेव ११५५।  
मृत्रामित्रच्छात्रपुत्रमन्त्रवधमेदोष्ट्रा पुंसि ११५६।

२ लोपत्र ११४१।

३ शतादि सख्या। शतायुतप्रयुता पुंसि च। लक्षा कोटि स्त्रियाम्।  
शकु पुंसि ११४४—४७।

४ मुखनयनलोहवनमासरुधिरकार्मुकविवरजलहलघनाभामिधानानि  
११३७। बलकुसुमशुल्वपत्तनरणामिधानानि। ११७। आहवसग्रामौ पुंसि ११६०।  
आजि स्त्रियामेव ११६०।

# त्रयोदश सोपान

## अव्यय-विचार

१६४—अव्यय<sup>१</sup> ऐसे शब्द को कहते हैं, जिसके रूप में कोई विकार न उत्पन्न हो, जो सदा एक-सा रहे। जिसका खर्च न हो। जो लिङ्ग, विभक्ति, वचन के अनुसार घटे-बड़े नहीं, वही अव्यय है।

सदृश त्रिषु लिङ्गेषु सर्वाणु च विभक्तिषु ।

वचनेषु च सर्वेषु यस्य व्येति तदव्ययम् ॥

उदाहरणार्थ—उच्चै (ऊँचे), नीचै (नीच), अभित (चारों ओर), हा आदि ।

अव्यय चार प्रकार के होते हैं—(१) उपसर्ग, (२) क्रियाविशेषण (३) समुच्चयबोधक शब्द (conjunctions) तथा (४) मनोविकारसूचक शब्द (interjection)। इनके अतिरिक्त प्रकीर्ण ।

## उपसर्ग

१६५—जो अव्यय धातु या धातु से बने हुए विशेषण, सज्ञा आदि शब्दों के पूर्व जोड़े जाते हैं, उनको उपसर्ग कहते हैं। इनके द्वारा धातु का अर्थ कुछ परिवर्तित हो जाता है, इनके द्वारा ही धातु के विभिन्न अर्थों का प्रकाश होता है। उदाहरणार्थ कृ धातु का अर्थ है 'करना', किन्तु इसके पूर्व उपसर्ग लगा कर अपकार, उपकार, अधिकार आदि शब्द बनते हैं। सिद्धातकौमुदीकार कहते हैं—

उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते ।

प्रहाराहारसहारविहारपरिहारवत् ॥

उपसर्ग से कमी धातु का अर्थ उलटा हो जाता है, कमी वही रहते हुए अधिक विशिष्ट हो जाता है, कमी ठीक वही। यही भाव इस श्लोक में दिया है—

धात्वर्थं बाधते कश्चित्कश्चित्तमनुवर्तते ।

तमेव विशिनष्ट्यन्य उपसर्गगतिस्त्रिधा ॥

उदाहरणार्थ, 'जय' का अर्थ है 'जीत', किन्तु 'पराजय', का अर्थ हुआ 'हार'—उससे बिल्कुल उल्टा, 'भू' का अर्थ है 'होना, किन्तु 'अभिभू' का अर्थ है 'हराना', 'प्रभू' का अर्थ है 'सामर्थ्यवान् होना', 'कृष्' का अर्थ है 'खीचना', किन्तु 'प्रकृष्' का 'खूब जोर से खीचना' इत्यादि ।

नीचे' उपसर्ग उन मुख्य अर्थों सहित, जो बहुधा उसके साथ चलते हैं, दिए जाते हैं—

अति—इसका अर्थ बाहुल्य अथवा उल्लघन होता है, जैसे अतिक्रम — सीमा का उल्लघन, अतिनिद्रा—अधिक नींद ।

अधि—ऊपर, जैसे अधिकार—ऊपरी काम, जिसने दूसरे बश में हो ।

अनु—पीछे, साथ, जैसे अनुगमनम्—पीछे चलना ।

अप—दूर, जैसे अपहार—दूर ले जाना, अपकार—बुरा करना ।

अपि—निकट, जैसे अपिधानम्—ढक्कन (अपि का विकल्प से अ लुप्त हो जाता है—अपिधानम्, पिधानम्) ।

अभि—ओर, जैसे अभिगमनम्—किसी की ओर जाना ।

अव—दूर, नीचे, जैसे अवतरण—नीचे आना, अवमान—नीचा मानना ।

आ—तक, कम, जैसे आच्छद्—चारों ओर तक ढकना, आकम्प—कुछ कांपना ।

उद्—ऊपर, जैसे उद्गम्—ऊपर जाना (निकलना), उत्पत्—ऊपर गिरना (उठना) ।

उप—निकट, जैसे उपासना—निकट बैठना (प्रार्थना) ।

दुर्—बुरा, जैसे दुराचार—खराब काम ।

दुस्—कठिन, जैसे दुष्कर—करने में कठिन, दु सह—सहने में कठिन ।

१ प्र, परा, अप, सम, अनु, अव, निस्, निर्, दुस्, दुर्, वि, आङ्, नि, अधि, अपि, अति, सु, उद्, अभि, प्रति, परि, उप एते प्रादय ।

नि—नीचे आदि, जैसे निपत्—नीचे गिरना, निकाय—समूह ।  
 निर्—बाहर, जैसे निर्गम—बाहर निकलना, निर्दोष—दोष से बाहर ।  
 निस्—बिना, बाहर, जैसे नि सार—सार-रहित, नि शङ्क—शङ्का-रहित ।  
 परा—पीछे, उल्टा, जैसे पराजय—हार, परामव—हार, परागत—  
 चला गया ।

परि—चारो ओर, जैसे परिखा—चारो ओर की खाई ।  
 प्र—अधिक, जैसे प्रणाम—अधिक झुकना ।  
 प्रति—ओर, उल्टा, जैसे प्रतिकार—बदला, प्रतिगम—किसी की ओर  
 जाना ।

वि—बिना, अलग, जैसे विचल—दूर चला हुआ, वियोग—विरह ।  
 सम्—अच्छी तरह, जैसे सस्कार—अच्छी तरह किया हुआ ।

इनमे से एक या कई उपसर्ग धातु, क्रिया अथवा धातु से निर्मित अन्य  
 शब्दों के पूर्व जुड़े मिलते हैं और भिन्न-भिन्न अर्थों में । ऊपर के अर्थ केवल  
 निर्देशमात्र हैं ।

(ख) इनके अतिरिक्त कुछ और शब्द भी हैं, जो धातु आदि के पूर्व लगते  
 हैं । इनका नाम 'गति' है । मुख्य-मुख्य 'गति' शब्द ये हैं—

असत्—जैसे अस्तत्कार ।  
 सत्—जैसे सत्कार, सद्गति ।  
 नम (कृ के पूर्व) नमस्कार ।  
 साक्षात्— " साक्षात्कार ।  
 अन्त—अन्तर्हित (छिपा हुआ) ।  
 अस्तम्—(गत्यर्थक धातुओं के पूर्व)—अस्तङ्गत, अस्तभीत आदि ।  
 आवि—(कृ, अस्, भू के पूर्व) आविष्कार, आविर्भूत ।  
 प्रादु—( " " " ) प्रादुष्कार, प्रादुर्भूत ।  
 तिर—(भू और घा के पूर्व) तिरोभूत, तिरोहित ।  
 पुर—(कृ, भू, गम् के पूर्व) पुरस्कार, पुरोगत, पुरोभव ।  
 स्वी—(कृ के पूर्व) स्वीकार, स्वीकृत आदि ।



न<sup>१</sup> (नञ्) प्रायः सादृश्य (जैसे अब्राह्मण—ब्राह्मण नहीं, किन्तु उसी के सदृश कोई और), अभाव (जैसे अज्ञानम्—ज्ञानस्य अभाव), अन्य प्रकार (जैसे अयम् अपट—यह कपड़े से भिन्न है), अल्पता (जैसे अनुदरा कन्या—कम पेट वाली), बुराई (जैसे अकार्य—बुरा काम) अथवा विरोध (जैसे अनौति—नीतिविरोध) का बोध उपसर्ग-रूप में लग कर कराता है।

कुछ अव्यय शब्द के अंत में भी लगते हैं, जैसे किम् के उपरान्त 'चित्' अथवा 'चन' अनिश्चय का बोध कराने के लिए और वर्तमान काल की क्रिया के अनन्तर 'स्म' भूतकाल का बोध कराने के लिए लगता है।

### १६६—क्रियाविशेषण

कुछ क्रियाविशेषण स्व आदि अव्ययो में गिनाए हुए शब्द हैं जैसे—पृथक्, विना, बृथा आदि, कुछ सर्वनामों से बनते हैं, जैसे—इदानीम्, यथा तथा आदि, कुछ संख्यावाची शब्दों से बनते हैं, जैसे—एकधा, द्विधा, त्रि, त्रि आदि, और कुछ सज्ञाओं में तद्धित प्रत्यय लगाकर, जैसे—पुत्रवत्, मस्मसात् आदि। इसके अतिरिक्त सज्ञाओं को द्वितीया के एकवचन में बहुधा क्रियाविशेषण-स्वरूप प्रयोग में लाते हैं, जैसे सत्यम्, सुखम् आदि।

(२) नीचे अकारादि क्रम से मुख्य-मुख्य प्रचलित क्रियाविशेषण दिए जाते हैं—

अकस्मात्—इकबारगी	अपरम्—और
अप्रत—आगे	अपरेद्यु—दूसरे दिन
अप्रे—पहले	अधुना—अब
अचिरम्—	अनिशम्—निरन्तर
अचिरात्—	
अचिरेण—	अन्तरेण—बारे में, बिना
अजलम्—निरन्तर	अन्तरा—बिना, बीच में
अन्तर्—अन्दर	अन्तरे—बीच में
अत—इसलिए	अन्यच्च—और

१ तत्सादृश्यमभावश्च तदन्यत्व तदल्पता ।

अप्राशस्त्य विरोधश्च नवर्था षट् प्रकीर्तिता' ॥

अतीव—बहुत  
 अत्र—यहाँ  
 अथ—तब, फिर  
 अथकिम्—हाँ, तो क्या  
 अद्य—आज  
 अघ — } नीचे  
 अधस्तात्— }  
 असम्प्रति— } अनुचित  
 असाम्प्रतम्— }  
 आरात्—दूर, समीप  
 इत —यहाँ से  
 इतस्तत —इधर-उधर  
 इति—इस प्रकार  
 इत्थम्—इस प्रकार  
 इदानीम्—इस समय  
 इह—यहाँ  
 ईषत्—कुछ, थोडा  
 उच्चै—ऊँचे  
 उभयत —दोनो ओर  
 ऋतम्—सच  
 ऋते—बिना  
 एकत्र—एक जगह  
 एकदा—एक बार  
 एकधा—एक प्रकार  
 एकपदे—एक साथ  
 एतर्हि—अब  
 एव—ही  
 एवम्—इस तरह  
 कच्चित्— } क्यो  
 कच्चन— }

अन्यत्र—दूसरी जगह  
 अन्यथा—दूसरी तरह  
 अभित —चारो ओर, पास  
 अभीक्ष्णम्—निरन्तर  
 अर्वाक्—पहले  
 अलम्—त्रार, पर्याप्त  
 असकृत्—कई बार  
 कदापि—कभी, शायद  
 कदापि—कभी  
 कदापि न—कभी नहीं  
 किञ्च—और  
 किन्तु—लेकिन  
 किम्—क्या, क्यो  
 किमुत—और कितना  
 किवा—या  
 किल—सचमुच  
 कुत —कहाँ से  
 कुत्र—कहाँ  
 कुत्रचित्—कही  
 कृतम्—बस, हो गया  
 केवलम्—सिर्फ  
 क्व—कहाँ  
 क्वचित्—कही  
 खलु—निश्चय करके  
 चिरम्—देर तक  
 जातु—कभी भी  
 झटिति—जल्दी  
 तत्—इसलिए  
 तत —फिर  
 तत्र—वहाँ

कथम्—कैसे  
 कथञ्चन— } किसी प्रकार  
 कथञ्चित्— }  
 कदा—कब  
 तथाहि—जैसे (विशद रूप से वर्णन)  
 तस्मात्—इसलिए  
 तर्हि—तब, तो  
 तावत्—तब-तक  
 तिर— } —तिरछे  
 तिर्यक्— }  
 तूष्णीम्—चुपचाप  
 दिवा—दिन मे  
 दिष्टया—सौभाग्य से  
 दूरम्—दूर  
 ज्येष्ठा—रात को  
 द्राक्—शीघ्र, फौरन  
 ध्रुवम्—निश्चय ही  
 नक्तम्—रात को  
 न—नही  
 न वरम्—परन्तु  
 नाना—हर तरह से  
 नाम—नाम वाला, नामक  
 निकषा—निकट  
 नीचै—नीचे  
 नूनम्—निश्चित  
 नो—नही  
 परम्—फिर, परन्तु  
 परश्व—परसो  
 परित—चारो ओर  
 परेद्यु—दूसरे दिन (कल)

तथा—उस तरह  
 तदा—तब  
 तदानीम्—तब  
 पर्याप्तम्—काफी  
 पश्चात्—पीछे  
 धुन—फिर  
 पुरत, पुर— } आगे  
 पुरस्तात्— }  
 पुरा—पहले  
 पूर्वद्यु—पहले दिन (कल)  
 पृथक्—अलग-अलग  
 प्रकामम्—यथेष्ट, बहुत  
 प्रतिदिनम्—हर रोज  
 प्रत्युत—उल्टे  
 प्रसह्य—जबर्दस्ती  
 प्राक्—पहले  
 प्रात—सबेरे  
 प्राय—अक्सर  
 प्रेत्य—भरकर, दूसरी दुनिया मे  
 बलात्—जबर्दस्ती  
 बहिः—बाहर  
 बहुधा—बहुत प्रकार से  
 भूय—फिर-फिर, अधिक  
 भूशम्—बार-बार, अधिकाधिक  
 मनाक्—थोडा  
 मिथ—परस्पर  
 मिथ्या—झूठ  
 मुधा—बेकार  
 मुहु—बार-बार  
 मूषा—झूठ, बेकार

पर्याप्तम्—काफी	यत्—जो, क्योकि
यत —क्योकि	सदा—सब दिन
यत्र—जहाँ	सपदि—तुरन्त, क्षीघ्र
यथा—जैसे	समन्तात्—चारो ओर
यथा तथा—जैसे-तैसे	समम्—बराबर-बराबर
यथा यथा—जैसे-जैसे	समया—निकट
यदा—जब	समीपे, समीपम्—निकट
यावत्—जब तक	समीचीनम्—ठीक
युगपत्—साथ, इकबारगी	सम्प्रति—इस समय, अभी
विना—बिना	समुखम्—सामने, मुँह दर मुँह
बृथा—बेकार	सम्यक्—भली प्रकार
वै—निश्चय	सर्वत —चारो ओर
शनै —धीरे-धीरे	सर्वत्र—सब कहीं
इव —कल (आने वाला दिन)	साक्षात्—आँखों के सामने
शश्वत्—सदा	सार्धम्—साथ
सर्वथा—सब प्रकार से	साकम्—साथ
सर्वदा—सब दिन	साम्प्रतम्—अब, उचित
सह—साथ	सायम्—शाम को
सहसा—इकबारगी	सुष्ठु—अच्छी तरह
सहितम्—साथ	स्वस्ति—आशीर्वाद
सकृत्—एक बार	स्वयम्—अपने आप
सततम्—बराबर, सब दिन	हि—इसलिए
सखा—दोस्त	ह्य —कल (पूर्वदिन)
सद्य —तुरन्त	

### १६७—समुच्चयबोधक शब्द

च—'ओर' शब्द का अर्थ संस्कृत में बहुधा 'व' शब्द से बतलाया जाता है, किन्तु जहाँ 'ओर' हिन्दी में जोड़े हुए शब्दों के बीच में आता है, जैसे—राम और

गोविन्द, वहाँ संस्कृत में 'च' शब्द के उपरान्त आता है, अथवा अलग-अलग दोनों के उपरान्त, जैसे—रामो गोविन्दश्च अथवा रामश्च गोविन्दश्च। 'च' को बहुधा अन्य समुच्चय-बोधक शब्दों के अनन्तर भी जोड़ देते हैं, जैसे—अथच, परञ्च, किञ्च।

अथ, अथो, अथ च—वाक्य के आदि में आते हैं और बहुधा 'तब' का अर्थ बताते हैं। इसके पूर्व कुछ वाक्य आ चुके हुए होते हैं, अथवा प्रकरण में कुछ बीत चुका है।

तु—तो, यह वाक्य के आदि में नहीं आता, जैसे, स तु गत—वह तो गया आदि।

किन्तु, परन्तु, परञ्च—लेकिन।

वा—या के अर्थ से च की तरह इसका भी प्रयोग यत्क शब्द के उपरान्त अथवा दोनों के उपरान्त होता है, जैसे, रामो गोविन्दो वा अथवा रामो वा गोविन्दो वा—राम या गोविन्द।

अथवा—इसका भी प्रयोग व की तरह उसी अर्थ में होता है।

चेत्, यदि—यदि, अगर। चेत् का प्रयोग वाक्य के आरम्भ में नहीं होता।

नोचेत्—नहीं तो,

यदि-तर्हि—यदि, तो

तत्—इसलिए।

हि—क्योंकि

यावत्-तावत्—जब तक-तब तक।

यदातदा—जब-तब।

इति—वाक्य के अन्त में समाप्तिसूचक, जैसे—ग्रहम् गच्छामि इति सोऽवदत्। इससे हिन्दी में 'कि' का बोध होता है। 'कि' का बोध यत् से भी होता है किन्तु यह वाक्य के आदि में आता है, जैसे—सोऽवदत् यदहं गच्छामि।

### १६८—मनोविकारसूचक अव्यय

इनका वाक्य से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। मुख्य-मुख्य दिए जाते हैं।

हन्त—हर्षसूचक, खेदसूचक।

आ, हुम्, हम्—क्रोधसूचक ।

हा, हाहा, हन्त—शोकसूचक ।

बत—दयासूचक, खेदसूचक ।

किम्, धिक्—धिक्कार-सूचक ।

अङ्ग, अयि, अये, भो—आदरसहित बुलाने के काम में आते हैं । अरे, रे, रेरे—अवज्ञा से बुलाने में ।

अहो, ही—विस्मयसूचक ।

### १६६—प्रकीर्ण अव्यय

ऊपर कह आए हैं कि जो विभक्ति, लिङ्ग और वचन के अनुसार रूप-परिवर्तन को प्राप्त न हो, वही अव्यय है । इस गणना के अनुसार कई तद्धित-प्रत्ययान्त, कई कृदन्त तथा कुछ समासों के शब्द अव्यय होते हैं ।

तद्धितों में—तसिल् प्रत्ययान्त, चन्-प्रत्ययान्त, दा-प्रत्ययान्त, दानीम्-प्रत्ययान्त, अधुना, कर्हि, यर्हि, सद्य से लेकर उत्तरेद्यु तक (५।३।२२), थाल्-प्रत्ययान्त, दिक् कालवाचक, पुर, पश्चात्, उत्तरा, उत्तरेण आदि, धा-प्रत्ययान्त (एकधा आदि), शस्-प्रत्ययान्त (बहुश, अल्पश आदि), च्वि-प्रत्ययान्त (मस्मीभूय, शक्तीभूय आदि) साति-प्रत्ययान्त (अग्निसात्, ब्रह्मसात् आदि), कृत्वसुच्-प्रत्ययान्त (पचकृत्व, सप्तकृत्व ) तथा इसके अर्थ में आने वाले सुच् प्रत्ययान्त (द्वि, त्रि) ।

कृदन्तों में—न् में अन्त होने वाले जैसे—णमुल्-प्रत्ययान्त (स्मार स्मारम् आदि), तुमुल्-प्रत्ययान्त (गन्तुम्) तथा ए, ऐ, ओ, औ में अन्त होने वाले, जैसे—गन्तुम्, जीव से (तुमर्थे प्रत्यय अ से लगा कर), पिबध्वं (तुमर्थे शध्वं प्रत्यय), तथा क्त्वा (और क्त्वार्थल्यप्), तोसुन् और कसुन् प्रत्ययों में अन्त होने वाले शब्द, जैसे—कृत्वा, उदेतो, विसृप ।

अव्ययीभाव<sup>१</sup> समास—अधिहरि, यथाशक्ति, अनुविष्णु इत्यादि ।

१ तद्धितश्चासर्वविभक्ति १।१।५।

२ कृन्मेजत्त १।१।३६।

३ क्त्वातोसुन्कसुन् १।१।४०।

४ अव्ययीभावञ्च १।१।४१।

# १—परिशेष

## छन्द

संस्कृत काव्य गद्य और पद्य में होता है। गद्य में पदों का विभाग पादों में नहीं होता।

प्रत्येक पद्य में चार “पाद” होते हैं। पादों की व्यवस्था या तो अक्षरों (Syllable) से या मात्राओं (Syllabic instants) से होती है।

(क) ‘अक्षर’ शब्द के उस भाग को कहते हैं, जो एक ही बार के प्रयत्न में स्वच्छन्दता-पूर्वक उच्चारण किया जा सके। एक स्वर के साथ जो व्यञ्जन लगे होते हैं, उन्हें मिलाकर वह स्वर अक्षर कहलाता है, जैसे—प्र, अप्, अञ्ज आदि। यदि उसके साथ कोई व्यञ्जन न भी हो, तो अकेला ही वह अक्षर कहलाएगा, जैसे—अपाद शब्द में अ।

(ख) मात्रा समय के उस परिमाण को कहते हैं, जो कि एक ह्रस्व स्वर के उच्चारण करने में लगता है। इसलिए, ह्रस्व स्वर एक मात्रा वाला है। दीर्घ स्वर के उच्चारण करने में ह्रस्व से दूना समय लगता है, इसलिए उसमें दो मात्राएँ होती हैं।

## अक्षरों के प्रकार के होते हैं

(१) लघु, (२) गुरु। “लघु” अक्षर उसे कहते हैं, जिसमें स्वर ह्रस्व हो, “गुरु” अक्षर उसे कहते हैं, जिसमें स्वर दीर्घ हो।

## ह्रस्व स्वर

अ, इ, उ, ऋ और लृ ह्रस्व स्वर हैं।

## दीर्घ स्वर

आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ और औ दीर्घ स्वर होते हैं।

जब किसी ह्रस्व स्वर के उपरान्त अनुस्वार या विसर्ग या सयुक्ताक्षर आवे तो उस ह्रस्व को छन्द-शास्त्र में गुरु मानते हैं, जैसे—“गन्ध” में “ग” गुरु है क्योंकि “ग” के उपरान्त सयुक्ताक्षर “न्ध” आ जाता है, इसी प्रकार “सशय” में “स” गुरु है, क्योंकि “स” अनुस्वार-सहित है, “राम” में “म” गुरु है, क्योंकि “म” विसर्ग-सहित है।

यदि किसी पद्य में पाद के अन्त वाले अक्षर को गुरु होना चाहिये, लेकिन वह लघु है तो उसे उस स्थान पर गुरु मान लेते हैं।

किसी पद्य का उच्चारण करते समय जहाँ सँस लेने के लिए क्षण भर रुक जाते हैं, वहाँ पद्य की ‘यति’ होती है। ये यतियाँ व्यवस्थित हैं। जहाँ यति होती हो वहाँ उचित यही है कि शब्द का अन्त होना चाहिए, मध्य नहीं।

## छन्द दो प्रकार का होता है—(१) वृत्त और

### (२) जाति वृत्त

जिस पद्य की रचना अक्षरों के हिसाब से होती है, उसे वृत्त कहते हैं। सुविधा के लिए तीन-तीन अक्षरों के समूह को गण कहते हैं, जैसे—

‘कश्चित्कान्ताविरहगुणोत्पात्तस्वाधिकारात्प्रमत्त’ इस पद में (१) “कश्चित्का”, (२) “न्ताविर”, (३) “हगुरु”, (४) “णास्वाधि”, (५) “कांरात्त्र”, ये पाँच गण हैं। यहाँ पर (१) में “क” एक अक्षर है, “श्चि” दूसरा अक्षर है, “त्का” तीसरा अक्षर है, इस प्रकार तीन अक्षर का एक गण (कश्चित्का) हुआ। इसी प्रकार (२) में “न्ता” एक अक्षर है, “वि” दूसरा अक्षर है, “र” तीसरा अक्षर है, फिर तीन अक्षरों का एक गण (न्ताविर) हुआ।

गण घटते हैं—

(१) भगण	(२) जगण	(३) सगण	(४) यगण
(५) रगण	(६) तगण	(७) मगण	(८) नगण

आदिमध्यावसानेषु भजसा यान्ति गौरवम् ।

यरता लाघव यान्ति मनौ तु गुरुलाघवम् ॥

१ सानुस्वारश्च दीर्घश्च विसर्गी च गुरुर्भवेत् ।

वर्ण सयोगपूर्वश्च तथा पादान्तगोऽपि वा ॥



(१) भगण उसे कहते है, जिसमे पहला अक्षर गुरु तथा द्वितीय और तृतीय लघु हो।

(२) जगण मे मध्य अक्षर गुरु होता है, शेष पहला और तीसरा लघु होते है।

(३) सगण मे तीसरा अक्षर गुरु होता है और शेष पहला और दूसरा लघु होते हैं।

(४) यगण मे केवल पहला अक्षर लघु होता है, शेष दो गुरु।

(५) रगण मे दूसरा अक्षर लघु होता है, शेष दो गुरु।

(६) तगण मे केवल तीसरा अक्षर लघु होता है, शेष दो गुरु।

(७) भगण मे तीनों अक्षर गुरु होते हैं।

(८) नगण मे तीनों अक्षर लघु होते है।

लघु का चिह्न ।

गुरु का चिह्न S

आठो गण चिह्नो द्वारा नीचे दिखाए जाते हैं—

(१) भगण	।
(२) जगण	। S ।
(३) सगण	। । S
(४) यगण	। S S
(५) रगण	S । S
(६) तगण	S S ।
(७) भगण	S S S
(८) नगण	। । ।

## (२) जाति (अथवा मात्रिक)

जिस छन्द की व्यवस्था मात्राओं के हिसाब से की जाती है, उसे जाति कहते हैं। सुविधा के लिए कभी-कभी मात्राओं का भी गणो मे विभाग करते है। किन्तु मात्रिक छन्द का प्रत्येक गण चार मात्राओं का होता है तीन वर्णों का नहीं। जैसे—

“येनामन्दमरन्दे दलदरविन्दे दिनान्यनायिषत”—इस पद्य में “येना”, “मन्दम्”, “रन्दे” गण हैं, क्योंकि “ये” में दो मात्राएँ हैं और “ना” में दो मात्राएँ हैं, इस प्रकार चार मात्राएँ हुई, इसलिए इन चार मात्राओं का एक गण (येना) हो गया। यहाँ पर इस बात को ध्यान से देखना चाहिए कि अगर यह पद्य वृत्त होता तो “येना” एक गण न माना जाता, प्रत्युत वह “येनाम” एक गण होता।

### मात्रागण सब मिल कर पाँच होते हैं—

(१) मगण	5 5
(२) सगण	1 1 5
(३) जगण	1 5 1
(४) भगण	5 1 1
(५) नगण	1 1 1 1

### वृत्त तीन प्रकार के होते हैं—

- (१) समवृत्त—वह होता है, जिस पद्य के चारो चरण (अथवा पाद) एक से होते हैं।
- (२) अर्धसमवृत्त—वह होता है, जिस पद्य के प्रथम तथा तृतीय चरण एक तरह के और द्वितीय तथा चतुर्थ दूसरी तरह के होते हैं।
- (३) विषम—वह होता है, जिस पद्य के चारो चरण एक दूसरे से भिन्न होते हैं।

संस्कृत काव्य में बहुधा समवृत्त छन्दो का अधिक प्रयोग मिलता है।

### समवृत्त

समवृत्त कई प्रकार के होते हैं। किसी के प्रत्येक चरण में १ अक्षर (Syllable) होता है, किसी के २, किसी के ३ और किसी के ४। इसी प्रकार २६ अक्षर तक चला जाता है। यहाँ पर केवल थोड़े से ऐसे समवृत्त दिखाए जायेंगे जो बहुधा साहित्यिक प्रयोग में आते हैं।

### ८ अक्षर वाले समवृत्त

आठ अक्षर वाले समवृत्तो में से एक समवृत्त “अनुष्टुप्” है, इसे “दश्लोक” भी कहते हैं। इसका लक्षण यह है—

श्लोके षष्ठ गुरु ज्ञेय सर्वत्र लघु पञ्चमम् ।  
द्विचतु पादयोर्ह्रस्व सप्तम दीर्घमन्ययो ॥

अर्थात् “श्लोक” के सभी चरणों में छठवाँ अक्षर (Syllable) गुरु तथा पाँचवाँ लघु होता है। सातवाँ अक्षर दूसरे तथा चौथे चरण में ह्रस्व होता है और पहले और तीसरे में दीर्घ होता है। लक्षण वाला श्लोक ही उदाहरण भी है।

## ११ अक्षर वाले समवृत्त

### (१) इन्द्रवज्रा

स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः

इन्द्रवज्रा के प्रत्येक पाद में दो तगण, एक जगण, फिर दो गुरु अक्षर होते हैं। उदाहरणार्थ लक्षण ही को लीजिए—

तगण	तगण	जगण	ग ग
५ ५ ।	५ ५ ।	। ५ ।	५ ५
स्या दि न्द्र	व ज्रा य	दि तौ ज	गौ ग

### (२) उपेन्द्रवज्रा

उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ

उपेन्द्रवज्रा के प्रत्येक पाद में जगण, तगण, जगण, तथा दो गुरु होते हैं।

जगण	तगण	जगण	ग ग
। ५ ।	५ ५ ।	। ५ ।	५ ५
उ पे न्द्र	व ज्रा ज	त जा स्त	तो गौ

### (३) उपजाति

अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ

पादौ यदीयावुपजातयस्ताः ।

उपजाति उस वृत्त को कहते हैं जो इन्द्रवज्रा तथा उपेन्द्रवज्रा के मिश्रण से बनता है। उदाहरणार्थ लक्षण ही को लीजिए—

जगण	तगण	जगण	ग ग
। ५ ।	५ ५ ।	। ५ ।	५ ५
अनन्त	रो दी रि	त ल क्ष्म	भा जी
तगण	तगण	जगण	ग ग
५ ५ ।	५ ५ ।	। ५ ।	५ ५
पा दौ य	दी या वु	प जा त	य स्ता

इसमें प्रथम चरण उपेन्द्रवज्रा का है और द्वितीय इन्द्रवज्रा का । कमी-कमी प्रथम तथा तृतीय चरण इन्द्रवज्रा के रहते हैं, द्वितीय तथा चतुर्थ उपेन्द्रवज्रा के ।

### १२ अक्षर वाले समवृत्त

(१) द्रुतविलम्बित

द्रुतविलम्बितमाह नभौ भयि

द्रुतविलम्बित के प्रत्येक पाद में नगण, भगण, भगण और रगण होते हैं, जैसे—

नगण	भगण	भगण	रगण
। । ।	५ । ।	५ । ।	५ । ५
द्रु त वि	लम्बित	मा ह न	भौ म रौ

(२) भुजङ्गप्रयात

भुजङ्गप्रयातं चतुर्भिर्यकारैः

भुजङ्गप्रयात के प्रत्येक पाद में चार यगण होते हैं, जैसे—

यगण	यगण	यगण	यगण
। ५ ५	। ५ ५	। ५ ५	। ५ ५
भु ज ङ्ग	प्र या त	च तु मि	र्यं का रै

### १४ अक्षर वाले समवृत्त

वसन्ततिलका

उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः

वसन्ततिलका के प्रत्येक पाद में तगण, भगण, जगण, जगण और दो गुरु होने हैं, जैसे—

तगण	मगण	जगण	जगण	ग ग
१ १ १	१ १ १	१ १ १	१ १ १	१ १
उ क्ता व	स न्त ति	ल का त	भ जा ज	गौ ग

### १५ अक्षर वाले समवृत्त

मालिनी

ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः

मालिनी के प्रत्येक पाद में नगण, नगण, मगण, यगण तथा मगण होते हैं और आठवें तथा सातवें अक्षर के बाद यति होती है, जैसे—

नगण	नगण	मगण	यगण	यगण
१ १ १	१ १ १	१ १ १	१ १ १	१ १ १
न न म	य य यु	ते य, मा	वि नी भो	गि लो कै

### १७ अक्षर वाले समवृत्त

(१) मन्दाक्रान्ता

मन्दाक्रान्ताम्बुधिरसनगैर्मौ भन्ता तौ गयुग्मम्

मन्दाक्रान्ता के प्रत्येक पाद में मगण, मगण, नगण, तगण, तगण और दो गुरु अक्षर होते हैं।

चार अक्षर के उपरान्त, तदनन्तर छ अक्षर के उपरान्त, तदनन्तर फिर सात अक्षर के उपरान्त यति होती है, जैसे—

मगण	मगण	नगण	तगण	तगण	ग ग
१ १ १	१ १ १	१ १ १	१ १ १	१ १ १	१ १
क शिव त्का	न्ता, वि र	ह गु र	णा, स्वा धि	का रा त्प्र	म त्त

यहाँ पर पहिली यति "न्ता" के उपरान्त दूसरी "णा" के उपरान्त, तीसरी अन्त में "त्त" के उपरान्त है। इसी प्रकार चारों चरणों में यति होगी।

## (२) शिखरिणी

## रसे रुद्रशिङ्खला यमनसभलागः शिखरिणी

शिखरिणी के प्रत्येक पाद मे यगण, मगण, नगण, सगण, भगण तदनन्तर एक लघु और एक गुरु होता है। छ अक्षर के उपरान्त तदनन्तर फिर ग्यारह अक्षर के उपरान्त यति होती है, जैसे—

यगण	मगण	नगण
। ५ ५	५ ५ ५	। । ।
स मृ द्ध	सौ भा ग्य,	स क ल
सगण	भगण	ल ग
। । ५	५ । ।	। ५
व सु धा	यो कि म	पि तन्,

यहाँ पर पहिली यति छठे अक्षर “ग्य” के उपरान्त और दूसरी यति ग्यारहवें अक्षर “तन्” के उपरान्त है। पूरा श्लोक यो है—

समृद्ध सौभाग्य सकलवसुधाया किमपि तन्  
 महैश्वर्य लीलाजनितजगत खण्डपरशो ।  
 श्रुतीना सर्वस्व सुकृतमथ मूर्तं सुमनसा,  
 सुधासौन्दर्यं ते सलिलमशिव न शमयतु ॥

## १६ अक्षर वाले समवृत्त

शार्दूलविक्रीडितम्

सूर्याश्वर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम् ।

शार्दूलविक्रीडित छन्द के प्रत्येक पाद मे मगण, सगण, जगण, सगण, तगण, तगण फिर एक गुरु अक्षर होता है। बारहवें अक्षर के उपरान्त पहिली यति, तदनन्तर सातवें अक्षर के उपरान्त दूसरी यति होती है, जैसे—

मगण	सगण	जगण	सगण
ऽ ऽ ऽ	। । ऽ	। ऽ ।	। । ऽ
पा तु न	प्र थ म	व्य व स्य	ति ज ल
तगण	तगण	ग	
ऽ ऽ ।	ऽ ऽ ।	ऽ	
यु ष्मा स्व	पी ते षु	या,	

यहाँ पर पहिली यति बारहवे अक्षर “ल” के उपरान्त तथा दूसरी यति फिर सातवें अक्षर “या” के उपरान्त है। पूरा श्लोक यो है—

पातु न प्रथम व्यवस्यति जल युष्मास्वपीतेषु या,  
नादत्ते प्रियमण्डनाऽपि भवता स्नेहेन या पल्लवम् ।  
आद्ये व कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः,  
सेय याति शकुन्तला पतिगृह सर्वैरनुजायिताम् ॥

## २१ अक्षर वाले मगधृत्त

लघ्वरा

### अन्नैर्यानां त्रयेण, त्रिमुनियतियुतः, लघ्वरा कीर्तितेयम्

लघ्वरा के प्रत्येक पाद में मगण, रगण, भगण, नगण, यगण, यगण, यगण होते हैं। इसमें सात-सात अक्षरों पर यति होती है, जैसे—

मगण	रगण	भगण	नगण
ऽ ऽ ऽ	ऽ । ऽ	ऽ । ।	। । ।
व्या को षे	न्दी व रा	भा, क न	क क ष
	यगण	यगण	यगण
	। ऽ ऽ	। ऽ ऽ	। ऽ ऽ
	न स, ल्पी	त धा सा	सु हा सा,

यहाँ पर पहिली यति सातवें अक्षर “भा” के उपरान्त तदनन्तर दूसरी यति फिर सातवें अक्षर “स” के उपरान्त, तीसरी यति फिर सातवें अक्षर “सा” के उपरान्त है। पूरा श्लोक यो है—

व्याकोपेन्दीवराभा कनककषलसत्पीतवासा सुहासा,  
 वर्हेरुच्चन्द्रकान्तैर्वलयितचिकुरा चारुकर्णावतसा ।  
 असव्यासक्तवशीध्वनिमुखितजगद्वल्लवीमिर्लसन्ती-  
 मूर्तिगोपस्य विष्णोरवतु जर्गात न स्रग्धरा हारिहारा ॥

### अर्धसमवृत्त

#### पुष्पिताग्रा

अयुजि नयुगरेफतो यकारो  
 युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा

पुष्पिताग्रा के प्रथम तथा तृतीय चरण में नगण, नगण, रगण, यगण (इस प्रकार १२ अक्षर) और द्वितीय तथा चतुर्थ में नगण, जगण, जगण, रगण और एक गुरु (इस प्रकार १३ अक्षर) होते हैं ।

नगण	नगण	रगण	यगण
		S   S	S S

प्रथम तथा  
तृतीय चरण

नगण	जगण	जगण	रगण	ग
	S	S	S   S	S

द्वितीय तथा  
चतुर्थ चरण

जैसे—

		S   S	S S
अ य म	द न व	घू रु प	प्ल वा न्त
	S	S	S   S S
व्य स न	कृ शा प	रि पा ल	या म्ब भू व



पूरा श्लोक यो है—

अथ मदनवधूरुपप्लवान्त

व्यसनकृशा परिपालयाम्बभूव ।

शशिन इव दिवातनस्य लेखा

किरणपरिक्षयधूसरा प्रदोषम् ॥

### विषमवृत्त

विषमवृत्त साधारणतः साहित्य में बहुत कम आते हैं। उदाहरणार्थ केवल उद्गता का लक्षण देते हैं—

।।S	।S।	।।S	।।S
प्रथमे,	सजौय	दिसलौ	रम्
।।।	।।S	।S।	S
नसज,	गुरुका	प्यनन्त	रम्
S।।	।।।	।S।	।S
यद्यथ,	भनज,	लगायु,	रथो
।।S	।S।	।।S	।S।S
सजसा,	जगौच,	भधती,	यमुद्ग, ता

### जाति

जैसा कि पहले कह आये हैं, "जाति" छन्द उसे कहते हैं, जिसमें के गण मात्रा ( Syllabic instants ) के हिसाब से व्यवस्थित किए जाते हैं। "जाति" का सबसे साधारण भेद "आर्या" है, जो नव प्रकार की होती है—

पथ्या विपुला चपला अथचपला जघनचला च ।

गीत्युपगीत्युद्गीतय आर्यागीतिश्च नवधार्या ॥

### आर्या

यस्या पादे प्रथमे, द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि ।

अष्टादश द्वितीये, चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या ॥

अर्थात् आर्या के प्रथम तथा तृतीय चरण में १२ मात्राएँ होती हैं, द्वितीय में १८ और चतुर्थ में १५ मात्राएँ होती हैं। उदाहरणार्थ लक्षण का ही पद्य द्रष्टव्य है। आर्या भी विषम वृत्तों में ही गिना जायगा।

नोट—छन्दों के अधिक ज्ञान के लिए श्रुतबोध, वृत्तरत्नाकर अथवा पिङ्गल-मुनि-रचित छन्द-सूत्र शास्त्र पढ़ना चाहिए।

## २—परिशेष

### रोमन अक्षरों में सस्कृत लिखने की विधि

सस्कृत भाषा को यूरोपीय विद्वान् बड़े चाव से पढ़ते हैं। केवल मनोरंजन के लिये ही नहीं, बहुत सी बातों में उन्होंने सस्कृत ग्रन्थों से हम भारतीयों की अपेक्षा अधिक लाभ उठाया है। इनके आधार पर भारतीय सभ्यता और सस्कृति पर उपादेय ग्रन्थ भी लिखे हैं, जिनसे हम लोगों का भी कुछ उपकार हो सकता है। बहुधा सस्कृत शब्दों को वे रोमन अक्षरों में लिखते हैं। हम लोगों को भी उस विधि को जान रखना आवश्यक है। पुरातत्त्व का अन्वेषण करते समय इस ज्ञान का पग-पग पर काम पड़ता है।

a á i í u ú r r í e o ai au  
अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ड ए ओ ऐ औ

अनुनासिक (स्वर के ऊपर) अथवा अनुस्वार— m अथवा n  
विसर्ग—h

क	ख	ग	घ	ङ
k	kh	g	gh	ṅ
च	छ	ज	झ	ञ
c	ch	j	jh	ñ
ट	ठ	ड	ड	ण
t	th	d	dh	n
त	थ	द	ध	न
t	th	d	dh	n

प्	फ्	ब्	म्	म्
p	ph	b	bh	m
य्	र्	ल्	व्	
y	r	l	v	
श्	ष्	स्	ह्	
s	ṣ	s	h	

कमी-कमी ऋ, ॠ, लृ को क्रम से ri ri lri, च्, छ् को ch, chh-श्, को c, sh भी लिखते हैं।

इस प्रकार इन अक्षरो को जोड कर शब्द लिखे जाते हैं, उदाहरणार्थ—

रश्मि	rasmī
प्रद्योत	pradyota
क्षत्रिय	ksatriya
उदीर्णधन्वा	udīrṇadhava
क्वप्त	kvpta
सस्कृति	samskr̥tiḥ

DR. RUPNATHJI (DR. RUPAKNATH)

## ३—परिशेष

### अकारादि क्रम धातुओं की सूची (कर्तृवाच्य)

धातु	पृ० स०	धातु	पृ० स०
		अ	
अद्	३५०	क्रन्द्	३३५
अस्	३५२	क्रम्	३८८
अच्	४३५	क्री	४२३
अर्ज्	४३६	क्रीड्	३३५
अर्थ्	४३६	कृष्	३८६
		कृत्स्	३३५
		किलम्	३३६
		आ	
आप्	३६३	किलिष्	३८६
आस्	३५३	क्षम् (भ्वादि)	३३६
		इ	
इळ (अधिपूर्वक)	३५४	क्षम् (दिवादि)	३८६
इण् (इ)	३५६	क्षल्	४३७
इष्	४०३	क्षुष्	३६०
		ख	
		क	
कथ्	४३६	खन्	३३७
कम्प्	३३६	खिद्	३६०
काश्	३३७		
काङक्ष	३३७	ग	
कुप्	३८६	गम्	३१३
कृ	४२१	गण्	४३७
कृत्	४०५	गृ	४६८
कृष्	४०५	ग्रह्	४२६
क्	४०५	ग्लै	३३७
		ख	
		च	
		चल्	३३७

घातु-सूची

५४१

घातु	पृ० स०	घातु	पृ० स०
चि	३६४	घ	
चिति	४३७	घा	३७६
चुर्	४३२	घृ	३१६
छिद्	४१२	घ्यै	३३८
ज		नी	३२१
जन्	३८५	घ	
जि	३१६	पच्	३३६
जा	४२८	पट्	३२४
ज्वल्	३३८	पा (पिब्)	३२५
त		प्रच्छ्	४०६
तड्	४३७	प्री	४३८
तन्	४१८		
तुद्	४०१	फल्	३४०
तुल्	४३६	फुल्	३४०
तुष्	३६८		
त्यज्	३३८	बन्ष्	४३०
त्रुद्	४०५	बाष्	३४०
द		बुष्	३४०
दण्ड्	४३८	ब्रू	३५८
दम्	३६०		
दह्	३३८	भज्	३४०
दा	३७३	भक्ष्	४३८
दिब्	३८४	भञ्ज्	४१४
दुष्	३६०	भत्सै	४३८
दसा	३१७	भाष्	३४०
झ्र्	३६०	मिक्ष्	३४१

DR. RUPNATH (DR. RUPAK NATH)

	पु० स०	परिशेष	पु० स०
५४२			
धातु	३८०	धातु	३४३
धी	४१५	रम्	३४४
मुञ्	३१२	रुद्	३६३
मू	३४१	रुष्	४०६
मूष् (म्वादि)	४३६	रुह्	३४४
मूष् (बुरादि)	३६१		
मु	३४२	लम्	३२७
भ्रम् (म्वादि)	३६१	लिल्	४०७
भ्रम् (बिवादि)	३४१	लि	४०७
भ्रंश्			
मंनि	४३६		
मब्	३४२	वन्द्	३४४
मन्	३४२	वप्	३४५
मन्द्	४३६	वस्	३४५
मान्	४३६	वञ्च्	४४०
मार्ग	४३६	वर्ण	४४०
मार्ज	४३६	वाञ्छ्	३४६
मिल्	४०६	विद्	३८७
मुब्	४०६, ४४२	विश्	४०८
मुद्	३४२	वृ	३६७
		वृज्	४४०
यञ्	३४२	वृत्	३२८
यत्	३४३	वृष्	३४६
या	३६१	वृष्	३४६
याब्	३४३	व्रज्	३४७
युब्	३६२	व्यष्	३६२
रब्	४४०	शक्	४००

DR. RUPNATHJI (DR. RUPAK NATH)

धातु-सूची

५४३

पु० सं०	धातु
३४७	स्वाद्
३४७	स्वप्
३६५	
३४७	हन्
३६६	हा
३४७	हृष्
३४७	ह्लाद्
३६२	कृ
३३०	की
३३२	चुर्
३७२	जि
	ज्ञा
४०८	दा
३४७	धृ
४०८	घ्यै
३६३	नो
३६३	पठ्
३६५	पा
४०८	भू
३४८	मुञ्
३३४	वच्
३६८	वद्
४०८	वप्
४४०	वस्
४०८	वह्
४०६	वृ
३४८	श्चि
३४६	हृ

पु० सं०

३४६

३७०

ह

३७१

३८२

३६३

३४६

कर्मवाच्य

४५३

४४८

४५६

४५०

४४६

४४३

४५५

४४८

४५१

४४२

४४५

४५५

४४२

४५६

४५६

४५६

४५६

४५६

४५६

४५०

४५६

धातु  
शक्त्  
शस्  
शास्  
शिक्ष्  
शी  
शुच्  
शुम्  
शुष्  
श्चि  
श्रु  
श्वस्

सद्  
सह्  
सिच्  
सिब्  
सिष्  
सृ  
सृज्  
सेव्  
स्था  
स्ना  
स्पृश्  
स्पृह्  
स्फुट्  
स्फुर्  
स्मृ  
स्वह्

स

DR. RUPAK NATH (DR. RUPAK NATH)